...ya Samaj Foundation Chennai

किताब घर

R
64.2

...Domain. Gurukul Kangri Colle...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुशवंत सिंह

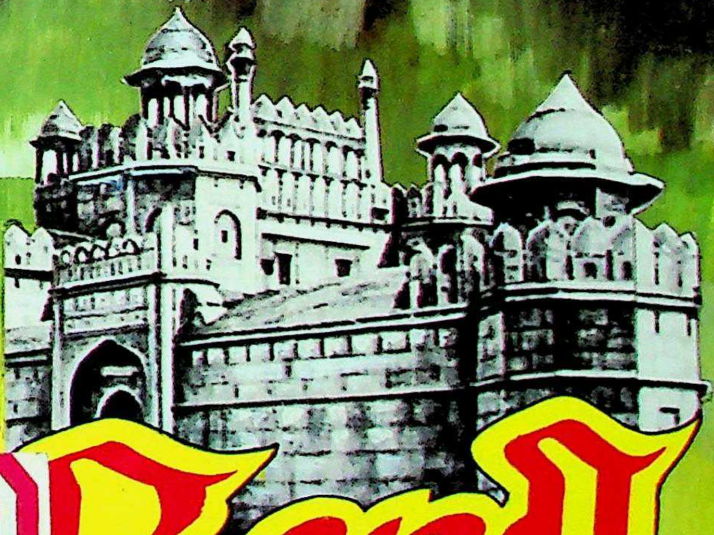

दिल्ली

R
७४.२
सिंह-द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
७४.२
सिंह-छ

142597

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान
आदि न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या 294.2 सिं8-6 आगत संख्या 142597

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली

(उपन्यास)

142597

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किताबघर प्रकाशन
नयी दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली

खुशवंत सिंह

अनुवाद

उषा महाजन

142597

142597

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
64·2
सिंह-द

ISBN—81-7016-191-6

© खुशवंत सिंह

प्रकाशक
किताबघर प्रकाशन
4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002

संस्करण
2008

आवरण
चेतनदास

मूल्य
दो सौ अस्सी रुपये

मुद्रक
बी० के० ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

DELHI (Novel in Hindi) by Khushwant Singh
Translated from English into Hindi by Usha Mahajan
Price : Rs. 280.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उपन्यास
जिसे लिखने में मुझे
बीस से भी अधिक वर्ष लगे
मेरे पुत्र राहुल सिंह
और
उसकी मित्र नीलोफर बिल्लीमोरिया
को
समर्पित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उपन्यास में मैंने दिल्ली की कहानी को
इसके शुरुआती दिनों से लेकर वर्तमान काल तक
समेटने की कोशिश की है।
इसके लिए मैंने प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा
लिपिबद्ध दस्तावेज़ों का अध्ययन किया,
इसीलिए इसका अधिकांश वर्णन
प्रथम पुरुष में है।
इतिहास ने मुझे केवल इसका ढाँचा दिया।
फिर मेरी लेखनी ने भरी इसमें मांस-मज्जा,
रक्त और भरपूर जीवंतता।

कह नहीं सकता कि मैं अपने इस प्रयास में
सफल रहा हूँ या नहीं।
वह तो आप ही बताएँगे।

—खुशवंत सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दिल्ली' की असलियत

जब मैंने 'दिल्ली' का अनुवाद शुरू किया तो कुछ मित्रों और परिचितों ने अपनी शंका व्यक्त की कि अश्लीलता का ठप्पा लगे इस उपन्यास का अनुवाद करना मैंने भला क्योंकर स्वीकारा।

मैं अपना जवाब इस प्रकार शुरू करूँगी—पूरी पुस्तक में सेक्स-सम्बन्धी दृश्यों के निर्बाध निरूपण के लिए जहाँ इस उपन्यास को अश्लीलता की कोटि में रखा जा रहा है, वहीं दिल्ली के इतिहासमूलक परिच्छेदों के अद्‌भुत कलात्मक वर्णन के लिए इसे खुशवंत सिंह की महानतम कृति कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा।

यह दिल्ली की छह सौ साल पहले से लेकर इन्दिरा गांधी की हत्या तक की कहानी है जिसे लिखने में लेखक को लगभग पच्चीस वर्ष का समय लगा। दिल्ली के इतिहास के अलग-अलग परिच्छेदों को नायक—मुख्य वाचक एवं उसकी हिंजड़ा प्रेमिका—भागमती के ज़रिये एक सूत्र में बाँधा गया है, वरना तो सभी अध्याय अपने-आप में एक पूरी-की-पूरी कहानी कहते हैं। मुसद्दीलाल, ग़यासुद्दीन बलबन, अमीर खुसरो, तैमूर लंग, औरंगज़ेब, नादिर शाह, मीर तक़ी मीर, बहादुरशाह ज़फ़र, 1857 का ग़दर—इन सबकी कहानी जिस अधिकार और सजीवता से खुशवंत सिंह ने बयान की है, वह उन्हीं के बलबूते की बात थी।

उपन्यास का एक पूरा-का-पूरा अध्याय नयी दिल्ली के निर्माण से संबंधित है। ज्ञातव्य है कि खुशवंत सिंह के दादा सरदार सुजानसिंह और पिता सर सोभासिंह नयी दिल्ली को बनाने वाले बिल्डरों-ठेकेदारों में प्रमुख माने जाते थे।

इस उपन्यास की सबसे अनोखी बात है—एक हिंजड़े का इसकी नायिका होना। पूछने पर खुशवंत जी ने बताया—"इस उपन्यास की रूपरेखा तो मेरे दिमाग में बरसों से उमड़-घुमड़ रही थी, केवल क्रम बाँधने का उपाय ही नहीं सूझ रहा था। एक दिन मैं अपनी गाड़ी से कहीं जा रहा था। रास्ते में देखा कि सड़क के बीचोबीच एक हिंजड़ा बेहोश पड़ा था। उसे उठाकर मैंने अपनी गाड़ी की पिछली सीट पर डाला और उसके घर पहुँचाया। तभी अचानक मेरे दिमाग में आया कि क्यों न मैं अपने इस उपन्यास में हिंजड़े को ही बतौर नायिका रख लूँ। वह दिल्ली के प्रतीक के रूप में ही सटीक रहेगी। तो ऐसे हुई हिंजड़ा नायिका—भागमती की परिकल्पना। दिल्ली और भागमती दोनों की एक ही कहानी है—दोनों ही ज़ाहिलों के हाथों रौंदी जाती रहीं। जिस तरह अनेक प्रेमियों द्वारा भोगी जाती भागमती कभी प्रजनन नहीं कर सकी, वैसे ही अनेक आक्रमणों में आततायियों द्वारा बार-बार उजड़ी यह दिल्ली भी बसने-उजड़ने के चक्र से गुज़रती, बाँझ-सरीखी ही बनी रही; विकास तो इसका हुआ ही नहीं।

दिल्ली की अप्रतिम कहानी कहता यह उपन्यास हिन्दी के पाठकों को रुचिकर लगे—इसी कामना के साथ,

—उषा महाजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम

दिल्ली / 11

लेडी जे० एच० टी० / 22

भागमती / 35

मुसद्दीलाल / 53

भागमती / 83

तैमूर लंग / 89

भागमती / 95

अछूत / 111

भागमती / 122

औरंगज़ेब आलमगीर : हिन्दुस्तान का शहंशाह / 128

भागमती / 143

नादिरशाह / 146

भागमती / 165

मीर तक़ी मीर / 166

भागमती / 199

1857 / 203

भागमती / 269

भवन-निर्माता / 271

भागमती / 296

वहाँ से उखड़ने के बाद / 297

भागमती / 319

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1

दिल्ली

विदेशी वेश्याओं के साथ ख़ाक छानने के बाद मैं अपनी प्रेयसी भागमती के पास दिल्ली लौट आया हूँ। दिल्ली और भागमती में बड़ा साम्य है। दोनों ही ने अशिष्ट लोगों से लगातार शोषित होते रहने के कारण अपने असली आकर्षण को घृणास्पद कुरूपता के आवरण में छिपाए रखना सीख लिया है। ये दोनों अपना वास्तविक रूप सिर्फ़ अपने प्रेमियों के सामने ही उजागर करती हैं। मैं स्वयं अपने को इनके प्रेमियों में ही गिनता हूँ।

बाहर से आए आदमी को शायद यह लगे कि दिल्ली एक मृतप्राय नदी-किनारे बसा, शोर-शराबे से सराबोर, भीड़-भरे, सड़े-गले बाज़ारोंवाला एक ऐसा शहर है जहाँ टूटे-फूटे क़िलों और मक़बरों के चारों ओर पनपती गंदी बस्तियों का साम्राज्य है। इसके सिवा यहाँ देखने को और है ही क्या? और, कहीं अगर वह इसकी टेढ़ी-मेढ़ी, सँकरी गलियों में घुस गया तो नालियों में तैरते कचरे और कीचड़ की बदबू से शायद उसे उल्टियाँ ही आने लगें। दिल्ली के लोगों को दूसरों को लुभाना भी नहीं आता। जहाँ देखो वहाँ पिच्च से बलग़म या पान की पीक थूक दी। जहाँ जी हुआ, जब जी हुआ टट्टी-पेशाब कर दी। बोलेंगे तो चिल्ला-चिल्लाकर। आत्मीयता जताने का इन्हें एक ही तरीक़ा याद है—माँ-बहन की गालियाँ देना! बात करते-करते गुप्तांगों को खुजलाते रहना भी इनकी आम आदत है।

भागमती के बारे में भी यही सब सच है। जो उसे नहीं जानते, उन्हें तो वह बदसूरत ही लगेगी। साँवला चेहरा, ऊपर से चेचक के दाग़, ठिंगना क़द, गोल-मटोल जिस्म, दाँत टेढ़े-मेढ़े—बीड़ी पीने और पान-तम्बाकू चबाते रहने से पीले पड़े हुए। कपड़े बेहद भड़कीले। ऊँची आवाज़ में बोलती है, और वह भी अश्लीलता से भरी बातें। उसके तौर-तरीक़ों और हाव-भाव के बारे में तो पूछिए ही मत—एकदम घटिया। पर उसकी ये सारी बातें ऊपरी ही हैं, जैसे मच्छरों और खटमलों आदि से बचाव के लिए त्वचा पर कोई गंधाता तेल या क्रीम लगा ले।

इन दोनों के असली रूप को देखने-जानने के लिए आपको इनसे आत्मीयता बनानी होगी, तभी आप जान सकेंगे कि दिल्ली को जानने का मतलब क्या है और भागमती को चाहने का अर्थ क्या है। तभी दिल्ली के संगमरमरी महलों पर छाया हुआ नीला आसमान आपकी आँखों में लहराएगा, तभी इसके मक़बरों के गुम्बदों और सुतवाँ ऊँची मीनारों पर आपको इन्द्रधनुष-जैसे फहराते दिखाई देंगे। तभी दिल्ली की मिट्टी आपके नथुनों में ख़स, चमेली और मौलश्री की सुगन्ध घोलेगी। तभी साँवली भागमती अपने भारी नितम्बों को मटकाती और किसी मंदिर की नृत्यांगना-जैसी थिरकती हुई आपको अपनी ओर बढ़ती दिखाई देगी। तभी उसके मुँह से लौंग की ताज़ा सुगन्ध फूटेगी और तभी वह आपको हिन्दुस्तान की मलिका-ए-आज़म जैसी नफ़ासत से बोलती सुनाई पड़ेगी। प्यार के क्षणों में ही वह एक कामुक वेश्या की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह बर्ताव करती है। यों भी हर औरत को प्यार के क्षणों में वैसा करना भी चाहिए।

दिल्ली और भागमती को जीतने का एक ही सीधा-सादा तरीक़ा है—दिल से देखिए, दिमाग़ से नहीं; भावनाओं से समझिए, विवेक से नहीं।

लगता है भागमती और दिल्ली को मैंने आपकी नज़रों में बहुत रहस्यमय बना दिया है। असलियत यह है कि मैं अपने विचारों में ज़रा गड्ड-मड्ड हो गया हूँ। जो कहना चाहता हूँ, दरअसल वह यह है कि वास्तव में तो मुझे दिल्ली में रहना पसंद नहीं और भागमती से भी अपने सम्बन्ध को लेकर मैं कुछ शर्मिंदगी महसूस करता हूँ, लेकिन दोनों से ही मैं ज़्यादा देर तक दूर भी नहीं रह सकता।

अगले पन्नों पर मैं आपको दिल्ली और भागमती से अपनी लम्बी आशिक़ी और नफ़रत की मिली-जुली प्रेम-कथा की विडम्बना के बारे में बताऊँगा। ऊपरी तौर पर शायद आपको लगे कि यह किसी लम्पट मार्गदर्शक के लिए लिखी गई दिल्ली के अतीत और वर्तमान की संदर्शिका (गाइड बुक) है, लेकिन मेरा मक़सद यह क़तई नहीं है।

हवाई जहाज़ एक घंटा लेट, रात के नौ बजे पालम हवाई अड्डे पर उतरता है। किसी को कहते सुना, "नई सरकार आने से पहले हवाई जहाज़ वक़्त पर ही पहुँचा करते थे।" स्पीकर से उभरती आवाज़ ने हमें बैठे रहने की हिदायत दी। पास से गुज़रती व्योमबाला से मैंने कारण पूछा। मेरे कानों तक मुँह लाकर वह बोली, "स्वास्थ्य का मामला है!" भारत, जहाँ दुनिया की ज़्यादातर बीमारियाँ जन्म लेती और फूलती-फलती हैं, अब उनकी और ज़्यादा तादाद नहीं बढ़ाना चाहता। बत्तियाँ जल रही हैं। फुसफुसाहटों में बातें करते हुए हम सीटों पर बैठे रहे और अपने घुटनों पर पड़े अख़बारों को फड़फड़ाने से बचाते रहे।

किसी ने हवाई जहाज़ के बाहर से ज़ोर-ज़ोर से थपथपाना शुरू किया। स्टीवर्ड ने झटके से दरवाज़ा खोल दिया। गर्म हवा के एक झोंके के साथ सफ़ेद कोटोंवाले दो स्वास्थ्य-अधिकारी जहाज़ के गलियारे में आकर छपे हुए फ़ॉर्म बाँटने लगे। हम लोगों ने प्रश्नावली भरनी शुरू की। तमाम बातें थीं—पिछले दस दिन आपने कहाँ बिताए? नौवाँ दिन कहाँ बिताया? कल का दिन कहाँ बिताया? मेडिकल अफ़सरों में से एक ने अपनी जेब से एक डिब्बा निकाला और गलियारे में घूम-घूमकर वह हमारे ऊपर अस्पताल की परिचित गंधवाला छिड़काव करने लगा। अब हम नीचे उतर सकते थे।

हमने बाहर निकलना शुरू किया।

पहले दर्जे के निकास-मार्ग से लगी सीढ़ी के पास एक लम्बी-चौड़ी रोल्स रॉयस गाड़ी खड़ी है, जिसकी नम्बर-प्लेट पर राष्ट्रपति का अशोक-स्तम्भवाला चिह्न अंकित है। मोटरकार के पास ही राष्ट्रपति का ए॰ डी॰ सी॰ और एक अर्दली हाथों में गुलदस्ता लिये खड़े हैं और उनके पीछे खड़े हैं क़रीब आधा दर्जन फ़ोटोग्राफ़र। एक बाँह पर फ़र का कोट डाले, दूसरी में हैट का डिब्बा थामे एक अंग्रेज़ महिला सीढ़ियों से नीचे उतर रही है। कैमरों के फ़्लैश चमक उठते हैं। ए॰ डी॰ सी॰ अपनी एड़ियों पर घूमकर महिला को सैल्यूट मारता है और उसका फ़र का कोट तथा हैट-बॉक्स लेकर अर्दली को थमा देता है। वह महिला को हार पहनाता है और गुलदस्ता भेंट करता है और एक बार फिर सैल्यूट मारता है। महिला उसे देखकर मुस्कुराती है। फिर ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोल्स रॉयस में घुस जाते हैं और मोटर कार अँधेरे को चीरती हुई दौड़ने लगती है।

"यह महिला कौन थी ?" कोई पूछता है।

हम लोगों को एक जगह इकट्ठा किया जाता है और एयर इंडिया के एक अफ़सर के पीछे-पीछे चलने का निर्देश दिया जाता है। पेट के बल दौड़ती, लम्बी थूथनवाली एक घूस (बैंडीकूट) हमारे पाँवों के बीच से निकल जाती है। एयरपोर्ट की चुँधियानेवाली रोशनी और ऊपर मँडराते टिड्डों से आँखें बचाते हुए हम एक दरवाज़े के भीतर घुसते हैं, जिसके ऊपर 'अन्तर्राष्ट्रीय' लिखा हुआ है। पंडित नेहरू की तस्वीरवाला एक बड़ा-सा पोस्टर भारत में हमारा स्वागत कर रहा है।

पुलिस के एक सार्जेंट ने हमारी स्वास्थ्य-प्रश्नावली को जाँचा और उन्हें अपनी मेज़ पर रखी 'निकास' वाली टोकरी में डाल दिया। एक सब-इंस्पेक्टर ने हमारे पासपोर्टों का मुआयना किया और मोहर लगाकर हमें वापस कर दिया। फिर एक कस्टम-अधिकारी एक फ़ॉर्म की तीन-तीन प्रतियाँ थमाते हुए हमसे उसे भरने को कहता है। एक फ़ॉर्म की तीन प्रतियाँ ख़ाली भरनी हैं कि हम क्या-क्या अपने साथ लाए हैं। एक अन्य फ़ॉर्म की तीन-तीन प्रतियाँ इसलिए भरनी हैं कि हमारे पास विदेशी मुद्रा कितनी है। इन्हें भरते-भरते ही आधा घंटा लग गया। कस्टम-अधिकारी हम लोगों पर निगाहें टिकाए ग़ौर कर रहे हैं कि कहीं हमारे हाव-भाव से यह तो नहीं लग रहा कि हम कुछ छुपा रहे हैं और संदिग्ध रूप से, घोषित किए बग़ैर ही, कुछ लाए हैं। हमारे चेहरों से बोरियत टपक रही है और किसी के भी हाव-भाव से ऐसा कुछ संदिग्ध नहीं लग रहा है।

क़रीब चालीस मिनट बाद 'कस्टम शेड' में ट्रॉलियों की घरघराहट की आवाज़ सुनाई पड़ी। कुलियों ने नगों को फ़र्श पर उतारना शुरू किया। मैंने अपने बैग को लक्ष्य कर लिया। एक कस्टम-अधिकारी को पकड़कर कहता हूँ कि भैया, मुझे जाने की अनुमति दे दो, मैं कुछ नहीं लाया हूँ, न ही मेरे पास कोई विदेशी मुद्रा है। वह मेरे घोषणापत्र और पासपोर्ट को जाँचता है और मेरा बैग खोलकर प्रश्नों की झड़ी लगा देता है :

"कोई व्हिस्की-शिस्की ?"

"जी नहीं।"

"कोई टेप-रेकॉर्डर ?"

"नहीं।"

"ट्रांज़िस्टर-श्रांज़िस्टर ?"

"नहीं।"

"कैमरा-वैमरा ?"

"जी नहीं।"

वह मेरी कलाई को थाम लेता है और नई चमकती, अलार्मवाली वल्कैन की मेरी कलाई-घड़ी पर उसकी नज़र टिक जाती है। मैंने इसे बेरूत में एयरपोर्ट स्टोर की करमुक्त दुकान से पैंतीस पौंड में ख़रीदा था।

घड़ी देखकर वह पूछता है, "कितने की है ?"

मैंने अपने खानसामे के लिए भी एक कलाई-घड़ी ख़रीदी थी, जो मेरी 'हिप पॉकेट' में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी थी। उसी की रसीद उसे दिखा देता हूँ—सात पौंड की।

बेचारे कस्टम-अधिकारी का बड़ा नुक़सान हुआ। उसने मेरे बैग पर चॉक से क्लियर लिखकर ऐसे हटा दिया, जैसे कह रहा हो—'चल फूट!' ये हमारे कस्टमवाले भी आदमी को नाच नचा देते हैं।

एक कुली उचककर मेरा बैग थाम लेता है। बोली देकर बुलाते टैक्सीवालों की क़तार को चीरता हुआ मैं एक टैक्सी तय करता हूँ। कुली मेरा बैग पीछे डिक्की में दे मारता है और कहता है, "अच्छा साब, सलाम!"

एयरपोर्ट के नियम कहते हैं कि कुलियों को बख़्शीश न दें। पर वह मुझसे पाँच का नोट ले जाता है।

टैक्सी का ड्राइवर सिख है। अगली सीट पर उसके साथ उसका एक सिख दोस्त बैठा है। बीस मिनट में हम अपने ठिकाने पर पहुँच जाते हैं। टैक्सीवाला माचिस की तीली जलाकर मीटर देखता है, "अठारह रुपए पचास पैसे और दो रुपया सामान का भाड़ा। पूरे बीस रुपए पचास पैसे।"

"अठारह रुपए?" मैं विस्मित-सा होकर पूछता हूँ। कुछ हफ़्ते पहले ही तो पालम हवाई अड्डे जाते हुए इससे आधा भी नहीं लगा था।

"जी आँ, अठाराँ पँजाह। मीटर देख लौ जी!"

एक सिख हो तो दूसरा सिख उससे जवाब तलब कर भी ले, पर जब दो सिख सामने खड़े हों तो इतना तू-तड़ाक करते नहीं बनता और वह भी रात के वक़्त। मैं उनको बीस रुपए पचास पैसे के अलावा दो रुपए बख़्शीश के भी थमा देता हूँ।

हमारे हाउस-ब्लॉक का रातवाला पहरेदार भी सिख है। दिल्ली से बाहर जाता हूँ तो फ़्लैट की चाबी उसी को सौंप जाता हूँ। आदमी ईमानदार है, पर बेचारे के दिमाग़ के पेंच ज़रा ढीले हैं। पहले फ़ौज में हुआ करता था। दिमाग़ी फ़ितूर के कारण ही वहाँ से अलग कर दिया गया। वैसे तो मामूली ट्रक-ड्राइवर ही था, पर अब तक यह नहीं भूल पाया है कि कभी फ़ौजियों की वर्दी भी पहना करता था। मुझे देखते ही वह अपनी चारपाई से उठता है और अपने-आपको ही आदेश देता है—'सैल्यूट', और फिर मुझे ऐसे सैल्यूट मारता है जैसे मैं उसकी रेजीमेंट का कर्नल होऊँ।

वह मुझे अंग्रेज़ी में पूछता है, "हाउ वाज़ हिज़ मैजेस्टी द किंग ऑफ़ इंग्लैंड?"

मैं कहता हूँ, "इंग्लैंड में अब रानी है।"

वह इसे मामूली बात समझकर महत्त्व नहीं देता, "ठीक है, साब! क्या आपने हिज़ मैजेस्टी, ना-ना, हर मैजेस्टी से पूछा कि क्यों उन्होंने मेरे किसी भी ख़त का जवाब नहीं दिया?"

मैंने बड़ी नर्मी से पूछा, "बुधसिंह, तुम्हारा यह हाल कब से है?"

साल में तीन बार बुधसिंह के साथ ऐसा होता है, जब वह बुद्धूसिंह बन जाता है और तब उसके साथ बड़ी नर्मी से पेश आना पड़ता है।

उसकी आँखें दहक उठती हैं। चीख़कर कहता है, "आप क्या सोचते हैं कि मैं पागल हूँ? आप मुझे नौकरी से निकालना चाहते हैं न?" मैं जवाब नहीं देता। वह दरवाज़े का ताला खोलकर बत्ती जला देता है और मेरा बैग उठाकर अँधेरे बैडरूम में रख आता है। वापस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौटकर वह दोनों हाथों से मेरे घर की चाबियाँ मुझे ऐसे लौटाता है, जैसे कोई हारा हुआ सेनापति अपनी तलवार समर्पित कर रहा हो। बोला, "साब, ये रही आपकी चाबी और यह रही आपकी नौकरी !"

चाबी लेते हुए मैंने कहा, "बुधसिंह, मैंने तो तुमसे इतना ही पूछा कि तुम्हारी यह हालत कब से है !"

"हाँ, पूछा तो यही है। पर मैं जानता हूँ कि आपका मतलब क्या है," मेरी आँखों में आँखें डालते हुए वह कहता है, "पब्लिक कहती है कि बुध फिर बुद्धू बन गया है। साब फॉरेन से आते ही इसकी छुट्टी कर देंगे। मैं कहता हूँ—हुनूज़ दिल्ली दूर अस्त। आपको पता है न इसका मतलब ? यानी दिल्ली अभी दूर है।"

"पर मैं तो दिल्ली लौट आया हूँ।" मैं उसे याद दिलाता हूँ।

वह मेरी तरफ़ घूरकर देखता है।

मैं उसकी हालत देखकर कह उठता हूँ, "भूल-चूक आई-गई।"

वह मुझे विश्वास दिलाता है कि उसने घर की साफ़-सफ़ाई और झाड़-पोंछ बिल्कुल अच्छी तरह कर रखी है। कहता है, "सब चीज़ें ठीक-ठाक हैं। ठंडी मशीन, एयरकंडीशन, सब दुरुस्त हैं। आओ, आओ देख लो, साब !" मैं उसके साथ शयनकक्ष तक जाता हूँ और स्विच दबाता हूँ। बत्ती नहीं जलती। बुधसिंह कहता है, "एक्सक्यूज़ मी, बल्ब फ्यूज़ है।" फिर वह दूसरा स्विच दबाता है। कमरा एकदम रोशनी से भर उठता है। बुधसिंह हकबकाकर चक्कर खाता हुआ ऐसे उछल पड़ता है, जैसे नाचता हुआ कोई दरवेश हो।

अपनी पगड़ी पर उँगली रखते हुए खुद ही कहता है, "बसंत के मौसम में यहाँ कुछ हो जाता है। डोंट माइंड। सैल्यूट !"

"चलो ठीक हो जाएगा।" मैं उसे तसल्ली देता हूँ। वह मेरे इतने क़रीब आ जाता है कि उसकी दाढ़ी मुझे छूने लगती है। रहस्यमय तरीक़े से फुसफुसाते हुए वह बताता है, "एक्सक्यूज़ मी, आपका हिंजड़ा आपके पीछे कई बार आया और पूछता रहा कि आप कब लौट रहे हैं।"

बुधसिंह को मेरी प्रेयसी भागमती तनिक भी नहीं भाती, क्योंकि वह इसे पागलसिंह कहकर पुकारती है। बुधसिंह ने इस बात के लिए उसे कभी माफ़ नहीं किया। इसीलिए यह उसको पुंल्लिग में बुलाता है या फिर हिंजड़ा कहता है। भागमती का सीना सपाट-सा है और आवाज़ भारी। बुधसिंह फिर फुसफुसाकर कहता है, "एक्सक्यूज़ मी, सभी लोग बातें करते हैं, कहते हैं कि कोई औरत रखी होती, या फिर कोई लड़की ही होती, लेकिन यह हिंजड़ा ? तौबा-तौबा ! यह तो ठीक नहीं है। देखो, साब, बुरा ना मानना !"

मैं कुछ नहीं बोलता। बुधसिंह मेरी चुप्पी को फटकार के रूप में लेता है। सावधान की मुद्रा में खड़े होकर वह न जाने कितनीहवीं बार—एक बार फिर सलाम मारता है और अपने-आपको ही हुक्म देता है, "दाएँ मुड़" और दाएँ मुड़ जाता है। फिर कहता है, "बाएँ मुड़, क्विक मार्च" और सधे क़दमों से मार्च करता हुआ निकल जाता है।

हाह !

मैं कपड़े उतारकर बाथरूम में घुस जाता हूँ। नल खोलता हूँ। मटमैली बूँदें बाल्टी में टपकने लगती हैं। फिर मटमैले पानी की हल्की-सी धार, और फिर पाइप में भरे हवा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फट-फट करते बुलबुले। पानी कहाँ है? पानी तो आया ही नहीं। हारकर मैं बाथरूम से बाहर निकल आता हूँ।

अपनी स्टडी में जाता हूँ। फ़ोन का रिसीवर उठाकर रात की ड्यूटीवाले 'केयरटेकर' का नम्बर घुमाता हूँ। क्रॉस कनेक्शन लग गया है। दो लड़कियाँ अपने अंकल और डैडी जी को लेकर पटर-पटर बतिया रही हैं। चोंगा वापस रख देता हूँ। धप्प से अपनी तोंद पर बैठे मच्छर को मारता हूँ और फिर से नम्बर मिलाने की कोशिश करता हूँ। लड़कियाँ अब भी बातें कर रही हैं। अब बात मम्मी जी और आंटी जी पर अटकी हुई है। चोंगा फिर वापस रख देता हूँ। धुन्नी (नाभि) में उँगली घुमाकर मैल निकालता हूँ और उसे सूँघता हूँ। तीसरी बार फ़ोन मिलाने की कोशिश। अब लड़कियाँ 'यम-यम' करती बंगाली मार्केट में खाई चाट के चटपटेपन पर उल्लसित हो रही हैं। इस बार मैंने उन्हें झाड़ा और याद दिलाया कि आधी रात हो चुकी है और फ़ोन छोड़कर उन्हें भी वही करना चाहिए जो उनके डैडी जी उनकी मम्मी जी के साथ कर रहे होंगे।

"कोई बदमाश लाइन पर है। अच्छा, विल बज़ यू लेटर (फिर फ़ोन करती हूँ), टा-टा!" और वे फ़ोन रख देती हैं।

मैं अपना नम्बर डायल करता हूँ। इंगेज्ड था। तीन मिनट बाद फिर डायल करता हूँ। फिर इंगेज्ड। मैं 'कम्प्लेंट' का नम्बर घुमाता हूँ। उधर से आवाज़ आती है कि असिस्टेंस पर कहिए, वे लगा देंगे। मैं असिस्टेंस पर डायल करता हूँ। ऑपरेटर की आवाज़ कानों में पड़ती है, "नम्बर आउट ऑफ़ ऑर्डर प्लीज़, डायल कम्प्लेंट।" हारकर मैं चोंगा नीचे रख देता हूँ।

बैडरूम में जाता हूँ कि एयरकंडीशन चलाकर ही अपने नंगे बदन और गुस्से को ठंडा कर लूँ। एयरकंडीशन धड़धड़ की आवाज़ के साथ मेरा स्वागत करता है। इसकी धड़धड़ाती लोरी के बावजूद मुझे नींद आ जाती है। अपनी आवाज़ के प्रति मेरी उदासीनता शायद उसे रास नहीं आई। थोड़ी देर बाद ही एयरकंडीशनर ठप्प की आवाज़ के साथ बिल्कुल शांत हो गया। बैडरूम कलकत्ते की चालों की तरह भभक रहा है।

बिजली चली गई है। पंखा-बत्ती कुछ भी नहीं चल सकता। मैं अपने घर के बाहर की छोटी-सी बग़ीची में चला आता हूँ और बेंत की कुर्सी में धँस जाता हूँ। बाहर अँधेरा है, बेहद गर्मी है। हवा उमस-भरी, थमी-थमी-सी। थोड़े-से तारे चमक रहे हैं, बहुत-बहुत दूर। ढेर-के-ढेर मच्छर मँडरा रहे हैं। मेरे दिमाग़ में ग़ुस्से का उफ़ान भरता जा रहा है। मैं अख़बारों को चिट्ठियाँ लिखूँगा कि हवाई अड्डों पर हर काम में कैसे देर होती है, हवाई जहाज़ 'लेट' पहुँचते हैं, कस्टम-अधिकारी तंग करते हैं, टैक्सीवाले मुसाफ़िरों को ठगते हैं और बिजली की व्यवस्था इतनी नाकारा! दिल्ली टेलीफ़ोन, दिल्ली वाटर सप्लाई—सबके बारे में लिखूँगा अख़बारों में।

अचानक मुझे भागमती की याद आने लगी है। इस बीच पता नहीं कितने ग्राहकों को खुश किया होगा उसने! अपनी करतूतों के बारे में वह मुझे सब बताती है, क्योंकि वह जानती है कि इससे मेरे भीतर उसे छूने की इच्छा जागती है। मैं कई घंटे अँधेरे में बैठा रहता हूँ। मेरी नाराज़ी और असहजता बरक़रार हैं। ऊपर आकाश में पीला-बूढ़ा चाँद धीरे-धीरे सरक रहा है। मेरे फ़्लैट के पिछवाड़े जो गुरुद्वारा है, उसकी बत्ती जल उठती है। इसका मतलब बिजली आ गई? तब आई है, जब इसकी ज़रूरत ही महसूस नहीं हो रही। मैं उठकर लड़खड़ाता हुआ-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठक में आ जाता हूँ।

टेबल लैम्प ऑन करता हूँ। सुबह के पाँच बजकर पंद्रह मिनट हुए हैं। खिड़की खोल देता हूँ। पर्दे फड़फड़ाने लगते हैं। बाहर की दीवार पर चढ़ी मधुमालती की सुगन्ध से सराबोर हवा कल की चिपचिपाहट-भरी धुंध को मिटा डालती है। मैं अपनी आरामकुर्सी में धँस जाता हूँ और खिड़की के बाहर देखने लगता हूँ। स्ट्रीट लाइटें भक्क से बुझ जाती हैं। शहतूत के पत्तों के बीच से झाँकता धुँधला सवेरा फूट रहा है।

चमगादड़ें निःशब्द उड़ती हुई अर्जुन के विशाल वृक्ष पर वापस लौट रही हैं। मेरे ऊपरले फ़्लैट में रहनेवाली बूढ़ी औरत सामने की सड़क पर सैर कर रही है। वह मेरी गुड़हल की झाड़ियों की बाड़ के पास आकर रुकती है। इधर-उधर झाँककर देखती है कि कोई उसे देख तो नहीं रहा, और फिर चुपके-से कुछ फूल तोड़कर अपने दुपट्टे में छुपाए मंदिर की तरफ बढ़ जाती है। उसका बुड्ढा भी पीछे-पीछे चला आ रहा है। वह भी मेरी बाड़ के पास रुककर इधर-उधर झाँकता है कि कोई सुन तो नहीं रहा है। फिर पेट को दबाकर एक लम्बा पाद मारता है। अब वह ज़रा हल्के क़दमों से चलने लगा है। उसके चेहरे पर ऐसा भाव है, जैसे पूछ रहा हो, 'अरे, यह किसने किया?'

सामनेवाले ब्लॉक में बत्ती जल उठती है। एक औरत परदे खींचकर अपना बिखरा हुआ जूड़ा झटककर फिर से बाँधती है और मेरी ओर बाँहें फैलाकर अँगड़ाई लेती है। बाक़ी घरों की भी बत्तियाँ जल-बुझ रही हैं। गुलाबी हो आए आसमान में सुबह का तारा—शुक्रतारा—दिखाई नहीं पड़ रहा। कौए एक-दूसरे पर काँव-काँव करने लगे हैं। शहतूत के पेड़ पर गोरैयाँ भी लड़-झगड़ रही हैं। मस्जिद के मुल्ला की अज़ान आसमान तक उठ रही है। मंदिर की घंटियाँ स्वर्ग में सोए देवताओं को जगाने में लगी हैं। दूधवाला साइकिल पर लटकी दूध की डिक्कियों की खड़खड़ाहट के साथ मेरे ब्लॉक के सामने से गुज़रता है।

एक ओर साइकिलवाला अपनी घंटियाँ बजाता हुआ उधर से जाता है, "पेपरवाला··· इश्टेटमैन, टैम आफ इंडिया, एक्सप्रेस, हेराल्ड, पेपरवाला!"

अपने दरवाज़े के नीचे से अख़बारों के अंदर खिसकाए जाने की आवाज़ सुनता हूँ। अब भी कुर्सी में ही धँसा बैठा हूँ। खुशनुमा हवाओं के साथ सुबह की रोशनी मेरे कमरे में आ रही है। ठंडी और सुगंधित हवा मेरे भीतर उदासी और आकुलता जगाए दे रही है। बादे-सबा है यह—सुबह की हवा—प्रेमियों की प्रिय। और मैं लौट आता हूँ अपनी प्यारी दिल्ली में।

मैं 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पढ़ रहा हूँ। मुखपृष्ठ पर उसी अंग्रेज़ महिला की तस्वीर छपी है जो कल हवाई जहाज़ से उतरी थी। 'लेडी हॉयटी टॉयटी' कहती है कि दिल्ली लौटना उसे बहुत अच्छा लग रहा है। तो वह यह है! पुरातत्त्व पर कोई किताब लिखने के लिए सामग्री जुटाने आई है यहाँ। राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति की मेहमान है।

ख़बरों की सुर्ख़ियों पर नज़र डालकर मैं तस्वीरें देखने लगता हूँ। मेरा खानसामा खीसें निपोरता हुआ मेरा स्वागत करता है। उसके लिए लाई जापानी घड़ी मैं उसे थमा देता हूँ। उसका खीसें निपोरना मुस्कराहट में बदल जाता है। ब्लैक कॉफ़ी का मग थमाते हुए वह मुझसे पूछता है कि मैं लंच के लिए लौटूँगा या नहीं? मैं कहता हूँ, "नहीं।" "डिनर घर पर खाएँगे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, खाऊँगा तो, पर शायद लौटने में देर लग जाय। मेज़ पर ही रख देना।" वह पूछता है कि मैं क्या खाना पसन्द करूँगा ? मैं जानता हूँ कि भागमती के बारे में सोचकर ही उसने ऐसा पूछा होगा, क्योंकि वह सिर्फ़ हिन्दुस्तानी खाना ही पसन्द करती है और मैं खाता हूँ एंग्लो-इंडियन इश्टू (स्ट्यू), सासेट (सॉसेजेज़) , कश्तर (कस्टर्ड) और पुट्टीन (पुडिंग) वग़ैरह।

काश, भागमती आ जाती ! पता भी तो नहीं है कि कैसे और कहाँ ढूँढूँ उसे ! मैं यह बात खानसामे पर नहीं प्रकट होने देना चाहता। इसलिए कह देता हूँ, "कुछ भी बना लो।" उसकी उत्सुकता लेकिन अब भी बनी हुई है।

दिल्ली लौटने के बाद अब दिल्ली से क़दम से क़दम तो मिलाना ही है। जल्दी से नहाकर मैं अपनी हिन्दुस्तान एम्बैसेडर में निकल पड़ता हूँ। देखता हूँ कि कुछ और सड़कों और गोल चक्करों के नाम बदल दिए गए हैं। विंडसर, यॉर्क, कैनिंग, हार्डिंग आदि बदलकर तिलक, पटेल, आज़ाद, नेहरू वग़ैरह कर दिए गए हैं। एक पेट्रोल-पम्प के बाहर लाल झंडियाँ लिये तीन आदमी चीख़ रहे हैं, "पेट्रोल-पम्पवाला मुर्दाबाद, मुर्दाबाद !" डॉ० सेन के नर्सिंग होम के बाहर भी लाल झंडे दिखाई दे रहे हैं। वहाँ भी छह-साथ आदमी चिल्ला रहे हैं, "डॉक्टर लोग मुर्दाबाद, मुर्दाबाद !" खाद्य और कृषि मंत्रालय के सामने भी लाल झंडे। एक लॉन में फूलमालाएँ पहने चार आदमी टाँगों पर टाँगें रखे बैठे हैं। उनके सामने लगी तख़्ती पर लिखा है—'क्रमिक भूख-हड़ताल, तीसरा दिन !' भगवे झंडे लिये एक जुलूस संसद मार्ग पर बढ़ रहा है—'हमारा देश एक है, हमारा धर्म एक है। गौ हमारी माता है। गौ-हत्यारे मुर्दाबाद !' कनॉट सर्कस के एक लॉन पर एक राजनीतिक सभा हो रही है। वक्ता माइक पर चिल्ला रहा है, "सब एक साथ जोर से बोलिए—"जय हिन्द !" भीड़ आज्ञा का पालन करती है—"जय हिंद !" माइक पर बोलता आदमी ज़्यादा ख़ुश नहीं दीखता, "नहीं, यह काफ़ी नहीं है। उन चीनी सूअरों से हम ऐसी दबी आवाज़ों के साथ नहीं लड़ सकते। कहिए लड़ सकते हैं क्या ? इतनी बुलंद आवाज़ में चिल्लाइए कि पेकिंग तक पहुँचे। सब एक साथ बोलिए—जय हिंद !"

"जय हिंद !"

पेकिंग के सूअर तुम्हारे पाजामे में मूत दें। हिन्दुस्तान-जैसा दुश्मन मिले तो उनका क्या जाता है—मूत के सिवा ?

मैं जनपथ (जो कभी क्वीन्सवे कहलाता था) के तिब्बतियों के पुरानी चीज़ोंवाले (एन्टीक) स्टालों के सामने अपनी गाड़ी लगा देता हूँ। वही अमरीकन टूरिस्ट हैं और पीतल की उन्हीं चीज़ों और पत्थर के टुकड़ों का मोलभाव हो रहा है। वही सिख ज्योतिषी विदेशियों को वही-वही भविष्यफल बता रहे हैं। उनमें से कोई मेरी 'मार्क्स और स्पार्क्स' वाली टी-शर्ट देखकर समझ जाता है कि मैं विदेश से लौटा हूँ। वह मुझे विश्वास दिलाने की कोशिश करता है, "फ़ॉरेन से आएँ हैं न ! फिर फ़ॉरेन जाने को मिलेगा। बस एक मिनट के लिए आप मेरे पास आइए। आपके लव-अफ़ेयरों के बारे में भी बता दूँगा। अमीर-अमीर गोरी औरतें आपके लिए तड़प रही हैं। आइए, आपको उनका नाम भी बता दूँगा और यह भी कि कैसे उन पर और उनकी माल-मिल्कियत पर कब्ज़ा करना है।"

मैं उससे पंजाबी में कहता हूँ, "अमरीकनाँ नूँ ई दस्स यार ! अपने कोल पैसे नईं !"

अपने शिकार को वह भी ख़ूब पहचानता है, "पैसा ? पैसा तो हथेली का मैल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपका भविष्य बहुत अच्छा है। ख़ूब पैसा आएगा। फ़ॉरेन औरतों के साथ बहुत-से लव-अफ़ेयर होंगे। बस एक ही ग्रह आपका ख़राब है। हथेली बंद करो !" बिना सोचे-समझे मैं अपनी हथेली बंद करता हूँ। "अब खोलो !" मैं अपनी हथेली खोलता हूँ। हथेली के बीचोबीच एक काला-सा निशान दिखता है। वह उत्साहित होकर कहता है, "देखो, काला ग्रह। सिर्फ़ एक रुपया दे दो। अमरीकनों से तो मैं दस से कम नहीं लेता। आपसे एक ही सही। अभी बता देता हूँ कि कैसे इस काले ग्रह को काटा जा सकता है !" मैं उसको एक रुपया देता हूँ। वह मुझे विदेशी औरतों को फुसलाने के तरीक़े बताता है—"सरदार जी, आपकी माशूका का नाम तो 'जे' से या 'एच' से या 'टी' से होगा।"

मैं ऐसी किसी भी औरत को नहीं जानता, जिसका नाम 'जे', 'एच' या 'टी' से शुरू होता हो। वह आगे कहता है, "जब भी आपको जे, एच या टी के नाम की अंग्रेज़ औरत मिले तो नत्थासिंह को याद करना। वर्ल्ड फेमस पामिस्ट। ज्योतिषी।"

मैं ऑल इंडिया को-ऑपरेटिव कॉफ़ी हाउस पहुँचता हूँ। वहाँ और लाल झंडे दिखे। एक बैनर पर लिखा था, 'हमारी माँगें पूरी करो !' एक आदमी मेरे हाथ में माँगोंवाला पर्चा पकड़ाता है। मैं गोल करके एक भद्दे-से इशारे के साथ उसे वापस थमा देता हूँ। वह भी उग्र तरीक़े से जवाब देता है। कमीना आदमी !

मैं कॉफ़ी हाउस की शोरगुल करती भीड़ पर एक नज़र डालता हूँ। जान-पहचान का कोई बंदा नहीं दिखता। अख़बारों के स्टाल से 'दिल्ली अंडरवर्ल्ड' की एक प्रति ख़रीदता हूँ और एक मेज़ के ख़ाली होते ही उसे तीन कुर्सियों से छेंककर बैठ जाता हूँ। दिल्ली में हुए सप्ताह-भर के स्कैंडलों पर दृष्टि गड़ाता हूँ। कैबिनेट-स्तर के एक मंत्री (नाम अगले हफ़्ते दिया जाएगा) ने अपनी पुत्रवधू को गर्भवती किया है। कुनबापरस्ती का कितना बड़ा उदाहरण ! बाप बेटे के लिए मुफ़्त सेवाएँ प्रदान कर रहा है। आगे पढ़ता हूँ, 'कनॉट सर्कस की लड़की के कन्फ़ेशंस'—अफ़्रीकी दूतावास में काम करनेवाले भारतीय कर्मचारियों द्वारा अपने शोषण के ख़िलाफ़ उसने शिकायत की है। वह कहती है कि हिन्दुस्तानियों से अफ़्रीकन ज़्यादा उदार हैं। पैसे भी ज़्यादा देते हैं। फिर पढ़ता हूँ—'कॉलेज के एक लड़के का ख़त।' छपा है कि उसके बाप के दौरे पर जाने के दौरान उसकी सौतेली माँ ने उसके साथ बलात्कार किया। नीचे तिरछी लिपि में सम्पादक की तल्ख़ टिप्पणी छपी है—'पैदा करनेवाले बाप का हक़ बेटे को कैसे दिया जा सकता है ! तुम्हारी सौतेली माँ भारतीय नारी के नाम पर कलंक है।' अगले अंक में ऐसी औरतों से निबटने के लिए सलाह देने का वायदा किया गया है। अब मेरी नज़र अमरीकन मोटरगाड़ियों के बम्परगार्डों की तरह बाहर निकले सीनोंवाली सेक्सी औरतों के चित्रों पर जा टिकती है। अगले अंक में तिहाड़ जेल के महिला-विभाग की सनसनीख़ेज़ ख़बरें देने का विज्ञापन भी छपा हुआ है।

भागमती ने मुझे तिहाड़ जेल के बारे में काफ़ी-कुछ बता रखा है। वह स्वयं जो कई बार तिहाड़ जेल हो आई है !

मैं अपनी बिरादरी के दो जनों को अपनी तरफ़ बढ़ते देखता हूँ। एक फ़ोटोग्राफ़र है और दूसरा पत्रकार। दोनों अपने-आपको दिल्ली के धाकड़ औरतबाज़ समझते हैं। देखते ही बाँहें फैलाकर मिलते हैं—"हलो, हलो, क्या हाल है ?" मेरे कूल्हे पर एक थपकी मारकर फ़ोटोग्राफ़र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछता है, "क्यों, मेमसाहबों के साथ कैसी पटी ?" मैं भी जवाबी सवाल दाग़ता हूँ, "और दिल्ली के चैम्पियन साँड का क्या हाल है ?" वह कंधे मचकाता हुआ कहता है, "पंद्रह दिनों से नो एक्शन ! दरअसल मेरा तो नियम है कि औरत मिले तो मज़े करो, वरना ब्रह्मचारी बने रहो। छोकरे, हिंजड़े—ये सब मुझे पसन्द नहीं !"

घुमा-फिराकर तीर मेरे ऊपर ही छोड़ा गया था।

"और तुम्हारा क्या हाल है, महान लिखाड़ी साब ?" मैंने पत्रकार से पूछा। भारी-भरकम जिस्म है बेचारे का, पर चेहरा बालों के नाम पर सफाचट। वह कविता में जवाब देता है, "औरत मिलती है तो उसके साथ मस्त रहता हूँ। नहीं मिलती है तो अपने साथ। मुझे कोई शिकवा नहीं। गुरु महाराज स्वर्ग में हैं और मेरी माशूका घर पर।" दाढ़ी के एक बाल को उखाड़कर वह किसी दार्शनिक-जैसी भावहीनता से उसे देखता है। तभी हमारा एक तीसरा मित्र भी आ पहुँचता है। वह रक्षा मंत्रालय में 'अपर डिवीज़न क्लर्क' है। आजकल अपनी बेकार जाती मेडिकल लीव पर है। हमारी ऐसी बातों पर वह अपनी असहमति दर्ज कराते हुए कहता है, "बिहार में पचास लाख आदमी भूख से मर रहे हैं और तुम लोगों को औरतों की बातें सूझ रही हैं !" वह अपने पैरों को ज़मीन पर पटक रहा है और टाँगों को सुपारी काटनेवाले सरौते की तरह ज़ोर-ज़ोर से चला रहा है। फिर पैरों को उठाकर कुर्सी पर रखने की प्रक्रिया में उसके भारी-भरकम चूतड़ों से एक आवाज़ निकलती है, 'पूँऽऽऽ !' बेचारा झेंप उठता है और पैरों को वापस नीचे रखते हुए माफ़ी माँगता है, "सॉरी, इट वॉज़ ए स्लिप ऑफ़ टंग।"

हमारा एक लँगोटिया यार आ बैठता है। यह एक नेता है और राजनीतिक गतिविधियों का हमारा विशेषज्ञ। पिछले अकाल के दौरान 'हफ़्ते में एक रोटी कम खाओ' अभियान चलाकर उसने काफ़ी नाम कमाया था। अब वह परिवार-नियोजन पर भी ऐसा ही एक अभियान चलाने की सोच रहा है। इस बार उसका नारा है 'खुशहाली चाहते हो तो हफ़्ते में एक बार।' पर अभी उसका नारा रास्ते पर नहीं आया। हमारी बातचीत फिर सेक्स, भ्रष्टाचार और अक्षमता से होकर बिहार के पचास लाख क्षुधा-पीड़ितों पर आ टिकती है। इस बीच हम कई कप कॉफ़ी और कई प्लेटें काजू की हज़म कर चुके हैं।

सुबह ऐसे ही बीत गई।

मुझ पर भारी अवसाद छाया हुआ है। मैं कॉफ़ी हाउस के अपने दोस्तों से विदा लेकर उठ खड़ा होता हूँ। और फिर पुरानी दिल्ली की दीवार और ज़ीनत महल के मक़बरे से गुज़रता हुआ विद्युत्-शवदाह-गृह के पास आकर रुकता हूँ। यहाँ तो कोई ग्राहक ही नहीं है। कोई धुआँ ही नहीं उठ रहा। तीन पुलों की मेहराबें पार कर जमुना के किनारे निगमबोध घाट पर पहुँचता हूँ। कार को वहीं लगाकर भीतर जाता हूँ।

दिल्लीवालों को हो क्या गया है ? पहले की तरह वे मर भी नहीं रहे। सिर्फ़ एक मुर्दा जल रहा है और तीन राख के सुलगते हुए ढेर दीख रहे हैं। उन ढेरों के पास कोई मातम मनाता नहीं दिख रहा। मैं घाट की तरफ़ बढ़ जाता हूँ। देखना चाहता हूँ कि यहाँ भी कोई हलचल है या नहीं।

वहाँ नज़ारा ही और है। नदी में उतरती सीढ़ियों पर लाल रंग के कफ़न में लिपटा एक शव पड़ा है। लोग रोते-चिल्लाते छातियाँ पीट रहे हैं। ब्राह्मण पुरोहित उन्हें शव से परे हटाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
R
५४.३
सिन्ह-द

है और संस्कृत में कोई मंत्र पढ़ता हुआ मुर्दे पर पानी छिड़कता है। एक अधेड़-सा आदमी शव का चेहरा उघाड़ता है। युवा लड़की—मोमिया-सा एक चेहरा, जैसे गहरी नींद में हो। आदमी उसके चेहरे को टकटकी लगाकर ताक रहा है। उसके मुँह से आह निकलती है और वह अविश्वास में सिर हिलाने लगता है। शव के दूसरी ओर एक औरत अपने सिर को बार-बार पटकती, मृत लड़की को बाँहों में भर रही है। आस-पास खड़े लोग विलाप करते जोड़े को धीरे से अलग कर शव के चेहरे को फिर ढँक देते हैं। पुरोहित अपना हाथ आगे करता है। कोई उसके हाथ पर एक रुपया रख देता है। वह चाँदी के सिक्के को वितृष्णा से देखता है और खड़ाऊँ खटखटाता सीढ़ियाँ चढ़ने लगता है। शवयात्रा में शामिल लोग अर्थी को उठाकर उसके पीछे-पीछे चलने लगते हैं। मुर्दे को ज़मीन पर रखकर चिता के लिए लकड़ियाँ सजाई जा रही हैं। अधेड़ स्त्री-पुरुष फिर विलाप करने लगते हैं। औरत ज़मीन से मिट्टी उठा-उठाकर अपने बालों में भर लेती है। वह दोनों हाथों से अपना सिर धुनती हुई रो रही है, "हाय, हाय !" आदमी मृत लड़की का चेहरा फिर उघाड़ देता है। कुछ देर टकटकी लगाए देखते रहने के बाद उसके मुँह से आह निकलती है, "हाय रब्बा !" अपनी मृत बच्ची की ओर से उसकी आँखें हटती ही नहीं। वह उसके हाथों, पैरों और पाँवों के तलुवों को ऐसे दबाता है, जैसे मालिश कर रहा हो। चिता तैयार हो चुकी है। अर्थी को उठाकर चिता पर रख दिया जाता है। शव रखने के बाद उस पर और लकड़ियाँ सजाई जाती हैं और देसी घी का भरा लोटा उस पर उलट दिया जाता है। एक आदमी एक डंडे पर लिपटे चीथड़ों को मिट्टी के तेल में भिगोकर जलाता है और मशाल को चिता के चारों ओर घुमाता है। कुछ ही पल में चिता से भकभकाकर लपटें उठने लगती हैं। थोड़ी देर बाद एक दूसरा आदमी बाँस का डंडा लेकर जलती-तिड़कती चिता में लड़की का सिर टटोलता है और डंडे को उसमें घोंप देता है। माँ-बाप ज़मीन पर अपना सिर पटकते हैं और दोहत्थड़ मार-मारकर फिर से रो उठते हैं। कलकत्ता से आती तूफ़ान मेल जमुना के लौह-पुल पर धड़धड़ाती हुई रेलवे स्टेशन की तरफ़ चली जा रही है।

मेरा चेहरा निगमबोध घाट की लपटों की गर्मी से तप रहा है। उस दुःखी दम्पती का रुदन कानों में गूँज रहा है। दुनिया में सचमुच कितना दुःख है, ऐसा दुःख जो सुई की तरह दिल को बींध देता है। मैं रुककर सोचने लगता हूँ कि वाहेगुरु की कृपा ही तो है कि लड़की के शोक में विलाप करता, सिर में धूल डालता वह बाप मैं नहीं हूँ। यह भी तो ईश्वर की कृपा ही है कि मैं अपनी एम्बेसेडर गाड़ी चलाता अपने घर की ओर लौट रहा हूँ। मेरे क्षोभ, मेरी ईर्ष्या, मेरी हताशा की इन पीछे छूटे लोगों की पीड़ा से क्या तुलना हो सकती है ! वे घर लौटकर फिर अपनी बच्ची के लिए तड़पेंगे, रोएँगे। मैं घर लौटूँगा तो स्कॉच की चुस्कियाँ भर रहा होऊँगा।

बुधसिंह मेरी राह देख रहा है। अपनी डंडेवाली बाँह वह आगे बढ़ाता है। मैं उधर ध्यान नहीं देता। वह तनिक पास आकर भेद-भरे स्वर में कहता है, "एक्सक्यूज़ मी, सर ! आपका हिंजड़ा आपसे मिलने आया था। मैंने उससे कहा कि आप अभी फॉरेन से नहीं लौटे। आप मेरे से गुस्से तो नहीं हुए ना, साब ? मैंने जो कहा था ना कि कोई औरत कर लीजिए या कोई लड़की रख लीजिए या फिर कोई लौंडा ही सही ! लेकिन हिंजड़ा..."

मन तो हुआ कि इस दाढ़ीज़ार बुद्धूसिंह के मुँह पर एक दे मारूँ। पर मैंने धीरे से दरवाज़ा बंद किया और अपने लिए एक पैग बनाया।

142597

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही है दिल्ली। जब ज़िंदगी से आपका जी भरने लगे तो निगमबोध घाट जाकर एक घंटा बिता आइए। मुर्दों को आग के हवाले होते और मृतक के क़रीबी सम्बन्धियों को उसके लिए रोते-बिलखते देखिए। फिर घर लौटिए और दो-चार पैग गले के नीचे उतारिए।

दिल्ली में मौत और शराब—यही दो चीज़ें ज़िंदगी को जीने लायक़ बना सकती हैं।

2

लेडी जे० एच० टी०

स्कॉच के दूसरे पैग के साथ दूसरा सैंडविच कुतर रहा हूँ। तभी फ़ोन बज उठता है—"इज़ दैट 420420 ?" "जी हाँ !" "सर, शिक्षा मंत्रालय के सचिव महोदय आपसे बात करेंगे।"

"कैसे हो, ठरकीराम ?" (सेक्रेटरी और मैं दोनों ही दिल्ली की ठरकी बिरादरी के सदस्य हैं) जवाब की प्रतीक्षा किए बग़ैर ही वह आगे कहता है, "लेडी हॉयटी टॉयटी के बारे में बात करनी थी। अख़बारों में तो तुमने इनके बारे में पढ़ा ही होगा। मशहूर पुरातत्त्ववेत्ता हैं, रानी (इंग्लैंड की) की कज़िन हैं, राष्ट्रपति की ख़ास मेहमान, वी० वी० आई० पी०। इससे अच्छा सम्पर्क साधने का मौक़ा तुम्हें कहाँ मिलेगा ? चाहो तो पटा भी लेना। कुछ पुराने ऐतिहासिक स्थलों का मुआयना करना चाहती है। सब-कुछ मुहैया कराया जाएगा तुम्हें—लिमोज़ीन, कैवियार, शैम्पेन—सोच लो ! सब-कुछ—जो भी यह ग़रीब मुल्क पेश कर सकता है। बोलो ? घुमा दोगे इन्हें ?"

"बेशक।"

"तो ठीक है। कार तुम्हें सुबह पाँच बजे तुम्हारे घर से ले लेगी। तैयार रहना ! शाही मेहमान को इंतज़ार मत करवाना ! अच्छा, मज़े करो।"

इससे पहले कि मैं पूछ पाता, 'पाँच बजे ? इतनी जल्दी ?' वह रिसीवर छोड़ चुका था। मैं अपने-आपसे ही सवाल-जवाब करने लगता हूँ—'क्यों, कैसी रहेगी ? सुबह जल्दी ही तो उठना पड़ेगा ! और बदले में इतनी बड़ी हस्ती के साथ मुलाक़ात ! लोगों में धाक ज़माने का मौक़ा तो मिलेगा ! एक विश्वविख्यात महिला के साथ पूरा दिन बिताने का सुअवसर मिलेगा। क़िस्मत ने साथ दिया तो उसे पटा भी लूँगा; और तब इतिहास में उसके एक प्रेमी के रूप में मेरा भी नाम लिखा जाएगा।'

सम्भव हुआ तो क़व्वालीवाली रात को उसे मोतीमहल ले जाऊँगा। लोग आँखें फाड़-फाड़कर देखेंगे, आपस में फुसफुसाएँगे, जलन के मारे राख होते रहेंगे। अपने मित्रों से बताऊँगा, 'जेन ने मुझे यह कहा, वह कहा···।' वे पूछेंगे, 'यह जेन कौन है यार ?' मैं कहूँगा, 'तुम लोग लेडी जेन हॉयटी टॉयटी को नहीं जानते ? अरे भई, क्वीन की कज़िन है, पुरातत्त्ववेत्ता। मिट्टी के बर्तनों की खोज में खुदाई करवा रहे थे···तभी हमारी गहरी दोस्ती हो गई···'

मैं जल्दी सो जाता हूँ, पर नींद ठीक से नहीं आती। मुर्दघाटवाला दृश्य बार-बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँखों के आगे आने लगता और समय देखने के लिए मैं घड़ी-घड़ी बत्ती जलाता। ठीक साढ़े चार बजे घड़ी का अलार्म कान फाड़ना शुरू करता है। उठकर फटाफट शौचादि से निबटता हूँ। फिर नहा-धोकर आध घंटे में तैयार हो जाता हूँ और अपने दरवाज़े के बाहर निकल आता हूँ।

मार्च का महीना है। भोर की हवा में एक प्रकार की महक है। छुपने जा रहे चाँद से ज़्यादा चमक रहा है भोर का तारा—शुक्र। सड़क से गुज़रती एक मोटरगाड़ी की हैडलाइटों से हमारा सारा ब्लॉक चमक उठता है। एक ट्रक भी धड़धड़ाता हुआ गुज़र जाता है। और फिर फैल जाती है पहले जैसी निस्तब्धता। फिर वही शुक्रतारा और सुबह की खुशनुमा ताज़ी हवा। पूरब में आसमान साफ़ हो रहा है। बड़ी-बड़ी चमगादड़ें अपने डेरों को लौट रही हैं। फिर एक मोटरकार आ रही है। उसके बाद एक और कार। मेरी घड़ी में अब पाँच बचकर चालीस मिनट हो रहे हैं। अब मुझसे अपने गुस्से पर क़ाबू नहीं रखा जा रहा। इतनी ही देर लगानी थी तो मैं आधा घंटा और सो लेता।

तभी हैडलाइटों की चुँधियाहट से मेरी आँखें मुँद जाती हैं। एक रोल्स रॉयस आकर रुकती है और लाल-सफ़ेद वर्दी में एक नौकर आकर पूछता है कि क्या मैं ही फ़लाँ-फ़लाँ व्यक्ति हूँ? मैं कहता हूँ, "हाँ।" वह सामने का दरवाज़ा खोल देता है। मैं स्वयं को शोफ़र और उसके बीच फँसा बैठा पाता हूँ। पिछली सीट पर एक नज़र डालता हूँ। लम्बी-चौड़ी सीट पर फ़र में लिपटी एक छोटी-सी आकृति बैठी हुई है। अपना बेरंग सफ़ेद चेहरा हिलाकर वह पूछती है, "क्या आप ही गाइड हैं?" मैं रुखाई से कहता हूँ, "जी हाँ।" जब पता चलेगा कि मैं कौन हूँ, तभी समझ में आएगी इसे अपनी बेवकूफ़ी—मैं मन-ही-मन तनिक आश्वस्त होता हूँ।

"पुराना क़िला।" मैं शोफ़र को आदेश देता हूँ।

"नहीं," वह पीछे से चिल्लाई, "तिलपत चलेंगे। मैंने इसे बता दिया है कि कहाँ जाना है।"

इसका मतलब, यह दिल्ली से परिचित है। तो फिर मेरी क्या ज़रूरत थी? कुक्कुरशाला की इस महारानी का दरबारी भाँड बनाने के लिए बुलाया गया है क्या मुझे?

हम मथुरा-आगरा मार्ग पर बढ़ रहे हैं। ऐतिहासिक 'बड़ा पुल'—सेतु को पार करते हैं। रोल्स रॉयस की हैडलाइटें अब बंद हो जाती हैं। सुबह की रोशनी में दिखाई पड़ते हैं पाख़ाना करते अनगिनत लोग। फ्रैंड्स कॉलोनी और मल-निवर्तन फ़ार्म (सीवेज डिस्पोज़ल फ़ार्म) से उफनती दुर्गंध को पार करते हुए हम रेलवे पुल के ऊपर से गुज़रते हैं। रास्ते में सड़क-अनुसंधान संस्थान (रोड रिसर्च इंस्टीट्यूट) भी आता है। बदरपुर गाँव पार कर हम मुख्य सड़क से तिलपत की ओर मुड़ जाते हैं। पंजों के बल बैठे हगते हुए लोगों से खेत पटे पड़े हैं। पाख़ाने के ढेरों पर मुश्किल से इंच-भर ऊँचे बैठे लोगों में से कुछ के मुँह हमारी तरफ़ हैं, तो कुछ की खुली पीठें। हगने के मामले में हमारे किसानों का भी कोई जवाब नहीं। सरसों के साग के भरे कटोरों और रोटियों की थब्बियों को पचाकर सुबह-शाम दो बार हगते हैं।

हम यमुना की पच्छिमी नहर को पार करते हैं। गेहूँ के अधपके विस्तार से झाँकता तिलपत का पहाड़ी इलाक़ा नज़र आने लगता है। शोफ़र कहता है, "तिलपत, मैडम!"

"अच्छा, आ गया तिलपत?" मैडम चिल्लाई। उसकी आवाज़ दमे के रोगी-सी बेसुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, "यहीं-कहीं गाड़ी लगा दो। कुछ नाश्ता-वाश्ता कर लिया जाय।"

मैं ड्राइवर से कहता हूँ कि वह सड़क के छोर पर गाड़ी लगा दे। फिर अपने ऑक्सब्रिज लहजे में मैडम को बताता हूँ, "गाँव के उस ओर खजूर के पेड़ों का झुरमुट है। वहीं चलकर नाश्ता करें। वरना यहाँ तो आधा तिलपत आपको घूरते हुए जमा हो जाएगा।"

मेरा लहजा सुनकर वह तनिक सकते में आ जाती है, "अच्छी बात है। कॉफ़ी का गर्मागर्म कप पीने को मन बेताब हो रहा है। आपको भी ज़रूर कॉफ़ी की तलब हो रही होगी। क्यों?"

मैं उसकी पेशकश पर अधिक उत्साह नहीं दिखाता। जब तक यह मेमसाहब अपनी ग़लती का अहसास नहीं कर लेती, इसे तड़पाना ज़रूरी है।

हम तिलपत का एक चक्कर लगाते हैं। सड़क खजूर के झुरमुट के पास एक मंदिर तक जाकर ख़त्म हो जाती है। वर्दीधारी नौकर शोफ़र के गाड़ी रोकते ही मैडम का दरवाज़ा खोलने को बाहर फुदक आता है। मैं भी गाड़ी से उतरता हूँ।

लेडी हॉयटी टॉयटी सफ़ेद फ़र के अपने कोकून से बाहर निकलती है। मैं उसको ऊपर से नीचे तक देखता हूँ—पचपन के क़रीब उम्र होगी। छोटी-सी क़द-काठी, पाँच फुट से कुछ ही ऊपर। वक्ष के नाम पर कुछ भी नहीं, और नितम्ब भी वैसे ही चपटे। ठूँठ-सी अनाकर्षक औरत! मटमैले सुनहरी बाल। वैसा ही मटमैला गुलाबी बदन, चमड़ीला-सा। जबड़ों के किनारों पर कटे के निशान बता रहे हैं कि मैडम ने 'फेसलिफ्ट' करवा रखा है। भूरे कार्डिगन के साथ बदरंग-सी नीली डेनिम की जीन्स पहनी हुई है और पैरों में ख़ाकी कैनवास के जूते। छोटी क़द-काठी, नीली आँखों तथा कलाई में पड़े स्वर्ण-सिक्कों वाले कंगन के सिवा कुछ भी तो नारीसुलभ नहीं है इस औरत में!

राष्ट्रपति भवन से लाया गया 'फ़ोल्डिंग' टेबल खुलकर तैयार है। उस पर साथ लाई टोकरी से निकले अंडों के सैंडविच और गर्मागर्म कॉफ़ी के प्याले सजा दिए गए हैं।

मुझे सिगरेट पेश करते हुए वह पूछती है, "आप तो बहुत बढ़िया अंग्रेज़ी बोल लेते हैं! स्कूल की पढ़ाई ज़रूर इंगलैंड में की होगी?"

सिगरेट के लिए सिर हिलाकर मना करते हुए जवाब देता हूँ, "जी नहीं। स्कूलिंग हेलीबरी में हुई।" 'हेलीबरी' कहने में ही फ़ायदा लगा, सुनने में कुछ-कुछ 'ब्लाइटी' जैसा जो लगता है।

"अच्छा, तो यह कोई पुराना ईस्ट इंडिया स्कूल होगा? और यह जो टाई आपने लगा रखी है, किंग्स कॉलेज (लंदन) की लगती है। क्यों?"

"जी हाँ।" मैं टाई को छूते हुए जवाब देता हूँ, यद्यपि इसे पहनने का मुझे कोई हक़ नहीं था।

"मेरे हस्बैंड भी किंग्स कॉलेज से ही पढ़े हैं। आप वहाँ किस साल थे?"

"सात साल हो गए।" उसका पति तो कम-से-कम तीस साल पहले रहा होगा वहाँ। इसलिए पकड़े जाने की कोई गुंजाइश नहीं लगी।

"आपने पढ़ाई किस विषय में की?"

"इतिहास में।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर इसे ऐसे ही प्रश्न पूछते रहने दिया, तब तो निश्चय ही भेद खुलने की आशंका है। सो बात बदलकर कहा, "मैं, दरअसल, पढ़ाई-लिखाई से ज़्यादा खेल-कूद में ध्यान दिया करता था।"

वह मुस्कुराकर अपनी ग़लती का अहसास करती है, "मुझे बेहद अफ़सोस है कि मैं आपको 'प्रोफ़ेशनल गाइड' समझ बैठी। उन लोगों को चाहिए था कि मुझे आपके बारे में बताते। अनजाने में ही, मुझसे जो अभद्रता हुई, उसके लिए माफ़ कीजिएगा।"

"नहीं-नहीं, कोई बात नहीं। आप ऐसा न सोचें। दिल्ली का सबसे घटिया, मुफ़्त का गाइड आपके सामने है।"

"यू आर ए जोकर। चलो, हमारी अच्छी निभेगी। मेरा नाम जेन है। आपका नाम क्या है?" वह अपना हाथ बढ़ाते हुए पूछती है—ठंडा, हड्डियों-भरा मज़बूत हाथ।

"सिंह!" हँसकर कहता हूँ, "बड़ा विशिष्ट नाम है मेरा—हमारे मुल्क के तक़रीबन पाँच करोड़ सिख, राजपूत, बनिए, ठाकुर, गुरखे, बिहारी और न जाने कितने लोग—इसी नाम से जाने जाते हैं।"

वह हल्के-से मुस्कुराई।

अब हम ऐसे बातें करने लगते हैं, जैसे पुराने मित्र हों। मैं उसे बताता हूँ कि मैं उसी हवाई जहाज़ में था, जिससे वह आई थी। उसको फुलाने की कोशिश में कहता हूँ, "कैमरों की फ़्लैश लाइटें चमकीं तो मैंने समझा कि कोई फ़िल्म स्टार उतर रही होगी। वैसी आप लगती भी तो हैं!"

"झूठे!" वह खाँसते हुए हँसती है, "मुझे कॉम्प्लीमेंट्स अच्छे लगते हैं, लेकिन यह फ़्लैटरी नहीं। समझे?"

अंडों के सैंडविच चबाते और कॉफ़ी की चुस्कियाँ भरते हम हेलमेल बढ़ाने में जुटे हुए हैं।

"तिलपत के बारे में क्या-क्या पता है आपको, बताइए तो!" वह कहती है।

"ज़्यादा कुछ नहीं। किंवदंती है कि यह पांडवों के पाँच गाँवों में से एक था। पांडवों के बारे में तो सुना होगा आपने?"

वह सिर हिलाकर कहती है, "हाँ, पर आप फिर से बताइए।"

"पांडवों ने अपने चचेरे भाइयों—कौरवों से अपने हिस्से के पाँच गाँव माँगे थे—पानीपत, सोनीपत, इंद्रपत, बाघपत और तिलपत। कौरवों ने देने से इन्कार कर दिया था। इसके बाद दोनों में यहाँ से सत्तर मील उत्तर-पश्चिम में कुरुक्षेत्र में घमासान युद्ध हुआ। कृष्ण की सहायता से पांडव जीत गए। गीता के बारे में तो जानती होंगी?"

वह फिर सिर हिलाती है, "महाभारत में ही है न यह—कृष्ण ने न्यायसंगत युद्ध पर जो उपदेश दिया था? इसी ग्रंथ में तो वह औरत भी है न, जिसके कई पति थे?"

"हाँ, द्रौपदी। वह पाँचों पांडवों की पत्नी थी। तीसरे भाई अर्जुन ने उसे तीरंदाज़ी करके जीता था। जब वह उसे घर लेकर आया तो अपनी माँ से बोला, 'माँ, देखो तो मैं क्या लाया हूँ!' माँ ने बिना देखे ही कहा, 'सभी भाई मिलकर बाँट लो बेटे!' तो एक आज्ञाकारी बेटे की तरह उसने माँ का कहा मान लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कौरवों का नाश कर पांडव हिमालय में चले गए। हमारे हिंदुस्तान में यह रिवाज था कि बूढ़े होने पर लोग हिमालय पर चले जाते थे। हो सकता है, इस टीले पर रहनेवाले ये लोग पांडवों के ही वंशज हों, जो हिमालय पर जाने से रह गए थे।"

"पिछली बार जब मैं यहाँ आई थी तो खुदाई में भूरे रंग के मिट्टी के बर्तन निकले थे। मैंने कुछ नमूनों का परीक्षण किया तो पता चला कि निश्चय ही एक हज़ार बी० सी० या उससे भी पहले के हैं।" अपनी कॉफ़ी की तलछट ज़मीन पर गिराते हुए बड़े अधिकार के साथ अपनी बात कहती है। वर्दीवाला नौकर दौड़कर उसके हाथ से कप थाम लेता है।

धूप में चमकते तिलपत पर हमारी नज़रें टिकी हैं। कुछ पक्के घरों के चारों ओर मिट्टी की झोंपड़ियों का जमघट और एक मंदिर—यही है तिलपत।

तिलपत की ओर से गायों-भैंसों का एक झुंड हमारी ओर बढ़ा आ रहा है। कुछ छोकरे उन्हें खेतों में घुसने से रोकने में लगे हैं। लड़कियाँ भी गरमागरम गोबर के चोथों को उठाने के लिए टोकरियाँ थामे पीछे-पीछे आ रही हैं। गाएँ रोल्स रॉयस को देखकर किनारे हो जाती हैं, पर भैंसें इसके बम्परों को देखती हुई उलझन-भरी नज़रों से इधर-उधर बिखरने लगती हैं। लड़कों ने इन जानवरों को खजूर के झुरमुट की तरफ हाँक दिया है और ख़ुद हमसे कुछ ही दूर पैरों के बीच डंडे फँसाकर पंजों के बल बैठ गए। लड़कियों ने भी उनके पीछे कतार बाँध ली।

"ये लोग क्या चाहते हैं?" लेडी हॉयटी टॉयटी ने मुझसे पूछा।

"क्या चाहिए?" मैंने उनसे पूछा।

"कुछ नहीं," एक लड़के ने जवाब दिया, "ऐसे ही देख रहे हैं।"

मैंने उसके कहे को अंग्रेज़ी में अनूदित कर मैडम को बताया। साइकिल पर गुज़रता हुआ एक ग्रामीण भी रुक गया और पूछने लगा कि क्या माजरा है। लड़के ने उससे भी कहा, "कुछ नहीं।" साइकिलवाला भी वहीं खड़ा हो गया। कुछ मिनटों में वहाँ दर्शकों की एक अच्छी-ख़ासी भीड़ जमा हो गई।

मैंने व्यंग्यभरे लहजे, लेकिन नर्मी से कहा, "भई, यहाँ कोई तमाशा हो रहा है क्या? अजायबघर में आए हो?"

वे बेशर्मी से हीं-हीं करते वैसे ही हमें घूरते रहे। एक लड़के ने मुझसे पूछा, "यह मेम हैं कि साहब हैं?"

लड़कियाँ एक-दूसरे को देख हीं-हीं कर हँसने लगीं। मर्द भी खीसें निपोरने लगे। लड़के की हिम्मत इस सबसे और बढ़ी, "अरे, साहब की तरह पतलून पहने है! आगे-पीछे भी कुछ नहीं दिखता! हमें कैसे पता चले कि···?" हँसना, ठिठियाना कुछ और बढ़ा। हॉयटी टॉयटी ने अंदाज़ा लगा लिया कि उसके ही बारे में कुछ कहा जा रहा है। मेरी बाँह को पकड़कर वह जानने की ज़िद करने लगी। मैं उसे सारा माजरा बता देता हूँ। वह मुझे पकड़कर उस लड़के की ओर धकियाते हुए ले जाती है, "इससे कहो कि इधर झाड़ियों की तरफ़ आए तो बताती हूँ कि मैं क्या हूँ।" मैं यही बात उस लड़के को बता देता हूँ। बेचारा पानी-पानी हुआ जा रहा है। हॉयटी टॉयटी उसका कान उमेठकर खड़ा करती है, "चल, आ देख!"

लड़का कान छुड़ाकर भाग खड़ा होता है। बाक़ी लड़के-लड़कियाँ भी उसके पीछे भाग जाते हैं। साइकिलवाले ने भी साइकिल उठाई और नौ-दो ग्यारह हो गया। बाक़ी बचे हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग भी एक के बाद एक खिसक गए। देखा इस अंग्रेज़ियत का कमाल। चिपटे सीने वाली औरत ने भी कैसे इतनी बड़ी पलटन को पल-भर में छठी का दूध याद दिला दिया।

"दैट्स दैट," हाथों से धूल झाड़ती-सी वह हतोत्साह बोली, "अब ज़रा देहात की तरफ़ चलें। नदी यहाँ से ज़्यादा दूर तो नहीं?"

"पैदल रास्ता घंटे-भर का होगा।"

"कोई बात नहीं, चलो।"

हम पूरब की ओर बढ़ने लगते हैं। खजूर के झुरमुटों से होते हुए खुले में पहुँचते हैं। दलदली इलाक़े से होते, नदी की उथली धाराओं को किसी तरह पार करते हुए हम रेतीली ज़मीन पर आ पहुँचते हैं। चारों तरफ़ सिर्फ़ बौने मोरपंखी और कैसुएरीना के पौधे हैं। हिरनों का कुलाँचें भरता हुआ झुंड तिलपत की ओर भागता आँखों से ओझल हो जाता है। हवा में सींग लहराता एक काला हिरन हमसे कुछ ही गज़ की दूरी पर आकर रुकता है। हॉयटी टॉयटी उसकी तरफ़ अपनी बाँहें उठाकर कहती है, "ठाँय!" अब हिरन की पीठ हमारी ओर हो जाती है। तो उसे किसी की गोली लग ही गई। उसकी पीठ से खून चूने लगा है। मंथर गति से चलता वह कैसुएरीना की झाड़ियों के पीछे पहुँचकर ढह जाता है। इतने में ही झाड़ियों से आड़ी-टेढ़ी निकलती सिख छोकरों से भरी एक जीप हमारे सामने आकर रुकती है। एक लड़का पंजाबी में मुझसे पूछता है, "सरदार जी, हिरनाँ दा इक झुंड तुसीं एदरौं जाँदा देख्या?" फिर मेरे साथ अंग्रेज़ महिला को देखकर वह अंग्रेज़ी में पूछना शुरू करता है, "एंड ए बिग ब्लैक बक? (और एक बड़ा-सा काला हिरन?) मेरी गोली उसे लगी तो ज़रूर है।"

मैं नदी की ओर संकेत करता हूँ, "हाँ, अभी-अभी गुज़रा है। उधर। ज़्यादा दूर नहीं गया होगा!"

'थैंक्स, थैंक्स' कहते हुए वे जीप को नदी की दिशा में दौड़ा ले जाते हैं।

"मैंने इन शिकारियों को अच्छा चकमा दिया है," उत्साहित होकर मैं कहता हूँ। हॉयटी टॉयटी मुस्कुरा उठती है। उसकी आँखों में एक चमक-सी जागती है, "अब कोई ठाँय-ठाँय नहीं होगी।" और मेरी दाढ़ी को थपथपाकर वह मुझे शाबाशी देती है।

"जब मैं छोटा था तो शहर की दीवार से मील-भर के दायरे में ही नील गाय और जंगली सूअर घूमते दिख जाते थे। जहाँ आप ठहरी हैं, उस राष्ट्रपति भवन की पहाड़ी पर तब बाघ भी दिख जाया करते थे। हमारे पार्कों में ख़रगोश, तीतर और मोर तो आए दिन दिखते थे। जहाँ तक हिरनों की बात है, यहाँ से बीस मील के भीतर हिरनों के झुंड-के-झुंड हुआ करते थे। आज दिल्ली से सौ मील दूर तक भी कहीं कोई हिरन नहीं दिखता। इन हरामी विदेशी राजनयिकों के विशेषाधिकारों के चलते ही सब तहस-नहस हो गया। अगर मेरा बस चले तो मैं इन सारे हत्यारों को गोली से उड़ा दूँ।"

"जीपवाले छोकरे तो 'फ़ॉरेन बास्टडर्स' के बजाय तुम्हारी ही जाति के लग रहे थे?"

"मैं उन्हें भी गोली से उड़ा दूँगा।"

हम आगे बढ़ते हैं। झाड़-झंखाड़-भरे जंगलों की जगह अब पकते हुए गेहूँ के खेत दिख रहे हैं। एक चातक गाता हुआ गेहूँ के खेतों में उतरता है। एक दूसरा आकाश की ओर उड़ता हुआ एक जगह रुककर पंख फड़फड़ाता है और पुनः चक्कर काटता हुआ उड़ जाता है। अरे, ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने सारे चातक, एक के बाद एक उड़ते हुए !

गेहूँ के खेत ख़त्म हुए। हमारे पाँव अब रेत में धँसते जा रहे हैं। हम एक छोटे-से पोखर के पास आकर रुकते हैं। चहचहाती मुर्ग़ाबियों का एक झुंड खेतों से उड़ता हुआ हमारे सिरों पर से गुज़र जाता है। मैं अपनी बाँहें उठाकर निशाना साधने का उपक्रम करता हूँ, "ठाँय, ठाँय ! देखा, कितना अच्छा निशाना लगाया, मैडम ! एक ही वार में छह चिड़ियाँ गईं !" वह हँसने लगती है, "तुम तो मेरा मज़ाक उड़ा रहे हो।"

हम पोखरे का चक्कर लगाते हैं। चिकनी मिट्टी में हमारे पैर टख़नों तक ढक गए हैं। अरे, अब तो नदी भी दिखाई देने लगी !

हम नदी के एक ऊँचे किनारे पर खड़े हो जाते हैं। नीचे फैली है क़रीब तीन मील लम्बे भूरे अजगर-सी लहराती यमुना। पानी के बहाव के साथ लाल कपड़े में बँधा और गेंदे के फूलों में लिपटा एक शव बहा जा रहा है। इसके सिवा नदी में कोई हलचल नहीं। कीचड़ में लिथड़े हुए तीन कछुए मानो हड़बड़ाकर नदी में कूद जाते हैं। नदी के दूसरे किनारे की रेत पर हज़ारों की संख्या में जलपक्षी बैठे धूप सेंक रहे हैं। मुर्ग़ाबियाँ, हंस, बत्तख़ें, ब्रामा, पिनपुच्छी तीतर, लालसर, सभी तरह के पक्षी हैं। कुर्री चिड़ियाँ हवा को काटती हुई उड़ रही हैं। सफ़ेद सिरवाला एक मछलीख़ोर गिद्ध नदी के पाट को नापता-सा उड़ गया है।

लेडी हॉयटी टॉयटी किसी सुखद आश्चर्य में बाँहें पसारे कह उठती है, "अहा, यह नदी तो किसी प्रागैतिहासिक सर्प जैसी लग रही है। देखो तो इसके ये तमाम घुमाव और मोड़... !"

मेरी बाँह का सहारा लेकर वह रेत पर नीचे झुकती है। मैं उसके पास ही बैठ जाता हूँ। नदी के ऊँचे उठे किनारे से नीचे लटक रहे हमारे पाँवों के आसपास मैना चिड़ियों के घोंसलोंवाले कोटर हैं।

वह अपना सिगरेट सुलगाती है।

"नदी के ये तमाम घुमाव कृष्ण के भाई बलराम की मेहरबानी से हुए। वह यमुना का शीलभंग करना चाहता था और यमुना मान नहीं रही थी। बलराम ने ख़ूब मदिरापान किया और उन्मत्त होकर नदी को घसीटता-घुमाता हिन्दुस्तान के मैदानी इलाक़ों में ले आया।" मैं उसे नदी से जुड़ी किंवदंती सुनाता हूँ।

नदी की सतह पर एक मछली उछलकर लोटपोट होती है। शिकारियों की बंदूकों की आवाज़ें दूर से सुनाई दे रही हैं। सामने किनारे पर बैठी चिड़ियाँ चीं-चीं करती हुई सिर के ऊपर से आकाश में उड़ जाती हैं। फिर लौटकर हमसे क़रीब सौ-एक गज़ की दूरी पर बैठ जाती हैं। यमुना में फिर से शांति छा जाती है। चिड़ियाँ फिर हवा को चीरने लगी हैं। सफ़ेद सिरवाला गिद्ध मछलियों की ताक में बैठा है।

कुछ देर बाद हॉयटी टॉयटी मेरे घुटने पर अपना हाथ रखकर पूछती है, "यह क्या तुम्हारी पवित्र नदियों में से एक है ?"

"हाँ, गंगा से कुछ ही कम पवित्र। इसे सरजुगा भी कहते हैं, सूरज की बेटी। यह त्रियामा भी कहलाती है, यानी यम की बहन। कालिंद पर्वत से इसका जन्म हुआ, इसलिए इसे कालिंद-नंदिनी या कालिंदी भी कहा जाता है। वेदों को इसकी बाढ़ में धोया गया था। इसी के जल में कृष्ण नहाया करते थे। मैडम, यमुना तो इतनी पवित्र है कि इसमें एक ही डुबकी लगाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जन्म-जन्मांतर के पाप नष्ट हो जाते हैं। बल्कि यों कहा जाय कि यदि मैं आपको इसमें धक्का दे दूँ तो आप पर बहुत बड़ा अहसान कर रहा होऊँगा !" मैं अपना हाथ उसके हाथ पर रखते हुए कहता हूँ।

वह अपना हाथ खींच लेती है। उसकी कलाई में पड़ा सिक्कोंवाला कड़ा छनछना उठता है। सिगरेट के टोंटे को फेंककर वह अपनी हिप-पॉकेट से डब्बी निकालती है, एक और सिगरेट निकालकर अपने होंठों से लगाती है और लाइटर मेरी तरफ़ बढ़ा देती है।

मैं लाइटर जलाता हूँ और उसकी लौ को अंजली में बाँधकर उसके होंठों तक ले जाता हूँ और ऊपर देखता हूँ। वह भी मेरी ओर देखती है। हमारी निगाहें मिलती हैं। नीले आसमान के नीचे बंगाल की खाड़ी-जैसी फैली उसकी नीली आँखें। वह उनके इस्तेमाल का तरीक़ा जानती है। उसकी आँखों की धार मेरे सीने में उतर जाती है। मैं आँखें झुका लेता हूँ। सिगरेट के धुएँ के छल्ले वह मेरे चेहरे पर छोड़ती है और लाइटर वापस लेते हुए सिगरेट सुलगाने के लिए धन्यवाद देती है। उसका हाथ फिर मेरे घुटने पर आ टिकता है। मैं उसके कंगन के सिक्कों के साथ खेलने लगता हूँ। देखा, उनमें से हरेक पर मर्दाने नाम खुदे हुए हैं—जिम, फ्रेडी, डेनिस, जेक्स वग़ैरह। वह स्पष्ट कहती है, "माइ बॉय-फ्रेंड्स !" पीले पड़े दाँतों को उघाड़ हँसते हुए खाँसकर बलग़म का एक थक्का दूसरी तरफ़ फेंक देती है।

"सब अमीरज़ादे होंगे, अलग-अलग मुल्कों के ?" 'अली' नाम के सिक्के को छूते हुए मैं पूछता हूँ। वह फिर हँसती है, "नहीं, सब तो नहीं। कुछ को तो मैंने ही बनाया होगा अमीर। अबकी शायद एक हिंदुस्तानी भी इनमें आ जुड़े। सिर्फ़ हिंदुस्तानी नाम ही नदारद है यहाँ।" एक अर्थपूर्ण कटाक्ष के साथ वह मेरी ओर देखती है और अपना अधजला सिगरेट बालू में धँसाकर बुझा देती है, "देखो, जल्दी से तिलपत की खुदाई देखेंगे और फिर सूरजकुंड चलेंगे।"

उठते हुए वह अपने कूल्हों से रेत झाड़ती है और मुझे कंधों से हिलाकर चलने का संकेत करती है। आगे-आगे चलती मानो वह फिर से जवान हो उठी हो। मैं उसके पीछे-पीछे चल रहा हूँ। उसको मैं समझ नहीं पा रहा। इस छोटी-सी अनुत्तेजक, लेकिन फिर भी व्यभिचार के लिए आतुर इस औरत के लिए मैं कोई उपनाम भी नहीं ढूँढ़ पा रहा।

अचानक झाड़ियों के कुछ ऊपर ग़र्दो-गुबार उड़ता नज़र आया।···· तो शिकारियों की जीप इधर ही आ रही है। जीप में तो कोई काला हिरन नहीं दिख रहा। उनकी नज़र हम पर पड़ती है। हॉयटी टॉयटी उनको चिढ़ाती-सी विजयोल्लास से खीसें निपोरती मेरी ओर देखने लगी। शिकारी समझ गए हैं कि हमने उन्हें चकमा दिया था। उनमें से एक तो अपनी मुट्ठियाँ भींचे हमें गालियाँ भी दे रहा है।

"क्या कह रहा है ?" हॉयटी टॉयटी पूछती है।

"मुझे गंदी गालियाँ दे रहा है।"

"पूरब के लोगों की ख़ासियत ! क्यों ?"

इस स्वेच्छाचारी महिला के साथ खजूर के झुरमुटों से होते हुए मंदिर के पास खड़ी रोल्स रॉयस तक पहुँचता हूँ—वह आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे। उत्सुक ग्रामीणों की भीड़ गाड़ी के इर्द-गिर्द फिर आ जुटी है। हमारे पहुँचते ही वे तितर-बितर होने लगते हैं। हम फिर कॉफ़ी पीते हैं और तिलपत की ओर बढ़ लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है लड़के से हॉयटी टॉयटी के उस तरह पेश आने की बात गाँव-भर में फैल चुकी है। बाक़ी कसर पूरी कर दी है गाड़ी पर लगे सरकारी निशान, वर्दीधारी नौकर और शोफ़र ने। गाँव का मुखिया और उसके साथी हमारा स्वागत नमस्कारों, जयहिंदों और सलामों से करते हैं। हॉयटी टॉयटी सिर हिलाकर उनके अभिनंदन को स्वीकार करती है। हमारे लिए एक चारपाई बिछा दी जाती है। सिर पर कपड़ा डाले एक स्त्री चाय के गिलासों की ट्रे लेकर आती है। हॉयटी टॉयटी औरत के घूँघट में झाँककर देखती है। सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। वह चाय पीने से इनकार कर देती है, लेकिन हुक्का पकड़े किसान के हाथ से हुक्के की नली थामकर गुड़गुड़ाने लगती है। लोग तालियाँ बजाते बच्चों की तरह हँसने लगते हैं। मेरी मार्फ़त वे हॉयटी टॉयटी को बताते हैं कि खुदाई की गई ज़मीन को फिर से भर दिया गया है। वह पूछती है, "नए घरों की नींवें खोदते या हल जोतते वक़्त आप लोगों को कोई अनोखी चीज़ें मिलीं?" उन्होंने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया।

हमने तिलपत से विदा ली। बदरपुर से बाईं ओर मुड़ते हुए रेलवे क्रॉसिंग पार कर हम एक सँकरी सड़क पर पुनः बाएँ मुड़ते हैं और एक तंग ढालू रास्ते पर नीचे उतरते हैं। तेज़ी से गुज़रता हुआ एक मोर पंख फैलाकर तीखे स्वर में 'पाँऊँ-पाँऊँ' करता है।

"अरे जीता-जागता मोर!" हॉयटी टॉयटी जैसे विस्मित भाव से बोल उठती है।

"यह जगह तो मोरों से भरी हुई है।" मैं उसे बताता हूँ।

"और लोगों से भी। हिन्दुस्तान तो लगता है लोगों से भर गया है," सूरज कुंड के पार्किंग स्थल में खड़ी बेशुमार गाड़ियों, स्कूटरों, बसों और साइकिलों की क़तारों को देखकर वह इशारा करती है। पिकनिक मनाते लोग चारों तरफ़ फैले हुए हैं। किसी के हाथ में ट्रांज़िस्टर है तो किसी के हाथ में टेपरेकॉर्डर। सँपेरे अपनी बीनें बजा रहे हैं।

हमारे आगमन से वहाँ कुछ हलचल-सी मचती है। रेस्ट हाउस के बरामदे तक पहुँचते-पहुँचते ट्रांज़िस्टरों का स्वर धीमा होने लगता है। तीन सँपेरे झूम-झूमकर अपनी बीनें बजाना शुरू कर देते हैं। उनमें से एक बूढ़ा सँपेरा अजगर को माला की तरह गले में डाले हमारे पास आ पहुँचता है। हॉयटी टॉयटी उसे देखकर चीख़ती है, "ओ गॉड, मुझे ये सँपेरे तनिक भी अच्छे नहीं लगते, न ही ये पिकनिक मनाते लोग।" दृश्य पर एक नज़र मारकर वह पूछती है, "अभी कितनी देर ठहरना होगा यहाँ?"

"यहाँ एक अखाड़ा देखना बाक़ी है। फिर क़रीब दो मील दूर एक बाँध है। बाँध से मील-भर पर अनंगपुर गाँव है। अनंगपुर की सुरक्षा के लिए किसी ज़माने में बनी चहारदीवारी के अवशेष अब भी बाक़ी हैं। सो दोपहर और शाम तो लग ही जाएगी इन्हें देखते हुए।"

निर्णय लेने में इस महिला का जवाब नहीं! नौकर को गाड़ी से सामान की टोकरी उतारने को कहती है और खुद कमरे का निरीक्षण करने में जुट जाती है। तौलियों को सूँघकर देखती है। टॉयलेट के पास एक डिब्बे में पड़े अख़बार के टुकड़ों को देखकर नाक चढ़ाती है। फिर बाहर निकलकर शोफ़र को आदेश देती है, "गाड़ी वापस ले जाओ। और देखो, नौ बजे के क़रीब आ जाना।" मुझसे पूछने की ज़रूरत उसने नहीं समझी कि मैं नौ बजे तक रुकने के लिए राज़ी भी हूँ या नहीं।

नौकर टोकरी और उसका सूटकेस फ़र्श पर रख देता है। फिर वह और शोफ़र सलाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए उससे विदा लेकर चले जाते हैं।

आरामकुर्सी में धँसती हुई वह कलाई-घड़ी देखकर कहती है, "आ'यम डाइंग फ़ॉर ए ड्रिंक! बी ए डार्लिंग, ज़रा एक पैग जिन और टॉनिक का बना दो। खुद भी जो चाहो बना लो अपने लिए—स्कॉच, शैम्पेन, बीयर, जिन—सब-कुछ है, राष्ट्रपति महोदय की मेहरबानी से!"

मैं बटलर का भार वहन कर लेता हूँ। मेमसाहब के लिए जिन-टॉनिक का पैग तैयार करता हूँ। अपने वास्ते अभी शशोपंज में ही पड़ा हूँ कि क्या लूँ। महारानी जी के लिए अभी सिगरेट सुलगाना होगा और एक पैग और बनाना होगा।

अपने लिए ड्राइ मार्टिनी का एक जाम बनाता हूँ और पलँग की पाटी पर आ बैठता हूँ। मैं 'चियर्स' करने के लिए गिलास ऊँचा करता हूँ। वह इस पर ध्यान नहीं देती और पूछने लगती है, "सूरज कुंड के बारे में कुछ बताओगे?"

मैं उसे बताता हूँ कि कुंड तालाब को कहते हैं। सातवीं और आठवीं सदी में तोमर वंश के राजपूतों का दिल्ली पर राज था। उनके सरदार का नाम था सूरज पाल। उसी के नाम पर इस जगह का नाम सूरज कुंड पड़ा।

अपना ख़ाली गिलास मेरे आगे खिसकाते हुए वह कहती है, "बी ए हनी!" यानी एक पैग और। अपनी टाँगें आरामकुर्सी के दोनों हत्थों पर पसारते हुए वह पूछती है, "और यह गाँव? और बाँध? इनके बारे में भी बताओ न!"

इस अमर्यादित आसन में बैठी औरत को भला तोमर राजपूतों की कहानी कैसे सुनाऊँ? उसकी खुली टाँगों से ध्यान हटाने की कोशिश करता हूँ। उसे बताता हूँ कि बाँध एक अन्य तोमर राजा अनंगपाल ने बनवाया था। बाद में उसने अपनी राजधानी पश्चिम की ओर बदल ली और लाल पत्थर का एक क़िला बनवाया, जिसे बाद में 'लाल कोट' कहा जाने लगा। मैंने उससे कहा कि बाँध देखने दोपहर को चल सकते हैं।

उसका मन अब मेरे भाषण में रमता नहीं लग रहा। पलकें झपकते हुए कहती है, "बोलते जाओ!"

"नहीं, क्या फ़ायदा?" मैंने ज़रा बेरुख़ी से जवाब दिया, "आप तो आधी सोई हुई हैं।"

वह हँसती है और खाँसते हुए थूकती है। सिगरेट नीचे फेंककर पैरों से मसलती है और कहती है "अच्छा, माफ़ करो।" अपनी डेनिम की जीन्स को छूकर पुनः कहती है, "हाथ-मुँह धोकर ज़रा इसे बदल लूँ।" और अपने सूटकेस से स्कर्ट निकालकर वह बाथरूम में घुस गई। चौखट पर लगा पर्दा दरवाज़े के केवल मध्य भाग को ही ढँक पाता है। लेकिन उस पर किवाड़ भी तो है। फिर भी वह उसे बंद नहीं करती। अपनी डेनिम जीन्स खोलकर खूँटी पर टाँग देती है। उसके सिकुड़े हुए नितम्बों को सफ़ेद लेस की पैंटी ने ढक रखा है। वाश-बेसिन पर झुककर वह हाथ-मुँह धो रही है। मैं जानता हूँ कि मेरी रुचि और उत्सुकता जगाने के लिए ही यह सब किया जा रहा है। मेरी उत्सुकता जग भी रही है। अपना चेहरा तौलिए में दाबे वह मुड़ती है और झुककर स्कर्ट पहनने लगती है।

"चलो," वह कहती है, "जल्दी!"

हम बाहर निकल आते हैं। अब बाहर का माहौल अपेक्षाकृत शान्त नज़र आ रहा है। सँपेरे पेड़ों के नीचे डेरा डाले हुए हैं। पिकनिक मनानेवाले अपने ट्रांज़िस्टरों के इर्द-गिर्द बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। औरतें पूरियाँ तल रही हैं। लड़के चुस्त पतलूनों और लड़कियाँ चुस्त सलवार-कुर्तों में अखाड़े के आसपास घूम रही हैं।

हॉयटी टॉयटी एक झाड़ी में लगे कँटीले कैपेरिस के फूल को देखने लगती है। फिर मुग्ध भाव से पहाड़ी के पार ताकती है। एक ओर तालाब में उतरती बड़ी-बड़ी सीढ़ियोंवाला रोमन शैली में बना विस्तृत अखाड़ा है। एक आदमी पत्थर की पाटी पर बैठा अपने ऊपर पानी फेंक रहा है। उससे कुछ दूरी पर बत्तख़ों का एक जोड़ा पानी में तैर रहा है। अबाबीलें चक्राकार गति से पानी को छूने का खेल कर रही हैं। दूसरी ओर घने खजूर-वृक्षों और गुलमोहर के झुरमुटों से भरी घाटी है। किशोरसुलभ विस्मय से ठुड्डी के नीचे हाथ बाँधे वह कह उठती है, "सो दैट्स द फ़्लेम ऑफ़ फ़ॉरेस्ट? सचमुच, बेहत ख़ूबसूरत! सूर्य मंदिर कहाँ है?"

मैं अखाड़े के उस ओर वाली सीढ़ियों की तरफ़ इशारा करता हूँ। विशाल सीढ़ियों से उतरते हुए अब हम तालाब की ओर जा रहे हैं। फिर उन्हीं सीढ़ियों से होते हुए सूर्य मंदिर के खँडहर तक जाते हैं। आसपास का ग्रामीण इलाक़ा भी उसे दिखाता हूँ। बड़ी-बड़ी चट्टानों से गुलमोहर और अकेशिया के पेड़ मानो फूटे पड़ रहे हैं।

"चलें! बहुत हो गया। भूख लग रही है। और गर्मी भी। नहीं?" मैं कहता हूँ।

अपनी घड़ी देखते हुए वह कहती है, "ओके, मेरी घड़ी के मुताबिक़ एक जिन और टॉनिक अब और होना चाहिए।"

हम रेस्ट हाउस के लिए लौट पड़ते हैं। वहाँ पहुँचकर मैं उसके लिए जिन-टॉनिक का एक पैग और बनाता हूँ। तंदूरी मुर्ग़ की प्लेट और रशियन सलाद भी उसके सामने कर देता हूँ। अपने लिए ठंडी बीयर की एक बोतल लेता हूँ और कबाब के कुछ टुकड़े। अपना लंच भकोसकर वह मुझे रुखाई से कमरे से बाहर जाने को कहती है, "साढ़े चार बजे जगा देना। बाँध और चहारदीवारीवाला गाँव शाम को देख लेंगे।" दरवाज़ा भिड़ाते हुए उसने इतना भी जानने की कोशिश नहीं की कि मेरे आराम करने के लिए दूसरा कमरा या कोई आरामकुर्सी भी है या नहीं।

रसोई से एक कुर्सी तलाशकर बरामदे में डाल लेता हूँ और खम्भे के साथ पैर टिकाकर स्वयं को आराम की स्थिति में ले आता हूँ। बैठे-बैठे पेड़ों के नीचे पिकनिक मनाते लोगों को ताक रहा हूँ। मेरा सिर नींद से भारी होने लगा है। आँखें मूँद लेता हूँ। सँपेरों की बीनों के स्वर मुझे जगाते हैं। पिकनिक मनानेवाले अब अपना सामान समेटने में जुटे हुए हैं। सँपेरे अब भी उनसे कुछ-न-कुछ हथियाने की आख़िरी कोशिश करते नज़र आ रहे हैं। मुझे फिर झपकियाँ आ रही हैं। कार, स्कूटर और तमाम दूसरी गाड़ियाँ एक के बाद एक निकलती जा रही हैं। सँपेरों की बीनों के स्वर दूर कहीं तिरोहित होते लग रहे हैं। सिर्फ़ लावारिस कुत्ते ही कचरे के ढेरों में मुँह मारते हुए गुर्रा रहे हैं। मैं दिवास्वप्नों में खोया जा रहा हूँ। हॉयटी टॉयटी मुझे सम्मोहित करने की कोशिश कर रही है। मुझे आकृष्ट करना कोई कठिन काम भी नहीं है। भागमती के प्रति मेरी अन्तरात्मा में कोई जवाबदेही की भावना नहीं है। एक वेश्या ही तो है वह! उसके प्रति वफ़ादारी या किसी अपराध-बोध का सवाल ही नहीं उठता। अगर भागमती यहाँ आकर मुझे हॉयटी टॉयटी के साथ देख भी ले और पूछे कि 'क्या तुम्हें इस बुढ़िया से बेहतर कोई और नहीं मिली,' तो मेरे मन में सिर्फ़ यही आएगा कि काश, हॉयटी टॉयटी कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवान होती और इसके मुँह से जिन-टॉनिक और तम्बाकू की गंध न आ रही होती !

चार बजकर तीस मिनट हो चले हैं। हॉयटी टॉयटी का दरवाज़ा खोलता हूँ और भीतर जाकर फिर भिड़ा देता हूँ। वह मुँह तक चादर ओढ़े कफ़न में लिपटे मुर्दे-जैसी लग रही है। उसके कन्धे पकड़कर झकझोरता हूँ। वह चादर फेंककर उठ बैठती है, "क्या बजा है ?"

मैं उसे समय बताता हूँ।

जँभाई लेते हुए वह एक अँगड़ाई लेती है। उसकी बग़लों से पीले बाल झाँकते हैं। तकिए का सहारा लेकर बैठते हुए वह चादर को गले तक खींच लेती है।

"बी ए डार्लिंग ! ज़रा सिगरेट पकड़ाना !"

उसे सिगरेट थमाकर जला देता हूँ। धुएँ का एक गुबार वह अपनी नाक से छोड़ती है और बाथरूम के हैंडल से लटके अपने कपड़ों की ओर इशारा करते हुए कहती है, "मेरा ड्रेसिंग गाउन पकड़ाना तो !"

मैं उसे ड्रेसिंग गाउन पकड़ा देता हूँ। वह बिस्तर से कूदकर बाहर निकलती है। अलफ़ नंगी ! सिकुड़ी हुई उसकी छोटी-छोटी छातियाँ, झुर्रियों-भरा कटि-प्रदेश। तनिक निकला हुआ-सा पेट। मैं ड्रेसिंग गाउन उसके कंधों पर डाल देता हूँ और अपने हाथों से उसके वक्ष को ढकने लगता हूँ। वह पथराई-सी पूछती है, "क्या कर रहे हो ?"

"वेल, मैं...."

"वेल, यू वॉट ? अपने दिमाग़ में ऐसे बेहूदा फ़ितूर मत पैदा करो।" पलँग के पैताने पड़ी अपनी जीन्स उठाकर वह बाथरूम में चली जाती है। दरवाज़ा बंद करने की फ़िक्र उसे अब भी नहीं है। पर मुझे ही उधर देखने की कौन-सी फ़िक्र सता रही है !

वह लौट आती है और मेरे कन्धों पर हाथ रखते हुए कहती है, "देखो, गुस्सा मत होओ। मैं तो तुम्हें उकसाना चाहती थी।" और मुझे मनाती हुई वह मेरी नाक पर एक चुम्बन जड़ देती है।

उसने मेरी भावनाओं को ठेस पहुँचाई है, मैं भी उसे ठेस पहुँचाना चाहता हूँ। उसके मुँह की दुर्गन्ध भी तो मुझे उसकी उपेक्षा करने को उद्यत कर रही है। मैं अचानक ठठाकर हँस पड़ता हूँ। वह पूछती है, "क्या बात है ? कोई 'जोक' याद आ गया क्या ?"

"आप मुझे मेरे दिल्ली शहर की याद दिला रही हैं। हमारे यहाँ एक कहावत है कि 'खँडहर बता रहे हैं, इमारत बुलंद थी' !"

उसका चेहरा अचानक कुम्हला जाता है, "पर यह तो कोई कहनेवाली बात नहीं है !"

हम रेस्ट हाउस से अजनबियों की तरह बाहर आ रहे हैं। साथ-साथ चलते हुए भी चुप्पी की दीवार हमारे बीच बराबर बनी हुई है। गर्मी काफ़ी है। बलुआ पत्थरों की चट्टानें तेज़ धूप में तप-सी रही हैं। हाँफते हुए मोर पेड़ों की छाया में चोंचें खोले बैठे हैं। एक-दूसरे से बिना एक शब्द बोले हम लगभग मील-भर दूर आ चुके हैं।

पहाड़ी का आख़िरी छोर। सामने गेहूँ और सरसों के खेतों का विस्तार। हरे-पीले खेतों के सागर के बीच उठी गुलमोहर से लदी चट्टानें टापुओं जैसी दिख रही हैं। इन्हीं टापुओं के पीछे अनंगपुर गाँव है। ऐसा नज़ारा मनमुटाव की दशा में तो सराहा नहीं जा सकता। मैं हॉयटी टॉयटी का हाथ थाम लेता हूँ और पूछता हूँ, "कितना ख़ूबसूरत दृश्य है न !" वह कहती है, "हाँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलो कहीं चलकर बैठें।"

मैं उसका हाथ थामे आगे बढ़ता हूँ। हम अनंगपाल के बाँध की ओर उतरते हैं और खेतों की तरफ़ पीठ करके बैठ जाते हैं। सामने दिख रही है खजूर-वृक्षों से भरी घाटी। हमसे पचास फुट नीचे एक तालाब-जैसा है। स्वच्छ, पारदर्शी पानी ऐसे चमक रहा है जैसे धूप में चमकते मछलियों के पेट। खजूर के किसी पेड़ से हरे और सुनहरे रंग का एक कौड़िल्ला उड़ता हुआ आता है और किसी हैलीकॉप्टर की तरह तालाब पर मँडराने लगता है। फिर वह अचानक कंकड़ की तरह पानी में छपकता है और पलक झपकते ही एक छटपटाती मछली को चोंच में दबाए उड़ जाता है। तालाब पुनः शांत हो जाता है। मछलियों के झुंड स्लेटी रंग के बिंदुओं सरीखे तैरते नज़र आ रहे हैं। बीच-बीच में वे फुलझड़ियों की तरह हवा में उछलती हैं और फिर पानी में कूदकर तालाब के किनारे-किनारे तैरने लगती हैं। एक साँप बल खाता हुआ पानी की सतह पर फन उठाता है और फिर तुरंत पानी में डूबी चट्टानों की परछाइयों में गुम हो जाता है। हॉयटी टॉयटी एक सिगरेट और सुलगाती है और टुर्रे को तालाब में फेंक देती है। सिगरेट का टुर्रा मछली के चारे की तरह डूबता-उतराता नीचे जा बैठता है।

हमारा बाक़ी समय अनंगपुर के खेतों में घूमते हुए बीतता है। हम ऊँटों द्वारा चलाई जा रही रहटें देखते हैं। गूजर स्त्रियाँ दीवारों पर गोबर थाप रही हैं। अनंगपुर के चक्कर लगाते हुए हम क़िले की चहारदीवारी के अवशेषों को देखते हैं।

पहाड़ी पर सूरज ढलने लगा है और हम बाँध की ओर वापस मुड़ रहे हैं। वापसी में हम नरकंडों से भरी दलदलों को लाँघते और खजूर-वृक्षों से भरी घाटी से होते हुए लौट रहे हैं।

सूरज डूबने तक हम रेस्ट हाउस में वापस आ गए हैं।

रेस्ट हाउस में एक भी बंदा नज़र नहीं आ रहा। चौकीदार हमारे लिए बाहर मेज़ और कुर्सियाँ लगाकर अपने क्वार्टर में चला जाता है। मैं राष्ट्रपति की अनुकम्पा से मिली स्कॉच बाहर निकाल लाता हूँ। हम अपने पैर मेज़ पर पसारे स्कॉच की चुस्कियाँ ले रहे हैं। इतनी लम्बी सैर के बाद आँतों को यह अमृत-सरीखी लग रही है। मैं अपना हाथ उसकी तरफ़ बढ़ाता हूँ। वह अपना हाथ मेरे हाथ में दे देती है। हम आसमान की रोशनी को धुँधलाते हुए देख रहे हैं। टुइयाँ तोतों के झुंड-के-झुंड चीख़ते हुए-से तेज़ी से उड़कर हमारे ऊपर से गुज़र गए। इस वक़्त मोरों को तो देखते ही बनता है। खजूर के झुरमुटों से बाहर आता मोरों का कामातुर स्वर हमें सुनाई दे रहा है। रेस्ट हाउस की छत पर बैठे दो मोर उनको जवाबी तान दे रहे हैं। साँझ का झुटपुटा भी अब जाने-जाने को है। हॉयटी टॉयटी खड़ी होकर अँगड़ाई लेने लगती है। मैं भी साथ खड़ा हो जाता हूँ। वह अपना सिर मेरी छाती पर टिका देती है। कहती है, "शुक्रिया, आज का दिन बहुत अच्छा बीता।" वह मेरे होंठों को चूमती है। मैं उसे बाँहों में बाँधकर इतना ऊँचा उठा लेता हूँ कि उसके पैर ज़मीन छोड़ देते हैं। उसके झुर्रियाये चेहरे को मैं चुम्बनों से भर देता हूँ। वह विनम्रता से पूछती है, "तुम मुझे प्यार करोगे ?"

"हाँ, चलो अंदर चलें।"

हम बरामदे तक ही पहुँचते हैं कि राष्ट्रपति की रोल्स रॉयस की हैडलाइटें हमारे ऊपर पड़ती हैं। "धत्तेरे की !"

निराशा के साथ-साथ एक तरह का सुकून-सा भी मिला कि चलो, इस गंधाती बुढ़िया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अपना बिन्दु बर्बाद नहीं करना पड़ा। भागमती के लिए बचा रहेगा; अपने ग्राहकों द्वारा शोषित होने के बावजूद मेरे साथ वह हर बार नई-नवेली दुल्हिन की तरह पेश आती है और उसका चेहरा बसंत में खिले इलायची-पौधे की तरह महक उठता है।

हॉयटी टॉयटी पुनः एक मर्यादित भद्र महिला में परिवर्तित हो जाती है—ठंडी और तटस्थ। वह सीट के एक कोने में बैठ जाती है। जब कार मेरे दरवाज़े के आगे आकर रुकी तो वह रुखाई से विदा देती हुई कहती है, "हर चीज़ के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया!"

"बड़ी खुशी हुई आपके साथ ये कुछ क्षण बिताकर।" मैं उसे भीतर आने का निमंत्रण नहीं देता। सर्वव्यापी बुधसिंह अपने डंडे के साथ यहीं कहीं घूम रहा होगा।

जैसे ही मैं रोल्स रॉयस से नीचे उतरता हूँ, वह सावधान की मुद्रा में आ खड़ा होता है और चिल्लाकर कहता है, "परेड, ठक, ठक, ठक!"

हॉयटी टॉयटी मुझे हाथ हिलाने को सिर बाहर निकालती है तो वह पंजाबी में बोल उठता है, "रब्ब साड्डी रानी नू राजी रक्खे!"

मैं भी उसे हाथ हिलाकर विदा देता हूँ। बुधसिंह के सैल्यूट का जवाब देते हुए उसका हाल पूछता हूँ।

"सब ठीक है साब! आपका हिंजड़ा आपका इंतज़ार कर रहा है। मैंने उसे भीतर बैठ जाने दिया, क्योंकि कल आप इसी के वास्ते मुझसे इतना गुस्सा हो गए थे। माफ़ करना, मालिक! मैं तो फिर भी कहूँगा कि औरत रख लो, लौंडा कर लो, पर हिंजड़े के साथ···।"

"तौबा-तौबा! क्यों?" मैं उसका वाक्य पूरा कर देता हूँ और जल्दी से अपने घर में घुस जाता हूँ।

3

भागमती

वह पैर पर पैर चढ़ाए आरामकुर्सी पर बैठी किसी किताब के पन्ने उलट रही है। उसके बाएँ हांथ की मुट्ठी-बँधी अँगुलियों से जला हुआ सिगरेट झाँक रहा है। ज़ोर-ज़ोर से सुट्टे लगाती वह राख को वहीं कालीन पर झाड़ती जा रही है। तेल से लथपथ, फूल काढ़कर बनाए बालों में तितलियों के आकार के क्लिप लगे हैं। उसने नक़ली रेशम की गुलाबी रंग की चमकीली-सी साड़ी पहन रखी है, ब्लाउज़ भी उसी तरह के कपड़े का है, मगर गहरे नीले रंग का। रिबन की बो वाली सफ़ेद चप्पलें उसकी कुर्सी के आगे पड़ी हैं।

भागमती ही शायद दिल्ली की सबसे भद्दे कपड़े पहननेवाली वेश्या होगी।

टेबल-लैम्प की रोशनी में उसके चेहरे पर थुपी पाउडर और रूज की पर्त साफ़ झलक रही है। इससे उसके चेहरे का साँवलापन तनिक भी नहीं छुप रहा है, न ही उसके चेचक के दाग़ कुछ कम गहरे दिख रहे हैं। आँखों का काजल फैलकर गालों तक बह आया है। होंठ गहरे लाल रंग में रँगे हैं और दाँत पान-तम्बाकू चबाने से बदरंग हुए पड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागमती ही शायद दिल्ली की सबसे कुरूप वेश्या होगी।

भागमती दूसरी औरतों की तरह औरत नहीं है। अपनी बीती ज़िंदगी के कुछ क़िस्से तो उसने मुझे ख़ुद बताए और कुछ मैंने उसके सम्पर्क में आने के ज़रिए ख़ुद जान लिये।

भागमती का जन्म जामिया मस्जिद के पासवाले विक्टोरिया लेडी अस्पताल में हुआ था। जब उसके पिता ने डॉक्टर से पूछा, 'साहब, लड़का है कि लड़की?' तो डॉक्टर ने जवाब दिया, 'कह नहीं सकता।' उसके माता-पिता के पहले ही तीन लड़के थे। इसलिए उन्होंने इस चौथी संतान का नाम लड़कियों-जैसा रखा—भागमती। जब हिंजड़ों की टोली उनके घर नाचने-गाने आई तो वे कहने लगे, 'अपना बच्चा हमें दिखाओ! हम देखना चाहते हैं कि लड़का है या लड़की, या फिर हमारे जैसा ही कोई····।' उसके पिता ने उन्हें गालियाँ देकर, बिना कुछ दिए-दिलाए भगा दिया। हिंजड़ों ने उसके माँ-बाप की रातों की नींद और दिन का चैन हराम कर दिया। जब भी वे उस गली में बच्चा होने या शादी-ब्याह के मौक़े पर आते, उनके घर के आगे जमकर बैठ जाते और बच्चा देखने की ज़िद करने लगते, 'अरे अपना आख़िरी बच्चा काहे को नहीं दिखाते हमें? अगर हमारे ही जैसा है, तो हमें अपने साथ ले जाने दो!'

भागमती की माँ के दो बच्चे उसके बाद भी हुए और दोनों लड़कियाँ। दोनों ही बार भागमती का पिता उसको भी अपने साथ अस्पताल ले गया और डॉक्टर से पूछता रहा कि उसका मुआयना करके बताए कि वह लड़का है या लड़की। डॉक्टर हर बार उसके गुप्तांगों की जाँच करके यही कहता रहा कि मुझे समझ नहीं आ रहा; दोनों का ही थोड़ा-थोड़ा अंश इसमें है। उस वक़्त भागमती चार साल की रही होगी। इस बार जब हिंजड़ों की टोली उनके घर पहुँची तो भागमती के पिता ने उन्हें इक्कीस रुपए पकड़ाते हुए कहा, 'अब मेरे घर तीन लड़के और दो लड़कियाँ हैं। इसे अब तुम लोग ले जा सकते हो। यह तुम्हारी ही बिरादरी की है।'

हिंजड़ों की टोली ने भागमती को अपना लिया। उन्होंने उसे गाने गाना सिखाया, अपनी तरह तालियाँ बजाना सिखाया और एक ख़ास अंदाज़ में हाथ हिला-हिलाकर नाचना सिखाया। वह जब तेरह साल की हुई तो उसकी आवाज़ बदलनी शुरू हो गई। होंठों के ऊपर मसें और ठुड्डी के नीचे रोएँ उगने लगे। उसके वक्ष और नितम्ब अपनी उम्र के लड़कों से तो बड़े थे, पर लड़कियों-जैसे भी नहीं थे। लेकिन उसको मासिक धर्म होना शुरू हो गया था। उसका भगांकुर भी बढ़ रहा था, और बाक़ी गुप्तांग भी स्त्रियों की तरह ही विकसित हो रहा था। इस बार वह स्वयं डॉक्टर के पास गई। उसने कहा, 'तुम नारी-सुलभ हर काम कर सकती हो, पर तुम्हें बच्चा नहीं हो सकता।'

हिंजड़ों के भी उतने ही रूप होते हैं, जितने मर्दों या औरतों के। कुछ तो पूरी तरह मर्दाने होते हैं, कुछ पूरी तरह ज़नाने; कुछ में मर्दाना-ज़नाना लक्षण विभिन्न अनुपातों में होते हैं, यद्यपि यह कहना मुश्किल है कि कौन-से लक्षण उनमें अधिक हैं। आप पूछेंगे कि फिर वे ज़नाना कपड़े ही क्यों पहनते हैं? कारण शायद यह है कि पुरुष-प्रधान इस दुनिया में पुंसत्व के स्वीकृत स्तरों में कोई व्यतिक्रम पुरुषवर्ग नहीं सह पाता। औरतों की बात और है। वे अपेक्षाकृत अधिक उदार होती हैं।

भागमती ज़नाना हिंजड़ा है। पंद्रह साल की होते ही हिंजड़ों की टोली के सरदार ने उसे अपनी पत्नी बना लिया। उसकी पहले से ही दो हिंजड़ा पत्नियाँ थीं। पर उनमें यह सब चलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भागमती को अपनी सौत समझने के बजाय उन हिंजड़ा पत्नियों ने उसकी शादी का जोड़ा तैयार किया और उसे सुहागरात के लिए सजाया। उन्होंने इसके बदन और चेहरे से अनचाहे रोओं को साफ़ किया और गुलाबजल से स्नान करवाया। सजा-धजाकर वे उसे पति के कमरे तक छोड़कर आईं और दरवाज़े की दरारों में आँखें लगाकर खड़ी हो गईं। बाद में वे भी भागमती के साथ हमबिस्तर होने लगीं।

सत्रह साल की उम्र में भागमती को चेचक निकल आई। उसने बताया, 'हिंजड़ा बिरादरी ने तो मुझे मरा ही समझ लिया था। अस्पताल में भर्ती करा आए, जहाँ लोग मक्खियों की तरह मर रहे थे। शीतला माई ने मुझे बख़्श तो दिया, पर चेहरे पर अपने ये निशान हमेशा के लिए छोड़ गई।'

मर्द अगर एक बार हिंजड़ों के पास चले जाएँ, कहने में बेशक विचित्र लगे, पर फिर वे उन्हें औरतों से अधिक पसन्द करने लगते हैं। भागमती को चाहनेवालों की संख्या उसकी टोली के शेष सभी हिंजड़ों से ज़्यादा थी। वह औरत लगना चाहे तो औरत लग सकती थी, लौंडा लगना चाहे तो लौंडा। उसे अपने इस अनुभवों से यह भी रहस्योद्घाटन हुआ कि कुछ मर्द अपने साथ औरतों-जैसा सलूक किए जाना पसन्द करते हैं। अपने सीमित तरीक़ों के साथ ही उसने मर्दों को अधिक-से-अधिक आनन्द देना सीख लिया था। सेक्स का ऐसा कोई रूप नहीं था, जिसको भोगना भागमती ने नहीं जाना था या जिसे वह वर्जित समझती हो। सर्वाधिक कुरूप होने के बावजूद वह बूढ़े-जवान, मर्द-नामर्द, परपीड़क-स्वपीड़क, लौंडेबाज़—सभी की पसन्द थी।

भागमती के लिए बिस्तर की वही अहमियत थी जो खुली कुश्ती लड़नेवाले पहलवान के लिए अखाड़े की होती है। भागमती ज़नाना-मर्दाना हर तरह के सेक्स की आदी है।

भागमती पर यद्यपि किसी तरह की बंदिशें नहीं हैं, फिर भी वह लालकुआँ में अपने घरवाले और अपनी सौतों के साथ ही रहती है। जो भी कमाती है, टोली की सामुदायिक निधि में डाल देती है। बदले में सिर पर छत है और भूख लगने पर खाना-पीना मिल जाता है। कभी पकड़ी जाती है तो वे ज़मानत पर छुड़ा लाते हैं। अदालत में सज़ा भी हो जाय, तो जुर्माना भर देते हैं।

आप पूछेंगे कि भागमती मेरे जीवन में कैसे आई, तो यह एक लम्बी कहानी है जिसे मैं आपको बाद में बताऊँगा। मेरे लिए वह इतनी अहम कैसे बन गई, इसके बारे में भी मैं कुछ ठीक से नहीं बता सकूँगा। पर, जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि मेरी ज़िंदगी के दो ही उत्कट प्रेम हैं—एक दिल्ली और दूसरा भागमती। इन दोनों में दो बातें एकदम सामान्य हैं। एक तो यह कि इनका साथ मौज-मस्ती से भरा है और दूसरा यह कि ये दोनों ही बाँझ हैं।

सोफ़े पर धम्म से बैठते हुए मैं उससे पूछता हूँ, "कहाँ-कहाँ मुँह काला करती रही?"

"अजी," धृष्टता से ठुड्डी में अँगुली धँसाते हुए वह बोली, "हाँ, मैं तो मुँह काला करती ही रही होऊँगी। पर तुम बड़ी-सी कार में उस अंग्रेज़ बुढ़िया के साथ कहाँ गए थे? बताओ तो? यह कहाँ का न्याय है भला?"

"तो तुम बुधसिंह के साथ गपियाती रही हो?"

"वह पागल!" हाथ लहराकर वह उसको ख़ारिज करती हुई बोली, "उसने मेरे को झूठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोला। बोला कि तुम अभी पंद्रह दिन तक नहीं लौटोगे। पर मेरे दिल ने कहा कि नहीं, हो न हो तुम यहीं हो।" अधजला सिगरेट वह मेज़ पर ही रगड़कर बुझा देती है और अपने कान के पीछे खोंस लेती है। भद्दा-सा इशारा करके वह मुझसे पूछती है, "कहो, कैसा रहा बुढ़िया के साथ ?"

मैंने यह नहीं कहा कि वह दिल्ली की सबसे उजड्ड वेश्या है।

"ऐसी गँवारू बातें करना क्या ज़रूरी है ?"

"उफ्फो !" वह हैरानी दिखाती-सी कहने लगी, "आज हमको गँवारू कहते हो, कल को भगवान जाने क्या कहोगे !"

वह आकर फ़र्श पर बैठ जाती है और मेरे जूते-मोज़े उतारकर पैरों को मलने लगती है। एड़ियों को मलते-मलते वह टाँगों और जाँघों की मालिश करने लगती है। मेरे फ़्लाई बटनों को खोलकर बीच में चूमती है और मेरे ऊपर आ जाती है। लेटे-लेटे आनन्द लेने के सिवाय अब मुझे कुछ नहीं करना पड़ता। मैंने कहा न कि भागमती को पता है कि कब किसको क्या चाहिए।

भागमती मेरे जीवन में कैसे आई ? यह अतीत की बात है।

उन दिनों मैं एक उद्योगपति की आत्मकथा लिखने में व्यस्त था। उसके पत्र-व्यवहार की छाँटा-छाँटी करने के लिए मुझे 'स्टाफ़' मुहैया कराया गया था और अपेक्षाकृत एक नए मुहल्ले—पटेलनगर में हमें कुछ कमरे मिले हुए थे।

यह तो मुझे बाद में पता चला कि दफ़्तर जाने का एक शॉर्टकट रास्ता है जो 'रिज' से होकर जाता है। यह रास्ता बेहद सुरम्य और इस सड़क के कई बिंदुओं से नई और पुरानी दिल्ली—दोनों की झलक मिल जाती है। सड़क के दोनों तरफ़ काबुली कीकर, वसाका और जवास की झाड़ियों के जंगल हैं। लाल बलुआ पत्थरों की बड़ी-बड़ी चट्टानों से निकले गुलमोहर और अम्लतास के अनगिनत चटकीले वृक्ष।

रिज रोड का नाम काफ़ी बदनाम है। कभी-कभी इधर से गुज़रती कारों को रोक भी लिया जाता है। इस सड़क पर लूट-पाट और डकैती के क़िस्से भी सुनने में आते हैं। बाक़ी कसर अख़बारोंवाले पूरी कर देते हैं। पैदल और साइकिलसवार तो इधर से गुज़रने से बचते ही हैं। कारें बिना रुके तेज़ी से पार हो जाती हैं। ज़्यादातर तो यह सड़क सुनसान ही दिखती है।

इसी सड़क पर मैं पहले-पहल भागमती से मिला। बड़े कौतूहल की चीज़ है पहली मुलाक़ात। इन्सान के स्मृतिपटल पर इतनी सफ़ाई से अंकित हो जाती है कि कभी भी याद कर लो, जबकि बाद की मुलाक़ातों को वह धीरे-धीरे भूल-सा जाता है।

मुझे भागमती से पहली मुलाक़ात की एक-एक बात स्पष्टतः याद है।

अप्रैल महीने का कोई दिन था। काफ़ी गर्मी थी। भारी पर्दों से ढके अपने वातानुकूलित दफ़्तर में काम करते हुए कुछेक घंटे बीते थे कि अचानक बिजली गुल हो गई। उन दिनों भी दिल्ली में बिजली जाना आम बात थी। कुछ देर बत्ती का इंतज़ार करने के बाद मैंने सोचा—'बहुत हो गया, अब घर चलें।' सो दफ़्तर से बाहर निकल आया।

दोपहर का वक़्त था। धूप भी काफ़ी थी। साथ ही गर्म हवाएँ चल रही थीं। मैं रिज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोड पार करके घर लौट रहा था। दोनों ओर कीकर के लहरिएदार वृक्षों से झाँकते घरों की क़तार थीं, लेकिन कहीं भी जीवन का कोई चिह्न नज़र नहीं आ रहा था। ऐसा सन्नाटा कि आसमान में एक चिड़िया तक उड़ती दिखाई नहीं दे रही थी। कुछ दूर आगे चला तो कोई सौ गज़ दूर दो साइकिल-सवार हवा के बहाव से लड़ते किसी तरह आगे बढ़ रहे थे। उनसे कुछ ही आगे तारकोल की सड़क के बीचोबीच कोई मानव-आकृति लेटी हुई थी। मैंने देखा कि साइकिलवाले एक नज़र उधर देखते हैं और फिर कुछ हिचकिचाते-से आगे बढ़ जाते हैं। मैं वहाँ पहुँचकर गाड़ी एक किनारे लगा देता हूँ। साइकिल-सवार भी मुझे देखकर लौट आते हैं।

अरें, यह तो कोई औरत है ! हाथ-पैर ऐसे पसरे हुए, मानो क्रूस पर चढ़ाई गई हो। आँखें अधखुली-सी। मुँह से थोड़ा-सा झाग और ख़ून आया हुआ। साड़ी भी एक जगह से थोड़ी गीली थी। मैंने उसकी छाती की ओर देखा कि साँस भी चल रही है या नहीं। साड़ी के उड़ते रहने से वह भी ठीक तरह से पता नहीं चल रहा था। मैंने साइकिल-सवारों से कहा कि देखो, ज़िंदा भी है कि नहीं !

उन्होंने औरत के चेहरे को ग़ौर से देखा। उनसे से एक ने ज़रा उचककर कहा, 'मिरगी··· लगता है मिरगी का दौरा पड़ा है इसे।' वह एक पेड़ से टहनी का एक टुकड़ा तोड़कर उसके मुँह में देने लगा, 'इससे जीभ नहीं कटेगी।' फिर अपना एक जूता उतारकर उसने मूर्छित औरत के मुँह पर धर दिया, 'मिरगी का यह सबसे बढ़िया इलाज है···पुराने चमड़े की गंध।'

मैंने ध्यान दिया कि उसकी छातियाँ उठ-गिर रही हैं। बिल्कुल मामूली-सा उभार था, नक़ली रेशम की चोली में कसा। पैर एकदम काले। पैरों की अँगुलियों पर लाल नेल-पॉलिश लगा हुआ था। हथेलियों का भीतरी भाग मेंहदी से रचा था। क़द-काठी छोटी थी, थोड़ी गदराई-सी। उम्र होगी कोई बीसेक साल। हिन्दुस्तानी मानक से उसे क़तई आकर्षक नहीं कहा जा सकता था। उसके चेहरे का जो हिस्सा मेरी ओर था, चेचक के दाग़ों से भरा था।

'यहाँ भला यह क्या कर रही थी ?'

'गुरु ही जाने !' साइकिलवालों में से एक बोला, 'आजकल बड़े बुरे दिन चल रहे हैं,' औरत के चेहरे से अपना जूता उठाकर पहनते हुए वह बोला, 'अभी ठीक हो जाएगी।' और फिर मुझे कुछ बोलने का मौक़ा दिए बग़ैर ही वह साइकिल पर बैठा और चल दिया। दूसरा भी चल दिया।

औरत ने अब कराहना शुरू किया। उसने अपना हाथ उठाकर अँगुली से एक छल्ला-सा बनाया।

'तुम ठीक तो हो ?' मैंने पूछा।

उसने सिर हिलाकर हामी भरी। मैंने उसकी ही साड़ी से उसके मुँह का झाग और खून पोंछा और उसे उसके पैरों पर खड़ा किया। उसके जिस्म से पसीने और पेशाब की बू आ रही थी।

'चक्कर !' उसने फिर अँगुली से छल्ला बनाते हुए बताया। आवाज़ भारी और मर्दानी लग रही थी। बोली, 'मेहरबानी करके मुझे बस-अड्डे तक छोड़ दो, साहब !'

मैं ज़रा हिचकिचाया। कहीं फँसाने का इरादा तो नहीं ? मैंने सुन रखा था कि लोगों को इस तरीक़े से भी ब्लैकमेल किया जाता है। लेकिन मेरे सामने और कोई चारा नहीं था और मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन में कोई खोट भी नहीं था। मैंने सहारा देकर उसे अपनी गाड़ी की पिछली सीट पर बैठाया तो वह जैसे सीट पर गिर पड़ी और उसने आँखें मूँद लीं। मेरी कार साइकिल-सवारों को पार कर आगे बढ़ी तो मैंने गाड़ी के शीशे में से पीछे देखा कि उनमें से एक अपनी पॉकिट-बुक निकालकर कुछ लिखने लगा है। शायद मेरी गाड़ी का नम्बर नोट कर रहा होगा। मैं घबरा गया। यह मैंने अपने-आपको किस झमेले में फँसा लिया?

मैंने उससे पूछा, 'कहाँ उतरोगी?'

कोई जवाब नहीं। मैंने पीछे मुड़कर देखा—वह तो गहरी नींद में सोई पड़ी थी, या शायद मिरगी का दौरा दोबारा पड़ गया होगा।

अब क्या करूँ? अस्पताल ले चलूँ इसे? पर वे तरह-तरह के सवाल करेंगे। हो सकता है पहले पुलिस में रिपोर्ट दर्ज क़राने को कहें। तो क्या पुलिस स्टेशन ले चलूँ? पर दिल्ली-पुलिस? तौबा-तौबा! उसके दर्शन तो हज़ार साल में एक बार भी नहीं।

लोहिया अस्पताल को पार कर, संसद मार्ग होता हुआ मैं कनॉट सर्कस पहुँचता हूँ। तभी मुझे ख़याल आया कि अरे, मैंने तो बड़ी बेवकूफ़ी की! किसी भी ट्रैफ़िक लाइट पर लोगों ने मेरी गाड़ी की पिछली सीट पर बेहोश पड़ी इस औरत को अगर देख लिया होता तो वहाँ तो काफ़ी झमेला खड़ा हो जाता! मैं पार्लियामेंट की ओर वापस मुड़ा। फिर मैंने गाड़ी पालम हवाई अड्डे को जाती चौड़ी सड़क पर दौड़ा दी। एक सुनसान जगह पर आकर मैंने गाड़ी रोकी और स्थिति का जायज़ा लिया। उसके माथे को छूकर देखा। बुख़ार तो नहीं था। उसको कन्धों से पकड़कर झकझोरा। आँखें खोलकर वह बुदबुदाई, 'मुझे ऐसे ही रहने दो। बहुत थकान लग रही है।' और वह फिर नींद में डूब गई।

घर लौटने के पहले मैं क़रीब घंटा-भर ऐसे ही बदहवास-सा इधर से उधर गाड़ी दौड़ाता रहा और फिर घर आकर हमेशा की तरह अपने फ़्लैट की खिड़की के सामने गाड़ी लगा दी। गुरु की कृपा ही थी कि मेरा कोई पड़ोसी या नौकर बाहर नहीं दिखा। पिछला दरवाज़ा खोलकर मैंने औरत को बेखटके भीतर ले लिया। वह भी बिना प्रतिवाद के भीतर चली आई।

'जब तक ठीक महसूस न करने लगो, यहीं आराम करो।' मैंने भीतर पहुँचते ही कहा।

अचानक वह बोली, 'आपकी यह दासी काफ़ी आराम कर चुकी। हुजूर, अब ज़रा मेहरबानी करके यह बताइए कि हाथ-मुँह धोने की जगह कहाँ है?'

उसकी अलंकृत शब्दावली सुनकर मैं दंग रह गया। बाथरूम में ले जाकर उसे बताने लगा कि कैसे ठंडे और गरम पानी को मिलाया जाता है। उसे मैंने एक साफ़ तौलिया पकड़ाया और पहनने को अपनी एक टी-शर्ट तथा पतलून थमाते हुए कहा, 'मेरे पास ज़नाना कपड़े नहीं हैं। पर जब तकतुम्हारी साड़ी सूखती है, इन्हें पहने रहो।"

वह देर तक नहाती और कपड़े धोती बाथरूम में घुसी रही। फिर झूमती हुई बैठक में चली आई। मेरी टी-शर्ट उसके कन्धों से झूल रही थी और पतलून को उसने कमर पर हाथ से थाम रखा था। मेरे कपड़े उसे बहुत ढीले पड़ रहे थे।

मैं उसे देखकर मुस्कराया। उसके चेचक से भरे चेहरे पर लाज-सी फैल गई। 'मेरे को बहुत बड़े पड़ते हैं।' पतलून की ओर देखती हुई वह बोली। मैंने उसके लिए कोकाकोला की एक बोतल खोली और खाने की मेज़ पर पड़ी आमों की ट्रे की ओर इशारा करते हुए कहा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें से जितने चाहे ले ले, और खा ले।

'बहुत भूख लगी है,' एक आम उठते हुए वह बोली, 'कल से कुछ भी नहीं खाया।'

'दोपहर के वक्त वहाँ रिज रोड पर क्या कर रही थी?'

'तिहाड़ से घर लौट रही थी।'

"तिहाड़?"

"हाँ, तिहाड़ जेल नहीं जानते? कल शाम ही तो छूटी वहाँ से। पास में पाई भी नहीं थी। रात मजदूर की झोंपड़ी के बाहर गुज़ारी। मुझे भीतर घुसने भी नहीं दिया मुओं ने। तो घर लौटकर आ रही थी उधर से। तिहाड़ जेल बहुत दूर है न शहर से।"

"तुम्हें तिहाड़ क्यों भेजा गया था?"

उसने मेरी ओर टकटकी लगाकर किसी नर्तकी जैसा सिर हिलाकर कहा, 'आवारागर्दी! और क्या? वेश्या जो ठहरी!'

'क्या नाम है तुम्हारा?'

'क्या करोगे नाम जानकर? इस दासी को भागमती कहते हैं।'

मुझे एक धुँधला-सा संदेह हो रहा था कि इसकी मर्दानी आवाज़ और लगभग सपाट छाती के पीछे ज़रूर कोई राज़ है जो इसे आम औरतों से जुदा करता था। मैंने उससे पूछा, 'तुम्हारा घर कहाँ है?'

'जहाँ शाम ले जाए, वहीं चद्दर बिछा लेती हूँ और उसी को अपना घर समझ लेती हूँ। मेरी छत पर तो स्वर्ग के सितारे जड़े रहते हैं,' वेश्याओं वाली चुलबुलाहट के साथ जह आगे बोली, 'हुजूर, आपकी दासी लालकुआँ पर रहती है।'

मेरा शक और गहराया। लालकुआँ तो हिंजड़ों की बस्ती है। मैंने कभी किसी हिंजड़े को क़रीब से नहीं जाना था। चार-पाँच की टोलियों में बेसुरे स्वर में गाते-नाचते और तालियाँ बजा-बजाकर भद्दे इशारे करते ही उन्हें देखा था। उनके सेक्स-जीवन और गुप्तांगों के आकार-प्रकार की विचित्र कहानियाँ भी मैंने सुन रखी थीं। उनके बारे में और अधिक जानने की उत्सुकता के बावजूद मैं उसको अपने पीछे नहीं लगाना चाहता था। अतः मैंने उससे पूछा कि क्या उसे घर छोड़ आऊँ?

'हुजूर तो मुझसे पीछा छुड़ाना चाहते हैं।'

'हरगिज़ नहीं। पर तुम्हारे घरवाले तुम्हारी फ़िक्र कर रहे होंगे?'

'अजी नहीं। हमारे वास्ते किसी को कोई फ़िक्र नहीं हो रही होगी,' वह बोली, 'मैं जब जी चाहे कहीं भी आ-जा सकती हूँ। मेरा घरवाला बस यँही पूछता है कि कित्ता कमाकर लाई?'

'तुम्हारा घरवाला भी है?' मैंने हैरान होते हुए पूछा।

'क्यों जी? क्या पाप किया है मैंने कि मेरा घरवाला नहीं होगा? मैं जब बुढ़ा जाऊँगी और लोगों के काम की नहीं रहूँगी तो वही तो देखभाल करेगा मेरी।'

शायद उसे पता चल गया था कि मैं उन लोगों में से हूँ जो सेक्स के बारे में सुनने-जानने को उत्सुक रहते हैं। बोली, 'हजूर क्या कभी हमारे ग़रीबख़ाने में तशरीफ़ नहीं ले गए?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं।'

'इंशाअल्ला ! तो अपनी इस लौंडी को मौक़ा दीजिए कि आपके क़दम उस दिशा में मोड़ने की शुरुआत करें।'

अभी तक मेरा यह अनुभव नहीं था कि कोई औरत मेरे सामने इस तरह का प्रस्ताव रखे, खासकर एक हिंजड़ी।

'तुम्हारे कपड़े सूख गए होंगे,' मैं झट से बोला, 'चलो चलें !'

वह कमरे के भीतर आकर चटाई पर बैठ गई और अपना सिर मेरे पैरों पर रखकर बोली, 'राम कसम, हजूर, मुझे ऐसे न निकालो ! मेरी तबीयत भी ठीक नहीं है कि धंधे से लग जाऊँ। आज की रात यहीं गुज़ार लेने दो। अल्ला कसम, और दिक नहीं करूँगी तुमको। तुम्हें तुम्हारे गुरु की सौगंध…' (हिन्दू, मुस्लिम और सिख भगवानों के नाम तो वह बात-बात पर ऐसे लेती है कि बस…) और आँखों में आँसू भरकर मेरे निर्णय की प्रतीक्षा करती वह मुझे ताकने लगी।

ऐसा नहीं कि औरतों ने मेरे घर में रातें न बिताई हों, पर वे सब योरोपियन औरतें थीं या फिर अंग्रेज़ी सभ्यता में पली हिन्दुस्तानी मेमें। हिन्दुस्तानी बोलनेवाली निचले तबक़े की ऐसी हिंजड़ा वेश्याएँ तो क़तई नहीं, जिनके ग्राहकों में होंगे विकृत रुचियों वाले मज़दूर, घरेलू नौकर, फ़ौजी या सिपाही। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि इससे कहूँ तो क्या कहूँ ! देखने में भी तो किसी काम की नहीं थी।

'अच्छा,' मैंने बिना कोई उत्साह दिखाए कहा, 'लेकिन सुबह मेरे नौकर के आने से पहले ही यहाँ से चले जाना होगा। एकदम तड़के। अब जाओ अपने कपड़े पहन लो, सूख गए होंगे।'

उसने झुककर मेरे पाँवों को चूम लिया और मेरी टी-शर्ट से आँसू पोंछते हुए उठकर जाने को मुड़ी। अचानक उसकी पतलून खिसककर घुटनों तक आ गई। मज़दूर क़िस्म के ग्राहकों ने उसके शरीर की चाहे जो भी दुर्गत की हो, लेकिन उसका पृष्ठभाग किसी स्कूली खिलाड़ी-जैसा कसा हुआ था, और बीच में पड़ते दो गड्ढे। वह पीछे मुड़कर मुझे देखते हुए सकुचाती-सी मुस्कराई। फिर उसने झुककर पतलून कमर तक उठाई और गुसलख़ाने में घुस गई।

जब तक वह कपड़े बदल रही थी, मैंने रात की तैयारी कर ली। खाने की मेज़ पर दो मोमबत्तियाँ लगा दीं। अपने अनपढ़ ख़ानसामे से संवाद करने का मेरा यही तरीक़ा है। एक मोमबत्ती का मतलब—खाना बाहर खाऊँगा। दो का मतलब—सुबह बैड-टी लेकर आने की ज़रूरत नहीं।

हमें फ़्लैट से बाहर निकलते किसी ने नहीं देखा। गाड़ी में घुसते हुए वह बोली, 'गाड़ी की लम्बी सैर करा दो तो मज़ा ही आ जाय ! तुम्हारी इस लौंडी की क़िस्मत में कहाँ लिखा होगा कारों में बैठकर यों घूमना रोज़-रोज़ ?'

'कहाँ जाना चाहती हो ?'

'हजूर अपनी दासी को जहाँ भी ले जाना चाहें।'

यह भागमती तो कोई दूसरी ही लग रही थी—तनावमुक्त और आश्वस्त। गाड़ी चालू हुई तो वह डैशबोर्ड पर अँगुलियों से थपकियाँ देते हुए तबला बजा-बजाकर गुनगुनाने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक होटल को पार कर हम डिप्लोमैटिक एन्क्लेव में दाख़िल हुए। जिन-जिन दूतावासों के सामने से गुज़रते जाते, भागमती उनके नाम लेती जाती—'अमरीकी एम्बैसी, यह रूसी, यह पाकिस्तानी, जापानी, जर्मनी··· !'

'तुम कैसे जानती हो इन दूतावासों के बारे में?'

'आपकी इस लौंडी को बहुत-से विदेशी मर्दों की सेवा का मौका मिल चुका है।' मेरी प्रतिक्रिया भाँपने के लिए उसने मुझे कनखियों से देखा।

'बहुत पैसे देते होंगे?'

'हाँ, देते तो होंगे। पर दल्लों और एम्बैसियों के ड्राइवरों से बचकर जो आता है, वही आपकी इस दासी की झोली में पड़ता है। और फिर मेरा वह घरवाला भी तो है! अल्लाह का शुक्र है कि फिर भी इतना तो बच ही जाता है कि दो जून दाल-रोटी पेट में पड़ जाय।' उसने अपने पेट पर हाथ मारते हुए कहा।

'तुम उनसे बात कैसे करती हो?'

'अजी वाह?' अपना सिर मटकाती हुई वह बोली, 'यह भी अच्छा सवाल है? उनको क्या करना है मुझसे बात करके? व्हिस्की चढ़ाते हैं और अपनी भाषा में गिटर-पिटर करते हैं और जब मेरी ज़रूरत पड़ती है तो बुला भेजते हैं।' तनिक रुककर वह फिर मुझे कनखियों से देखती है, 'इन विदेशियों की आदतें भी अजीब हैं।'

'क्यों? क्या करते हैं?'

'सारा कुछ एक ही दिन नहीं करते,' झिड़कते हुए वह बताती है, 'थोड़ा आज, थोड़ा कल। सुनोगे तो हैरान होगे! उनके मज़े लेने के तरीक़े भी अजीब हैं। सोचते ही मेरी तो तबीयत खराब होने लगती है।' और वह खिड़की से बाहर पिच्च से थूक देती है।

'क्या हजूर? हमें भूख से तड़पाने का इरादा है क्या? अजी, किसी बढ़िया होटल में ले चलिए। कुछ केसर-पुलाव खिलाइए, कोई तंदूरी चिकन-विकन खिलाइए। कोई कुल्फ़ी-उल्फ़ी। तभी न आगे बताऊँगी।'

'तुम्हें लेकर होटल में जाऊँ, ताकि लोगबाग मुझे सरेआम तुम्हारे साथ देखें? अपनी नाक खुद ही कटवा लूँ? क्यों?'

बेचारी का सारा जोश ठंडा हो गया। मैं अपनी ही नज़रों में गिर-सा गया। लेकिन मैंने भी सोच रखा था कि उसके जाल में नहीं फँसूँगा। दिल्ली गेट होते हुए हम फ़ैज़ बाज़ार पहुँचे। मैंने गाड़ी मोती महल के पास लगा दी और उसको गाड़ी में बैठा छोड़ दो जनों के लिए खाना पैक करवाने भीतर चला गया। गाड़ी में वापस लौटकर उससे बोला, 'यही तो चाहिए था न तुमको—केसर पुलाव, नान, चिकन, तंदूरी मछली और यह गाढ़ी-गाढ़ी रबड़ी?' उसने मुँह दूसरी तरफ़ फिरा लिया।

शहर से निकलकर हम पुरानी दीवार के साथ-साथ चलने लगे। उसकी चुप्पी मुझे अच्छी नहीं लग रही थी। मैंने कहा, 'अगर तुमको ऐसे ही रूठे रहना है तो मैं तुम्हें अभी गाड़ी से नीचे उतार दूँगा।' दूसरी तरफ़ मुँह करके वह अपने ब्लाउज़ की बाँह से नाक पोंछने लगी।

'अच्छा, अगर तुमको यही सब करना है तो चलो तुम्हें लालकुआँ छोड़ आऊँ!'

कश्मीरी गेट पहुँचकर मैं शहर में दाख़िल हो गया। चाँदनी चौक होते हुए हम फतेहपुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्जिद तक आएं। मैंने गाड़ी लालकुआँ की ओर मोड़ दी। उसकी घबराहट मैंने ताड़ ली। कहने लगी, 'तुमने तो कहा था कि...'

'अपना कहा मैं वापस लेता हूँ। तुम जाओ अपने घर।"

हम हिंजड़ों की बस्ती में दाख़िल हुए तो वह क्लच पर दबा मेरा पैर पकड़कर मिन्नतें करने लगी, 'तुम जो कहोगे, करूँगी, पर राम कसम, यहाँ छोड़कर मत जाना मुझे!'

'तो तुम ठीक से बरताव करोगी?'

'मैं तुम्हारी लौंडी बनकर रहूँगी ज़िंदगी-भर!'

मैं गाड़ी की रफ़्तार धीमी करता हूँ। दल्ले फुटपाथ से कूदते हुए मेरी ओर आने लगे—'एकदम ताज़ा माल, अभी-अभी आया, कालेज गर्ल, तेरह साल की कुँआरी कन्या...' भागमती सीट के साथ चिपकी हिन्दू और मुसलमान भगवानों के नाम जपती रही, 'हाय राम, या अल्लाह!'

हम लालकुआँ से काज़ी का हौज़ होते हुए बाहर निकल आए। मैंने उसे बताया कि हम अजमेरी गेट से दूर चले आए हैं।

सीट पर बैठने से पहले उसने खिड़की से बाहर सिर निकालकर देखा कि मैं सचमुच ठीक कह रहा हूँ कि नहीं। बोली, 'हजूर, आप भी बहुत मज़ाकिया हैं।' शिकायत करती-सी फिर बोली, 'अगर उन लोगों ने आपकी इस बाँदी को गाड़ी के भीतर देख लिया होता तो मेरे टुकड़े कर देते।'

'अगर तुमने फिर कोई गड़बड़ी की, तो फिर वहीं ले चलूँगा।'

कनॉट सर्कस में मैं एक दवाई की दुकान के पास रुका। लौटकर आया तो वह पूछने लगी, 'हजूर की तबीयत खराब है क्या?'

'नहीं, तबीयत तो ख़राब नहीं। पर उम्र के साथ-साथ गोलियाँ-शोलियाँ तो खानी ही पड़ती हैं, कुछ भूख बढ़ाने के लिए, कुछ खाना पचाने के लिए। कभी नींद लाने के लिए भी लेनी पड़ती हैं।'

उसके चेहरे के हाव-भाव से लग रहा था कि उसे मेरी दलीलों पर रत्ती-भर भी यक़ीन नहीं हो रहा था।

रात की पहरेदारी करता बुधसिंह यह देखने का आदी हो चुका था कि मैं अपने घर अक्सर औरतों को लाया करता हूँ। इसीलिए तो उसको हर महीने बख़्शीश वग़ैरह देकर खुश रखता हूँ। पागल भले ही हो, पर मुझे लेकर उसने आज तक पास-पड़ोस से कभी कोई ऐसी-वैसी बात नहीं की और न ही बक-झक करके कभी कोई मुसीबत खड़ी की।

अँधेरे में उसको पता नहीं चला कि मै अपने साथ किसे लेकर आया हूँ। यद्यपि भागमती एक बाज़ारू हिंजड़ा ही है, पर मुझे ऐसा लगा रहा है जैसे अपनी दुलहिन लेकर लौट रहा होऊँ। वह भी बड़े संकोच के साथ कदम बढ़ा रही है।

खाते हुए हमारे बीच संवाद लगभग न के बराबर हुआ।

'किसी सिख से सिगरेट माँगते हुए ठीक तो नहीं लगता, पर...?' डकारते हुए वह बोली। मैं सिगरेट की डब्बी उठा लाया। उसने दो सिगरेट निकाल लिये। एक को कान के पीछे खोंसा और दूसरे को सुलगाने के लिए होंठों में फँसाया। मैंने जैसे ही उसका सिगरेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलगाया, उसने मेरी आँखों में भरपूर ताका और धुएँ का एक गुबार मेरे मुँह पर छोड़ा। फिर अपने हाथ से उसे तितर-बितर करने लगी।

मैंने बैठक का पंखा चला दिया और उससे कहा कि जाकर सोफ़े पर आराम करे। 'अगर कुछ ज़रूरत पड़े तो दरवाज़ा खटखटा देना,' कहकर मैं अपने बैडरूम में चला गया।

एयर कंडीशनर की घर्र-घर्र के आगे घर में होते बाक़ी शोर सुनाई नहीं देते। पता नहीं वह क्या कर रही होगी? मैंने कहीं उसका अपमान तो नहीं कर दिया? पर तबेले में ही कौन इसे बड़ी इज़्ज़त मिल रही होगी? ग्राहक जब इसके मुक़ाबले दूसरी वेश्याओं को चुनते होंगे तब भी तो यह अपमानित महसूस करती ही होगी। एक हिंजड़े के साथ मैं भला और कैसा व्यवहार करता? ऊपर से कल इसे मिरगी का दौरा भी पड़ा था। अरे, यह तो ध्यान ही नहीं आया—बेचारी ओढ़ेगी क्या? और बदलने के लिए कपड़े भी नहीं दिए। तो क्या वह नंगी ही सो जाएगी? हिंजड़ी नंगी कैसी दिखती होगी, यह जानने की तीव्र इच्छा मन में जागी।

सेक्स की इच्छा भी मन में उमगने लगी। मैंने ऐसी भावनाओं को मन से झटकने की कोशिश की। पत्रिका उठाकर पढ़ना शुरू किया। लेकिन पत्रिका के पन्नों पर उसका ही काल्पनिक रूप तैरने लगा। मैंने पत्रिका वापस रखकर बत्ती बुझा दी।

इससे भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ। मेरे घर में एक विचित्र प्राणी उपस्थित है, इस धारणा से ही मैं मुक्ति नहीं पा रहा। हिंजड़े कैसे होते हैं, उनके गुप्तांगों का आकार-प्रकार कैसा होता है—यह सब जानने का मौक़ा कहीं चूक न जाय! बैडस्विच दबा कर मैंने फिर बत्ती जलाई और पुनः पत्रिका के पन्ने पलटने लगा।

तभी किसी ने अचानक धक्का देकर बैडरूम का दरवाज़ा खोला। टेबल-लैम्प की रोशनी में भागमती का शरीर विभक्त-सा दिखाई दे रहा था। जैसा मुझे शक था, वह पूरी तरह नग्न थी। छातियों के नाम पर केवल हल्के-से दो उभार। दोनों हाथों से उसने अपनी जाँघों के बीच ढक रखा है। 'भीतर आ सकती हूँ?' कमरे में घुसते हुए वह पूछती है, 'तुम्हारी मेहरबानी के बदले इस अभागी के पास देने के लिए और है ही क्या?'

मैंने बिस्तर पर उसके बैठने के लिए जगह बनाई। वह अपना मुँह दूसरी तरफ़ करके बैठ गई। मैं कुछ देर उसकी नाभि और कटि-प्रदेश को सहलाता रहा। मेरी उत्तेजना बढ़ने लगी। मैंने उसे अपनी बग़ल में खींच लिया और तकिए के नीचे रखा निरोध निकाला, और...

वह मुझे किसी भी सामान्य स्त्री से अलग नहीं लगी।

उसके जिस्म से पसीने की बू आ रही थी। मुझे अपना-आप अस्वच्छ महसूस होने लगा। मैं गुसलखाने में घुसकर 'शावर' के नीचे खड़ा हो गया। बिना पूछे ही वह भी भीतर घुस आई और ट्यूब में से मंजन निकालकर अँगुली से मसूढ़ों पर मलने लगी। तौलिए से बदन पोंछने के लिए मैंने 'शावर' बन्द किया तो उसने नहाने के लिए खोल लिया।

उसे बाथरूम में छोड़कर मैं अपने बिस्तर पर लौट आया। मैंने सोच रखा है कि बस अब और इसके साथ कोई चक्कर नहीं। अपना आशय स्पष्ट करने के लिए मैंने बत्ती भी बुझा दी। 'शावर' बंद करने और बत्ती बुझाई जाने की आवाज़ सुनाई दी। वह फिर मेरे कमरे में लौट आई और पलँग की पाटी पर बैठ गई। बाथरूम में पड़ी मेरी कोलोन की शीशी भी उसने अपने ऊपर उँडेल ली थी। मैं उसके लेटने की जगह बनाता हूँ। कुछ देर वह मेरी बग़ल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर दबाए लेटी रही। फिर उसने मेरी छाती को सहलाना शुरू किया। अपना सिर मेरी छाती पर रखकर वह मुझे उत्तेजित करने लगी। इस बार मैं फिर तकिए के नीचे से निरोध टटोलने लगा। उसने मेरा हाथ रोक लिया और बुदबुदाने लगी, 'इसकी कोई ज़रूरत नहीं, मैं साफ़-सुथरी हूँ।' और उसने मुझे अपने-आप में समो लिया। उसकी जिह्वा मेरे कर्णलोमों को चूम रही है।

मैं पस्त हुआ पड़ा हूँ।

हम एक-साथ दोबारा 'शावर' के नीचे नहा रहे हैं। अब तक मैं जिन-जिन स्त्रियों के साथ हमबिस्तर हुआ, भागमती उन सबमें सबसे अधिक कुरूप है। उसके चेहरे के चेचक के दाग़ और गहरे दिख रहे हैं। दाँत पान-तम्बाकू से बदरंग हैं। नहाते-नहाते शरमाती हुई-सी वह पूछती है, 'क्या देख रहे हो?' 'तुम्हें ही। और क्या?' उसे लेकर मैं वापस अपने बिस्तर पर आया और ऐसी गहरी नींद में सो गया, जैसे किसी ने बेहोशी की दवा पिला दी हो।

सुबह होने ही वाली थी कि मैं सपना देखने लगा। सपना भी ऐसा कि सच और काल्पनिकता का सम्मिश्रण। मैं देख रहा था कि भागमती सड़क पर पेशाब के गड्ढे में पड़ी हुई है और इशारे से मुझे बुला रही है। उसने मुझे गर्दन से दबोचकर नीचे गिरा दिया है, जैसे एक पहलवान अखाड़े में दूसरे पहलवान को गिराता है। मुझे लगा कि यह सिर्फ़ सपना ही नहीं हो सकता। सचमुच, मैंने पाया कि भागमती मेरे ऊपर लेटी हुई मेरे कर्णलोमों को कुतर रही है। अब वह पुरुष की भूमिका अदा कर रही थी। मैं उसकी कामुकता के सामने निष्क्रिय-सा पड़ा रहा।

मुझे लगा मानो पूरा कमरा गोल-गोल चक्करों में घूम रहा हो।

सेक्स की इन तीनों वारदातों के दौरान मुझे ऐसा महसूस हुआ, मानो दैवी साक्षात्कार के लिए अतीन्द्रिय उत्थान की सीढ़ियाँ चढ़ रहा होऊँ। सीढ़ियों का पहला डंडा पावन करनेवाला था, दूसरा जिज्ञासाओं-भरा और तीसरा व्यक्तिगत अहं का नाश करके दो आत्माओं के एक होने का प्रतीक।

फिर भी मैं अब तक नहीं जान पाया हूँ कि भागमती और किसी आम औरत में क्या फ़र्क़ है, सिवाय इसके कि इसकी छातियाँ न के बराबर हैं।

सुबह के पाँच बज चुके हैं। भागमती अपनी साड़ी पहन रही है। तभी मैंने अपनी किताबों की शेल्फ़ के पीछे छुपी अपनी तिजोरी से दस-दस के नोटों की एक गड्डी निकाली और उसके हाथों में थमा दी। वह हैरानी जताती-सी पूछने लगी, 'यह क्या है?'

उसने पैसों को गिना, 'एक सौ रुपैया? तुमको मुझे पैसे देने की ज़रूरत नहीं है।' फिर अचानक विचार बदलते हुए बोली, 'लेकिन मेरा मरद कुछ दे रहा है, तो लौटाया भी नहीं जा सकता, क्यों?'

'कितने खसम हैं तेरे, दस हज़ार?'

मेरे गले में बाहें डालकर वह बोली, 'अल्लाह गवाह है कि आज के बाद बस एक तुम्हीं रहोगे। तुम मेरे साथ इतनी मेहरबानी से पेश आए हो। मैं ज़िंदगी-भर तुम्हारी अहसानमंद रहूँगी।'

'चलो,' मैंने उसकी बाहें अलग करते हुए कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम मुझ पर विश्वास नहीं कर रहे हो न?' वह ज़िद करते हुए पूछने लगी। नोटों को गिनकर उसने मुझे वापस थमा दिया। फिर मेरे हाथ से एक नोट वापस लेती हुई बोली, 'अच्छा, एक दस का नोट रखे लेती हूँ, अपने घरवाले के वास्ते। बाकी के अभी अपने ही पास रखे रहो। फिर किसी दिन आकर ले जाऊँगी।'

मैंने बाहर झाँककर देखा कि कोई खड़ा तो नहीं?

बुधसिंह अपनी चारपाई पर गहरी नींद सोया पड़ा है। हम दबे पाँव बाहर निकलकर कार में जा बैठते हैं। गाड़ी स्टार्ट करने की आवाज़ भी बुधसिंह की नींद नहीं तोड़ पा रही। हम एकदम आसानी से निकल जाते हैं। कनॉट सर्कस से होते हुए मिंटो ब्रिज पार कर हम अजमेरी गेट तक पहुँचे थे कि भागमती ने स्टीयरिंग व्हील पर रखे मेरे हाथ को छूकर कहा, 'बस मुझे यहीं उतार दो।' मैंने गाड़ी रोककर दरवाज़ा खोल दिया। उसने मेरा हाथ दबाकर कहा, 'तुम्हारी दासी की तरफ से हज़ारों-हज़ार शुक्रिया! भूलना मत इसको, हजूर!" और वह सुनसान सड़क पर नंगे पाँव चलने लगी।

भागमती ने मुझसे मेरा नाम तक पूछने की कोशिश नहीं की। मेरे फ़्लैट का नम्बर और मुहल्ले का नाम तक उसने मुझसे नहीं पूछा। अपने बाक़ी पैसे लेने के वास्ते आना चाहेगी तो भी आएगी कैसे? मैं तो निश्चय ही उसे ढूँढने के लिए लालकुआँ नहीं जानेवाला।

दिन बीतते रहे और हफ़्ते भी। समय बीतने के साथ मैं सोचने लगा कि शायद भागमती उस तरह की वेश्या नहीं है, जैसा मैंने सोचा था। उसके साथ बीती उस एक रात की याद मेरे मन में टीस जगाती रही। अब उसे शायद कभी नहीं देख पाऊँगा।

पर भागमती जिस तरह मेरे जीवन में दोबारा लौटी, उसका अंदाज़ा मुझे क़तई नहीं था।

मेरी दिनचर्या पूर्ववत् होने लगी—सुबह कुछ घंटे काम करना, दोपहर में गोल्फ़ खेलना, शाम को कॉकटेल पार्टियों में जाना और उसके बाद कहीं डिनर खाना। दिल्ली में साल के तीन सौ पैंसठों दिन लोगों के बूते खाना और पीना सम्भव हो सकता है। दिल्ली के तमाम राजनयिक संघ मेरे अक्षयपात्र हैं। डिब्बाबंद भोज्य पदार्थ और शराब वग़ैरह मुझे उन्हीं से प्राप्त होती है। कनॉट सर्कस में जो स्कॉच व्हिस्की की बोतल एक सौ पचास रुपए में मिलती है, वह मुझे उनसे क्रेट के क्रेट मात्र तीस रुपया प्रति बोतल मिल जाती है या कभी-कभी मुफ़्त ही। वही मेरी अन्य ज़रूरतों को भी पूरा करते हैं। दिल्ली में सौ के लगभग दूतावास, आयोग और प्रतिनिधि-मंडल हैं। यहाँ इन राजनयिकों को अधिक कुछ करने को तो होता नहीं, सो इनकी ज़्यादातर ऊर्जा भारत सरकार के विदेश मंत्रालय और अन्य मंत्रालयों के अफ़सरों को खिलाने-पिलाने, कुछ ग़ैर-सरकारी लोगों से दोस्तियाँ गाँठने और अपने स्वतंत्रता-दिवस मनाने में ही लगती है। इनमें से कितनी ही ऊबी हुई बीवियाँ और अविवाहित महिलाएँ मिल सकती हैं जो भारतीयों के बारे में अधिकाधिक जानने को उत्सुक रहती हैं। बस इन्हीं से मिलती रहती है मुझे अपनी इम्पोर्टेड व्हिस्की और रसद तथा विजातीय सेक्स की सुविधा।

जब मुझे भागमती सड़क पर पड़ी मिली थी, उन दिनों मैं पश्चिम जर्मनी के दूतावास में कार्यरत एक स्टैनोग्राफर के पीछे लगा हुआ था। किसी वाणिज्य दूतावास की रिसेप्शन में उससे मुलाक़ात हुई थी। मुझे पता चला कि वह नई-नई यहाँ आई है और जैसा कि नए-नए आए विदेशियों को झक सवार रहती है कि हिन्दुस्तान के बारे में जानें-सुनें, वह भी भारत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारे में जानने को बहुत उत्सुक थी। देखने में कुछ ख़ास नहीं थी। उम्र होगी क़रीब तीसेक साल, आँखें भूरी, होंठ पतले-पतले और दुबला-लम्बा शरीर। ऊपर से बालों को जूड़े में बाँधकर और भी अनर्थ करती थी।

फ्रॉलीन अर्मा वेस्करमैन को पटाना कोई मुश्किल काम नहीं था। एक इतवार को मैं उसे दिल्ली के स्मारकों को दिखाने ले गया। लौटकर उसके घर पर हमने बीयर पी। दूसरे इतवार उसे लालक़िले का 'ध्वनि-प्रकाश-प्रभाव कार्यक्रम' दिखाने ले गया और मोती महल में खाना खिलाया। रेस्तराओं में शराब पेश करने की मनाही के चलते मैं घर से ही हिन्दुस्तानी व्हिस्की अपने हिप-फ़्लास्क में भरकर ले गया था। बैरे का मुँह दूसरी तरफ़ मुड़ते ही उसके कोकाकोला में व्हिस्की उँडेलकर मैं उसे बताने लगा कि भई, अपन तो यही हिन्दुस्तानी व्हिस्की अफ़ोर्ड कर सकते हैं, क्योंकि स्कॉच ख़रीदना तो अपने बस की बात नहीं। उसने संकेत समझ लिया (राजनयिकों के साथ यह चाल हमेशा चल जाती है)। उसके बाद तो जब भी उसको अपने घर बुलाता या कहीं बाहर ले जाने की पेशकश करता, तो वह अपने साथ स्कॉच की एक बोतल ज़रूर ले आया करती।

फ्रॉलीन वेस्करमैन को सेक्स में ज़्यादा रुचि नहीं थी। कामविरत दिखने के कारण अपनी रक्षा के लिए उसने वैसी ही कठोरता भी अपने भीतर पैदा कर रखी थी। जब मैंने पहली बार उसकी कमर में अपनी बाहें डालीं, तो वह पूछने लगी, "क्या यह ज़रूरी है ?" मैंने स्वीकृति में सिर हिलाते हुए कहा, "हाँ, क्योंकि तुम मुझे अच्छी लगती हो।" उसके बाद से तो चुम्बन स्वीकारने को आतुर रहती; मिलते ही वह अपने चिपटे गाल आगे कर देती।

एक शाम मैंने उससे कहा, "अर्मा, तुम मुझे ज़रूरत से ज़्यादा अच्छी लगने लगी हो।" "अच्छा ?" वह बोली और उसने मुझे चूम लिया। फिर एक बार मैंने उससे कहा, "अर्मा, मुझे लगता है कि मुझे तुमसे प्रेम होता जा रहा है।" इसके बाद तो कोई भी स्त्री प्रतिरोध कर ही नहीं सकती। उसने मुझसे पूछा, "इससे पहले कितनी और औरतों को यही बात कह चुके हो ?" लेकिन प्यार से देखते हुए उसने मुझे चूमने की इजाज़त दे दी।

इसी तरह मिलते-मिलाते हमारे सम्बन्ध प्रगाढ़ होते गए। जल्दी ही वह दिन भी आ गया जब मैं उसके वक्ष को सहला रहा था। तनिक-सा भी आगे बढ़ते ही वह अपनी मुँदी हुई भूरी आँखें खोल देती और मुझे रोक देती, "नहीं।" पर मुझे कोई शंका नहीं रही थी कि कुछ ही दिनों में यह इंडो-जर्मन प्रणय-सम्बन्ध पूर्णता को प्राप्त होनेवाला था।

मैंने अभी भागमती का हिसाब चुकता नहीं किया है। भागमती से मिले तकरीबन दो महीने बीत चुके होंगे कि मैं फ्रॉलीन वेस्करमैन के साथ अपने घर में बैठा रात का खाना खा रहा हूँ। उसके व्यवहार में कुछ अनोखापन लक्ष्य कर रहा हूँ। वह खूब स्वच्छन्द होकर बातें कर रही है और हँस रही है। लगता है कि वह 'हाँ' कहने का मन बना बैठी है। 'मोसेल' की बोतल, जो वह साथ लेकर आई थी, हमने आधी ख़त्म कर ली है। अब वह अपनी कॉफ़ी में कॉग्नैक की कुछ बूँदें डालकर पीने को तैयार बैठी है। मेरा ख़ानसामा जैसे ही गया, हम सोफ़े पर जाकर एक-दूसरे को सहलाने लगे। मैंने उसके कान में पूछा, "क्यों ?" उसने जवाब दिया, "जैसी तुम्हारी मर्ज़ी।" अपना हैंडबैग उठाकर वह बाथरूम में घुस गई, "मैं ज़रा तैयार होकर आती हूँ।" मैंने बैडरूम को ठीकठाक किया और एयर कंडीशनर चालू कर दिया। अर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेस्करमैन मेरे ड्रेसिंग गाउन में लिपटी सामने खड़ी है। वह शर्म से गड़ी जा रही है। उसने अनुनय-सी करते हुए कहा, "मेरी तरफ देखो मत, बत्ती बुझा दो।" मैंने हँसकर उसकी कमर में बाहें डाल दीं—"देखो, हमारे यहाँ कहावत है कि पेट से होने पर दाई को तो पेट दिखाना ही पड़ता है। अब अगर तुम राज़ी हो ही गई हो तो अब शरमाना क्या ?"

उसका गाउन उतार मैं उसे बिस्तर तक ले गया। मैंने पाया कि इस औरत के साथ बीते इन क्षणों और भागमती के साथ बीती उस रात में कितना फ़र्क़ था !

एयर कंडीशनर की घड़घड़ाहट के बीच दरवाज़े की घंटी बजने की आवाज़ सुनाई दी।

मैंने ऊपर देखा। घंटी फिर बजी। कुछ भयभीत-सी हो फ्रॉलीन ने पूछा, "क्या कोई आया है ?"

"हाँ, लगता तो है," उसे आश्वस्त करते हुए मैंने कहा, "पर कोई बात नहीं।"

उसने मुझे धकियाकर अपने से अलग किया, "जाओ देखो, शायद कोई टेलीग्रामवाला हो, या..."

मैंने उठकर अपना ड्रेसिंग गाउन चढ़ाया और दबे पाँव दरवाज़े तक गया। दरवाज़े के छेद से झाँककर देखा—भागमती है।

उसने और तेज़ी से घंटी बजाना शुरू किया। मैं दबे पाँव ही वापस बैडरूम में लौट आया। फ्रॉलीन पलँग पर बैठी हुई है, "कौन है ?"

"एक औरत है," मैं बेहद मूर्खता से बोला, "मुझे इसके कुछ रुपए देने हैं।"

वह तीखेपन से बोली, "यह भी कोई वक्त है किसी मर्द के घर आने का ?"

"नहीं, ऐसी-वैसी कोई बात नहीं," मैंने उसे समझाने की कोशिश की, "बेचारी बीमार औरत है। मैंने इसे एक सुबह सड़क से उठाकर घर पहुँचाया था।"

घंटी लगातार बज रही है।

"मैंने ही बेवकूफ़ी की," उठते हुए वह बोली और अपने कपड़े उठाकर बाथरूम में घुस गई। पूरे कपड़े पहनकर वह बाथरूम से लौटी और बोली, "मिस्टर सिंह, आपको अच्छी तरह पहचान गई हूँ। गुड बाय एंड हैव ए नाइस टाइम।"

उसने भड़ाक से दरवाजा खोला और विस्मित-सी बाहर खड़ी भागमती को सिर से पाँव तक देखा। "एक्सक्यूज़ मी मैडम," कहती हुई वह बाहर खड़ी अपनी 'वॉल्क्स वैगन' में जा बैठी।

मैं सोफ़े पर जा गिरा और दोनों हाथों से अपना चेहरा ढँककर बैठ गया। तभी दरवाज़ा बंद किए जाने की आवाज़ सुनी। भागमती की गुहार कानों में पड़ रही है, "अजी, आपकी लौंडिया से कोई गुनाह हो गया हो तो हजूर माफ़ करें।"

मैंने उसकी ओर देखने से इनकार कर दिया, "इस वक़्त आने की क्या ज़रूरत पड़ी थी ?"

"हजूर, आपकी दासी को मिस्री एम्बैसी में आना था तो सोचा कुछ रुपए आपके पास जमा करती जाऊँ और अपनी कोई सेवा भी आपको...। पर देख रही हूँ कि हजूर को मैंने नाराज़ कर दिया है। सो जाने से पहले माफ़ी माँग लेना चाहती हूँ।"

मेरे पाँवों के पास बैठकर वह उन्हें दबाने लगी, "इस दासी ने मुँह फेरा नहीं कि आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दगा दे दी।" मेरी जाँघों को सहलाते हुए वह पूछने लगी, "क्यों, कैसी थी यह जिराफ़ ?"

"बताता हूँ," कहकर मैंने उसे झटके से गोद में खींच लिया।

"अरें," कहती हुई वह बोली, "सभी मर्द एक-से होते हैं। कभी इधर आँख मारेंगे, कभी उधर, एक पर तो टिककर रहते ही नहीं !"

आज पंद्रह जून है। दिल्ली में मॉनसून शुरू होने के पहले आई यह पहली बौछार है। पिछले तीन दिनों से हवा में गर्द-गुबार भरा हुआ था, सब इसमें धुलकर बैठ गया है और वातावरण साफ़ हो गया है। ताज़ी हवा रुई-से सफेद बादलों को नीले आसमान के पार बहाये लिये जा रही है। मिट्टी से सोंधी-सोंधी गंध उठ रही है। हवाओं में और बारिश होने के आसार नज़र आ रहे हैं। ऐसे सुहावने दिन कोई घर पर कैसे बैठा रहे !

चुनाव महरौली और ओखला के बीच करना है। महरौली में कुतुबमीनार है और इसके लम्बे-चौड़े बग़ीचे हैं, मक़बरे हैं। एकड़ के एकड़ आम के बाग़ हैं। ओखला में मक़बरे बेशक नहीं हैं, पर पानी ही पानी तो है। यमुना के बाँध से कई नहरें निकलती हैं। मॉनसून के दिनों में नदी फैलकर विकराल रूप धारण कर लेती है और त्रियामा बन जाती है—यमराज की बहन। दिल्लीवालें को जब आत्महत्या की इच्छा होती है तो यहीं ओखला में आकर मॉनसून के दिनों में इसकी मटैली बाहों में छलाँग लगाते हैं। और जिन दिल्लीवालों में जीने की उमंग लहक रही हो, वे भी चूसने-योग्य आमों की टोकरियाँ भरकर साथ लिये यहीं आते हैं। आमों को चूस-चूसकर गुठलियाँ यमुना में फेंकते हुए देखते हैं कि वे कितनी दूर जाती हैं।

महरौली हो या ओखला, कोई माशूक़ा तो साथ होनी ही चाहिए—आपके अनुभवों को बाँटने के लिए, जिसके कानों में फुसफुसाकर आप कह सकें—तुम्हें बारिश में भिगोना चाहता हूँ, इतना कि तुम्हारे नितम्ब कीचड़ में डूब जाएँ और मेरे पानी में।'

मुझे लगा कि एक ताँगा मेरे घर के बाहर आकर रुका है। ताँगेवाले और आगन्तुक में कुछ तू-तू, मैं-मैं हो रही है। ताँगेवाला चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है कि इससे तो लौंडेबाज़ी अच्छी है, कुछ रुपया-धेला तो मिल जाता है। और यहाँ ताँगा हाँक-हाँककर थक जाओ पर...। मुसाफ़िर उससे भी ज़ोर से चिल्लाकर जवाब दे रहा है, "अबे जा ! तेरे संग भला कौन करेगा लौंडेबाज़ी ? कोई थूकेगा भी नहीं तुझ पर..."

भागमती के सिवाय कौन हो सकता है ?

उसके घंटी बजाने से पहले ही मैंने दरवाज़ा खोल दिया। वह अपने कूल्हे मटकाती ताँगेवाले को बकती-गरियाती भीतर घुसी, "साला, बहिनचोद ! बहिनचोद को मैंने लालकुआँ से यहाँ तक का एक रुपया दिया। हरामी और माँगता है। इस दुनिया से न्याय तो उठ ही गया है !" वह मेरी तरफ़ रुख़ करके बात को वहीं ख़त्म करती बोली, "यह क्या ज़नानियों की तरह बुरका पहनकर भीतर बैठे हो ! भीतर बैठने का दिन है क्या यह ? मैंने तो सोचा था कि तुम मुझे अपनी मोटरकार में बैठाकर कहीं घुमाने-फिराने ले चलोगे। कुछ ठंडी हवा, आम-वाम खिलाओगे !"

बाहर निकलने का कोई बहाना तो मैं भी तलाश ही रहा था। भागमती से बढ़कर और किसका साथ पाने की तमन्ना हो सकती थी मन में ! लेकिन इस झटकेदार लाल-नीले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साड़ी-ब्लाउज़ और बया के घोंसले सरीखे सजे-बने बालों में क़तई नहीं।

मैंने उसे एक स्ट्रेचपैंट और खुले गले की कमीज़ ख़रीदकर दे रखी है, जिसे वह मेरे फ़्लैट में ही रखे रहती है। मेरे बैडरूम में घुसती हुई वह कहती है, "अच्छा तो मैं अपने विलायती कपड़े पहन लूँ।"

अपना पाउडर और रूज धोकर बालों से वह क्लिप, हेयरपिन सब निकाल देती है और बालों को चिपटाकर कंघी कर पीछे जूड़े की तरह बाँध लेती है। अब यह एक दूसरी ही भागमती लग रही है। भागमती—आधी बाहों की स्पोर्ट्स शर्ट और चुस्त स्ट्रेच पैंट में, कैनवास की टोपी सिर पर लगाए, किसी नटखट छोकरे-सी दिखती है। सचमुच बड़ी चुस्त लग रही है वह। कोई नहीं कह सकता कि यह हिंजड़ा है या लड़कियों-जैसा दिखनेवाला लड़का।

हम लोगों में बहस छिड़ गई है। भागमती कह रही है कि ओखला चलना चाहिए। बारिश के मौसम में तो सारी दुनिया ओखला ही जाती है। बैराज के किनारे बैठ आम चूसेंगे।

"नहीं, ओखला नहीं। मुझे भीड़भाड़ अच्छी नहीं लगती और वह भी पंजाबियों की। और वहाँ तो पंजाबी ही पंजाबी भरे पड़े होंगे, चीख़ते-चिल्लाते, ज़ोर-ज़ोर से बातें करते, गंद बिखेरते।"

"अगर तुम्हें मेरे साथ दिखने का डर लग रहा है तो मैं मोटरकार में ही बैठी रहूँगी। अब तो ठीक है?"

बात तो ठीक थी। लेकिन मैं उसका दिन भी बर्बाद नहीं करना चाहता था। बोला, "गुरु कसम, यह बात नहीं। ओखला में भीड़ बहुत ज़्यादा होगी। बंदर भी बहुत हैं वहाँ। और साँप-वाँप भी होते हैं। एक बार मैंने बेराज के 'वॉटर गॉज' (जलदाब-मापी) के पास सुस्ताते हुए पाँच साँपों को एक के बाद एक मारा था।"

साँपों के चलते बहस महरौली के पक्ष में समाप्त हो गई।

महरौली को जाती सड़क पर स्कूटरों, कारों, साइकिलों और ताँगों के काफ़िले-के-काफ़िले जा रहे हैं। बुर्कों में ढकी कुछ औरतों और बच्चों से भरा दो पहियोंवाला एक छकड़ा भीड़ को चीरता आगे बढ़ता है। छकड़े को हाँकता आदमी पहिए की छड़ों पर चाबुक मारता हुआ चिल्लाता, लोगों को हटाता, अपने लिए रास्ता बनाता जा रहा है। साइकिल पर अपनी बीवी और चार बच्चों को लिये जा रहा एक सिख छकड़े से टकराता-टकराता बचा। सिख घबड़ाया-सा बदहवास मुसलमानों के इस ख़ानदान पर चुनिंदा गालियाँ बरसाता जा रहा है, "हरामियों की औलाद! हमें मारने का इरादा है क्या?" बुर्कों की भीड़ में से छह-सात साल का एक दाऊद मियाँ सिर निकालता है और अपने लाल गुलाम का फीता खोल, अपना नन्हा-सा सुन्नत किया हुआ लिंग चमकाता, कहता है, "अबे सिखड़े, हरामी, तू मेरी कुतुबमीनार पर बैठेगा क्या?"

दाऊद मियाँ की कुतुबमीनार तो पूरी ढाई इंच लम्बी है, जबकि असली कुतुबमीनार मुश्किल से 283 फुट ही है।

भागमती की हँसी छूट जाती है।

हम कुतुबमीनार पहुँचते हैं। कार-पार्किंग-स्थल मोटरगाड़ियों से भरा है और पार्क लोगों से भरे हैं। हम सोच ही रहे थे कि किधर जाएँ, इतने में ही लोगों ने इधर-उधर दौड़ना-भागना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरू कर दिया। बूँदाबाँदी शुरू हो गई थी। "यहाँ नहीं," मैं कहता हूँ और गाड़ी आगे बढ़ा ले जाता हूँ। हम मेटकाफ की हवेली और जमाली-कमाली के मक़बरे के खँडहरों को पार कर महरौली में घुसते हैं। औलिया मस्जिद के कार-पार्किंग-स्थल में मैं गाड़ी लगा देता हूँ। बूँदाबाँदी मूसलाधार बारिश में बदल जाती है। शम्सी तालाब में पानी की धारें इस तरह गिर रही हैं कि यह दृश्य किसी सीढ़ीनुमा जलप्रपात का रूप धारण कर रहा है। हम एक-दूसरे से खेलते गाड़ी में बैठे हैं। भागमती मुझे उत्तेजित करने की कोशिश में लगी है। मैं घबड़ा-सा जाता हूँ। कहीं कोई झाँककर देख ले तो? मैंने कहा "यहाँ नहीं, चलो जहाज़ महल में चलें।"

मैं गाड़ी को कुछ फुट और दूर ले जाकर जहाज़ महल के पास लगा देता हूँ। उतरकर हम महल के भीतर जाने लगते हैं। भीतर देहातियों की भारी भीड़ जमा है। घर लौटते हुए बारिश के कारण वे रुक गए होंगे। वे इधर-उधर सरककर हमें भीतर घुसने का रास्ता दे देते हैं। मैं भागमती को सीढ़ियों की राह निचले तल तक ले जाता हूँ, जो लगभग तालाब के स्तर पर है। वहाँ एक बच्चा तक नहीं दिख रहा। मैं भागमती को बाहों में भर लेता हूँ और इतना कसकर भींचता हूँ कि वह साँस भी नहीं ले पा रही। वह कहती है, "तुम मेरी हड्डियों को तोड़ना चाहते हो क्या? मुझे मारने का इरादा है?"

"अगर यहाँ मरोगी तो सीधे स्वर्ग में जाओगी। इस शम्सी तालाब के पानी को बहुत-से संतों और सूफ़ियों की दुआएँ मिली हुई हैं।"

"अच्छा जी! तो अब तुम मुझे ख़त्म ही कर देने पर तुले हो। कोई बात नहीं। मैं वहाँ जाकर उनसे कहूँगी कि मेरे आशिक ने मुझे कत्ल किया। मेरा क्या! मेरे तो अल्ला सारे गुनाह माफ़ कर देगा और अगले जनम में मैं इंदिरा गांधी बनकर पैदा होऊँगी और हिन्दुस्तान की बेटी के नाम से मशहूर होऊँगी।"

हम अपनी इश्कबाज़ी फिर शुरू कर देते हैं। लेकिन जब आप सिर्फ़ एक कान, एक आँख और आधे मन से प्रेमालाप में लगे हों और दूसरा कान, दूसरी आँख और बाक़ी का मन रखवाली में जुटा हो, तो मज़ा नहीं आता। बीच-बीच में सीढ़ियों से आते-जाते लोगों की आवाज़ें आती रहीं। हम ऐसा दिखावा करने लगते जैसे पुरातत्त्व, इतिहास और वास्तुकला में हमारी गहरी रुचि हो और इन्हीं सबसे जुड़ी बातों की पड़ताल करते वहाँ खड़े हों। लोगों के देखकर मैं माचिस की तीलियाँ जलाकर टाइलों का सर्वेक्षण करने लगता और पत्थरों पर खुदे अभिलेखों को पढ़ने लगता।

बारिश अब भी हो रही है। इसके बंद होने के कोई आसार नहीं नज़र आ रहे। हम अब भी माचिस की तीलियाँ जलाते कोठरी के अँधेरे कोनों का मुआयना कर रहे हैं। तभी मुझे ज़मीन पर पड़ा एक पत्थर दिखा, जिस पर कुछ लिखा हुआ था। मैं उसे उठाकर प्रकाश में लाकर देखता हूँ। उसके ऊपरी सिरे पर स्वास्तिक का चिह्न है। दोनों तरफ़ दो कमल बने हुए हैं और बीच में अरबी में 'अल्लाह' लिखा है। उसके नीचे फ़ारसी में लिखा है—

'मुसद्दीलाल कायस्थ, वल्द (सुपुत्र) छगनलाल कायस्थ, पीर हज़रत ख़्वाजा निज़ामुद्दीन का शागिर्द और ईश्वर में आस्था रखनेवाला, जिसकी कृपा से उसे कमल कायस्थ नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। काल—हिन्दुस्तान के शहंशाह, बादशाह सुल्तान ग़यासुद्दीन बलबन का राज्यकाल।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4

मुसद्दीलाल

मैं—मुसद्दीलाल, वल्द लाला छगनलाल, दिल्ली शहर के महरौली उपनगर का हिन्दू कायस्थ, जिसकी एक आँख की रोशनी मोतियाबिन्द के कारण जा चुकी है और दूसरी की भी जानेवाली है, इस सरज़मीं पर बीते अपने जीवन की कुछ घटनाएँ दर्ज करता हूँ। ईश्वर—जो कि अल्लाह भी हैं, राम—जो कि रहीम भी हैं, इस बात के साक्षी हों कि मैंने जो कुछ भी लिखा है, सच है और इसमें कुछ भी छिपाया या छोड़ा नहीं गया है।

मैं 633 हिज्री (यानी अंग्रेज़ी पंचांग के हिसाब से सन् 1265 ईसवी) में पैदा हुआ। वे सुल्तान ग़यासुद्दीन बलबन के शासनकाल के शुरुआती दिन थे। मेरे पूर्वज दिल्ली के शासकों की सेवा में मुंशी का काम किया करते थे। उन्होंने तोमर राजपूत राजा अनंगपाल के मातहत भी काम किया, जिसने लालकोट का क़िला बनवाया और शहर के बीचोबीच विष्णु भगवान का पवित्र लौह स्तम्भ गड़वाया। उन्होंने सम्राट पृथ्वीराज चौहान के यहाँ भी नौकरी की, जिन्होंने शहर का नाम बदलकर क़िला राय पिथौरा कर दिया था। जब मुहम्मद ग़ोरी ने पृथ्वीराज चौहान को पराजित कर कत्ल कर दिया और खुद दिल्ली पर हुकूमत करने लगा, तब मेरे पूर्वजों ने तुर्की, अरबी और फ़ारसी सीखी और नए बादशाह की नौकरी में लग गए। मेरे परदादा ने सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक के यहाँ भी नौकरी की और अपनी आँखों से हिन्दू तथा जैन मंदिरों का विनाश होते और उनके खँडहरों पर जामिया मस्जिद को बनते देखा, जो बाद में कुव्वत-उल-इस्लाम कहलाई जाने लगी। कुतुबमीनार का निर्माण भी उनकी आँखों के सामने हुआ। मेरे दादा ने कुतुबुद्दीन के दामाद और उत्तराधिकारी सुल्तान इल्तुतमिश की सेवा में भी काम किया। उन्होंने एक मामूली मज़दूर की तरह शम्सी तालाब की खुदाई में हिस्सा लिया। दरअसल उस स्थान पर सुल्तान ने हज़रत मुहम्मद के घोड़े बुराक़ के पदचिह्न देखे थे, इसीलिए वहाँ शम्सी तालाब का निर्माण कराया गया। सुल्तान इल्तुतमिश ने फ़क़ीर कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी के मकबरे को बनाने के लिए ख़ुद अपने सिर पर पत्थर ढोए। मेरे दादा ने 1220 ईसवी में कुतुबमीनार का निर्माण पूरा होते देखा। शम्सी तालाब के पासवाली पत्थर की हवेली मेरे दादा ने ही बनवाई थी, जहाँ मैं पैदा हुआ था और जहाँ मैंने ज़िंदगी के ज़्यादातर दिन बिताए। उन्होंने सुल्तान इल्तुतमिश की बेटी रज़िया सुल्ताना जिसने साढ़े तीन साल तक हिन्दुस्तान पर हुकूमत की, के नीचे भी काम किया। मेरे पिता लाला छगनलाल सुल्तान ग़यासुद्दीन बलबन के शासनकाल में महरौली की कोतवाली में मुंशी का काम किया करते थे। उन्होंने सन् 1265 ईसवी से 1287 ईसवी तक के सुल्तान के शासन-काल में पंद्रह वर्षों तक उनकी नौकरी की। सन् 1287 में मेरे पिता का देहान्त हो गया।

अपने कायस्थ पूर्वजों की भाँति मैंने भी मुंशीगिरी में ही प्रशिक्षण प्राप्त किया। एक पंडित ने मुझे हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा दी। मेरे पिता के प्रभाव के कारण मुझे मदरसे में दाख़िला मिल गया, जहाँ मुझे अरबी, तुर्की और फ़ारसी पढ़ाई जाती थी। शुरू-शुरू में हिन्दुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से धर्म-परिवर्तन कर मुसलमान बने और तुर्कों के लड़के मुझे काफ़ी परेशान किया करते थे। लेकिन जब मैंने तुर्की बोलनी सीख ली और तुर्कों की तरह कपड़े पहनने शुरू कर दिए, तो उन्होंने मुझे डराना-धमकाना बन्द कर दिया। उनकी गुंडई से बचाने के लिए मौलवी साहब ने मुझे मुस्लिम नाम भी दे दिया—अब्दुल। लड़के मुझे अब अब्दुल्ला कहकर बुलाने लगे।

मैं अपने माता-पिता की इकलौती संतान था। मथुरा के एक परिवार की कन्या से मेरी सगाई भी हो चुकी थी। उनके परिवार में सात जन थे। मेरी शादी हुई तो मेरी उम्र नौ बरस थी और मेरी पत्नी रामदुलारी की सात बरस। चार साल बाद जब मैं सहवास के योग्य हो गया तो मेरे माता-पिता ने उसी नाई को जिसने मेरी शादी करवाई थी, मेरी बीवी को लिवा लाने के लिए मथुरा भेजा। रामदुलारी के माँ-बाप ने उसे भेजने से इन्कार कर दिया। कारण मैं आपको बाद में बताऊँगा। हमारे घर पर उसके बाद से विपत्तियों के पहाड़ ही टूटते रहे। मेरे पिता की मृत्यु हो गई। कुछ ही दिनों बाद मेरी माता भी चल बसी। तेरह साल का होते-होते मैं दुनिया में एकदम अकेला रह गया।

कोतवाल साहब मेरे प्रति बेहद दयालु थे। जब वे अफ़सोस करने आए तो उन्होंने मेरे पिता का पद भी मुझे सौंप दिया।

मेरे मुसलमान मित्रों ने समझाया कि अब वक़्त आ गया है कि मैं इस्लाम को स्वीकार कर लूँ। इससे मेरी नौकरी की संभावनाएँ बढ़ेंगी। हो सकता है मुझे महरौली का कोतवाल ही बना दिया जाय। ब्याह के लायक़ लड़की मिलने में भी तब कोई परेशानी नहीं होगी। अगर क़िस्मत अच्छी हुई तो तुर्की, फ़ारसी या अफ़ग़ानी नस्ल की कोई बेवा या तलाकशुदा औरत आसानी से मिल जाएगी। एक दोस्त जो काफ़ी मज़ाक़िया स्वभाव का था, कहने लगा, "अगर तू मुसलमान हो जाय तो औरत मिलने की क़िल्लत नहीं रहेगी। चाहो तो एक-साथ चार कर लेना।" और चिढ़ाते हुए फिर बोला,

तुर्कन होगी हट्टी-कट्टी,
नहीं रहेगी काम-काज की कोई चट्टी,
हिन्दुस्तानी—गदरायी-सी, भरी जवानी,
फ़ारसवाली नख़रेलू और कसी-कसाई,
उजबेकी भी लाना, यारा,
जो इन सबको याद करा दे इनकी नानी।

कुछ था जो मुझे धर्म-परिवर्तन कर इस्लाम में जाने से रोकता रहा। मेरे ख़याल से मेरी पत्नी के माता-पिता ने उसे भेजने से इसीलिए इन्कार किया था, क्योंकि उन्होंने कहीं सुन लिया था कि मेरे माँ-बाप ने मुसलमानी तौर-तरीक़े और रहन-सहन अपना रखा है। मैंने सोचा कि अगर मैं मुसलमान बन गया तब तो वे कहेंगे कि हम नहीं कहते थे… ! अब हम कैसे अपनी बेटी किसी म्लेच्छ को सौंप दें ?

मेरी माता की अन्त्येष्टि के दिन मेरे चचिया ससुर मेरे पास अफ़सोस प्रकट करने मथुरा से आए। पर उनका असली मक़सद यह पता लगाना था कि मैं किस तरह रह रहा हूँ और हिन्दू रीति-रिवाजों के मुताबिक़ चल रहा हूँ या नहीं। उन्होंने अपनी आँखों से देखा कि मैंने अपना सिर मुँडा रखा था, जनेऊ धारण किया हुआ था और ब्राह्मणों को भोजनादि करा रहा था। मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाई को उनसे यह कह देने के लिए कहा कि मेरी पत्नी को अब भेज दें। वे बिना कोई जवाब दिए मथुरा लौट गए।

कुछ दिनों के बाद मैं कोतवाल साहब से मिला। सभी यह महसूस कर रहे थे कि क़िस्मत ने मेरे साथ बुरा किया है। इसीलिए शायद सभी की सहानुभूति मेरे साथ थी। कोतवाल साहब ने मुझसे अपने सास-ससुर के विरुद्ध एक शिकायत दर्ज करवाई कि वे मेरे वैवाहिक अधिकारों में हस्तक्षेप कर रहे हैं। उन्होंने उस पर तुरन्त अमल करने की सिफ़ारिश के साथ मथुरा के कोतवाल के पास भिजवा दिया। अगर मेरे ससुरालवाले कोई ना-नुकर करते तो उन्हें पकड़कर महरौली के थाने भिजवाया जा सकता था।

एक हफ़्ते के बाद अपनी छोटी बहन और चाचा के साथ मेरी पत्नी मेरे दरवाज़े पर आ पहुँची। कुछ दिनों बाद उसके चाचा और बहन मथुरा लौट गए।

रामदुलारी एक हिन्दू पत्नी के सब कर्त्तव्य निभाती थी। वह हर सुबह मेरे चरण छूती और माँग में सिंदूर भरती। लेकिन हर वक्त रोती रहती; और अगर सांत्वना देने के लिए मैं उसके कंधे पर हाथ भी रख देता तो वह छिटककर दूर भाग जाती। एक रात मैं उसके बिस्तर पर गया तो उसने शोर मचाना शुरू कर दिया। हमारे पड़ोसी जाग गए और पूछने लगे कि सब ठीक-ठाक तो है? मुझे तब बड़ी शर्म आई।

महीने-भर बाद भी मुझे यह पता नहीं चल पाया कि वह कैसी लगती है, क्योंकि वह हमेशा अपना चेहरा घूँघट में छुपाए रखती। उसकी गर्दन और हाथों को देखकर ही मुझे लगा कि वह भरे बदन की स्त्री है। यह भी ग़ौर किया कि उसका वक्ष और कूल्हे गदराए हुए हैं।

मुझे पूरी तरह यह समझने में कई हफ़्ते लगे कि मेरी पत्नी मेरे साथ सहवास के लिए राज़ी नहीं है। अपना खाना वह अलग चूल्हे पर उन बर्तनों में बनाती थी, जो वह अपने साथ मायके से लेकर आई थी। उसके लिए मैं गंदा, ग़लीज़, म्लेच्छ, मुसलमान था। मैंने एकाध बार उससे ज़बरदस्ती करने की भी कोशिश की, उसे मारा-पीटा भी, पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ। मैंने उससे यह भी पूछा कि क्या वह अपने माता-पिता के पास लौट जाना चाहती है? वह बोली कि वहाँ तो वह तभी जाएगी, जब मैं उसे घर से निकाल दूँ या फिर यहाँ से उसकी अर्थी उठे। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ!····क्या कोतवाल साहब के पास जाऊँ और कहूँ कि मेरी बीवी को मुझे सहवास के लिए राज़ी करवाएँ? ख़ैर, धीरे-धीरे मैंने अपने भाग्य से समझौता कर लिया। दोनों एक ही छत के नीचे सोते थे, पर एक चारपाई पर नहीं।

एक दिन मैं रामदुलारी को कुतुबमीनार दिखाने ले गया। पहली मंज़िल पर चढ़कर मैं उसे पीर कुतुबुद्दीन काकी का मक़बरा, शम्सी तालाब के एक ओर औलिया मस्जिद और दूसरी ओर अपना छोटा-सा ग़रीबख़ाना दिखाया। मैंने उसे बताया कि हम जहाँ खड़े हैं, उसके ठीक नीचे सुल्तान इल्तुतमिश की क़ब्र है। उसे कुतुबमीनार में गड़ा वह शिलापट्ट भी दिखाया जिस पर एक हिन्दू संगतराश द्वारा खुदा 'श्री विश्वकर्मा प्रसाद रचित' अंकित था। कुतुबमीनार से उतरकर मैं उसे कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद दिखलाने ले गया। मैंने उसे बताया कि कैसे तुर्कों ने सत्ताइस हिन्दू और जैन-मंदिरों को तोड़कर विष्णु और लक्ष्मी की मूर्तियों को इसके प्रवेश-द्वार के नीचे गाड़ दिया, ताकि वे मस्जिद में आते-जाते मुसलमानों के पाँवों-तले रौंदी जाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामदुलारी ने मस्जिद में घुसने से इन्कार कर दिया। वापस लौटते हुए उसकी नज़र एक खम्भे पर पड़ी जो शायद पहले किसी हिन्दू मंदिर का रहा होगा। उसने उस पर हिन्दू देवी-देवताओं की क्षत-विक्षत आकृतियाँ देखीं तो खम्भे पर सिर टिकाकर रोने लगी। किसी की नाक नदारद थी, किसी की बाँह टूटी हुई थी, किसी का वक्ष कटा हुआ था। रामदुलारी से यह सहन न हो सका। उसे रोता देख वहाँ छोटी-मोटी भीड़ इकट्ठा हो गई। मैंने ऐसे दिखाया कि उसकी तबीयत ख़राब है और उसे खींचकर घर ले आया। अगर मैंने मुसलमानी लिबास न पहन रखा होता और उसने भी बुर्क़ा न डाल रखा होता, तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए होते। (उन दिनों प्रतिष्ठित हिन्दू घरों की महिलाएँ भी बुर्क़ा पहना करती थीं)। घर आकर मैंने उसे उसकी मूर्खता पर बहुत फटकारा।

मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं की नफ़रत की बात मेरी समझ में नहीं आती। मुसलमानों ने हिन्दुस्तान पर फ़तह पाई, तो हमारे देवी-देवताओं ने उनसे हमारी रक्षा क्यों नहीं की? महमूद ग़ज़नवी ने हिंदुस्तान पर सत्रह बार हमला किया—एक-दो बार नहीं, पूरे सत्रह बार। उसने थानेसर के चक्रस्वामी मंदिर का विध्वंस किया, उसे कुछ नहीं हुआ। उसने सोमनाथ का विनाश किया, फिर भी उसका बाल बाँका तक न हुआ। क्यों? कहा जाता था कि समुद्र देवता तक चौबीस घंटों में दो बार भगवान सोमनाथ का पाद-प्रक्षालन कर साष्टांग प्रणाम करते थे। लेकिन महमूद ग़ज़नवी से उनकी रक्षा करने समुद्र भी नहीं आया। कहते हैं कि महमूद ग़ज़नवी पराजित हिन्दू राजाओं की अँगुलियाँ काट लिया करता था। उसका ख़ज़ाना हिन्दुओं की अँगुलियों से भरा हुआ था। वह अपने-आपको अमीनुद्दौला, यानी अल्लाह का दाहिना हाथ और ज़िल्ले-इलाही, यानी धरती पर खुदा का साया कहता था।

मुसलमान अब हिन्दुस्तान के मालिक बन चुके थे। अगर हम उन्हें अपने शासकों के रूप में मान्यता देने को तैयार हो जाते तो वे हमें अपनी ज़िदगी जीने का हक़ भी दे देते। लेकिन हिन्दू अपने ही झूठे दम्भ में डूबे रहे कि यह मुल्क हमारा है; हम इन गौ-हत्यारों और मंदिर-भंजकों को खदेड़ देंगे।

जिन हिन्दुओं ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था, उन्हें नफ़रत की नज़र से देखा जाता था और अछूतों से भी बदतर व्यवहार किया जाता था।

हिन्दू बीते वैभव की बासी यादों में ही जीते रहे। जहाँ मिलते वहीं तोमर और चौहान सम्राटों के महान काल की गुण-गाथाएँ गाने लगते।

मैंने अपने हिन्दू मित्रों से सौ बार कहा कि अरे भाई, कौन इन्कार करता है कि हमारे पूर्वज महान नहीं थे? लेकिन हमें तो आज के बारे में सोचना चाहिए। हम मुसलमानों से नहीं लड़ सकते। वे हमारे मुक़ाबले ज़्यादा ताक़तवर और लड़ाकू प्रकृति के हैं। अक़्लमंदी इसी में है कि इनसे मिल-जुलकर शांति से रहा जाय। लेकिन मेरे दोस्तों के दिमाग़ में तर्कपूर्ण बातें नहीं घुसतीं। दुनिया का हर एक इन्सान जानता है कि अगर तराज़ू के एक पलड़े में वेदों को रखा जाय और दूसरे में व्यावहारिक ज्ञान, तो व्यावहारिक ज्ञान का पलड़ा ही भारी रहेगा। पर मेरे हिन्दू मित्रों को यह कभी समझ में नहीं आया। वे मेरी ओर अवहेलना-भरी नज़र से देखते और मुझे मुसलमानों का दल्ला कहते। उनका महान नायक तो पृथ्वीराज चौहान ही था और रहेगा, जिसने मुहम्मद ग़ोरी को 1191 ईसवी में तराई में हराया था। लेकिन दूसरे ही साल वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी युद्धभूमि में मुहम्मद ग़ोरी से पराजित होकर मारा गया। उनके पास इसका भी जवाब था। वे कहते, 'पृथ्वीराज ने एक ही ग़लती की कि जब उसने म्लेच्छ को पहली बार हराया था, तभी उसकी गर्दन काट देनी चाहिए थी।' वैसे देखा जाय तो कोई भी पृथ्वीराज के बारे में ठीक-ठाक नहीं जानता। चंद बरदाई नामक कवि ने ज़रूर उसके बारे में काफ़ी कुछ लिखा था। महान पृथ्वीराज चौहान की कई रानियाँ थीं और उन्होंने एक पड़ोसी राजा की कन्या का अपहरण भी किया था। लेकिन हिन्दू दोस्तों के बीच बैठकर आप एक शब्द भी उसके ख़िलाफ़ नहीं कह सकते थे। श्री राम के बाद वे सम्राट पृथ्वीराज चौहान को ही पूजते हैं।

मैंने पाया कि मैं न तो हिन्दुओं से जुड़ा हूँ, न मुसलमानों से। अपनी पत्नी को कैसे समझाता कि ब्राह्मण तो देवी-देवताओं के लिए आए चढ़ावे पर जीते हैं। राजपूतों और जाटों के पास अपनी ज़मीनें हैं, अहीरों-गूजरों के पास उनके मवेशी और बनियों के पास उनकी दुकानें हैं। बेचारे कायस्थ ही हैं जिन्हें अपने दिमाग़ और नरकट की क़लमों पर निर्भर रहना पड़ता है। और उनके दिमाग़ों और क़लमों की क़ीमत अदा करनेवाला जो वर्ग है वह सिर्फ़ एक ही है और वह है हुक्मरानों का, जो कि सारे के सारे मुसलमान हैं।

हिन्दुओं ने मुझे बिरादरी से बाहर कर रखा था। मेरी अपनी पत्नी तक मुझसे दूर भाग रही थी। मुसलमानों को भी मेरा साथ कहाँ पसन्द था! एक तरह से तो वे भी मेरा शोषण ही कर रहे थे।

उन्हीं दिनों मैंने निज़ामुद्दीन के बारे में सुना। लोगों ने मुझसे कहा कि यमुना-किनारे रहनेवाले ग़यासपुर के दरवेश के पास जाओ। देखना, तुम्हारी सारी तकलीफ़ें छू-मंतर हो जाएँगी। वे उसे औलिया और ख़्वाजा साहब भी कहते थे। लेकिन कुछ ऐसे पढ़े-लिखे मुसलमान भी थे जो उसे पाखंडी कहते थे और सोचते थे कि जल्दी ही उसकी पोल खुल जाएगी। मैंने अपनी राय ज़ाहिर करने के लिए अपना मुँह खोलना ठीक नहीं समझा और हवा के रुख का इंतज़ार करने लगा।

समय आने पर सुल्तान ने निज़ामुद्दीन को नास्तिकता के आरोप के तहत बुलवा भेजा। मुक़द्दमे वाले दिन मैं भी अपने काम से छुट्टी लेकर दरबार में गया।

ग़यासुद्दीन बलबन का नाम सुनते ही मारे डर के लोगों का पेशाब निकल जाता था। उसका गुस्सा बड़ा भयंकर था और वह अपनी आँख से आँख मिलानेवाले को फाँसी की सज़ा सुना देने के लिए मशहूर था। दो हब्शी हमेशा उसके साथ रहा करते थे, जिनका काम होता था—मौत की सज़ा पाए लोगों का सिर धड़ से अलग करना।

वह भी क्या मंज़र था! अबीसीनियाई अंगरक्षकों से घिरा सुल्तान अपनी गद्दी पर विराजमान था। नंगी तलवारें खींचे वही दो काले जिन्न उसके पीछे खड़े थे और इधर-उधर सैकड़ों की तादाद में खड़ी थी तुर्क सेना। सिंहासन के एक ओर रेशम के क़ीमती चोले पहने पाँच उलेमा (मौलवी) खड़े थे। इन सबके सामने मेरी ही उम्र का एक युवक खड़ा था। उसने काले रंग का मोटा ऊनी लबादा पहन रखा था और सिर पर हरे रंग का रूमाल बाँधा हुआ था। उसके साथ उस-जैसी वेशभूषा में ही उसके तीन अनुयायी भी खड़े थे। यही युवक ग़यासपुर का सूफ़ी फ़क़ीर निज़ामुद्दीन था।

सुल्तान ने निज़ामुद्दीन को सम्बोधित करते हुए कहा, "मुझे उलेमा (मौलवियों) ने बताया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि तुम मुसलमानों और काफ़िरों में कोई फ़र्क़ नहीं करते। और यह भी कि तुम ख़ुदा और इन्सान के बीच बिचौलिए की भूमिका निभाते हो। और यह भी कि तुम ऐसा प्रचार कर रहे हो, जिससे इन्सान और ख़ुदा के बीच का फ़र्क़ मिटता है। मैंने यह भी सुना है कि तुम्हारी मस्जिद के अहाते में तुम्हारे शागिर्द नाचते-गाते घूमते हैं। इसलिए तुम शरीयत के पाक क़ानून को तोड़ने के गुनहगार हो। बोलो, तुम्हें अपने बचाव में कुछ कहना है?"

निज़ामुद्दीन ने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "आलीजाह! यह सच है कि मैं हिन्दुओं और मुसलमानों में फ़र्क़ नहीं करता, क्योंकि मैं उन दोनों को ही अल्लाह की औलाद समझता हूँ। ये उलेमा कुरान के नाम पर आपको काफ़िरों को क़त्ल करने और मंदिरों को तोड़ने के लिए उकसाते हैं, क्योंकि ये समझते हैं कि इससे अल्लाह खुश हो जाएगा। मैं कुरान का खुलासा दूसरी तरह करता हूँ। मेरा मानना है कि ख़ुदा की इबादत करने का सबसे नेक तरीक़ा है ख़ुदा के बंदों की ख़िदमत करना। रही इन्सान और ख़ुदा के बीच बिचौलियागिरी की बात, तो अगर आप इसे गुनाह समझते हैं, तो मैं अपना गुनाह क़बूल करता हूँ। हज़रत मुहम्मद ने कहा था, 'जो बिना इमाम के मरता है वह काफ़िर की मौत मरता है।' हम सूफ़ी लोग इस बात को मानते हैं और हमारा मानना है कि जिसका कोई शेख़ नहीं, उसका कोई मज़हब नहीं।....

"ये उलेमा नहीं जानते कि ख़ुदा अक्सर अपने-आपको अपने बंदों के सहारे ज़ाहिर करता है। इनको यह भी नहीं मालूम कि अल्लाह को किताबी इल्म से या बहस-मुबाहसों से नहीं समझा जा सकता। हज़रत पैग़म्बर से जब पूछा गया कि क्या वे ख़ुदा को जानते हैं, तो उन्होंने भी यही जवाब दिया कि नहीं, मैं नहीं जानता। ख़ुदा को सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है।"

सुल्तान ने यह सब सुनने के बाद उलेमा (मौलवियों) की जानिब गर्दन घुमाई। उनके इमाम ने सुल्तान के तख़्त के सामने घुटनों के बल झुककर ज़मीन को चूमते हुए कहा, "जहाँपनाह, आप तो सबसे बड़े आलिम (बुद्धिमान) और इल्मगार हैं। आपसे बड़ा कोई दादरस (न्यायी) नहीं है। हम जैसे कीड़ों-मकौड़ों से पाक कुरान की व्याख्या करवाने की आपको ज़रूरत नहीं है। हज़ूर को मालूम होना चाहिए कि यह आदमी—निज़ामुद्दीन ख़ुदा की मुहब्बत की बातें सिर्फ़ लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए करता है।"

इमाम ने कुरान की एक प्रति निकालकर माथे से लगाई और उसमें से एक अंश पढ़ने लगा। वहाँ जमा भीड़ ने 'वाह, वाह, सुभान अल्लाह' के नारों से उसकी वाहवाही करनी शुरू कर दी, यद्यपि उस भीड़ में से कुछ ही अरबी भाषा के जानकार थे। तुर्की में तर्जुमा करने के बावजूद शायद कुछेक लोग ही कुरान की आयतों का अर्थ समझ सकते थे।

सुल्तान फिर दरवेश की ओर मुड़ा और पूछा कि उसके पास क्या सबूत है कि उसका ख़ुदा से सम्पर्क है? निज़ामुद्दीन ने बड़े शायराना अंदाज़ में जवाब दिया, "ऐ सुल्तान और ऐ दानिशमंद उलेमा! और यहाँ इकट्ठे लोगो! क्या आपको मालूम है कि प्यार करना और प्यार पाना क्या चीज़ होती है? शायद आप लोगों ने जिस प्यार को जाना है, वह है सिर्फ़ औरत की मुहब्बत। हम सूफ़ी लोग सिर्फ़ ख़ुदा से इश्क़ करते हैं, और किसी से नहीं। जब हमारे भीतर ख़ुदाई भावना का प्रवेश होता है तो हम ऐसी-ऐसी बातें बोलने लगते हैं कि आम लोग हमें देखकर यही समझने लगते हैं कि हम ख़ुदा से बातें कर रहे हैं और ख़ुदा को पहुँचे हुए हैं। पर इन सब बातों को संजीदगी से लेने की ज़रूरत नहीं है। आपने उस फ़ाख़्ता की कहानी तो सुनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही होगी जो अपने ख़ाविंद की बात मानने को राज़ी नहीं हो रही थी। आवेश में आकर नरपक्षी ने कहा, 'अगर तू मेरी नहीं बनी तो मैं बादशाह सॉलोमन का तख़्त उलटकर रख दूँगा !' हवाएँ उसकी बात राजा सॉलोमन तक ले गईं। सॉलोमन ने फ़ाख़्ता को बुलवा भेजा और पूछा कि आख़िर माजरा क्या है ? नर फ़ाख़्ता ने कहा, 'अल्लाह के नबी, ऐ बादशाह, आशिक़ों की बातों पर कहा-सुनी नहीं होनी चाहिए।' उसका जवाब सुनकर सॉलोमन खुश हो गया। वैसे ही मैं भी समझता हूँ कि मेरा जवाब भी सुल्तान बलबन को अच्छा ही लगा होगा !"

लोगों में निज़ामुद्दीन की बातों पर भी 'वाहवाही' की फुसफुसाहटें उभरने लगीं।

सुल्तान ने उलेमा से संगीत पर उनके अधिकार की बाबत पूछताछ की। उसके इमाम ने एक और किताब खोली (वह अपने साथ बहुत-सी किताबें लेकर आया था) और अरबी में कुछ पढ़ा। फिर तुर्की में तर्जुमा करके लोगों को समझाया। भीड़ में से फिर वाहवाही की आवाज़ें उभरने लगीं।

सुल्तान अब निज़ामुद्दीन की ओर घूमा। दरवेश तो अपने साथ कोई किताब लाया नहीं था। याददाश्त से ही उसने नाच-गाने को लेकर पैग़म्बर के उपदेश के बारे में बताना शुरू किया, "जब अल्लाह का नूर किसी इन्सान के भीतर उतरता है तो यह उस आदमी को खुशी से गाने और नाचने पर मजबूर कर देता है। अगर कोई इसे अल्लाह को पाने का मुआमला समझे, तो खुदा ख़ैर करे !"

सुल्तान ने सारे मामले पर कुछ देर सोचा और कुछ विचार कर अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। कुछेक बाल जो हाथ में आ गए, उन्हें वह ग़ौर से देखने लगा। माहौल में छाई ख़ामोशी बेहद डरावनी लग रही थी। आख़िरकार सुल्तान ने खँखारकर गला साफ़ करते हुए कहना शुरू किया, "हम ग़यासपुर के दरवेश निज़ामुद्दीन को उलेमा के सभी इलज़ामों से बरी करते हैं।"

वहाँ जमा भीड़ ने सुल्तान के न्याय की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कई लोग दौड़कर दरवेश के लम्बे चोग़े की कन्नी को चूमने लगे।

अगले दिन मैंने कोतवाल साहब से निज़ामुद्दीन के बारे में पूछा। आसमान की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "वह वहाँ पहुँचा हुआ सिद्ध पुरुष है। उसने अनेक नास्तिकों को सच्ची राह दिखाई है। किसी वीरवार के दिन या पूरनमासी के दिन उसके पास जाओ तो तुम खुद ही जान जाओगे कि वह कैसे-कैसे चमत्कार कर सकता है।"

अगले बृहस्पतिवार मैंने ग़यासपुर के लिए एक इक्का मँगवाया। ग़यासपुर महरौली से कोस-भर से थोड़ा ही अधिक दूर होगा। जब मैं दरगाह पर पहुँचा तो वहाँ खड़े किसी सेवक से पूछा कि क्या मैं निज़ामुद्दीन साहब से मिल सकता हूँ? वह बोला, "ख़्वाजा साहब अपनी कोठरी में ध्यान लगाए बैठे हैं। वे लोगों से सिर्फ़ शाम को ही मिलते हैं। अभी आप जाकर लंगर में खाना खाइए। शाम को आइएगा।"

मैं लंगर खाने चला गया। मुसलमान, हिन्दू ग़रीब, अमीर—सभी दाल के दोनों और सूखी रोटी के टुकड़ों के लिए चिल्ला-चिल्लाकर छीना-झपटी कर रहे थे। एक टुकड़ा पाने के लिए मुझे भी भीड़ को चीरते-फाँदते आगे बढ़ना पड़ा। रोटी लेकर मैं अहाते में आकर बैठ गया। वहीं क़व्वालों की एक टोली हिंदवी के गीत गा रही थी। मुझे पता चला कि वह गीत अब्दुल हसन नाम के किसी शायर ने लिखा है, जो दरवेश का बेहद क़रीबी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाम होते-होते पता चला कि दरवेश अपनी कोठरी से बाहर निकल आए हैं। जैसे गुड़ के चारों ओर मक्खियाँ इकट्ठा हो जाती हैं, वैसे ही लोग दरवेश को घेरकर खड़े हो गए। भीड़ को चीरकर मैं भी उनके पास पहुँचा और उनके लबादे को चूमने लगा। तभी मेरी आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी। दरवेश ने मेरे सिर पर अपना हाथ रखा। मुझे लगा जैसे मेरी रीढ़ में कोई बिजली दौड़ गई हो। ख़स जैसी ख़ुशबू मेरे पूरे बदन में फैल गई। उन्होंने मेरा आँसुओं-भरा चेहरा ऊपर उठाया और कहा, "जैसे अल्लाह ने मेरे चोले में तुम्हारे आँसू डाले हैं, वैसे ही वह तुम्हारे दु:खों को भी मुझे सौंप दे।" उनके ऐसा कहने की देर थी कि मैं ऐसा हल्का हो गया मानो हवा में उड़ता रुई का रोआँ होऊँ।

"अब्दुल, मेरे बेटे!" उन्होंने कहा, "तुम तो हज़रत कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी के मक़बरे के पास रहते हो न! हर सुबह वहाँ जाया करो और अल्लाह के निन्यानवे नामों को याद किया करो। तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी होंगी। और जब भी तुम्हारा जी भारी हो, यहाँ चले आना। हमारे ग़रीबख़ाने के दरवाज़े किसी के लिए भी बंद नहीं हैं।"

महरौली को लौटते हुए मैंने अपने-आपसे पूछा, 'इन्हें कैसे मालूम कि मैं बख़्तियार काकी के मक़बरे के पास रहता हूँ? यह भी इन्हें कैसे पता चला कि मेरे मुसलमान दोस्त मुझे अब्दुल कहकर बुलाते हैं? और अगर किसी ने यह बता भी दिया हो कि मैं कौन हूँ और कहाँ रहता हूँ, तो भी इन्हें यह कैसे मालूम हुआ कि हिन्दू होकर भी मैं अल्लाह के निन्यानवे नाम जानता हूँ?"

मैं अपने-आपको सँभाल नहीं रख पा रहा था। ऐसा कोई भी तो नहीं था जो मेरे मन की दुविधा को समझ सकता। अतः मैंने सब-कुछ अपनी पत्नी को बताया। जब से हमारा विवाह हुआ था, यह पहला मौक़ा था कि रामदुलारी ने मेरी किसी बात में दिलचस्पी दिखाई थी। जब मैं सब-कुछ कह चुका तो वह दबे स्वर में बोली, "किसी दिन मुझे भी साथ ले चलो न!" उत्साह में भरकर मैंने उसका हाथ थाम लिया और देखा कि उसका हाथ मेरे हाथ में आते ही निर्जीव-सा हो गया। मुस्लिम पंचांग के अनुसार अगले महीने की पहली तारीख़ को मैं रामदुलारी को ग़यासपुर ले गया। धूल-भरी सड़क पर इक्कों की क़तारें चल रही थीं। उन्हीं में से एक में हम भी थे। औरतों और बच्चों से भरी बैलगाड़ियाँ भी साथ चल रही थीं और साथ ही लाठियों की नोकों पर जूते लटकाए मर्दों की टोलियों भी चल रही थीं।

निज़ामुद्दीन की दरगाह में बेशुमार भीड़ इकट्ठी थी। चूड़ियाँ, मिठाइयाँ, कपड़े और दवाइयाँ बेचनेवालों का बाज़ार-सा लगा हुआ था। मुझे डर था कि रामदुलारी को औलिया के दर्शन का मौक़ा मिल भी पाएगा या नहीं। मैं उसे लंगर खाने नहीं ले गया, क्योंकि वह मुसलमान के हाथ का पका खाना तो छूती तक नहीं थी। हम लोग दुकानों के इर्द-गिर्द घूमते रहे और बाज़ीगरों तथा कलाबाज़ों के करतब देखते रहे, भालुओं और बन्दरों के तमाशे देखते रहे। सब कहीं घूम-घामकर हम एक पेड़ के नीचे जा बैठे। मैं सोच-सोचकर परेशान हुआ जा रहा था कि घंटे-भर में ही सूरज डूब जाएगा और इक्केवाले आ-आकर वापस लौटने की गुहार लगाने लगेंगे, क्योंकि रात होने के पहले ही वे महरौली लौट जाना चाहते हैं। मैं अपने ही ख़यालों में खोया हुआ बैठा था कि एक दरवेश मेरे निकट आकर बोला, "अब्दुल? क्या नाम है तुम्हारा भाई, अब्दुल या अब्दुल्ला? ख़्वाजा साहब तुम्हें याद फ़रमा रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हमें मस्जिद के पीछे के अहाते में ले गया। वहीं औलिया निज़ामुद्दीन आगन्तुकों से मिल रहे थे। दरवेश ने भीड़ को चीरते हुए रास्ता बनाया और हम उनके पीछे-पीछे चलने लगे।

मैंने ख़्वाजा साहब के चोले की कन्नी को चूम लिया। रामदुलारी ने ज़मीन पर गिरकर औलिया को मत्था टेका। उन्होंने हाथ बढ़ाकर उसको आशीर्वाद दिया, "बेटी, अल्लाह तेरे मन की मुरादें पूरी करे। उसने चाहा तो तेरी गोद जल्दी ही भरेगी। बेफ़िक्र होकर जाओ।" फ़क़ीर के इतना कहने की देर थी कि भीड़ ने हमें दूर ठेल दिया।

रामदुलारी की गोद भरेगी ? क्या कह दिया ख़्वाजा साहब ने ? कहते हैं इन्हें लोगों के मन की किताबें पढ़नी आती हैं। तो रामदुलारी के मन को क्यों नहीं पढ़ पाए थे ? रामदुलारी के चेहरे के भावों को देखकर लग रहा था कि वह शर्म से लाल हुई जा रही है। महरौली लौटते हुए वह रास्ते-भर मेरे स्पर्श से बचती रही। हम लोग औलिया मस्जिद के पास पहुँचकर इक्के से नीचे उतरे और घर की ओर बेगानों की तरह ऐसे चल पड़े, जैसे एक-दूसरे से कोई लेना-देना ही न हो। मैं आगे-आगे चलता बंद दुकानों के किवाड़ों को यों देख रहा था, जैसे पहले कभी न देखा हो। वह बुर्क़े में लिपटी मेरे पीछे-पीछे चली आ रही थी।

जैसे ही हमने अपने आँगन में प्रवेश किया, रामदुलारी सुबह का खाना गर्म करने के लिए चूल्हा जलाने लगी। मैंने आले में धरे दीपक में बत्ती दी और दिन-भर की घटनाएँ दर्ज करने बैठ गया। मुझे मेरी थाली थमाकर वह अपना खाना खाने चौके में चली गई। खाना समाप्त कर मैंने उसे अपनी ख़ाली थाली थमा दी और पान खाने बाज़ार की ओर निकल गया।

जब तक वापस लौटा, रामदुलारी बर्तन माँज चुकी थी और दीवार की तरफ मुँह किए अपनी चारपाई पर लेटी थी। दीया-बत्ती बुझाकर मैं भी अपनी चारपाई पर आ लेटा। नींद तो आ नहीं रही थी। ख़्वाजा साहब ने कहा था हमारे यहाँ बच्चे होंगे, मेरा मन इसी सोच में उलझा हुआ था⋯रामदुलारी माँ बनेगी कैसे, अगर ऐसे ही मुझसे कन्नी काटती रही तो। घंटा-भर इधर-से-उधर करवटें बदलने के बाद मैंने बड़ी मधुरता से उसे पुकारा, "रामदुलारी !"

"हूँ !"

"सो गई क्या ?"

"नहीं।"

कोतवाली के घंटे ने बताया कि आधी रात हो चुकी है। मैंने एक बार फिर रामदुलारी से पूछा कि वह सो तो नहीं रही ? उसने फिर कहा, "नहीं।" मुझे ऐसा अहसास हुआ कि शायद अब वह मेरे स्पर्श को 'ना' नहीं करेगी। मैं उठकर उसकी चारपाई तक चला आया और उससे पूछा, "तुम्हारी बग़ल में लेट जाऊँ ? ठंड लग रही है।" उसने मेरे लिए जगह बनाते हुए कहा, "तुम्हारी मर्ज़ी !"

मैं उसके साथ लेट गया। महीनों से अवरुद्ध आवेग शरीर में उमगने लगा था। प्रचंड धारा जैसे रास्ते में आते सब-कुछ को बहाए लिये जाती है, वैसे ही मेरे मन का सारा भय-संकोच कामावेग में बह चला था। मैंने उसकी साड़ी उतार फेंकी। वह मुझे अपनी भीतर स्वीकारने को तत्पर थी। लेकिन उससे पहले ही मैं उसकी जंघाओं पर स्खलित हो गया। मारे शर्म के अब मैं उसे मुँह दिखाने क़ाबिल भी अपने-आपको नहीं पा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामदुलारी अपना बदन धोने को उठी। घड़े में लोटा डालकर उसने पानी निकाला और अपनी जाँघों को धोने लगी। मैं सितारों की रोशनी में उसकी पीतवर्णी देह को निहारे जा रहा था। उसने अपनी साड़ी से बदन पोंछा और फिर उसे ही लपेट लिया। वह असमंजस में पड़ी कुछ देर वैसे ही खड़ी रही कि अब किस चारपाई पर जाकर लेटे। तभी मैंने हाथ बढ़ाकर उसे अपनी ओर खींच लिया। उसने भी प्रतिरोध नहीं किया। मेरी कामेच्छा पुनः जागने लगी थी। मैंने उसकी देह को पुनः अनावृत करना शुरू किया और उसने भी मुझे नहीं रोका। मेरे आलिंगन में उसका नग्न शरीर उत्तप्त होने लगा। इस बार मैंने अपने आवेग पर नियंत्रण रखा। मुझे लगा कि इस सम्मिलन के लिए वह मुझसे भी अधिक आतुर है। एक हल्की-सी चीख़ उसके अधरों पर उभरी और अन्ततः रामदुलारी मेरी हो गई।

मैंने दीए में फिर से बत्ती दी और चादर पर लगे ख़ून के धब्बों को धोने में रामदुलारी की मदद करने लगा। इससे निबटे तो हम पुनः एक-दूसरे में समाने को आतुर होने लगे। वह पूरी रात तो बस ऐसे ही बीती।

सूरज मुँह पर पड़ने लगा, तो मेरी नींद टूटी। कानों पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं।

रामदुलारी ने तब तक नहा-धोकर खाना भी बना लिया था। उसने वही लाल साड़ी पहन रखी थी जो दुलहिन बनकर आते समय पहनी हुई थी। उसने मुझसे घूँघट भी निकाला हुआ था। मुझे अपनी खाट से उठते देखकर वह लजाकर भीतर भाग गई। मैं भी उसके पीछे दौड़ा और भीतर से चिटखनी चढ़ा दी।

उसके बाद से तो रामदुलारी को देख-देखकर मेरी आँखें ही नहीं भरतीं। उसकी हर अदा मेरे भीतर उसे छूने की चाह जगाने लगती। उससे दूर होना तो जैसे दोज़ख़ का दुःख भोगना था। काम ख़त्म होते ही उसे अपनी बाहों में भरने के लिए मैं घर की ओर दौड़ा आता। वह भी अब बेहद नख़रेबाज़ होती जा रही थी—"अजी, मैं कोई कोठेवाली हूँ कि जब चाहा धर दबोचा!" मैं उसके लिए तरह-तरह के भेंट-उपहार ख़रीदकर लाता रहता, कभी लाल माणिक जड़ी नाक की कील, कभी काँच की रंगीन चूड़ियाँ, कुछ भी बढ़िया—जो बाज़ार में मिल रहा होता। कुछ महीनों तक तो हमारी दुनिया बस उस चारपाई तक ही सिमटी रही, जिस पर हम दिन-रात पड़े खेलते रहते।

रामदुलारी और मैं अब उस समुदाय के अंग बन गए थे जो हिन्दू-मंदिरों और सूफ़ी दरगाहों—दोनों जगह पूजा-अर्चना किया करता था। हम हिन्दू-मुस्लिम दोनों त्यौहारों को मनाया करते। दशहरे पर रामलीला देखने जाया करते, दीवाली पर अपने घरों की देहरी-मुँडेरों पर दीपक जलाते, होली पर अपने हिन्दू यार-दोस्तों पर रंग फेंकते और ईद पर अपनी जान-पहचान के मुसलमानों से भेंट-उपहारों की अदला-बदली करते। हम मुस्लिम पीरों के इन्तक़ाल की सालगिरहों पर कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी के मक़बरे पर जाया करते। ग़यासपुर तो महीने में एक बार जाते ही।

रामदुलारी कपड़े तो अब भी हिन्दू औरतों की तरह ही पहनती थी, माँग में लाल सिंदूर और माथे पर बिंदी लगाती थी। गले में मंगलसूत्र पहनती थी। पर मैंने अपना पहरावा तुर्कों-जैसा ही रखा, घुटवाँ टोपी और पगड़ी। उन्हीं की तरह छँटी हुई दाढ़ी और मूँछ रखता। उन्हीं की तरह बोलता भी था। वे कहते 'अस्सलाम-वालेकुम' तो मैं जवाब देता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वालेकुम-अस्सलाम।' वे मुझसे मेरा हाल-चाल पूछते तो मैं जवाब देता, 'अल-हम्दु-लिल्लाह।' पर अगर वे पूछते, "अब्दुल्ला, तुम असली मुसलमान कब बनोगे?" तो मैं तुरन्त जवाब देता, "जल्दी ही, (अगर) खुदा ने चाहा तो, इंशा अल्लाह!" और अगर कोई मुझसे पूछता कि हम हिन्दू हैं या मुसलमान, तो मैं जवाब देता कि हम दोनों हैं। मुसलमानों की कट्टरता और हिन्दुओं के तिरस्कार से हमारी रक्षा करनेवाला एक ही छत्र था—औलिया निज़ामुद्दीन।

दिन, हफ़्ते और महीने यों ही बीतते रहे। वर्ष के अन्त तक रामदुलारी के पाँव भारी हो चुके थे और प्रसव के लिए वह अपने माता-पिता के पास मथुरा जाने की तैयारी करने लगी थी।

जब मुझे पुत्र-प्राप्ति की सूचना मिली तो मैंने तत्काल कोतवाल साहब और अपने दोस्तों-यारों के घर मिठाई के थाल भिजवाए। कुछ हफ़्ते बाद मैं अपनी पत्नी और बेटे को लेने ससुराल गया। रामदुलारी की बहन ने मुझसे ख़ूब छेड़छाड़ की। मुझे चिढ़ाते हुए उसने पूछा, "क्यों जीजाची, क्या बच्चे की सुन्नत करवाओगे? और नाम क्या रखोगे हमारे भाँजे का? मुहम्मद, अली या फिर… ?" उसने चाहे जो भी कहा हो, पर मज़ा बहुत आया ससुराल में।

मैंने अपने बेटे की सुन्नत नहीं करवाई, बल्कि उसका मुंडन-संस्कार हुआ। पंडित ने आकर मंत्रोच्चार के साथ विधिवत् सब-कुछ सम्पन्न करवाया। उसका नाम मैंने कमल रखा, क्योंकि यह नाम हिन्दू, मुसलमान—दोनों में चल सकता था। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना था कि हिन्दी में कमल कहो और अरबी में 'म' पर ज़रा-सा ज़ोर देकर कमाल कह दो। हम बच्चे को योगमाया के मंदिर में ले गए और पुजारी से उसे चंदन का तिलक लगवाया। फिर ग़यासपुर ले जाकर ख़्वाजा साहब से आशीर्वाद दिलवाया। मैंने औलिया के प्रति अपनी कृतज्ञता इस रूप में ज़ाहिर की कि अपने संरक्षक के रूप में उसका नाम एक शिलापट्ट पर खुदवाया और उसे अपने घर के बाहरवाली दीवार पर जड़वा दिया।

जिन लोगों के पीर या गुरु नहीं होते, उन्हें मालूम ही नहीं होता कि इन्सान की ज़िंदगी में उनकी क्या अहमियत होती है। वे उनके लिए माता-पिता से भी बढ़कर होते हैं। शागिर्द अपने गुरु को अपने पिता से बढ़कर आदर देते हैं। उन्हें अपनी माता से अधिक लगाव अपने गुरु से होता है। वे गुरु की छाती से लगकर स्नेह का दूध पीते हैं और गुरु की गोद में माँ की तरह सोते हैं। गुरु को भक्तजन इतना प्रेम करते हैं, जितना कि कोई नवविवाहिता भी अपने दूल्हे को नहीं करती होगी। भक्त गुरु को तन, मन, धन से चाहते हैं। गुरु धरती पर उनके लिए ईश्वर का साक्षात् स्वरूप होता है। लेकिन वही गुरु अगर कहीं दूर चला जाय या कोई भक्त ग़लत गुरु को धारण कर ले, तब क्या-कुछ अनर्थ नहीं हो सकता—यह भी जानी हुई बात है। ख़्वाजा निज़ामुद्दीन जब पंजाब चले गए तो दिल्ली का सारा इलाक़ा किसी बेसहारा औरत की तरह अनाथ हो गया और यहाँ अराजकता की आँधियाँ चलने लगीं। एक मुसीबत जाती तो दूसरी मुँह बाए आ खड़ी होती।

सुल्तान ग़यासुद्दीन बलबन का सबसे बड़ा बेटा शहज़ादा मुहम्मद मंगोलों से लड़ते-लड़ते मारा गया। बाइस सालों तक हिन्दुस्तान पर लौह हस्त से शासन करनेवाला ताक़तवर सुल्तान औरतों की तरह ज़ार-ज़ार रोया। उसने खाना-पीना, सोना और यहाँ तक कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकाज पर ध्यान देना भी छोड़ दिया। वह बीमार पड़ गया, पर उसने शाही हकीम को अपनी नब्ज़ तक नहीं देखने दी। कुछ ही दिनों में सुल्तान सूखकर काँटा हो गया और चल बसा।

अब तख़्त के कई हक़दार पैदा हो गए। मुझे तो उनके नाम तक याद नहीं रहे। वे सब आपस में ही लड़-लड़ाकर मारे गए। तब ख़िलजी वंश का एक बूढ़ा—जलालुद्दीन फ़िरोज़ दिल्ली के तख़्त का मालिक बना। उसके बेटों ने उसकी मौत का भी इंतज़ार नहीं किया और उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। उनमें से कुछ तो एक नक़ली गुरु सीदी मौला के चंगुल में फँस गए।

सीदी मौला की दरगाह में चलनेवाले लंगर में ऐसे-ऐसे पकवान बनते थे जो सिर्फ़ शाही रसोई में ही पक सकते थे और इन्हें परोसा भी सिर्फ़ अमीर-उमरावों को ही जाता था। सीदी के इर्द-गिर्द उसका गुणगान और चमचागिरी करनेवाले चापलूसों की टोली भी थी जो उसके अमीर शागिर्दों की नामावली का बखान करती रहती। कहने को तो वे यह भी कहा करते कि सीदी मौला को सांसारिक मायामोह की तनिक भी परवाह नहीं है और उसने प्रधान क़ाज़ी के पद को भी ठुकरा दिया है और बड़े-बड़े ख़ानदानों की लड़कियाँ उससे निकाह करने को उत्सुक थीं, पर मौला ने इन्कार कर दिया। मैंने अपने-आपसे पूछा, 'या अल्लाह! यह कैसा दरवेश है, जिसका एक पाँव खुदा की नाव में है तो दूसरा बादशाहों के दरबार में?' शायद वह उन लोगों में से है जो सत्ता को हथियाने के इरादों को विनम्रता के लबादे में छुपाए रहते हैं।

मैं सीदी मौला को देखने गया और पहली ही झलक में समझ गया कि वह मेरे पीर निज़ामुद्दीन के पैरों की धूल के बराबर भी नहीं है। देखने में वह पक्का धूर्त दिखता था—काली चमकीली दाढ़ी, बिच्छू के डंक की तरह मुड़ी मूँछें। अपनी तरफ़ से वह कुलीन दिखने का ढोंग करता था। इत्र का फाहा, जब देखो तब नाक में दिए सूँघता रहता। अभी जवान ही था, पर तोंद बाहर को निकल आई थी। कोई अंधा भी बता सकता था कि यह सीदी व्रत-उपवास और इच्छाओं का दमन तो क्या ही करता होगा! अमीरों को सलाह-मशविरा देने में वह इतना व्यस्त रहता था कि ग़रीबों के दुखड़े सुनने के लिए उसके पास वक़्त ही नहीं था। वह बेहद घमंडी इन्सान था और घमंडी इन्सानों के बारे में मुस्तातरफ ने भी ठीक ही कहा था—

> 'उस मूर्ख से, जिसकी गर्दन अपने घमंड में अकड़ गई है, कहो कि घमंड धर्म को भ्रष्ट करता है, मन को कमज़ोर बनाता है और ख्याति को नष्ट करता है। इसलिए ऐ मूर्ख, ज़रा इस तरफ़ ध्यान दे।'

यह सच है कि जिस तरह एक म्यान में दो तलवारें नहीं आ सकतीं, वैसे ही एक मुल्क के दो बादशाह नहीं हो सकते। दिल्ली में जलालुद्दीन फ़िरोज़ ख़िलजी की हुकूमत थी। पर उधर सीदी मौला उसके बेटे को ही उसका तख़्त पलटने को उकसा रहा था। तो, दो में से एक की हीं तो हुकूमत चल सकती थी!

बूढ़े सुल्तान को दरवेश की चाल का पता चला तो उसने सीदी मौला को सबक़ सिखाने की सोची। उसने कुछ लोगों से कहकर दरवेश के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज करवाई कि उसने सुल्तान की मुख़ालिफ़त करनेवाले एक गुट को इस शर्त पर मदद देने का वायदा किया है कि बदले में उसे एक ख़ूबसूरत जवान शहज़ादी का हाथ सौंपा जाएगा। जैसे ही यह शिकायत सुल्तान तक पहुँची, उसने सीदी मौला की गिरफ्तारी का हुक्म दे दिया। मैं उस वक़्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोतवाली में ही था, जब सीदी मौला और उसके शागिर्दों को हथकड़ियों में जकड़कर लाया जा रहा था। उसके पैर भी बेड़ियों में बँधे थे। मुझे डर था कि इन सब बातों के चलते ख़ून-ख़राबा तो होगा ही, और सीदी मौला के कोप का भाजन वह हर व्यक्ति बनेगा जो उसके दुश्मनों का साथ देगा। दरवेश के कोप का भाजन भला क्यों बना जाय? भले ही वह नक़ली क्यों न हो? मैंने कोतवाल साहब को एक दरख़्वास्त लिखकर दी और दस्त-पेचिश का बहाना बनाकर तीन दिन की छुट्टी माँगी। कहा कि हकीम साहब ने आराम करने को कहा है।

मेरा हाल पूछने दफ़्तर का एक बाबू आया करता था; उसी से मुझे सीदी बाबा के बारे में सारी ख़बर मिलती रहती थी। कोतवाल साहब ने सीदी मौला से उसका गुनाह क़बूल करवाने की बहुत कोशिश की और इस दौरान उसे मारा-पीटा भी। उसके अंडकोषों को मसला गया, उसकी गुदा में मिर्चें ठूँसी गईं, उसके मुँह में गू-मूत भरा गया। पर सीदी मौला था कि टस से मस नहीं हुआ। सुल्तान का क्रोध बढ़ता ही जा रहा था। उसने आदेश दिया कि उसे और उसके अनुयायियों को आग पर चलाया जाय। अगर फिर भी वे ज़िंदा बच जायँ तो मैं समझूँगा कि वे बेगुनाह हैं और उन्हें मुक्त कर दिया जायेगा। अगले दिन महरौली के क़रीब बहरपुर गाँव में एक लम्बी-चौड़ी बलि-वेदी सजाई गयी। मैं यह दृश्य देखना चाहता था, क्योंकि मैंने सुन रखा था कि सीदी मौला तरह-तरह के चमत्कार करने में निपुण है।

सुल्तान खुद भी यह नज़ारा देखने के लिए मौजूद था। बलि-वेदी में आग जला दी गई। जैसे ही सीदी और उसके शागिर्दों को आग में उतारा जाने लगा तो सुल्तान कुछ विचलित-सा होने लगा। उसने उलेमा को बुलवाया और उनसे पूछा कि आग से यातना देना कुरान द्वारा स्वीकृत है या नहीं। उलेमाओं ने जवाब दिया कि आग का तो काम ही जलाना है। सुनते ही सुल्तान ने अपने हुक्म को रद्द कर दिया और राजमहल में लौट गया। सीदी मौला और उसके शागिर्दों को वापस कोतवाली धकियाकर ले जाया गया। सुल्तान का गुस्सा अब कोतवाल पर उतरा। उसने कोतवाल को फटकार लगाई कि अगर वह सीदी के मुँह से कुछ उगलवा नहीं सकता तो वह कैसा कोतवाल है और अब वह खुद अपने तरीके से सीदी मौला की ख़बर लेगा।

रामदुलारी की घर पर ही रहने की लाख ताकीदों के बावजूद मैं बाबुओं की एक टोली के साथ हज़ार खम्भोंवाले महल—'क़ैसरे-हज़ार' के क़रीब बन रहे शहर—'शहरे-नौ' की ओर चल पड़ा।

सीदी मौला और उसके अनुयायियों का जत्था पहले से ही दरबारे-आम में हाज़िर था। तभी सुल्तान आकर अपनी गद्दी पर विराजा। सुल्तान का मिज़ाज कुछ ठीक नहीं लग रहा था। जिस तरह वह बोल रहा था, उससे लगता था कि उसका दिलो-दिमाग़ भी अब उसके जिस्म की तरह बूढ़ा और जर्जर हो चुका है। वह सीदी मौला पर चिल्लाया, "अपने गुनाह क़बूल कर, वरना हम तेरी जीभ ही खिंचवाकर बाहर करवा देंगे!"

पर अगर सीदी मौला अपने गुनाह क़बूल कर लेता, तब तो उसका सिर ही धड़ से अलग कर दिया जाता। खैर!

सुल्तान ने हुक्म दिया, "इस पाखंडी को हमारे पास लाओ!" सीदी मौला को आगे किया गया। बूढ़ा सुल्तान अपने तख़्त से नीचे उतरा—"शैतान की औलाद! अपने-आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीर-फ़क़ीर कहता है और बादशाहों के मामलों में दख़लंदाज़ी करता है ?" दरवेश के मुँह पर ज़ोर का एक तमाचा जड़ते हुए सुल्तान गुर्राया। दरवेश का चेहरा मार खा-खाकर नीला हो आया था और आँखें सूजकर बंद-सी हो गई थीं, पर उसकी मूँछों के लहरिए अब भी बरक़रार थे और दाढ़ी अब भी विद्रोहिणी दिख रही थी।

सुल्तान ने उसे फिर मारा और गुर्राकर कहा, "बोल, हराम की औलाद !"

आश्चर्य ! सीदी मौला ने आख़िरकार मुँह खोल ही दिया। वह साफ़-साफ़ और तेज़ आवाज़ में कहने लगा, "जलालुद्दीन ! अल्लाह के दरवेश सीदी मौला की बात को ध्यान से सुन !" वह ऐसे बोल रहा था जैसे किसी गुलाम से बात कर रहा हो, "अल्लाह तुझे अपने बंदे पर हाथ उठाने के गुनाह की सज़ा देगा। तू अपनी ही औलाद के हाथों मारा जायेगा। तेरा मुर्दा जहन्नुम की आग में जलेगा।" और अचानक सीदी मौला ने ख़ून और बलग़म का एक थक्का सुल्तान के मुँह और सफ़ेद दाढ़ी पर थूक दिया।

बूढ़ा सुल्तान पागलों की तरह चिल्ला उठा, "मूज़ी, हरामी, सूअर !" और फिर अपने दरबारियों की ओर मुख़ातिब होकर बोला, "कायरो ! तुम इस कुत्ते से अपने बादशाह की हिमाकत होते देखे जा रहे हो ?"

दरबार में सीदी मौला की मुख़ालिफ़त करनेवाला एक गुट मौजूद था। उसने सीदी मौला को धर दबोचा और मार-मारकर उसका बुरा हाल कर दिया। फिर घसीटकर उसे बाहर ले जाकर फेंक दिया। वह बोरे की तरह वहाँ पड़ा था, पता नहीं ज़िंदा या मुर्दा। फिर एक हाथी को लाकर उसे उसके पैरों-तले कुचलवाया गया। उसका सिर नारियल की तरह फूटकर दो टुकड़े हो गया। मेरे घुटने टूटे जा रहे थे। जिस्म थर-थर काँपने लगा था। मैं जहाँ का तहाँ बैठ गया और मन-ही-मन जाप करने लगा। सहज होने में मुझे कोई घंटा-भर लगा। फिर भी मेरे यार-दोस्त ही मुझे उठाकर घर लाए।

. यह कैसा मनहूस दिन बीता था !

जब सीदी मौला को शहरे-नौ ले जाया जा रहा था तो सुबह कैसी ख़ुशनुमा लग रही थी ! उसकी मौत होने की देर थी कि आसमान कोयले-सा काला हो चला था। शहर पर बहुत बड़े टिड्डी-दल ने हमला बोल दिया था। हर पेड़, हर झाड़ी पर टिड्डियाँ ही टिड्डियाँ ! कुछ ही क्षणों में पेड़-पौधों और झाड़ियों से पत्ता-पत्ता ग़ायब हो गया। उसके बाद ऐसी भयंकर आँधी आई, जैसी मैंने अपने पूरे जीवन में कभी नहीं देखी थी। ऐसा लग रहा था जैसे हाथियों के जत्थे के जत्थे बढ़े चले आ रहे हों और पेड़-पौधों को राक्षसी भयावहता के साथ जड़ों से उखाड़े फेंक रहे हों। पल-भर में ही ऐसा अँधेरा छा गया कि पता ही नहीं चला कब सूरज ढला और कब रात हुई।

"सीदी मौला का ही शाप है यह।" रामदुलारी ने कमल को गोद में उठाए मुझसे चिपकते हुए कहा।

फिर जो सीदी ने कहा था, वह भी हो गुज़रा ! सुल्तान जलालुद्दीन फ़िरोज़ को उसके अपने ही भतीजे अलाउद्दीन ख़िलजी ने क़त्ल कर दिया। यह तो मैं नहीं कह सकता कि मरहूम सुल्तान जहन्नुम की आग में जला या नहीं, लेकिन हम लोगों को तो जीते-जी ही जहन्नुम का स्वाद चखना पड़ा। गर्मियों की तपिश ने दिल्ली को जीता-जागता तंदूर बना दिया था। सूरज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ताप इतना तेज़ था कि बीस-तीस लोग हर रोज़ लू की चपेट में आकर मर रहे थे। कुएँ सूख गए थे, फ़सलें मुरझा गई थीं। बाज़ार में न आटा-चावल मिल रहा था, न कोई दाल। दूर-दराज़ के गाँवों से ऊँची क़ीमतों पर खाने-पीने का सामान लाना पड़ रहा था। भूख से तड़प-तड़पकर मरे भिखारी शहर की गलियों में पड़े मिलते। हिन्दू अपने देवी-देवताओं से प्रार्थना करते, मुसलमान अल्लाह से दुआ करते कि इस मुसीबत से दिल्लीवालों को निजात मिले। हम लोग पंजाब से ख़्वाजा साहब की वापसी की दुआएँ करने लगे।

और हमारी प्रार्थना सुन भी ली गई। एक दिन सुबह पंजाब से आए किसी दरवेश ने ख़बर दी कि हमारे ख़्वाजा निज़ामुद्दीन साहब लौट रहे हैं और महरौली पहुँचते-पहुँचते शायद उन्हें दो दिन लग जायँ। उस दिन दोपहर को कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी की मज़ार पर ख़्वाजा साहब की अगवानी की तैयारियों के सिलसिले में सलाह-मशविरा करने के लिए हम सब इकट्ठा हुए।

जिस दिन उन्हें पहुँचना था, उस दिन सैकड़ों की संख्या में लोग शहर के तमाम फाटकों पर उनका स्वागत करने को जमा थे।

ख़्वाजा साहब बेहद थके हुए और शिथिल-से लग रहे थे। लगना ही था, क्योंकि इतनी गर्मी और धूप में सैकड़ों कोस का पैदल सफ़र करके आ रहे थे। फिर भी जो उनके चोले की किनारी को चूमने या उनके पैर छूने जाता, वे सबको मुस्कुराकर आशीर्वाद देते। दरवेशों को चारों ओर घेरा डालकर आगे बढ़ने में उनकी मदद करनी पड़ी, वरना उफनती हुई भीड़ उन्हें एक पग भी आगे न बढ़ने देती। बाज़ारों में 'ख़ुशामदीद' लिखी झंडियों से मेहराबें बना-बनाकर सजावट की गई थी। छतों पर भीड़ लगाकर खड़ी औरतों की टोलियाँ उन पर गुलाब की पंखुड़ियाँ बरसा रही थीं। मर्द उन्हें फूलों के हारों से लादे दे रहे थे। क़व्वालों की टोलियों ने भी महरौली के मुख्य बाज़ार से लेकर कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी की मज़ार तक जुलूस निकाले।

ख़्वाजा साहब ने उन्हें अकेला छोड़ देने की प्रार्थना की। वे औलिया मस्जिद के गर्भगृह के एक कमरे में गए और उन्होंने दरवाज़ा भीतर से बंद कर लिया।

उसी रात बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर लोग विस्मित हो उठे। महरौली में तो बरसात का समूचा मौसम ही सूखा बीत गया था, एक बूँद भी पानी इस बरस नहीं बरसा। और अब पतझड़ के मौसम में बरसात की यह झड़ी! लगी तो कैसी लगी? ईश्वर करे नास्तिकों के मुँह में गू पड़े!

अगले बृहस्पतिवार को मैं कमल और रामदुलारी के साथ ख़्वाजा साहब के दर्शन करने गया। ग़यासपुर में मैंने ऐसी भीड़ पहले कभी नहीं देखी थी। गर्मी काफ़ी थी और मेरा गला प्यास से सूखा जा रहा था। ख़्वाजा साहब की बातें, ऐसे में, जन्नती पहाड़ों से निकली नदियों में ठंडे हुए अमृत की तरह शांतिदायी लग रही थीं।

वे कह रहे थे, "खुदा सिर्फ़ एक है, भले ही हम लोग उसे अलग-अलग नामों से बुलाते हैं। उस तक पहुँचने के तरीक़े भी अनेक हैं। जो जैसा रास्ता ठीक समझे, वही उसे अख़्तियार करने दो। उसका रास्ता मस्जिद से जाता हो या मूर्तियों-भरे मंदिर से, या फिर किसी जंगल-बियाबान की अँधेरी-एकान्त गुफा से होकर—इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़्यादा अहम है वह तरीक़ा जिससे आप वहाँ पहुँचते हैं। अगर आपके दिल में प्रेम नहीं है, तो सबसे उम्दा रास्ता भी आपको सिर्फ़ धोखों की भूल-भुलैया तक ही पहुँचा पाएगा।

उन्होंने हमें पैग़म्बर मूसा के जीवन की एक घटना सुनाई। मूसा ने एक ग़रीब गड़रिये को प्रार्थना करते सुना, "ऐ ख़ुदा, तुम कहाँ हो ? मैं तुम्हारी सेवा करना चाहता हूँ। मैं तुम्हारे जूते ठीक कर दूँगा, तुम्हारे बालों में कंघी कर दूँगा और अपनी बकरियों का दूध तुम्हें पिलाऊँगा।" मूसा ने गड़रिये को ख़ुदा से इस तरह बातें करने के लिए फटकारा। लेकिन तभी ख़ुदा ने मूसा को झिड़क दिया, "तुमने मेरे एक सच्चे सेवक को क्यों भगा दिया ?"

पैग़म्बर मूसा को तब ख़ुदा ने मज़हब का सबसे बड़ा सार बताया। ख़ुदा ने कहा, "मैं बीमार था और तुम मुझे देखने नहीं आए। मैं भूखा था, पर तुम मुझे खाना देने भी नहीं आए।" मूसा ने हतप्रभ होकर पूछा, "ख़ुदा, आप भला कैसे बीमार और भूखे हो सकते हैं ?" ख़ुदा ने जवाब दिया, "मेरा फ़लाँ-फ़लाँ सेवक बीमार था। मेरा फ़लाँ-फ़लाँ चाहनेवाला भूखा था। अगर तुम उनके पास उस वक़्त गए होते, तो तुमने मुझे वहाँ देख होता।"

ख़्वाजा साहब ने हमें कुछ सूफ़ी प्रश्नोत्तरियाँ भी रटवा दी थीं, मसलन—

☐ सबसे दानिशमन्द (बुद्धिमान) व्यक्ति कौन है ?

—जिसने सांसारिक मायामोह का परित्याग कर दिया हो।

☐ सबसे बड़ा संत कौन है ?

—जो बदलते हालात में भी वैसा का वैसा बना रहे।

☐ सबसे बड़ा अमीर कौन है ?

—जो संतुष्ट हो।

☐ सबसे बड़ा ज़रूरतमंद कौन है ?

—जिसे तसल्ली न होती हो।

इन्सान इससे भला संतुष्ट कैसे रहे ? मैंने तो अपने-आपसे ही पूछा था, लेकिन ख़्वाजा साहब ने सुन लिया। बोले, "अपनी इच्छाओं को कम-से-कम रखो और अपने मन पर विजय पाओ।"

हम जब बाहर निकले तो धूप दरगाह की दीवारों के पीछे जा चुकी थी। कमल मेरी गोद में लेटा-लेटा सो गया था। इक्केवाले महरौली लौटनेवालों को आवाज़ें लगा-लगाकर बुलाने लगे थे।

ये बड़े ख़तरनाक दिन चल रहे थे, और हमें जाटों, गूजरों के गाँवों से होकर गुज़रना था। उन दिनों जाट और गूजर ख़तरनाक डाकुओं के रूप में मशहूर थे। इसलिए दस-बारह इक्के एक-साथ चलने लगे। दोनों तरफ़ तलवारों और भालों से लैस दो दर्जन घुड़सवार भी चल रहे थे। ख़ैर, हम लोग बिना किसी दुर्घटना के सही-सलामत महरौली लौट आए।

बहुत लम्बा दिन बीता था। मैंने कमल को खाट पर लिटा दिया। रामदुलारी ने मुझे दूध से भरा गिलास लाकर थमा दिया जो मुझे सोने से पहले पीने की आदत थी। मैंने उसे अपनी गोद में खींच लिया। उसने विरोध किया, "दिन-भर तो तुम अपनी इच्छाओं के दमन पर उपदेश सुनते हो और रात होते ही यह सब करने की सूझने लगती है !"

"अरी, तू भी कैसी मूर्ख है ! दिन-भर तो प्यार-मुहब्बत पर उपदेश सुनती है और शाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते ही सब भूल-भाल जाती है। क्यों ?"

"ख़्वाजा साहब का मतलब इस तरह के प्यार से थोड़े ही होता है!" वह बोली।

"क्यों, क्या वे अक्सर नहीं कहते कि अगर तुम्हें ख़ुदा के पास पहुँचना है तो पहले अपनी इच्छाओं को जीतना होगा ?"

"तो ऐसे ही तुम अपनी इच्छाओं पर फ़तह हासिल करते हो ?" उसने अपने नितम्बों को मेरे मध्य भाग पर दबाते हुए पूछा और खिलखिलाकर हँसने लगी, "ऐसे तो ईश्वर के साथ तुम्हारा कभी मिलन नहीं हो पाएगा।"

"अरी, पहले आपस में मिलन कर लें। परमेश्वर के साथ मिलन की फिर कभी सोचेंगे।" मैंने जवाब दिया।

इसी तरह दिन बीतते गए। हमारे कोतवाल साहब इतने बूढ़े हो चुके थे कि उनसे अब और काम नहीं हो सकता था। उनको नौकरी से अवकाश प्राप्त कर मक्का जाने की अनुमति दे दी गई और उनकी जगह उनके जमाई को नियुक्त कर दिया गया।

नया कोतवाल बड़ा कट्टर मुसलमान था। वह हिन्दुओं के मुताल्लिक़ बड़ी घटिया बातें किया करता था और ऊपर से सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी की कृपादृष्टि उसे प्राप्त थी।

सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी ने अपने ही चाचा की, जो उसका ससुर भी था, हत्या कर दिल्ली की गद्दी हथियाई थी। सुल्तान बनते ही उसने दक्षिण के हिन्दू राज्यों को लूटना शुरू कर दिया। उसके सेनापति मलिक काफ़ूर ने अपनी हुकूमत समुद्र-तट तक फैला ली थी। वह हज़ारों की तादाद में गुलामों, सैकड़ों हाथियों, ऊँटों और बैलगाड़ियों पर सोना-चाँदी और हीरे-जवाहरात लादकर दिल्ली लाया। मुसलमानों को उनकी सेवाओं के बदले हिन्दू औरतें इनाम में दी जाती थीं। कितने ही हिन्दू मंदिरों का विध्वंस कर दिया गया। सुल्तान ने ख़्वाजा साहब की इस सलाह पर क़तई तवज्जह नहीं दी कि तलवार की जीत ज़्यादा दिन नहीं टिकती।

उन दिनों मुल्क के माहौल में इतना बदलाव आ गया था कि मुस्लिम तौर-तरीक़ों से जीनेवाले हिन्दुओं का भी जीना दूभर होता जा रहा था। मैं अपनी नौकरी करता, तनख़्वाह लेता और मुँह पर ताला डाले रहता। अगर कोई मुसलमान मुझे ज़्यादा ही उँगली देने की कोशिश करता तो मैं ग़यासपुर की दरगाह की शरण में जा बैठता। ख़्वाजा साहब का रोब और रुतबा तो ऐसा था कि अपने-आपको सिकन्दरे-सानी (सिकन्दर द्वितीय) कहनेवाला, दिल्ली को अपनी दार-उल-ख़लाफ़ा (राजधानी) बनानेवाला, हज़ारों की तादाद में मंगोलों को मौत के घाट उतारनेवाला, सीरी नाम से एक नया शहर बसानेवाला, हौज़े-इलाही के विशाल मदरसे का निर्माता और कुतुबमीनार से भी दुगुनी ऊँची मीनार बनाने की योजना में लिप्त ताक़तवर बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी भी उसके सामने आँख उठाने की जुर्रत नहीं कर सकता था। एक बार सुल्तान ने ग़यासपुर आकर उससे मिलने की अपनी इच्छा प्रकट की तो जानते हैं ख़्वाजा साहब ने क्या जवाब दिया, "हमें बादशाहों से क्या लेना-देना? अगर सुल्तान हमारे एक दरवाज़े से दाख़िल होंगे, तो हम दूसरे से दरगाह से बाहर निकल जाएँगे।"

एक दिन कोतवाली में बैठा मैं ख़्वाजा साहब का गुणगान कर रहा था कि इतने में ही एक बाबू सबको सुनाता हुआ मुझसे बोला, "अमाँ आपके जैसे सज्जन पुरुष की तो क्या कहिए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी तो जितनी तारीफ़ की जाय, उतनी कम। कहीं तो आप मुसद्दीलाल हैं और कहीं शेख़ अब्दुल्ला। किसी को आप 'राम-राम' करते हैं तो किसी को 'सलाम हुजूर'। मुसलमानों के साथ क़ाबा को चल दिए और हिन्दुओं के साथ शिवलिंग पूज आए। कोतवाली में मुसाहिबी करते रहे और दरगाह में दरवेश बन गए। एक पैर आपका पीरो-फ़क़ीरों के मठों-दरगाहों में लटका रहता है तो दूसरा अपनी औरत की खटिया पर। सच मियाँ, आप तो मज़े लूट रहे हैं, दोनों जहाँ के। अब आपकी जितनी भी तारीफ़ की जाय, कम ही है...."

उस दिन दोपहर को खाना खाने घर आया तो लौटकर कोतवाली वापस नहीं जा सका। आँगन में चारपाई पर लेटा न जाने किस उधेड़-बुन में धूल-धूसरित आकाश को ताकता रहा। उस बाबू की बातें मन को ऐसे कोंच रही थीं कि जी हुआ, कमीने को भरे बाज़ार में नंगा करवाकर हर आते-जाते से थुकवाऊँ।

रामदुलारी मेरी बग़ल में आकर बैठ गई और पूछने लगी, "क्या बात है जी?"

"कुछ नहीं।"

"नहीं, 'कुछ नहीं' तो नहीं हो सकता। तुम्हारे चेहरे से लग रहा है कि कोई बात तो ज़रूर है। मुझे बताते क्यों नहीं?"

मैंने उसे सारा माजरा कह सुनाया। वह चुपचाप सुनती रही। सब-कुछ सुनने के बाद चुपचाप दीवार को घूरने लगी। मैं ही बोला, "हमारे जैसे और भी कई हैं। शायर अब्दुल हसन का नाम सुना है न? वह अपने-आपको सुल्तानी भी कहता है और अमीर खुसरो भी। उसका बाप मुसलमान था और माँ हिन्दू। हिन्दुओं के लिए वह हिन्दी में लिखता है और मुसलमानों की ख़ातिर फ़ारसी में। हिन्दुओं के आगे वह हिन्दुस्तान की तारीफ़ों के पुल बाँधता है, मुसलमानों के आगे क़ाबुल-कंधार के। वह सुल्तान की भी जी-हजूरी करता है और ख़्वाजा साहब की भी। दोनों का अज़ीज़ भी है वह। अमीर-उमरावों की तारीफ़ों में शे'र पढ़-पढ़के उनसे पैसे ऐंठता रहता है। साथ-ही-साथ अपनी फ़क़ीरी के भी ढोल पीटता रहता है। कोई उसको तो कुछ नहीं कहता, क्योंकि वह मुसलमान है। यह तो हम हिन्दुओं की ही बदक़िस्मती है कि हम हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही खुश रखना चाहते हैं। और वो हैं कि हमारे मुँह पर थूकते भी नहीं! ऐसा बर्ताव करते हैं, जैसे हम हिंजड़े हों, न इधर के, न उधर के!"

"अरे, हिंजड़े हों हमारे दुश्मन!" रामदुलारी ने नाराज़ होते हुए कहा, "तुम इस अब्दुल हसन या अमीर खुसरो, जो भी नाम है उसका, उससे क्यों नहीं मिलते? उससे सलाह लो और पूछो कि हमें क्या करना चाहिए?"

"मुझे वह आदमी बिल्कुल पसन्द नहीं। डंक मारे बिना तो वह बात ही नहीं करता। और फिर हम-जैसे लोगों के लिए तो उससे पार पाना बेहद मुश्किल काम है।"

"अजी, अगर ठीक से बात करोगे तो हो सकता है उससे तुम्हारी दोस्ती ही हो जाय!"

"अरी, तू बड़ी भोली है। तुझे दुनियादारी के क़ानून-क़ायदों का कुछ पता नहीं। अमीरों की दोस्ती सिर्फ़ अमीरों से होती है, भागवान! और हुनरमंद लोगों को चाहिए होते हैं चापलूस-चमचे। खुसरो अमीर भी है और हुनरमंद भी। मेरी क्या बिसात कि वह मेरी ओर नज़र डालेगा? और मुझे भी क्या पड़ी है कि मैं अपना वक़्त उसके पीछे फूँकता फिरूँ?"

बहरहाल, जब मैं दूसरे दिन ग़यासपुर गया तो सीधे अब्दुल हसन उर्फ़ अमीर खुसरो के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास ही गया। हमेशा की तरह वह चाटुकारों से घिरा बैठा था और हमेशा की तरह सिर्फ़ उसी की आवाज़ सुनने को मिल रही थी। जैसे ही उसकी नज़र मुझ पर पड़ी, उसने एक कँटीला तीर मेरी तरफ़ छोड़ा, "क्यों लाला मुसद्दीलाल उर्फ़ अब्दुल्ला, कैसे तशरीफ़ लाना हुआ हमारे यहाँ?" मैंने उसकी बात को अनसुना करते हुए सबको दुआ-सलाम की। उसका शायर दोस्त—अमीर हसन देहलवी उससे अधिक मिलनसार था। बोला, "कहो भाई अब्दुल्ला, क्या हाल है?" मैंने बैठते हुए जवाब दिया, "अल हम्दु लिल्लाह!" खुसरो को पता चल गया था कि मैंने उसकी बात का बुरा माना था, इसलिए वह बात को आई-गई करने का मौक़ा तलाशने लगा, "भाई अब्दुल्ला, मैंने हिन्दी में तुम्हारे लिए कुछ पहेलियाँ लिखी हैं। देखें, तुम बूझ पाते हो कि नहीं?

बीसों का सिर काट लिया
ना जान गई, ना ख़ून बहा।

मेरे आने से पहले वह औरों से तो पूछ ही चुका होगा, सुना तो स्पष्ट ही था। वे सब एक सुर में कहने लगे, "भई, यह तो सचमुच बहुत मुश्किल बुझौवल है।" मुझे भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। खुसरो तो बदतमीज़ी पर उतर आया और चिल्लाकर कहने लगा, "अरे बेवकूफ़, जवाब तो इसके नाम में ही मिल जाएगा। नाख़ून नहीं जानते? ना ख़ून? खुसरो की पहेलियाँ बूझने के लिए भी दिमाग़ होना चाहिए, दिमाग़!"

मैंने भी जितना हो सकता था, उतने तीखे स्वर में जवाब दिया, "अल्लाह ने आपको दिमाग़ दिया है तो ईश्वर ने मुझे शिष्टाचार दिया है।" मेरा तीर एकदम निशाने पर लगा। खुसरो का लहजा एकदम बदल गया। वह दरअसल 'क्षणे रुष्टा, क्षणे तुष्टा' क़िस्म का इन्सान था। बोला, "भाई, बुरा मत मानो। हम लोग तो धरम भाई हैं। अच्छा इसको बूझो तो जानें—

सगरां रैन मोरे संग जागा,
भोर भई तो भागन लागा।
का सखि साजन?
ना सखि... ?

हाँ, तो बोलो यह क्या है?" खुसरो चुटकियाँ बजाता हुआ मुझसे पूछने लगा। खुशक़िस्मती से किसी ने तपाक से जवाब दे दिया और मेरी जान बची। "नहीं दोस्त, तुम भी ग़लत। अरे यार, यह तो चिराग़ है। रात-भर जलकर सुबह बुझ गया। समझे?" खुसरो रात-भर पहेलियाँ बुझाता रहा। उसके एक लँगोटिया यार ने उसे फुलाते हुए कहा, "भाई, फ़ारस के ख़क़ानी को मात देने की भविष्यवाणी तो लगता है तुम सच करके ही दिखाओगे।" खुसरो ने दिखावे के लिए भी इस बात से इन्कार नहीं किया। बोला, "मैं तो ख़्वाजा साहब के क़दमों की धूल हूँ। अगर निज़ामुद्दीन साहब मुझे तूते-हिन्द (भारत-कोकिला) के ख़िताब से सम्मानित कर दें और अगर वे मुझे हिन्दुस्तान का शेख़ सादी घोषित कर दें, तो दुनिया की कौन-सी ताक़त है जो मुझे सबसे बड़ा शायर और सबसे बड़ा गायक बनने से रोक सके! यह मेरा बड़प्पन नहीं है, यह तो ख़्वाजा साहब की खुदाई की चमक है जो उन्होंने मेरे सीने में भर दी है और जो मेरी आँखों से टपकती है।"

अब भला कोई ऐसी नक़ली विनम्रता और खुली शेख़ीख़ोरी पर भी क्या कहे? यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच है कि जैसे किसी को थोड़ी-सी कामयाबी अपने किसी गुर में हासिल हो जाती है तो वह अपनी प्रतिभा के लिए तमाम पक्षों की सम्भावनाएँ तलाशने लगता है। यही खुसरो का भी हाल था। वह अपने-आपको महान शायर भी समझता था और महान राजनीतिज्ञ भी, महान तलवारबाज़ भी कहता था और महान संगीतज्ञ भी। खुसरो को अपने बारे में नई-नई बातें फैलाने का तरीक़ा आता था। वह अपने-आपको ईरानियों और अफ़ग़ानियों का वंशज बताने में फ़ख्र महसूस करता था। उसका रंग मुझसे भी साँवला था और उसकी रगों में मुझसे भी ज़्यादा हिन्दुस्तानी ख़ून दौड़ रहा था, फिर भी वह वह तुर्किस्तान को ही अपना वतन बताता था। शायराना उपनाम भी उसने ऐसे चुने कि जिनसे उसकी ऊँची जाति और रईसी का बोध हो। पहले वह अपने-आपको 'सुल्तानी' कहा करता था। आख़िर की 'ई' की मात्रा हटा दो तो 'सुल्तान' ही बन जाय। जब उसने अपने-आपको खुसरो कहना शुरू किया तो साथ 'अमीर' भी जोड़ लिया। खुदा ने उसे दिमाग़ और हुनर तो दिया था, पर विनम्रता का एक गुण देना अवश्य भूल गया था। शेख़ सादी से अपनी तुलना करनेवाले इस शेख़ीख़ोर ने शायद अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बननेवाले लोगों के बारे में प्रचलित ये पंक्तियाँ नहीं पढ़ी होंगी—

गुणी को अपने गुण अपनी ज़ुबाँ गाना नहीं भाता।
औरत को ज्यों अपने हाथों अपना (वक्ष) सहलाता नहीं भाता।

ख़्वाजा साहब के आने-भर की देर थी कि खुसरो के व्यवहार में एकदम ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ आ गया। खुसरो से बड़ा अभिनेता भी शायद उसके ज़माने में कोई नहीं हो सकता था। अभी तक तो यह ऐंठी मूँछोंवाला मुखौटा लगाए बैठा था, पर ख़्वाजा साहब के आते ही विनम्रता का नक़ाब ओढ़ लिया। दम्भी और शेख़ीख़ोर खुसरो अब निहायत बेचारा बना ख़्वाजा साहब के चोले की कन्नी को चूमता आँसू बहा रहा था, जैसे वही बस एक उनका सच्चा शागिर्द हो। और ख़्वाजा साहब भी तो वहाँ उपस्थित हज़ारों लोगों में से उसी के सिर पर हाथ रखे उसकी ख़ैरियत पूछने लगे, "क्यो अब्दुल हसन, सब ठीक तो है?"

महरौली लौटते हुए मेरा मन खुसरो को लेकर रोष से भरा हुआ था। मन-ही-मन मैं कुढ़ रहा था कि लोगों को इसका दोमुहाँपन क्यों नहीं दिखाई देता? खुसरो को अनगिनत आक़ाओं की जी-हजूरी करने का अनुभव प्राप्त था। डूबते सूरज की ओर पीठ करना और उगते सूरज की इबादत करना अगर किसी को आता था, तो वह सिर्फ़ खुसरो था। पहले वह सुल्तान बलबन के भतीजे मलिक छज्जू के साथ रहा। दिन-रात उसकी तारीफ़ों के पुल बाँधता रहता। लेकिन कुछ ही दिनों बाद छज्जू से किनारा कर उसने सुल्तान के छोटे लड़के का पल्लू पकड़ लिया। उसके बाद उसे भी छोड़ा और तख़्त के भावी हक़दार का दामन थाम बैठा। जब शासकों में हिन्दू राजाओं की बहुतायत थी तो वह अपनी शिराओं में बहते हिन्दू लहू का ढिंढोरा पीटा करता और हिन्दुस्तान के गुणों का बखान करते न अघाता। तब यहाँ के पान और केले उसे लाजवाब लगते थे, इसके संज्ञीतज्ञों और शतरंज के खिलाड़ियों पर उसे नाज़ हुआ करता था। लेकिन जब सल्तनत की बागडोर मुसलमानों के हाथों में जा पहुँची तो खुसरो ने कहना शुरू किया, "हिन्दुओं में मर्दानगी है ही कहाँ? गौ के ये पुजारी कौए को तोते से अहम मानते हैं और गधे की ढेंचूँ-ढेंचूँ को 'शुभ लक्षण' क़रार देते हैं।" खुसरो के मुताबिक़ अगर हिन्दुस्तान दुनिया का सबसे बड़ा राष्ट्र था तो केवल इसलिए कि यहाँ खुसरो रहता था। मैंने अपने-आपको समझाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मैं इस खुशामदी टट्टू पर भला अपना वक़्त और दिमाग़ क्यों ज़ाया करूँ ? इक्का औलिया मस्जिद के बाहरवाले अड्डे पर जाकर रुका तो मैंने खुसरो के बारे में सोचना बन्द कर दिया था। मेरे लिए तो वह एक सफल विदूषक-भर था; खुसरो नहीं, बल्कि खुसरा (हिंजड़ा)।

रामदुलारी ने मेरे क़दमों की आहट सुनते ही दरवाज़ा खोल दिया। मैं भीतर घुसा तो कमल सोया हुआ था। मेरे लिए दूध गर्म करके रामदुलारी पास ही आ बैठी। मैंने उसे ग़यासपुर की सारी आपबीती कह सुनाई। नाखूनोंवाली पहेली भी उसको बूझने को कहा। वह उसने पहले ही सुन रखी थी। झट से बूझ गई। मैंने उसको दूसरी भी पूछी—'सारी रात बिताकर सुबह जानेवाली।' वह मुझे पेट में कोंचते हुए बोली, "तुम्हारे दिमाग़ में इसके सिवा भी कुछ आता है कि नहीं ?" मैंने उसका हाथ पकड़कर अपनी जाँघों के बीच रखते हुए कहा, "अरी बेवकूफ़ औरत, यह थोड़े ही है ! वह तो दीवा है दीवा ! रात-भर जलकर सुबह बुझ जाता है कि नहीं ?"

वह उठी और उठकर बत्ती बुझा आई।

साल-पर-साल बीतते गए। इस दौरान सैकड़ों बार सम्भोग करने के बावजूद रामदुलारी के गर्भ में मैं कोई और बीज न डाल सका। मेरे सिर के बाल एक-एक कर गिरते गए और एक दिन आया कि मैं पूरी तरह गंजा हो गया। मेरी दाईं आँख थोड़ी-थोड़ी धुँधली होने लगी। हकीमों की सुझाई हर तरह की काजल आज़मा कर देख ली, पर मेरा मोतियाबिंद न मिट सका। शीघ्र ही मेरी बाईं आँख भी मोतियाबिंद की शिकार हो गई और इसकी रोशनी भी जाती रही। अब तो रामदुलारी के केश भी पकने लगे थे। मासिक धर्म बन्द होने के बाद वह कुछ मोटी भी हो चली थी। खटिया से उठने के लिए उसे हर बार रामजी का नाम लेकर घुटने थामने की ज़रूरत पड़ती। कभी-कभी अब भी एक ही चारपाई पर लेटते, पर अधरों के बजाय हमारे अधोभाग ही आपस में मिलते।

ईश्वर ने हमें बहुत दिया था और हमें उसमें ही संतुष्टि भी थी। ज़िंदगी के बचे-खुचे दिन हमने पूजा-पाठ और हरिभक्ति में बिताने की सोच ली थी। कमल अब पूरा मर्द हो चुका था। सीरी के पासवाले हौज़े-इलाही के मदरसे में उसने तुर्की और फ़ारसी की शिक्षा प्राप्त की थी। मैंने कोतवाल साहब को सोने के ग्यारह टके नज़राने में दिये और विनती की कि कमल को कोतवाली में मेरी जगह मुंशी की नौकरी दे दें। रामदुलारी ने उसके लिए कायस्थ ख़ानदान की एक बहू भी ढूँढ ली। वे लोग भी हमारी ही तरह योगमाया के मंदिर और ग़यासपुर की दरगाह—दोनों ही जगह जाया करते थे। कमल और उसकी पत्नी के व्यवहार से हम निश्चिंत हो गए थे कि कायस्थों की हमारी वंशावली हमारे साथ ही ख़त्म होनेवाली नहीं है।

अब हम महरौली के अपने घर से ज़्यादा वक़्त ग़यासपुर की दरगाह में ख़्वाजा साहब के साथ ही बिताया करते थे। बाद में हमने ग़यासपुर में किराए पर कोठरियाँ लेकर वहीं रहना शुरू कर दिया। महीने में एक-आध बार अपने बेटे और बहू से मिलने महरौली चले जाते। कमल भी हर बृहस्पतिवार अपनी पत्नी के साथ हमसे मिलने आया करता।

ख़्वाजा साहब से मिलना तो हर रोज़ ही होता था। खुसरो भी अब वहाँ ज़्यादा आने लगा था। बुढ़ापे ने उसके सारे दाँत गिरा दिए थे। जिह्वा भी अब व्यंग्य से उतनी सराबोर नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह गई थी। वह अब हम लोगों से काफ़ी हिलमिल गया था और रामदुलारी को भाभी कहकर पुकारा करता था। मैंने भी उसकी दोस्ती को स्वीकार कर लिया था। हम एक-दूसरे के घरों में भी आया-जाया करते थे।

बुढ़ापे में इन्सान को और क्या चाहिए? शांति, पूजा-पाठ, सुरक्षा और दोस्त-यारों का साथ। और वह भी बरगद के उसी पेड़ की छाया में, अपने ख़्वाजा साहब, महबूबे-इलाही पीर निज़ामुद्दीन की दरगाह में। हम दुनिया में रहते हुए भी दुनियादारी से बहुत दूर निकल आए थे। हम उन लोगों की तरह थे जो बाज़ार में घूमते तो हैं, पर जिन्हें कोई ख़रीदारी नहीं करनी होती।

हमारे एकान्त कक्ष में दुनिया की चिंता करने के लिए कोई जगह नहीं रह गई थी। हाँ, अलाउद्दीन ख़िल्जी के इंतक़ाल से जुड़ी एक घटना ज़रूर मुझे याद है। पहले तो हमने सुना कि वह सोए-सोए ही ख़त्म हो गया और उसका दास मलिक काफ़ूर, जिसे उसने तरक़्क़ी दे-देकर अपनी फ़ौजों का सेनापति बना दिया था, अब सत्ता की बागडोर सँभाल रहा है, ताकि नए उत्तराधिकारी के चुने जाने तक शासन का कामकाज भली प्रकार चलता रहे, पर बाद में पता चला कि अलाउद्दीन की पटरानी से उसने अवैध सम्बन्ध क़ायम कर लिये थे और दोनों शहज़ादों की आँखें निकलवाकर राजगद्दी का निष्कंटक मालिक बन बैठा था। उसने न जाने कितने निरपराध लोगों को मौत के घाट उतारा था।

ख़्वाजा साहब ने आज तक कभी सुल्तानों के आने-जाने के मामलों पर ध्यान नहीं दिया था, लेकिन यह सब सुनकर तो उन्होंने भी कान पर हाथ रखकर 'तौबा' की। यहाँ तक कि अमीर खुसरो जो हर सल्तनत के बारे में प्रशंसा के झूठे गुणगान करने के लिए मशहूर था, मलिक काफ़ूर की कायरता के क़िस्से सुनकर स्तब्ध रह गया। उसने काफ़ूर पर एक व्यंग्य लिखा और ग़यासपुर की एक महफ़िल में उसे पढ़कर सुनाया भी। हमें मालूम था कि अगर हमारे ख़्वाजा साहब ने किसी के बारे में कुछ भी कहा तो उस शख़्स को दंड मिलना अवश्यम्भावी था। ऐसा ही हुआ भी। महल के नौकर-चाकर ही मलिक काफ़ूर की मुख़ालिफ़त में उठ खड़े हुए और उन्होंने उसके नापाक ख़ून से अपनी कटारों की प्यास बुझाई।

कुतुबुद्दीन मुबारक शाह दिल्ली का अगला सुल्तान बना। पर उसे हमारे ख़्वाजा साहब पसन्द नहीं थे। चाटुकारों को उसके दिल में ख़्वाजा साहब के प्रति जगी नफ़रत की आग को भड़काने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगा। उन्होंने उसे यह कहकर उकसाया कि निज़ामुद्दीन तो किसी की कौड़ी बराबर भी परवाह नहीं करते। वह लोगों की नज़र में सुल्तान को नीचा दिखाने के लिए ही जान-बूझकर उनके आदेशों की अवहेलना करते रहते हैं। दरअसल बात यह थी कि कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद में जुम्मे की नमाज़ पढ़ने के लिए निज़ामुद्दीन साहब नहीं जाते थे, जबकि सुल्तान का हुक्म था कि जुम्मे की नमाज़ वहीं पढ़ी जाय। उन लोगों ने इस बात पर भी सुल्तान के कान भरे। यह भी कहा कि उनके और खुसरो ख़ान के सम्बन्धों को लेकर भी ख़्वाजा साहब लोगों को उकसा रहे हैं।

यह 'खुसरो ख़ान' कहाँ से टपक पड़ा? खुसरो ख़ान असल में एक हिन्दू लड़का था, गुजराती—पवार, जिसको गुजरात पर चढ़ाई के दौरान पकड़ा गया था। गुजराती मर्द देखने में तो खूबसूरत होते ही हैं और ख़ासकर पवार लोग तो बेहद ख़ूबसूरत हुआ करते हैं। मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ुसरो ख़ान को कभी देखा तो नहीं था, पर सुना था कि वह बहुत ख़ूबसूरत है। एकदम गोरा-चिट्टा, हिरन जैसी मदमस्त आँखें थीं उसकी, कमान-सी तीखी भवें और औरतों जैसे गदराए कूल्हे। सुल्तान का हरम हिन्दुस्तानी, तुर्की और ईरानी सुन्दरियों से भरा पड़ा था। औरत के जिस्म की उसकी भूख तो सर्वविदित थी, लेकिन क़िस्मत ने यह कैसा पलटा खाया कि उसका दिल अब एक गुजराती लड़के पर आ टिका! ख़ुसरो ख़ान अपनी काली कजरारी आँखों को काजल से और कँटीली और होठों को सुर्ख़ी से लाल करने लगा था। सुल्तान और वह एक ही प्याले में मदिरा भी पिया करते। शाही हकीम उस लड़के के नितम्बों पर मलने के लिए ख़ास तरह के इत्रयुक्त तेल तैयार किया करते। सुल्तान में एक फ़र्क़ और आया था कि वह भी अब अपने होठों को लाली से रँगने लगा था और अपने कूल्हों पर सुगन्धित तेलों का लेप करवाने लगा था। अब वह पवार से भी अपने साथ वह सब करवाने लगा था जो वह ख़ुद उसके साथ किया करता था। बातें और अधिक मिर्च-मसाले के साथ एक कान से दूसरे कान में पहुँचने लगी थीं।

इन सब ख़ुराफ़ातों की बाबत सुनकर मुसलमानों को हिन्दुओं से ज़्यादा परेशानी हो रही थी। उन्हें यह बेहद शर्मनाक और अपमानजनक लग रहा था कि एक मर्दाने तुर्क ने एक काफ़िर के साथ ऐसे बेहूदे सम्बन्ध स्थापित कर रखे हैं। सुल्तान भी इन सबके बारे में जानता था, पर वह यही सोच रहा था कि मुसलमानों को शायद इस बात का ग़ुस्सा है कि उसका महबूब हिन्दू है और उसे अभी तक मुसलमान नहीं बनाया गया है। अतः उसने लड़के को धर्मपरिवर्तन कराकर मुसलमान बना दिया और उसका नाम ख़ुसरो ख़ान कर दिया। दोनों ने इस मौक़े पर ख़ूब पी-पिलाकर और खुले आम हुड़दंग मचाते हुए जश्न मनाया।

तुर्की घोड़े और गुजराती घोड़ी को लेकर गलियों-बाज़ारों में खुलेआम अश्लील मज़ाक सुनने को मिलने लगे। बात सुल्तान के कानों तक पहुँची। उलेमाओं को तो वैसे ही ख़्वाजा साहब से ख़ार की। उन्होंने सुल्तान के कान भरने शुरू किए कि हो न हो, सुल्तान की बदनामी फैलाने में ग़यासपुर की दरगाह का ही हाथ हो।

सुल्तान ने निज़ामुद्दीन पर लगायी गई इस तोहमत पर आँख मूँदकर विश्वास कर लिया। उसने सरकार की ओर से दरगाह को जानेवाली रसद पर भी पाबंदी लगा दी और ग़यासपुर में एक पुलिस चौकी खुलवा दी, जहाँ दरगाह को आने-जानेवाले हर शख़्स पर नज़र रखी जाती।

क़ुदरत के भी क्या कहने! ख़्वाजा साहब तो सुल्तानों के सुल्तान थे। उन्होंने सिर्फ़ यह किया कि एक काग़ज़ पर अल्लाह का नाम लिखकर दरगाह के बाहर चिपका दिया और यह ऐलान करवा दिया कि अब लंगर के लिए पहले के मुक़ाबले दोगुना खाना पकाया जायेगा। अल्लाह ने शायद इसका ज़िम्मा अपने ऊपर ले लिया था कि दरगाह की रसोई में आटा, दाल-नून, तेल की कमी न होने पाए। उमराव लोग तो सुल्तान के क़हर के डर से दरगाह से दूर रहने लगे थे, पर ग़रीबों के हजूम अब दिनों-दिन दरगाह की राह बढ़ते ही जा रहे थे।

इससे सुल्तान के ग़ुस्से की आग और भी अधिक भड़क उठी। उसने दरगाह को बंद करने का हुक्म जारी कर दिया। लेकिन क़ुदरत के तरीक़े भी देखिए। ख़ुदा ने, लगता था कि अपने चहेते फ़क़ीर की फ़रियाद बिना कहे ही सुन ली थी और सुल्तान को सबक़ सिखाने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठान ली थी। सुल्तान और उसके महबूब उस लौंडे की आशिक़ी रंग लाई। सुल्तान के लिंग पर दाने उभर गए और उसे पेशाब करने में तकलीफ़ होने लगी। हकीमों ने हर तरह की मलहमें आज़माकर देख लीं, पर फुंसियाँ ठीक होने में ही नहीं आ रही थीं और न ही बूँद-भर पेशाब बाहर आ रहा था। कुदरत की दी हुई ऐसी व्याधि में हकीम बेचारे करते भी क्या? कुछ ही घंटों में सुल्तान की हालत ऐसी हो गई कि वह बेतहाशा दर्द से छटपटाने लगा और अल्लाह को रहम के लिए पुकारने लगा। उसकी माँ अपने बालों को नोचती ग़यासपुर की दरगाह में पहुँची। उसने ख़्वाजा साहब के पैरों को ऐसा जकड़ा कि छोड़ने का नाम ही न ले, जब तक कि वे उसके बेटे को ठीक करने का वादा नहीं दे देते। ख़्वाजा साहब ने उससे कहा कि वे एक शर्त पर उसकी मदद कर सकते हैं—अगर वह अपने बेटे को इस बात के लिए राज़ी कर ले कि वह अपना सारा राज-पाट ख़्वाजा साहब के नाम कर दे।

हम लोग जानते थे कि ख़्वाजा साहब के मन में कोई बात ज़रूर थी, जो उन्होंने ऐसा कहा।

राजमाता महल को वापस चली गई। सुल्तान अथाह पीड़ा से छटपटा रहा था। उसने मंज़ूर कर लिया कि जैसे ही उसे पेशाब हो जाएगा, वह राजगद्दी छोड़ देगा। "नहीं," हमारे ख़्वाजा साहब ने दूर से कहा, "पहले वह गद्दी छोड़े, तभी उसे पेशाब होगा। अपने हाथ से सुल्तान को अपने पदत्याग का पट्टा लिखना होगा और उस पर शाही मोहर लगाकर हमें पहुँचाना होगा।"

राजगद्दी को छोड़ने का पट्टा लिखते वक़्त सुल्तान मौत की कगार पर बैठा हुआ था। जैसे ही उसने पट्टा लिखकर मोहर लगाने के लिए मोहर को मोम पर दबाया, उसके मूत्राशय से पेशाब का फ़व्वारा फूट निकला। राजमाता अपने बेटे के पेशाब से भरे मर्तबान को सिर पर रखकर पैदल ही ग़यासपुर के लिए चल पड़ी। शाही महल के सारे बाशिंदे—क्या औरतें, क्या हिंजड़े और क्या पहरेदार—सब के सब उसके पीछे-पीछे ग़यासपुर की दरगाह की राह हो लिये। राजमाता ने ख़्वाजा के सामने ज़मीन पर लोटकर मत्था टेका और चर्मपत्र पर लिखा राजगद्दी छोड़ने का पट्टा उनकी नज्र कर दिया। ख़्वाजा साहब ने उसकी सील तोड़ी और वहाँ जमा हुए सभी लोगों को हिन्दुस्तान के सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक शाह द्वारा अपनी सल्तनत हज़रत ख़्वाजा निज़ामुद्दीन को सौंपे जाने का पट्टा पढ़कर सुनाया। उसके बाद उन्होंने उस पट्टे को तोड़-मरोड़कर पेशाब से भरे उसी बर्तन में फेंकते हुए कहा, "हम दरवेश इस दुनियावी राजसत्ता की बस इतनी ही परवाह किया करते हैं!" और इतना कहते ही वे अपनी कोठरी में चले गए।

जब आदमी की आत्मा में बुराई भरी हो तो उसका पछतावा भी क्षणिक ही हुआ करता है। अपने उपकारकर्ता के प्रति बुरे आदमी की कृतज्ञता भी क्षणिक ही होती है। तकलीफ़ दूर होते ही सुल्तान फिर अपनी उन्हीं नाजायज़ हरकतों में जुट गया। ख़्वाजा साहब द्वारा राजगद्दी के हस्तांतरण के पट्टे को फाड़ देने की बात बच्चे-बच्चे की जुबान पर थी। सुल्तान के मन में ख़्वाजा साहब के प्रति जो कृतज्ञता पैदा हुई थी, धीरे-धीरे अब वह खीझ में बदलने लगी थी। उसने एक हुक्मनामा जारी किया कि नए चाँद के दिन हर आदमी को कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद में आकर उसे दुआ-आदाब करना होगा। सुल्तान जानता था कि ख़्वाजा साहब उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन अपनी मरहूम माँ की क़ब्र पर सिर नवाने जाया करते हैं।

ख़्वाजा साहब माँ की क़ब्र पर नमाज़ पढ़ने के बाद वहीं लेट गए और उन्हें नींद आ गई। जब वे नींद से जागे तो उन्होंने हमें बताया कि सपने में उन्होंने एक बहुत विशालकाय साँड को अपनी तरफ़ दौड़ते देखा है। उन्होंने साँड को सींगों से पकड़कर धराशायी कर दिया है। हमें किसी ज्योतिषी से पूछने की ज़रूरत नहीं थी कि उनके सपने का क्या मतलब है।

वह तक़दीरी दिन भी आ पहुँचा। ख़्वाजा साहब के साथ दोपहर की नमाज़ पढ़ने को भीड़ जमा थी। दरगाह की पच्छिमी दीवार की छाया अहाते में पड़ने लगी थी। ख़्वाजा साहब हममें से कुछ को लेकर नए चाँद को देखने छत पर पहुँचे। सूरज का निचला घेरा शहरे-नौ की चारदीवारी के पीछे डूब चुका था और धुँधला, निष्प्रभ-सा चाँद आसमान पर दिखाई देने लगा था। ख़्वाजा साहब ने थोड़ी देर नमाज़ पढ़ी और अपनी हथेलियों को आँखों और दाढ़ी पर फेरा। फिर वे एक फ़ारसी कविता की पंक्तियाँ गुनगुनाने लगे—

ऐ लोमड़ी, क्यों तू अपनी माँद में ही छुपी नहीं रही ?
क्यों तूने शेर की दुश्मनी मोल ली और अपनी जान ख़तरे में डाली ?

हम लोग शाम की ताज़ा हवा का लुत्फ़ उठाते छत पर टहलते रहे। सूरज और चाँद दोनों ही अब आँखों से ओझल हो चुके थे। साँझ का झुटपुटा रात में परिवर्तित होने लगा था। अचानक देखा कि आसमान के पच्छिमी छोर पर कोई लालिमा-सी उभर रही है। घोड़ों की टापों की आवाज़ें भी सुनाई दे रही थीं। लग रहा था कि मशालें थामे पूरी फ़ौज की फ़ौज हमारी तरफ़ बढ़ी चली आ रही है। हमें संदेह हुआ कि कहीं शाही सिपाहियों की टुकड़ी ख़्वाजा साहब को गिरफ़्तार करने के लिए तो नहीं आ रही ! तभी देखा कि कोतवाल साहब ख़ुद हाज़िर हो गए। लेकिन वे ख़्वाजा साहब को गिरफ़्तार करने नहीं, बल्कि वे यह बताने आए थे कि सुल्तान का क़त्ल कर दिया गया है और सारे शहर में खलबली मची हुई है।

अगले दिन सुबह हमें घटना का विस्तृत विवरण मिला। पता चला कि दरअसल बात क्या थी। हुआ यों कि पवार और सुल्तान के बीच एक समझौता यह था कि दोनों—एक दिन छोड़कर एक दिन बारी-बारी से मर्द और औरत के किरदार निभाएँगे। मज़े को दोगुना करने के लिए वे मिलन से पहले निकाह जैसा आलम पैदा किया करते थे। एक शाम सुल्तान तुर्की दूल्हे की तरह सज-बनकर आता और पवार के साथ निकाहनामे पर दस्तख़त करता और सुहागरात मनाने के लिए उसे अपने शाही पलँग पर ले जाता। इसके बाद दोस्तों-यारों के वास्ते दावते-वलीमा दी जाती। दूसरी शाम किरदार बदल जाते और सुल्तान की जगह पवार दूल्हा बनता।

हादसेवाली रात सुल्तान को औरत का किरदार निभाना था। सुल्तान ने तुर्की दुल्हिन का शृंगार किया हुआ था। रेशम के ढीले-ढाले कपड़ों के ऊपर जाली का बुर्क़ा। लोगों की गाती-बजाती टोली के साथ दूल्हे के रूप में घोड़े पर सवार पवार, महल में पहुँचा। इस बार उनका विवाह हिन्दू रीति-रिवाज के मुताबिक़ हुआ। मंत्रोच्चार के बीच उन्होंने अग्नि के चारों ओर फेरे लिये। फिर पवार अपनी तुर्की पत्नी (सुल्तान) को लेकर पलँग पर गया। हँसी-ठट्ठा करते हुए उसने दुल्हिन-बने सुल्तान को निर्वस्त्र किया और काम-क्रीड़ा में मग्न हो गया।

आनन्दातिरेक की चरम सीमा पर पहुँचते हुए पवार पर प्रेमावेग का ऐसा पागलपन सवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ कि उसने सुल्तान की अंडग्रंथि को हाथों में दबाकर मसल दिया, और जब पागलपन का भूत उतरा तो उसकी आँख खुली। अरे, यह उसने क्या कर डाला? पर पवार ने बड़ी हिम्मत से काम लिया। उसने सुल्तान का सिर धड़ से अलग कर उसकी लाश को क़िले के परकोटे से बाहर फिंकवा दिया और ऐलान करवाया कि उसने सुल्तान को प्राणदंड दिया है, क्योंकि लोग अब उस-जैसे भ्रष्ट-बहुरूपिए शासक द्वारा शासित होना नहीं चाहते। इस प्रकार विकृत यौनरुचियोंवाले एक लौंडेबाज़ सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक शाह के शासन का अंत हुआ। वर्ष था सन् 1320 ईसवी।

दिल्ली पर अब एक नए सुल्तान की हुकूमत शुरू हुई। एक लौंडेबाज़ का अंत हुआ तो दूसरा गद्दी पर आ बैठा था। हिन्दू पवार गुजराती राजपूत उर्फ़ खुसरो खान ने अपने-आपको नसीरुद्दीन मुहम्मद के नाम से हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित कर दिया।

हम लोग सोच रहे थे कि गुनाह में साझीदार रहे अपने साथी का क़त्ल करनेवाले इस गुनहगार सुल्तान को क्या ख़ुदा यों ही बख़्श देगा?

नसीरुद्दीन अमीर-उमरावों पर इस आशा में भेंटों-उपहारों की वर्षा करने लगा कि वे उसके विश्वासपात्र बन जाएँगे। वह दूर-दराज़ के प्रांतों के राज्यपालों को नए-नए ख़िताब देने लगा। अक्सर वह इन सबको ख़िल्वत भी भेजा करता। जो उन्हें स्वीकार कर लेते, बदले में वे भी उसे भेंट-उपहार भेजा करते। पर मंगोलों से पच्छिमी सरहदों की रक्षा में जुटा ग़यासुद्दीन तुग़लक, नसीरुद्दीन की कौड़ी-भर भी क़द्र नहीं करता था। उसने ख़िल्वत और तोहफ़ों के थाल को लात मारकर ठुकरा दिया और कहा कि कोई भी तुर्क इस दोमुँहे हिंजड़े को अपना बादशाह नहीं मान सकता।

हिन्दुस्तान के मुसलमान नसीरुद्दीन के ख़िलाफ़ एकजुट होने लगे। उसे मदद के लिए राजपूतों और जाटों का मुँह ताकना पड़ा। उसने उनको शहरे-नौ की सुरक्षा का भार सौंपा। शहर के बाहरी अंचलों में घमासान लड़ाई हुई। तुर्कों की हार निश्चित थी, पर इसी बीच शहर के मुसलमान, जाटों और राजपूतों के ख़िलाफ़ खड़े हो गए। अब उनके सहधर्मी तुर्कों का पलड़ा फिर भारी हो गया। ग़यासुद्दीन तुग़लक ने नसीरुद्दीन की बोटी-बोटी करके क़िले की चहारदीवारी के बाहर फिंकवा दी। पता नहीं कितने हज़ार लोगों को तलवार के घाट उतारा गया। रामदुलारी और मैंने बाक़ी रात अपने बेटे और बहू की सलामती की दुआएँ माँगते हुए ही गुज़ारी। पर अक़्लमंद कायस्थों की तरह उन्होंने कोठरी को भीतर से बंद कर रखा था और घर के बाहर 785 का चिह्न अंकित कर दिया था, ताकि लोग उसे मुसलमान का घर समझकर नज़रअंदाज़ कर दें। इस तरह वे ख़ून के प्यासे तुर्कों का निशाना होने से बचे रहे।

कोई अक़्लमंद कह गया है कि प्रजा को अपने मालिक के चेहरे के मस्सों पर नहीं जाना चाहिए, बल्कि उनके नैन-नक़्शों की कुलीनता को परखना चाहिए। नया सुल्तान ग़यासुद्दीन तुग़लक जन्म से कुलीन था। उसने एक हिन्दू राजकुमारी से ब्याह किया हुआ था और अपने शहज़ादे जूना की शादी भी एक कुलीन हिन्दू परिवार की कन्या से करवाई थी। सुल्तान की पटरानी और पुत्रवधू के हिन्दू होने के कारण यह अपेक्षा की जाती थी कि सुल्तान हिन्दुओं के प्रति उदार रुख़ अपनाएगा। लेकिन हमारी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। ग़यासुद्दीन तुग़लक बेहद हठी और निरंकुश शासक निकला। चाटुकारों ने उसके और ख़्वाजा साहब के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच दरार डालने की पूरी कोशिश की। उन्होंने सुल्तान को भड़काया कि क्या यह वाजिब है कि नव्वे साल का यह बूढ़ा दरवेश सुल्तान से भी ज़्यादा इज़्ज़त पाता रहे? सुल्तान तो धरती पर ख़ुदा का प्रतिनिधि होता है, पर इसके रहते सुल्तान की कोई मान्यता ही नहीं है।

महरौली और ग़यासपुर के बीच ग़यासुद्दीन तुग़लक ने सुनहरी ईंटों से एक नया शहर बसाया था और इसके चारों तरफ़ चहारदीवारी खिंचवाई थी। उसी के नाम से इस शहर का नाम तुग़लकाबाद पड़ा। वह चाहता था कि लोग आ-आकर उसे सलाम बजाते रहें और उसके काम की तारीफ़ करते रहें। लोग ऐसा किया भी करते थे, सिवाय हमारे ख़्वाजा साहब के । ग़यासुद्दीन तुग़लक ने ख़्वाजा साहब से इस बात की जवाबदेही माँगी। तभी ख़्वाजा साहब ने भविष्यवाणी की कि जल्द ही तुग़लकाबाद का यह शहर बियावान बंजर में तब्दील हो नेस्तनाबूद हो जाएगा और यहाँ सिर्फ़ गूजर डकैतों का वास होगा।

जब यह ख़बर सुल्तान तक पहुँची तो उसने ख़्वाजा निज़ामुद्दीन को सबक़ सिखाने की ठान ली। उस मूर्ख को क्या ख़बर थी कि खुदा ही अपने उस प्यारे शागिर्द ख़्वाजा निज़ामुद्दीन की ज़ुबानी बोला करता है! ख़ुदा ने महावत बनकर सुल्तान-रूपी हाथी के सिर पर अपना अंकुश मारा और उसे एक बिगड़ैल हाथी की तरह बर्ताव करने को प्रेरित किया। पूर्वी क्षेत्रों में सुल्तान ने जहाँ-जहाँ आक्रमण किया, उसकी जीत हुई। इससे सुल्तान के मन में अपनी ताक़त के बारे में ऐसी भ्रांतियाँ पैदा हो गईं कि वह अपने-आपको अजेय समझने लगा। दरबारियों की चाटुकारी ने बाक़ी कसर भी पूरी कर दी। वे उसे सिखाने-पढ़ाने लगे, "आलीजाह! गेहूँ को काटनेवाले हँसिए की तरह आपने हज़ारों दुश्मनों के सिर धड़ से अलग किए हैं। तो इस मामूली दरवेश की औक़ात क्या कि आपसे बच पाए?"

ग़यासुद्दीन तुग़लक के दिल्ली पहुँचने में थोड़ी ही देर बाक़ी थी कि उसने हुक्म जारी किया कि निज़ामुद्दीन की दरगाह को तबाह कर मिट्टी में मिला दिया जाय!

कोतवाल साहब आँखों में आँसू भरे निज़ामुद्दीन साहब के पास पहुँचे और शाही ऐलान की बाबत बताने लगे। ख़्वाजा साहब ने उन्हें तसल्ली दी, "बेटा, मैंने कई सुल्तानों का आना-जाना देखा है। मैं जब पहले-पहल दिल्ली आया था तो यहाँ ग़यासुद्दीन बलबन का राज था। उसके बाद कैकोबाद आया। फिर जलालुद्दीन फ़िरोज़ आया। उसके बाद अलाउद्दीन ख़िलजी और कुतुबुद्दीन ख़िलजी आए। उसके बाद नसीरुद्दीन ने तख़्त सँभाला और अब यह ग़यासुद्दीन तुग़लक आया है। कुल मिलाकर सात सुल्तान मैंने गिरा दिए हैं। तो बेटा, बादशाह आएँगे और बादशाह जाएँगे, पर मल्लाह तो हमेशा ही रहेगा।"

कोतवाल को ख़्वाजा साहब की बातों में छिपा गूढ़ अर्थ समझ में नहीं आया। वे बोले, "महबूबे-इलाही, आप मुझे अपने माँ-बाप से भी ज़्यादा अज़ीज़ हैं। सुल्तान को दिल्ली पहुँचने में थोड़ा ही वक़्त लगेगा। आप बताइए मैं क्या करूँ?" कोतवाल साहब रोते-रोते ही आए थे।

"आराम से घर जाओ। हनूज़ दिल्ली दूर अस्त (अभी दिल्ली दूर है)।" ख़्वाजा साहब ने बस इतना ही कहा।

कोतवाल साहब जैसे ही शहरे-नौ में पहुँचे, उन्हें खबर मिली कि सुल्तान के साथ कोई दुर्घटना हो गई है। अगले दिन संदेशवाहक सुल्तान की मौत की ख़बर लेकर पहुँचा कि जब वह किसी फाटक की मेहराब से गुज़र रहा था तो मेहराब टूटकर उसके ऊपर गिर पड़ी और सुल्तान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मौत हो गई। यह सन् 1325 ईसवी की बात है। अल्लाह निस्संदेह सबसे बड़ा षड्यंत्रकारी है, साथ ही दुर्बलों-असहायों की ताक़त भी। ख़्वाजा साहब की भविष्यवाणी सच हो गुज़री थी। तुग़लकाबाद का विशाल क़िला जो तुग़लक ने बनवाया था, शीघ्र ही सुनसान-बियाबान में बदल गया। यमुना नदी जो कभी इसकी प्राचीरों को छूती हुई बहा करती थी, अपना रुख़ बदलकर दूर चली गई। क़िले के सारे कुएँ सूखकर जलविहीन हो गए। अब यहाँ सिर्फ़ सियारों, चमगादड़ों, उल्लुओं और गूजरों का बसेरा रह गया। कभी सुनहरी दिखनेवाली इसकी दीवारें भरभराकर ढह गईं। बची रही सिर्फ़ ग़यासुद्दीन तुग़लक की मज़ार, मानो अल्लाह ने यह भी चाहा हो कि वह अपनी आँखों अपने वैभव के सपनों के ध्वंसावशेष देखता रहे।

खुदा क़िस्मत की उस किताब का लेखक है, जिसमें दुनिया के अतीत, वर्तमान और भविष्य का ब्यौरा होता है। खुदा ने हमारे ख़्वाजा साहब को यह हक़ दिया हुआ था कि वे इसके पाठों को घटनावार पढ़ते रहें। एक दिन अपने एक उपदेश के दौरान उन्होंने कहा कि किसी को भी अपनी मौत से ख़ौफ़ खाने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि यह तो एक प्रेमी का अपनी प्रेयसी से मिलने का मौक़ा होता है। उन्होंने आगे कहा कि नव्वे साल से मैं अपने अल्लाह से जुदा रहा हूँ। लेकिन उन नव्वे सालों के हर दिन और हर घड़ी मैं अपने खुदा से मिलने के लिए तड़पता रहा हूँ।

उनकी बातों को सुनकर ग़यासपुर के लोगों के चेहरों पर मातम छा गया। मैंने ख़्वाजा साहब से मिलने का वक़्त माँगा। उनके सामने पड़ते ही मैं ज़ार-ज़ार रोने लगा। ख़्वाजा बोले, "अगर तुम मेरे वास्ते रो रहे हो तो समझ लो कि तुम भी बस मेरे पीछे-पीछे ही आनेवाले हो और तुम्हारी औरत भी इस कारवाँ में तुमसे बहुत पीछे नहीं रहेगी।"

मैं चिल्लाया, "ऐ ख़्वाजा, हमें अपने साथ ही ले चलो, ताकि जन्नत में तुम्हारी ख़िदमत कर सकें।"

मेरे भीतर अब किसी भी तरह का कोई उत्साह बाकी नहीं रहा था। मैं अपने-आपको समझाता कि अब जीने में कोई लुत्फ़ नहीं रहा। न तो मैं अच्छी तरह देख पाता हूँ, न बिना सहारे के चल-फिर सकता हूँ, फिर भी मुझे मरने से डर लग रहा था। मैं जानता था कि मौत ही हमें बुढ़ापे के तमाम जंजालों से मुक्ति दिला सकती है, फिर भी मरने की इच्छा किसे होती है? बीमार पड़े-पड़े दर्द में छटपटाना मुझे मंज़ूर था, बनिस्बत यमलोक जाने के। ईश्वर के साथ एकात्म होने की मेरी कोई मंशा नहीं थी। मुझे तो अब भी अपनी दंतविहीन रामदुलारी ही अधिक प्यारी थी।

725 हिज्री, यानी सन् 1325 के रबी-उस्मानी के एक रोज़ ख़्वाजा साहब ने हमें बताया कि उनको ऐसा लग रहा है जैसे जन्नत के दूत उनकी अगवानी में गीत गा रहे हों। लेकिन इस दुनिया को छोड़ने से पहले वे चालीस दिन तक उपवास करके अपने शरीर को इस लोक की खोट से शुद्ध करना चाहते हैं। हमने उनसे विनती की, "ख़्वाजा, आपके जिस्म को खुराक की सख़्त ज़रूरत है। चालीस दिन तो क्या, हफ़्ते-भर का फ़ाक़ा भी आपके लिए ठीक नहीं।" उन्होंने हमें झिड़क दिया, "क्या तुम लोगों ने मुझसे अब तक यही सीखा है? तुम्हें क्या इतना भी नहीं मालूम कि इस दुनिया में जी जा रही ज़िंदगी से बेहतर ज़िंदगी चाहिए तो फ़ाक़ा और नमाज़ ज़रूरी है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़यासपुर पर अवसाद की चादर छा गई। ख़्वाजा साहब ने हमारे दुःख को समझ लिया। उन्होंने कहा कि मैं तुम लोगों के साथ वीरवार तक रहूँगा और जुम्मे के दिन कूच कर जाऊँगा। मेरी लाश को इसी अहाते में दफ़्ना देना। खुसरो को (खुसरो तब लखनावती में था) मेरी क़ब्र के नज़दीक मत आने देना, नहीं तो मैं कुदरत के क़ानूनों को तोड़कर उससे गले मिलने के लिए उठ खड़ा होऊँगा! अल्लाह और उसके पैग़म्बर के उपदेश तुम लोगों तक अब मेरा शागिर्द मख़दूम नसीरुद्दीन पहुँचाया करेगा। इस अंधकारमय दुनिया में अब वही तुम्हारा राहबर होगा—रोशन चिराग़ दिल्ली!

ख़्वाजा साहब ने जैसा कहा था वैसा ही हुआ। 725 हिज्री के अट्ठारहवें रबी-उस्सानी (3 अप्रैल सन् 1325) को जुम्मे के रोज़, सुबह के वक़्त ख़्वाजा साहब की रूह जन्नत के लिए कूच कर गई।

दर्दनाक विलापों से आसमान गूँजने लगा। आसपास के गाँवों से हज़ारों की तादाद में लोग ग़यासपुर पहुँचने लगे। औरतें 'या अल्लाह, या अल्लाह' करती छाती पीट रही थीं। हज़रत रोशन चिराग़, जिन्हें ख़्वाजा साहब अपना उत्तराधिकारी बनाकर गए थे, बाहर निकलकर आए और रुँधे गले से लोगों को समझाने लगे कि दुःख का इस तरह इज़हार करना इस्लाम में मना है। उन्होंने लोगों को अलग-अलग टोलियों में बाँटकर और कुरान के अंशों को उन्हें थमाकर एक-साथ पढ़ने के लिए कहा।

ख़्वाजा साहब के शरीर को नहलाया गया और शव को अंतिम नमाज़ के लिए मस्जिद के अहाते में रखा गया। फिर सारे ग़यासपुर में उनकी शवयात्रा निकाली गयी। जुलूस के साथ चल रहे क़व्वाल अर्थी के साथ-साथ बढ़ते हुए गाते जा रहे थे—

लोगों को तेरा चेहरा अब भी है देखना,
क्यों मोड़ लिया तूने दुनिया से भला मुँह को?
ऐ पाक, जा रहा है तू कौन-सी डगर पर?
मिलने को भला किससे तू चल दिया है ख़्वाजा?

इस बीच किसी ने चिल्लाकर कहा—देखो, ख़्वाजा साहब ने अपना हाथ कफ़न से बाहर निकाला है!

अर्थी को ज़मीन पर उतारने की देर थी कि लोगों का हुजूम उस तरफ़ टूट पड़ा। अर्थी को कन्धा देनेवालों ने बताया कि ख़्वाजा साहब ने क़व्वालों के गाने में पूछी सभी बातों का जवाब दिया था। हज़रत रोशन चिराग़ ने अपने मुँह को अंजली से घेरकर ख़्वाजा साहब के शव के कानों में ज़ोर से कहा, "ख़्वाजा, क्या दरवेश को याद दिलाना पड़ेगा कि मौत के बाद बोलना अल्लाह के क़ानून के ख़िलाफ़ है? आप अपनी मंज़िल पर शांति से पहुँचें।" उसने ख़्वाजा साहब के हाथ को वापस कफ़न में छुपा दिया और जुलूस फिर से चल पड़ा।

ख़्वाजा साहब के शरीर को इत्रादि से लेपकर मस्जिद के अहाते के बीचोबीच दफ़्ना दिया गया। कुछ लोग क़ब्र के ऊपर दीए भी जला गए। कइयों ने आगरबत्तियाँ जलाकर मिट्टी में गाड़ दीं। लोग क़ब्र पर कान लगाकर सुनने की कोशिश करने लगे कि कहीं कोई आवाज़ तो उसमें से नहीं आ रही?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुसरो लखनावती से लौटकर आया तो उसे ख़्वाजा साहब के गुज़र जाने की ख़बर मिली। भीड़ की भीड़ खुसरो को देखने के लिए जमा हो गई। लोग देखना चाहते थे ख़्वाजा साहब उसको गले लगाने के लिए अपनी क़ब्र से उठकर आते हैं कि नहीं! खुसरो किसी सद्यः विधवा के समान छाती पीट-पीटकर रो रहा था। हज़रत रोशन चिराग़ उसे बाहों में भींचते हुए सँभालने की कोशिश कर रहे थे। खुसरो जब जी भरकर रो चुका तो दरवेश ने उसको बताया कि ख़्वाजा साहब उसे अपनी क़ब्र के क़रीब आने को मना कर गए थे। क़ब्र से कुछ ही दूर केवड़े की एक झाड़ी के पास खड़े-खड़े खुसरो अपने बिछुड़े मित्र को चिरनिद्रा में सोते हुए देखता रहा। आँसू बह-बहकर उसकी दाढ़ी में उलझते रहे। माँ से बिछुड़े बच्चे की तरह वह रह-रहकर सुबकियाँ भरता रहा। इसी दर्द के मौक़े पर उसने रचा—

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, साँझ भई चहुँ देस।

जैसे हिन्दू माँ-बाप की मौत पर सिर मुँडा लेते हैं, खुसरो ने ख़्वाजा साहब के इन्तक़ाल पर अपना सिर मुँडवाया और अपनी सारी धन-दौलत दान कर दी। उसने सूफ़ियों की तरह मोटा ऊनी काला लबादा भी पहनना शुरू कर दिया। फिर अपनी ही भविष्यवाणी को सच करते हुए वह भी कुछ ही दिनों में इस दुनिया से कूच कर गया।

मैं अपनी ज़िंदगी की किताब के अंतिम परिच्छेद पर आ पहुँचा हूँ। मेरी दाहिनी आँख का मोतियाबिंद भी बढ़ रहा है। इसकी ज्योति जाने से पहले मैं ये आख़िरी पंक्तियाँ दर्ज कर देना चाहता हूँ।

कई हफ़्तों की अनुपस्थिति के बाद कमल अचानक आया है और अपने बीवी-बच्चों को हमारी निगरानी में छोड़े जा रहा है। वह कह रहा है कि सुल्तान मुहम्मद तुग़लक पागल हो गया है। कई सालों से वह सनक-भरी हरकतें करता आ रहा है। उसे कभी उदारता के दौरे पड़ते हैं तो लाखों टके लोगों को लुटा देता है, कभी अपनी ही सनक में लाखों लोगों के सिर धड़ से अलग करवा देता है। उसने सोने-चाँदी के बदले तांबे के सिक्के जारी कर दिए हैं। चालाक लोग तांबे के नक़ली सिक्कों के बदले ख़ज़ाने से सोने-चाँदी के असली सिक्के ले जाते हैं। अब तो ख़ज़ाना ख़ाली ही होने को है। कमल ने बताया कि सुल्तान चीन को फ़तह करना चाहता है और उसके बाद बाक़ी एशिया को। अब उसने अपनी राजधानी दिल्ली से उठाकर 700 मील दक्षिण की तरफ़ दौलताबाद में ले जाने का ऐलान किया है। उसने हर आदमी, औरत और बच्चे को तुग़लकाबाद ख़ाली करके अपने साथ उस जहन्नुम की ओर कूच करने का हुक्म दे दिया है। यह निश्चय ही पागलपन है। दिल्ली को भले किसी भी नाम से पुकारो, चाहे लाल कोट कहो, चाहे महरौली, चाहे शहरे-नौ कहो या फिर तुग़लकाबाद—दिल्ली ही हिन्दुस्तान के सुल्तानों की राजधानी रही है। दिल्लीवाले दिल्ली को छोड़कर दुनिया के किसी भी और शहर में जाकर बसने से मर जाना ज़्यादा पसन्द करेंगे।

बेचारा कमल सरकारी मुलाज़िम है, उसे तो सरकारी हुक्म की तामील करनी ही होगी, लेकिन किसी भी सुल्तान का कोई भी हुक्म हज़रत ख़्वाजा निज़ामुद्दीन के मक़बरे की चहारदीवारी के भीतर लागू नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5

भागमती

मई का महीना। मानो किसी ने जहन्नुम के तंदूर का ढक्कन खोल दिया हो। ऐसी गर्मी पड़ रही है कि क्या बताएँ! आँखों को जलाती धूप की चकाचौंध, धूल-भरी गर्म हवाएँ, तारकोल की सड़क पर चमकती मृगमरीचिकाएँ। कहीं भी जीवन का कोई चिह्न नहीं। सड़कों पर लावारिस कुत्ते तक नहीं दिख रहे।

गाड़ी की सीटें धूप में तप रही हैं। बैठते ही भागमती की चीख निकल गयी, "हाय राम!" और वह उचककर अपन कूल्हे, सीट के ठंडे होने के इंतज़ार में, ऊँचे कर लेती है। मैं भी अपनी पश्चिमी शैली में चीख उठता हूँ, 'आउच' और भागमती का हाथ पकड़कर स्टीयरिंग व्हील पर रखते हुए कहता हूँ, "ज़रा इसे छूकर तो देखो!" वह अपना हाथ झटके के साथ वापस खींच लेती है, "हमें क्या किसी डॉक्टर ने कहा है कि गर्मी में घूमने निकलो और लू लगाकर वापस लौटो?"

मैं कुतुब के रास्ते पर गाड़ी मोड़ लेता हूँ। सफ़दरजंग का मक़बरा पार कर हम बँगलों की क़तारों से गुज़रते हैं। इन नए बने बँगलों से यूसुफ़ सराय, और ख़िलजी, तुग़लक आदि वंशों के बनाए सभी मक़बरे निगाह से छुप गए हैं, वरना कभी दूर से ही वे सब दिखा करते थे।

कुतुबमीनार के पास पूरा बाएँ काटकर मैं गाड़ी को लाडो सराय में मोड़ता हूँ। कुएँ के पास ख़ासी चहल-पहल है। जाटनियाँ ज़ोर-शोर से पानी की बाल्टियाँ कुएँ से निकाल-निकालकर घटबन्नी पर सजे घड़ों में उँडेलती जा रही हैं। दो युवा औरतें वहीं नहा रही हैं। हमारी ओर देखकर वे नग्नता छुपाती हुई झट से पीठ मोड़ लेती हैं। मैं गाड़ी धीरे कर उधर देखने लगता हूँ। औरतें मिट्टी के ठेले उठाकर हमारी ओर फेंकती हैं। मैं हँस पड़ता हूँ। वे भी हँसने लगती हैं। लम्बी-तगड़ी, भरे-भरे सीने और पतली कमरवाली ये जाट औरतें जब सिर पर घड़े उठाए लहँगे फहराती और ठुमकती हुई चलती हैं, तो अमेज़ोनिया की हूरों-सरीखी दिखती हैं। मैं भागमती से पूछता हूँ, "ये जाट औरतें मुझे तो हिन्दुस्तान-भर में सबसे ज़्यादा सेक्सी लगती हैं। क्यों? तुम्हारा क्या ख़याल है?"

"दूसरों की माँ-बहनें लोगों को अपनी औरतों के मुक़ाबले अच्छी ही लगती हैं। घर की मुर्ग़ी दाल बराबर जो ठहरी!" भागमती से ऐसे प्रश्नों के ऐसे ही उत्तरों की अपेक्षा रहती है।

हम लाडो सराय से आगे निकल आए हैं। फिर वही तपती हुई पक्की सड़क और धूलभरे खेतों का विस्तार। कार की परछाईं आगे की ओर पड़ रही है। बाईं ओर एक स्तूप-सा कुछ दिख रहा है। फिर पत्थर की दीवार और फ़िर ज़मीन से लगभग साठ फुट ऊँची भूरे तथा लाल रंग की पूरी की पूरी चहारदीवरी। बरगद के पुराने पेड़ों की एक पगडंडी से गुज़रते हुए मैं गाड़ी को छाया में लगा देता हूँ। बाईं तरफ़ को एक मेहराबदार फाटक है जो तुग़लकाबाद के क़िले को जाता है। दाईं ओर की ढलान क़िले के निर्माता ग़यासुद्दीन तुग़लक की क़ब्र तक जाती है। इसकी ढालू लाल दीवारें और सफ़ेद गुम्बद क़िले की चहारदीवारी से भी ऊँचे उठे दिखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन सब छोकरों का क्या हुआ, जो यहाँ आनेवाले लोगों की गाड़ियों की देखभाल करने को मँडराते रहते थे ? कामवाले दिनों यहाँ आता ही कौन होगा, वह भी इस भयानक गर्मी में ? इसीलिए तो वे लड़के नहीं दिखाई दे रहे। चलो, अच्छा ही हुआ, मौज मनाने की खुली छूट रहेगी।

"अरे यह क्या ?" गाड़ी के सामनेवाले शीशे की लाइनिंग को जकड़े हुए काले रोएँदार हाथ की अँगुलियाँ को देखकर भागमती चीख़ उठती है। 'खों-खों' करता हुआ एक बंदर खाने के लिए कुछ माँग रहा है। भागमती चीख़कर मुझसे लिपट जाती है। बंदर डरकर अपने लाल चूतड़ दिखाता सड़क के उस पार भाग खड़ा होता है। भागमती मेरी बाहों के साथ कसती जा रही है। अचानक कार से चिपके छोकरों को लक्ष्य कर मैं उसे पीछे ठेलकर अपनी बाँह छुड़ा लेता हूँ।

एक छोकरा कहता है, "साब, मैं आपकी गाड़ी का ध्यान रखूँगा।"

मैंने अभी हाँ भी नहीं कहा था कि एक और लड़का आगे बढ़कर कहता है, "साब, यह मेरी बारी है। इस लड़के ने पिछली कार का ध्यान रखा था। क्यों बे, झूठ है क्या ?"

दोनों लड़ने लगते हैं। पहला लड़का मुझसे कहता है, "साब, मैंने आपसे पहले पूछा था। इसकी कोई बारी-वारी नहीं है। आप ही सोच-समझकर बताएँ। इसकी बात पर ध्यान न दें।" मेरी गाड़ी का ध्यान रखने के लिए लड़कों की एक पूरी टोली की टोली जमा हो आई थी। मैं बाहर निकलकर उनमें से एक की गर्दन दबोच लेता हूँ और पहलेवाले लड़के की ओर इशारा करते हुए कहता हूँ, "यह लड़का मेरी गाड़ी देखेगा। बाक़ी सब भाग जाओ !"

बात वहीं तय हो गयी थी, लेकिन फिर भी चार-पाँच लड़के तुग़लकाबाद के फाटक तक हमारे पीछे-पीछे भागते रहे, "साब, हम आपको सब दिखा देंगे।"

"हमें गाइड की ज़रूरत नहीं है।" मैंने कहा।

"साब, यह किले का मेन गेट है।"

"मैं जानता हूँ। बताने की ज़रूरत नहीं। तुम जाओ !"

"बाईं तरफ़ को यह जो गड्ढा देख रहे हैं न साब, यह किसी ज़माने में पानी का हौज़ था। यहीं से सारे तुग़लकाबाद को पानी जाता था।"

"मैंने एक बार कह जो दिया कि हमें गाइड नहीं चाहिए। चलो फूटो !"

"साब, ये मीना बाजार के खँडहर हैं। यह...."

मैं उनकी ओर मुड़कर चीख़ता हूँ, "साले, तेरी...."

वे दौड़कर कुछ दूरी पर जाकर खड़े हो जाते हैं और मेरी गाली मुझी पर वापस फेंकने लगते हैं, "तेरी...."

भागमती और मैं खँडहरों के साथ-साथ बनी पटरियों पर चलते हुए एक-एक कर खँडहरों में घुसते-निकलते हैं। तोपों के चबूतरों, मक़बरों और बाज़ारों के भग्नावशेषों से होते हुए हम शीर्षस्थ बिन्दु पर जाकर खड़े हो जाते हैं। चारों तरफ़ का नज़ारा देखने लायक़ है। पच्छिम की तरफ़ कुतुबमीनार, दक्षिण की तरफ़ ग़यासुद्दीन तुग़लक की मज़ार, पूरब में क़ैसरे-हज़ार-सुतून महल और शहरे-नौ के खँडहर। हम नीचे उतरकर ध्वंसावशेषों से होते हुए दूसरे रास्ते पर मुड़ जाते हैं। बहुत-सी बकरियाँ वसाका की झाड़ियों के पत्ते कुतर-कुतरकर खा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हैं। हम चहारदीवारी के ऊपर खड़े हैं। हमसे सौ फुट नीचे एक पोखरा है, जिसमें अनगिनत भैंसें डूबी हुई नहा रही हैं। कभी तुग़लकाबाद को घेरकर बनाई गई लम्बी-चौड़ी खाई का बस यही रूप अब शेष बचा रह गया है। कहाँ वह तुग़लकाबाद और कहाँ आज का तुग़लकाबाद ! ईंटों से बने चपटी छतोंवाले मकान, मिट्टी की झोंपड़ियाँ और शेष सारा परिदृश्य, पथरीली वृक्षविहीन धरती—यही है आज का तुग़लकाबाद। अतीत के भग्नावशेषों के बीच बने छितरे-बितरे नए मकान अजीब असंतुलित-सा माहौल पैदा करते हैं।

भागमती मेरा हाथ थाम लेती है।

"अरे देखो, उसने सरदार का हाथ पकड़ लिया !" साले⋯हरामी अब तक खड़े हैं, गए नहीं ? अबकी कमान भागमती ने अपने हाथों में थामी, "भागते हो कि दूँ तुम्हारी⋯" वह उनकी तरफ़ बढ़ती हुई ललकारती है। वे जितनी तेज़ी से भाग सकते थे, भाग लिये। पीछे-पीछे उनकी बकरियाँ भी। भागमती सोत्साह वापस लौट आती है। हम दोनों चहारदीवारी की मुँडेर पर बैठ जाते हैं। वह अपना सिर मेरी छाती पर टिका लेती है, "अच्छा, यह तो बताओ कि कुछ बंदरों के चूतड़ लाल क्यों होते हैं ?"

"क्या पता ? लेकिन सुना है, जब वे कामुक स्थिति में आते हैं, तो लाल हो जाते हैं।"

हम देर तक बैठे बातें करते रहे और अपने नीचे फैली दुनिया को निहारते रहे। भागमती मेरे कानों पर अपने दाँत गड़ाने लगती है।

धूप में अब वैसी चुभन नहीं रही। सूरज संतरी रंग के गुब्बारे-सरीखा दिखने लगा है। कौओं की क़तारों की क़तारें पंख फड़फड़ाती शहर की तरफ़ उड़ रही हैं। टुइयाँ तोतों का एक झुंड धुँधले आकाश को नापता पार हो गया है। तुग़लकाबाद गाँव की ओर से हज़ारों की संख्या में उड़कर आती गोरैयाँ कीकर के पेड़ों पर मँडराती चीं-चीं करती हुई उनकी शाखाओं में सिमटने लगी हैं।

संतरी रंग का हो उठा सूरज आसमान पर छायी धूल के गुबार में डूब गया। गाँव के छोकरे तालाब से अपनी भैंसों को निकालने में लगे हैं। भैंसों को बुलाती उनकी हुंकारें गोरैयों की चीं-चीं और कुत्तों के भौंकने के समवेत स्वर वातावरण में फैल रहे हैं। और फिर सब-कुछ एकदम शान्त। इन पुराने खँडहरों पर ऐसा सन्नाटा छा जाता है कि हमेशा बक-बक करनेवाली भागमती एकदम चुप बैठी है, निःशब्द। मैं उसे ख़ामोशी के नाना प्रकारों पर एक कविता सुनाता हूँ—

सन्नाटा है वहाँ—जहाँ पर कोई शब्द नहीं,
नीरवता है वहाँ भी, जहाँ शब्द नहीं हो सकता,
उस शीत लहर में, गहरे सागर के नीचे,
और उस निर्जन मरुथल में भी तो,
गूँजता है गहरा गूँगापन,
कोई फुसफुसाहट तक नहीं,
न ही जीवन का कोई लक्षण,
लेकिन ऊपर तो उनके भी,
बादल और बादलों की छायाएँ
बेधड़क विचरती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूसर आकाश में साँझ के तारे निकलने लगे हैं। मंद-मंद हवाएँ भी बहने लगी हैं। तपती दुपहरी के बाद तो यह शीतल बयार बदन को इतनी सुखकर लग रही है कि लगता है अभी नींद आ जाएगी। मेरी आँखें सचमुच नींद से भारी होने लगी हैं। भागमती के बालों में अँगुलियाँ फिराता हूँ। अरे, वह तो सो भी गई ! मैं भी आँखें बंद कर किसी दूसरी ही दुनिया में डूबने लगता हूँ।

नींद टूटी तो लगा जैसे कोई सामने खड़ा है। यह तो मेरे मुँह पर चमकता पूर्णिमा का चाँद है। सलेटी आसमान से उड़ता हुआ एक पपीहा आकर कुछ ही दूर, एक शृंग पर बैठ जाता है और चाँद की ओर मुँह उठाकर बड़ी दर्दभरी आवाज़ में 'पीहू-पीहू' करने लगता है !

मेरे मुँह से निकलता है, "सुन रही हो, यूजीनिया ?"

तभी मुझे ख़याल आया कि अरे, मेरे साथ यूजीनिया थोड़े, भागमती बैठी है, और यह पक्षी, बुलबुल थोड़े ही है, यह तो पपीहा है। बहरहाल, अपने प्रिय के लिए इसकी उन्मुक्त, आवेशमय पुकार चाँदनी रात के इस आलम को प्रेम के मधुर आवेग से भर रही है—अनन्त, अनादि प्रेमावेग से।

इसके कुछ ही दिनों बाद मेरा सामना मधुमक्खियों से हुआ। दिल्ली में मधुमक्खियों की कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं। उनमें से एक, जिसे मैंने 'दिल्ली की रानी' नाम दे रखा है, दिल्ली के अतीत से विशेष लगाव रखती हैं। इनके ठिकाने हैं—ऊँची-ऊँची मेहराबदार छतें, ख़ासकर मुग़लों से पहले और मुग़लों के ज़माने की बनाई इमारतों या फिर लुटयन्स और बेकर (नई दिल्ली के वास्तुकार) की बनाई बुलन्द इमारतों के कोने। इनके छत्ते अन्यत्र कहीं नहीं देखे जा सकते। इनके दुश्मनों की सूची में हैं—दिल्ली के शैतान छोकरे जो इनके छत्तों पर ईंट-पत्थर, गोरठों का धुआँ या कपड़ों के जलते हुए टुकड़े फेंका करते हैं। पर इनके शिकार वे अभागे, अन्यमनस्क बुज़ुर्गवार भी हो जाते हैं जो बेचारे इन ऐतिहासिक स्थानों पर दिवास्वप्नों में खोने को जा बैठते हैं।

एक दिन दोपहर के वक़्त मैं भी हौज़ख़ास के मदरसे में जा बैठा। अप्रैल के आख़िरी दिन और गर्मी काफ़ी तेज़। पर इस पुराने मदरसे का निर्माण कुछ इस ढंग से हुआ है कि गर्म हवाएँ भी इसकी दीवारों की भूलभुलैया से टकराकर गुज़रती हुई ठंडी हो जाती हैं। बरामदे के खंभों की लम्बी क़तारों में से एक खंभे से पीठ टिकाए मैं फ़र्श पर बैठा हूँ। बाईं तरफ़ अभी-अभी कटी घास पर पानी का छिड़काव किया जा रहा है। बैल और घसियारा दोनों नीम के पेड़ की छाँव में खड़े हैं। मेरे ठीक सामने सुल्तान फ़िरोज़ शाह तुग़लक की मज़ार दिख रही है, जिसका गुम्बद समय के थपेड़ों से काला पड़ गया है। दाईं तरफ़ को लगभग पचास फुट नीचे मटैला-सा एक पोखरा है, जिसमें अनगिनत भैंसें पानी में डूबी हुई हैं। सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी द्वारा नए बसाए सीरी शहर को पानी की आपूर्ति करने के लिए खुदवाए विशाल 'हौज़े-इलाही' का बस यही निशान बाक़ी बच रहा है। और सीरी शहर की बची हुई निशानियों में दिखती हैं केवल उसकी टूटी-फूटी दीवारें और एक अदद फाटक।

मदरसे की दीवारों से टकराकर ठंडी हुई हवाएँ मेरे कानों में गुंजन-सा पैदा कर रही हैं। अबाबीलें मेरे सिर पर अपने मिट्टी के घोंसलों में फड़फड़ा रही हैं। नीचे से ट्रांज़िस्टर पर बजते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी फ़िल्मी गानों और लोगों के ताश खेलने की आवाज़ें आ रही हैं। कुछ लड़के आस-पास ही कहीं गुल्ली-डंडा खेल रहे हैं। भागमती मेरे साथ नहीं है। वातावरण की शांति मुझे दिवास्वप्नों में डूबने को बाध्य कर रही है।

मैं सोच रहा हूँ कि इस मक़बरे में क्या पढ़ाया जाता रहा होगा? गणित, खगोलशास्त्र, रसायनशास्त्र या फिर क़ुरान शरीफ़? लड़के क़तारों में बैठे पहाड़े कैसे याद करते होंगे? और फिर सीरी शहर का विध्वंस कैसे हुआ होगा? सारे शहर को पानी देनेवाला यह हौज़ तब कैसा रहा होगा? जब तैमूर लंग ने दिल्ली पर चढ़ाई की और मेरे पचास हज़ार दिल्लीवासी पूर्वजों का क़त्लेआम किया, तब भी क्या यह तालाब यहाँ था? उस क़त्लेआम के कितने समय बाद दिल्ली फिर से बसी होगी? मैं कल्पना करने लगा कि क़त्लेआम के बाद इस 'हौज़े-इलाही' के पास कैसा दृश्य उपस्थित हुआ होगा? पीठ-पीछे बँधे हाथोंवाले मर्द कैसे घुटनों के बल सिकुड़कर बैठे होंगे! उनकी गर्दनें आगे को झुकी होंगी! तलवारों की चमकारें सिरों को एक-एक कर धड़ से अलग कर रही होंगी और खून के फ़व्वारे छूट रहे होंगे? माँएँ, बीवियाँ और बहनें दहाड़ें मार-मारकर रो रही होंगी? और अपने-आपको खुदा की परछाईं कहनेवाला वह क्रूर मंगोल तैमूर लंग यहीं खड़ा-खड़ा वह नज़ारा देख रहा होगा! काश, मैं उस ज़माने में पैदा हुआ होता! दूर कहीं किसी पेड़ की आड़ में छुपा उस लँगड़े क़ातिल तैमूर को अपने तीर का निशाना बना देता और उसके सेनापतियों को एक के बाद एक जहन्नुम का द्वार दिखाता जाता। मैंने मंगोलों, तुर्कों और उन सभी आक्रमणकारी हत्यारों की सेनाओं में खलबली मचाकर रख दी होती। तब शायद दिल्लीवाले भी मेरे साथ लगकर उनके विरोध में उठ खड़े होते और उनकी सेनाओं को हज़ारों की तादाद में भेड़-बकरियों की तरह काट डालते। बाक़ी बचे हुओं को लातें मारते और खदेड़ते हुए समरक़न्द की तरफ चलता कर देते।

किसी ने दूर से एक कंकड़ इस ओर फेंका। मुझे लगते-लगते बचा। 'ओए, ओए' गाते हुए कुछ शरारती लौंडे फ़िरोज़शाह के मक़बरे की ओर जा रहे हैं। मैं चीख़ उठता हूँ, "हरामियो···" और उन्हें माँ-बहन की गालियाँ देने ही वाला था कि 'दिल्ली की रानी' का एक दल मुझ पर टूट पड़ा। मैं अपनी बाहों को पीट रहा हूँ और ऐसे दौड़ रहा हूँ जैसे मुझ पर भूत चढ़ गया हो। मधुमक्खियाँ मेरे पीछे-पीछे उड़ती मेरी बाहों, गर्दन—सब कहीं हमले कर रही हैं। अपनी पगड़ी को खोलकर चेहरे पर लपेट लेता हूँ और बाहों को भी छुपाने की कोशिश में लगा हूँ। फिर भी अपने-आपको उनसे बचा नहीं पा रहा और हारकर तड़पता हुआ ज़मीन पर गिर पड़ता हूँ। ताश खेलनेवालों और घसियारे की भी 'हाय-तौबा' और 'बचाओ-बचाओ' मुझे सुनाई पड़ रही है। मधुमक्खियों का हमला पूरे पाँच मिनट तक जारी रहा। दाढ़ी में फँसी दो मधुमक्खियों को मैंने अँगुलियों से मसल दिया। उनके डंक अँगुलियों के पोरों पर भी लग जाते हैं। अपने जिस्म से चिपकी मरी हुई मधुमक्खियों को खींच-खींचकर छुड़ाता हूँ। मेरी आँखें सूजने लगी हैं। अँगुलियाँ सूजकर इतनी मोटी हो आई हैं कि हिलाई भी नहीं जातीं। जिस्म का हर अंग तिलमिला रहा है। मैं दौड़कर अपनी गाड़ी तक पहुँचता हूँ और जितनी तेज़ी से हो सका, गाड़ी दौड़ाता राम मनोहर लोहिया अस्पताल के फाटक तक जा पहुँचता हूँ।

आपातकालीन कक्ष तक पहुँचते-पहुँचते मेरी आँखें ढँपने लगी हैं और मेरा पूरा शरीर शिथिल पड़ रहा है। अस्पताल में जमा भीड़ को चीरते हुए मैं अपना रास्ता बनाता हूँ। ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग रहा है जैसे दिल्ली रेलवे स्टेशन का तीसरे दर्जे का वेटिंग रूम हो। आदमी, औरतें और बच्चे फ़र्श पर इंधर-उधर बिखरे हुए हैं। एक दाढ़ीवाला बूढ़ा स्ट्रैचर पर लेटा पैरों को इस तरह दीवार पर रगड़ रहा है, जैसे चित्रकारी कर रहा हो। डॉक्टर की मेज़ के पास लोगों की भीड़ लगी हुई है। मैं लोगों को धकियाकर आगे बढ़ आता हूँ क्योंकि मेरा 'केस' और लोगों से ज़्यादा 'इमरजेंसी' वाला है। गले और बाहों पर मधुमक्खियों के काटने का अगर तुरन्त इलाज न हो, तो मामला ख़तरनाक हो सकता है।

डॉक्टर फ़ोन पर किसी से बात कर रहा है। बाएँ हाथ में उसने फ़ोन का चोंगा पकड़ रखा है और दाएँ में सिरिंज। सिरिंज को दबाकर हवा में बुलबुले निकालता वह फ़ोन पर बतियाता भी जाता है। उसके सामने एक चौदह-पंद्रह साल की लड़की अपनी शमीज़ ऊपर किए लेटी है। मेरी अधखुली आँखें उसके सीने के उभारों पर जा टिकती हैं। लड़की की माँ मेरी ओर जलती आँखों से देखती हुई डॉक्टर से कहती है, "आप क्या मेरी बेटी को सारी दुनिया के सामने उघाड़े रखेंगे?" डॉक्टर कहता है, "एक मिनट।" चोंगे को मेज़ पर रखकर वह सुई को लड़की के पेट में घुसेड़ देता है और दूसरे दिन फिर आने को कहता है।

उसने फ़ोन का चोंगा फिर से उठा लिया। मेरा धैर्य अब जवाब देने लगा। मैने खुशामद-सी करते हुए कहा, "डॉक्टर साहब, मुझे मधुमक्खियों ने काटा है। प्लीज़… जरा…"

वह फोन पर 'एक्सक्यूज़ मी' कहता हुआ मेरे ऊपर पंजाबी में बरस पड़ा, "तुसीं कोई मरे ताँ नई जा रये? अपणी बारी दा इंतज़ार करो।" और फिर फ़ोन पर बातें करने लगा। पता नहीं दूसरी तरफ़ कोई महिला थी या मर्द, पर उसने कुछ प्रसिद्ध रेस्तराओं में चिकन की जगह कौओं का मांस परोसे जाने और कुल्फ़ी में सोख्ता पैड घुले होने पर चेतावनी दी और लम्बा-चौड़ा लेक्चर दे डाला। मेरा गुस्सा अब इतना बेक़ाबू होने लगा था कि मैंने मेज़ पर हाथ पटकते हुए चीख़ना शुरू किया। डॉक्टर ने फ़ोन पर माफ़ी माँगी, "सॉरी, यहाँ बहुत-से मरीज़ खड़े हैं। फिर बात करूँगा। ओ.के.।" अब उसने मेरी तरफ़ मुख़ातिब होकर गुस्से में उबलते हुए कहा, "ओए मधुमक्खियाँ दे मारे, तैनूँ दिखदा नई कि मैं बिज़ी आँ?"

मैंने अपने ऑक्सब्रिज लहजे में उसे अंग्रेज़ी में झाड़ना शुरू कर दिया, "बिज़ी? माइ फ़किंग फुट! न जाने किससे रेस्तराओं और कुल्फ़ी-चिकन की बातें कर रहे हो, जबकि यहाँ खड़े हुए लोग दर्द में तड़प रहे हैं! मैं तुम्हारी रिपोर्ट 'हैल्थ मिनिस्ट्री' में करूँगा। हर अख़बार में तुम्हारी शिकायत लिखूँगा। अपने-आपको समझते क्या हो?" इस आज़ाद हिन्दुस्तान में अंग्रेजी का जादू ही काम करता है। वह मेरे डंकों का मुआयना करता है और मुझे एक बड़ा-सा इंजेक्शन दे देता है। कहता है कि मैं ख़ुशनसीब हूँ जो बच गया। फिर बड़ी विनम्रता से कहता है, "आपको देखने में देर हो गई, माफ़ कीजिएगा। दरअसल, मैं अभी इंटर्न ही हूँ…।"

सुई लगने के बाद भी मेरी हालत में कुछ ख़ास फ़र्क नहीं पड़ा। आँखों से ठीक से दिखाई नहीं दे रहा। मैं नज़दीकवाले दरवाज़े से बाहर निकलता हुआ एक दूसरे कमरे में पहुँचता हूँ। वहाँ संगमरमर की सिल्ली पर एक मुर्दा पड़ा है। कोई पुलिसवाला एक-एक कर उसके घाव गिन रहा है। मुझे देखते ही पूछता है, "आप क्या इसके रिश्तेदार हो?"

"नहीं भाई, मैं तो खुद ही मुर्दा हूँ। मेरे भी डंकों को गिन लो।"

उसके जवाब देने से पहले ही मैं बाहर निकल आता हूँ और अपनी गाड़ी की ओर तेज़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बढ़ने लगता हूँ।

बुधसिंह मेरी हालत देखकर घबरा जाता है। पूछने लगता है कि कब और कहाँ मेरी यह हालत हुई। मैं जितना हो सकता है, उसको बताता हूँ। वह मुझे झिड़कते हुए कहता है, "मैंने कितनी ही बार आपको समझाया कि कब्रों-मजारों के पास मत जाया करो। वहाँ भूत-प्रेत होते हैं। आपको मधुमक्खियों ने नहीं, उन लोगों की आत्माओं ने काटा है जिनको किसी जमाने में तैमूर लंग ने कत्ल करवाया था।" और वह पिच्च से थूक देता है।

बुधसिंह के साथ मैं बहस नहीं कर सकता। उससे कहता हूँ कि अपनी खाट वह दरवाज़े के पास ही लगा ले, ताकि रात को ज़रूरत पड़ने पर मैं मदद के लिए उसे बुला सकूँ। मैं अपना बुखार नापता हूँ। 103 डिग्री बुख़ार है मुझे। मेरी उम्र का कोई भी बंदा इतना बुख़ार देखकर घबरा सकता है।

नींद तो कम आई, कराहता ही ज्यादा रहा। अपने-आप पर तरस आ रहा है। मौत के कितने क़रीब आ पहुँचा था मैं! अतीत के चित्र ताज़े होकर मेरी आँखों के सामने घूमने लगे। मुझे हैरानी हो रही थी कि तैमूर लंग भी किस क़िस्म का इन्सान रहा होगा, जिसे निर्दोषों-बेगुनाहों के क़त्ल में मज़ा आता था!

मेरे पास उसके लिखे संस्मरण हैं। उन्हीं में कुछ मिर्च-मसाला लगाकर आपको सुनाता हूँ।

6

तैमूर लंग

बसंत की एक रात, जब हमारी उम्र बासठ साल की थी, हमने एक अजीबोग़रीब सपना देखा। देखा कि हम फलों से लदे एक बाग़ में बैठे हैं। पेड़ों पर बहुत-से घोंसले बने हुए हैं और चिड़ियाँ फलों पर चोंचें मार-मारकर उन्हें ख़राब कर रही हैं। माली शोर मचा-मचाकर चिड़ियों को भगाने में लगे थे। हम अपनी गुलेल और गोटियों की थैली लेकर आगे बढ़े। गुलेल से निशाने लगा-लगाकर हमने चिड़ियों को मार भगाया और घोंसलों को बर्बाद कर दिया। माली हमारे आगे नतमस्तक होकर अल्लाह का शुक्र अदा करने लगे कि हमने उनको चिड़ियों से छुटकारा दिला दिया।

जब कभी हमारे दिमाग़ की तख़्ती नए-नए मंसूबों से भर जाती है तो ऐसे ही सपने आया करते हैं। हमने शेख़ ज़ैनुद्दीन अबूबक़र तात्याबादी से इस सपने के मायने पूछे। शेख़ ने, जो उन दिनों मज़हबी मामलों में दिशानिर्देश दिया करता था, हमें बताया कि हमारे सपने का तो यही अर्थ हो सकता है कि निकट भविष्य में हम किसी ऐसे दूर देश पर चढ़ाई करनेवाले हैं, जिस पर अनेक राजे-महाराजे राज कर रहे हैं और उसको लूट-खसोट रहे हैं। सपने में चिड़ियों को मार भगाने का मतलब था कि हम उन राजा-महाराजाओं को भी वैसे ही ख़त्म कर देंगे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी सारी माल-मिल्कियत हथिया लेंगे। उनकी प्रजा तब हमारे क़दमों के नीचे होगी।

फिर भी उस वक़्त हम यह फ़ैसला नहीं कर पा रहे थे कि चीन पर हमला करें या हिन्दुस्तान पर, क्योंकि ये दोनों ही मुल्क हमारे सपने की शर्तों को पूरा करते थे। हमने लम्बे बालोंवाले पीर सैयद मुहम्मद गेसूदराज़ से सलाह ली, क्योंकि हमने इन्हें भी मज़हबी मामलों में अपना सलाहकार बना रखा था। सैयद ने हमारे सपने की व्याख्या ज़रा और खुलकर की, "पाक पैग़म्बर मुहम्मद ने तुम्हारे ऊपर अपना हाथ रखा है, ताकि तुम हिन्दुस्तान जैसे दूर-दराज़ मुल्क में भी अपने इस्लाम धर्म को फैलाओ।"

तब तक हम एशिया के कई मुल्कों को जीत चुके थे। हिन्दुस्तान में फैली बदअम्नी ने हमारे लिए कामयाबी के नए दरवाज़े खोल दिए थे। इस दुनिया में अल्लाह की मर्ज़ी के बिना तो पत्ता तक नहीं हिल सकता। तो ज़ाहिर था कि ख़ुदा हमारे साथ था।

हमारा जन्म बसंत के मौसम में हुआ था। जिस दिन हम जन्मे, हमारी माँ के गर्भ में चिंगारियाँ फूटी थीं और लोग-बाग कहते हैं—हमारे हाथ पैदाइश के वक़्त खून से भरे हुए थे। बुज़ुर्गवार तो तभी कहने लगे थे कि हमारी तलवार की चमक लोहार के हथौड़े से फूटती चिंगारियों से भी तेज़ होगी और हम ज़िंदगी-भर ख़ून की नदियाँ पार करते रहेंगे। हमारे माँ-बाप हमें दुआ दिलाने के लिए शेख़ शम्सुद्दीन के पास ले गए। वे उस वक़्त कुरान का सड़सठवाँ अध्याय पढ़ रहे थे। उन्होंने हमें गाकर सुनाना शुरू किया, 'क्या तुम समझते हो कि ऊपरवाला धरती के ज़रिए तुम्हें नहीं निगलेगा…और उसे हिलते हुए देखेगा (तैमूर)?' तभी से हमारा नाम तैमूर पड़ गया। हमारी जन्मपत्री में लिखा था कि हम अपने समय के सभी बादशाहों से बढ़कर होंगे, हम अपने मज़हब की हिफ़ाज़त करेंगे, अपने लोगों का संरक्षण करेंगे और मूर्तियों का नाश करेंगे। सत्ताइस साल की उम्र में हमारे पाँव में चोट आ गई थी। बस तभी से अपने पैरों पर खड़े होने के बजाय हम घोड़े की काठी पर ही अधिक बैठे रहे। हमें मालूम था कि लोग-बाग पीठ-पीछे हमें तैमूर लंग (लँगड़ा) कहकर ही पुकारा करते हैं, सामने भले ही सात समंदर का अनोखा सम्राट अथवा क़िस्मत का धनी बादशाह कहते रहें।

हमने अमीर-उमरावों की एक सभा बुलवायी। इन लोगों ने अपनी क़िस्मत की बागडोर हमारे ही हाथों सौंप रखी थी। हमने उन्हें अपने सपने की बाबत बताया कि हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने का हमारा मक़सद यही है कि हम उन काफ़िरों को मज़हब के रास्ते पर लगाएँ और उस मुल्क को मूर्तिपूजा और बहुदेववाद की गंदगी से उबारें। हमने उन्हें ललकारा कि अपने सिरों पर हिम्मत के टोप पहन लो और सीने पर पक्के इरादे के कवच बाँध लो, अपना फ़ैसला हमें सुनाओ और मगरमच्छों की तरह ख़ून की नदियों में कूद पड़ो। अगर जीते तो ऐसे जाँबाज़ों की तरह मशहूर होओगे, जिन्होंने इस्लाम को दूर-दूर के मुल्कों में फैलाया, और अगर हार गए तो शहीदों की तरह जन्नत में जाओगे। हमने उन्हें हिन्दुस्तान की बेपनाह दौलत की बाबत बताया, तुग़लक के बनवाए सुनहरी ईंटों के शहर के बारे में बताया जो धूप में सोने की मानिंद चमकता है। उस शहर के क़िले के भीतर बने उस हौज़ के बारे में बताया जो पिघले सोने से हर वक़्त भरा रहता है। हमने उन्हें काफ़िरों की बढ़ती हुई ताक़त के बारे में भी चेतावनी दी और कहा कि अगर हम उनके मुँह पर वक़्त रहते पट्टी नहीं बाँधते तो वे मुस्लिम सुल्तानों की अनेक पीढ़ियों के सारे किए-कराए को निगल जाएँगे। महमूद ग़ज़नवी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहम्मद ग़ोरी से लेकर कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, उसकी बेटी रज़िया सुल्तान, ग़यासुद्दीन बलबन, जलालुद्दीन ख़िलजी, अलाउद्दीन ख़िलजी और फिर तुग़लकों में ग़यासुद्दीन तुग़लक, मुहम्मद तुग़लक, फ़िरोज़ और नसीरुद्दीन तुग़लक तक सब मुसलमान बादशाह ही तो हिन्दुस्तान पर हुकूमत करते रहे हैं !

तुर्कों के दिमाग़ भी उनकी आँखों की तरह ही तंग होते हैं। उनका सहयोग पाने के लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि न सिर्फ़ इस्लाम को लेकर उनका उत्साह जगाया जाय बल्कि उनका मुँह बंद करने के वास्ते उन्हें सोने-चाँदी का लालच भी दिया जाय। हमने उन्हें याद दिलाया कि जैसे पहले भी जीत में मिली सारी धन-दौलत हमने उनमें बाँट दी थी, वैसे ही अब की हम सारा सोना-चाँदी, घोड़े-हाथी, दास-दासी जो भी दिल्ली पर चढ़ाई के दौरान हमारे हाथ लगेगा, उन्हीं लोगों में बाँट देंगे।

सभा में मौजूद लोग हमारी बातों से निहाल हो गए। हर बंदे ने अपनी तलवार खींचकर हमारे साथ जीने-मरने की क़समें खाईं।

तहक़ीक़ात के लिए पहले हमने अपने पोते पीर मुहम्मद जहाँगीर को हिन्दुस्तान भेजा। शहज़ादे की उम्र अभी मुश्किल से तेईस साल की थी, लेकिन वह हमारे साथ कई अभियानों में चल चुका था और हमने यह अंदाज़ा लगा लिया था कि उसका सितारा बुलन्द है। हमने उसको अपने तंबू में बुलाकर ज़रूरी सलाह-मशविरा दिया और बताया कि कैसे-कैसे उसे अपने फ़र्ज़ निभाने होंगे। जिसे बादशाहत की दुल्हिन को कलेजे से लगाने की चाहत हो, उसे तलवार की धार के साथ उसको चूमना पड़ता है। हमने कहा, "जाओ, हम तुम्हें ग़ज़ना का तख़्त सौंपते हैं। वहाँ से तुम हिन्दुस्तान की तरफ कूच करोगे और मुल्तान पर कब्ज़ा करोगे।" फिर हमने उसे दिल्ली के हालात से वाक़िफ़ कराया। हमने उसे बताया कि अपनी जनता पर अपना दबदबा रखने के बजाय सुल्तान फ़िरोज़ तुग़लक ने ज़्यादा वक़्त मक़बरों, मदरसों और सरायों को बनवाने में लगाया है या फिर नहरें खुदवाने में बिताया है। पैग़म्बर मुहम्मद ने ठीक ही कहा था कि एक न्यायप्रिय बादशाह इस ज़मीन पर अल्लाह के साये के समान होता है और उसी साये के डर की वजह से लोग उसके अनुशासन में रहते हैं।

फ़िरोज़ तुग़लक ने हमारे कोप से डरकर भागे कुछ ग़द्दारों को पनाह दी थी और हमसे दुश्मनी मोल ली थी। फ़िरोज़ को मरे तो दस साल हो गए, लेकिन बादशाहों के बादशाह अल्लाह के ख़िलाफ़ जो बीज वह बो गया है, वह आज बिच्छूबूटी की झाड़ियों में तब्दील हो चुका है और इस बात से मैं बेहद ख़फ़ा हूँ। फ़िरोज़ तुग़लक के बाद थोड़े-थोड़े अरसे के लिए उसके बेटों और पोतों ने तख़्त सँभाला और फिर मुहम्मद तुग़लक दिल्ली की हुकूमत का हक़दार बना। बहरहाल, हिन्दुस्तान पर हुकूमत मुहम्मद तुग़लक नहीं, बल्कि उसके नाम पर कल के दो नवाब सारंग ख़ान और उसका भाई मल्लू ख़ान इक़बाल कर रहे थे। सारंग ख़ान मुल्तान को सँभाले बैठा था और मल्लू ख़ान इक़बाल तुग़लकाबाद की चहारदीवारी और कैसरे-हज़ार सुतून की शेख़ियाँ बघार रहा था। घमंड के बादल उन दोनों के दिलो-दिमाग़ पर बुरी तरह छाये हुए थे।

शहज़ादा मुहम्मद जहाँगीर ने अब ग़ज़ना से कूच कर दिया और सिन्धु नदी को पार किया। फिर मुल्तान पहुँचकर उसने सारंग ख़ान को शिकस्त दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने अपनी सारी सल्तनत में ऐलान करवा दिया कि हम दिल्ली के लिए कूच करनेवाले हैं। हमारे साथ चलने के लिए लोग इतनी ज़्यादा तादाद में तैयार हो गए थे कि गिने नहीं जाते थे। इनमें सबसे ज़्यादा तो हमारे अपने ही कुनबे के लोग थे—बरलास कुनबे के चुग़ताई तुर्क, जो पहले भी कई अभियानों में धूप-छाँव का मुक़ाबला करते हुए हमारे साथ रहे थे। बसंत का मौसम आते-आते—जब बादाम फलने लगे थे—हमारे पास 10, 000 घुड़सवार और तीरंदाज़ जमा हो गए थे।

हम फ़ौज की एक छोटी टुकड़ी के साथ काफ़िरिस्तान को रवाना हो गए। हमने उन काफ़िर-ख़ानदानों को भी अपनी तलवार की धार के सामने नहीं टिकने दिया, जिन्होंने कभी सिकन्दरेआज़म तक का मुक़ाबला किया था। एक-एक को मौत के घाट उतारते हुए हम आगे बढ़ते गए। हम चिड़ियों की उड़ान से भी तेज़ गति से चढ़ाई करते हुए सिंधु नदी तक जा पहुँचे और फिर उस लम्बी-चौड़ी नदी को पार कर तुग़लकों के साम्राज्य में घुस गए। इस बीच हमारे पोते ने तो मुल्तान पर कब्ज़ा कर ही लिया था। हम भी रास्ते की हर रुकावट का मुक़ाबला करते और पंजाब की नदियों को लाँघते हुए पाकपट्टन तक जा पहुँचे। वहाँ हमने फ़रीदुद्दीन गंजे-शकर की मज़ार पर नमाज़ पढ़ी और उनकी दुआओं को दिल्ली में दफ़्न उनके वारिस शेख़ निज़ामुद्दीन तक पहुँचाने का वादा किया।

हम ज्योतिषियों और सूरज की गतिविधियों के जानकार विद्वानों की सलाह के मुताबिक़ ही बड़े नियोजित ढंग से अपने अभियान तय करते थे। जब हमने पंजाब को पार किया, तब वहाँ के मैदानी इलाक़ों में बारिश हो चुकी थी और ज़मीन दलदली बनी हुई थी। यमुना नदी के किनारे पहुँचते-पहुँचते मौसम ठंडा होने लगा था। आसमान हमारे हरम की नीली छतों की तरह दिखता था और ठंडी हवाएँ समरक़न्द के बसंत की याद दिलाती थीं।

यमुना में बाढ़ आई हुई थी। हम नदी के साथ-साथ बढ़ते हुए वहाँ जाकर रुके जहाँ से सुल्तान फ़िरोज़ तुग़लक के शहर का पूरा नज़ारा मिलता था। उस शहर को फ़िरोज़ तुग़लक के नाम पर फ़िरोज़ाबाद या कोटला फ़िरोज़शाह कहते थे। अपने महल के ऊपर फ़िरोज़ ने पंद्रह सौ साल पहले इसी ज़मीं पर हुकूमत करनेवाले काफ़िर बादशाह अशोक के ज़माने की एक पतली-लम्बी लाट लगवायी हुई थी। इस पर अशोक के राहबर गौतम बुद्ध के उपदेश खुदे हुए थे। फ़िरोज़ाबाद की रियाया ने हमारे ख़िलाफ़ कोई विरोध नहीं दिखाया। यहाँ तक कि अनेक मुसलमान हमारे पास अपनी सेवाएँ अर्पित करने खुद आए।

हमारे नवाबों और अमीरों ने हमें सलाह दी कि पंजाब में जिन अनगिनत काफ़िरों को हमने ग़ुलाम बनाया है, वे तुग़लक के साथ हमारी लड़ाई के दौरान मौक़ा पाकर कभी भी हमारे ख़िलाफ़ बग़ावत कर सकते हैं। कई लोगों ने हमें साफ़-साफ़ सुझाया कि इन ग़ुलामों को मौत के घाट उतार देना ही बेहतर होगा। हमारी हिरासत में तकरीबन 10, 000 ग़ुलाम थे। हम इतने लोगों का ख़ून बहाना नहीं चाहते थे। लेकिन थोड़े-बहुत जो हिरासत से भागने की कोशिश करते पाए गए, उन्हें हमारे सामने हाज़िर किया गया और हमने हुक्म दिया कि उनके सिर सबके सामने काट दिए जायँ, ताकि बाक़ी सभी ग़ुलामों को उनके हश्र से सबक़ मिले। इस तरह हमने अपने ख़िलाफ़ होनेवाली बग़ावत के बीज को सिर उठाने से पहले ही कुचलकर रख दिया।

19 दिसम्बर, 1398 को अपने वज़ीर मल्लू ख़ान इक़बाल द्वारा बहकाए जाने पर मुहम्मद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुग़लक हमसे लड़ने के लिए नगाड़ों और फ़ौजी बाजों के साथ अपनी फ़ौजें लेकर शहर के बाहर निकला। उसके सिपहसालार हाथियों पर सवार तीरंदाज़ों की सेना समेत हमारा मुक़ाबला करने को थे। हम पहले से ही इसके लिए तैयार थे। हमने अपनी घुड़सवार सेना की पहली क़तार के पीछे ज़मीन में नुकीले खूँटे गाड़ दिए थे। कज़्ज़ाकों की तरह, हमला होते ही हमारे घुड़सवार दुश्मन के हाथियों की तरफ़ दौड़ते और उनके तीर निकालकर वापस लौट आते। ऐसा हमारे घुड़सवारों ने कई बार किया और तुग़लक की फ़ौजों को भारी मार लगाई। उसके सेनापति बदहवास-से हो गए। जब उनके हाथी हमारी ओर बढ़े तो हमने पीछे भागना शुरू किया। हाथियों के पैरों में ज़मीन में गड़े खूँटे ऐसे उलझे कि वे आगे बढ़ ही नहीं पाए और हाथियों की पिछली क़तारें भी वहीं की वहीं जमी रहीं। हमने एक किनारे से हाथियों पर ऊँटों के दल छोड़ दिए। ऊँटों पर भूसे के ढेर लदे थे। तुग़लक के हाथी डरकर ऐसे तितर-बितर हो गए कि अब उसकी घुड़सवार और पैदल सेना हमारे सामने खड़ी दिखने लगी। हमने नारा-ए-तकबीर दिया और हमारे तुर्क फ़ौजी पूरे जोशो-ख़रोश के साथ अल्लाहो-अकबर की दहाड़ें मारते हुए शेरों की तरह अपने शिकार पर टूट पड़े।

तुग़लक की सेनाएँ भाग खड़ी हुईं। लड़ाई के मैदान में अल्लाह का ही हुक्म चलता है। हमारी तलवार को तो उसने हमेशा की फ़तह की दुआएँ दी हैं।

दो दिनों बाद, बृहस्पतिवार, 20 दिसम्बर के दिन, हमने हौज़े-इलाही के विशाल तालाब के पासवाले मदरसे में डेरा डाला। हमने सुल्तान फ़िरोज़ तुग़लक की मज़ार पर फ़ातेहा पढ़ा। ज़ोहार की नमाज़ के बाद हमने सीरी, जहाँपनाह और महरौली की सारी रियाया को अपने सामने घुटने टेकने के लिए बुलाया। सैंकड़ों-हज़ारों की तादाद में लोग नज़राने लेकर हमारे सामने हाज़िर हुए। अपनी पगड़ियाँ और टोपियाँ हमारे पाँवों में डालकर वे हमसे माफ़ी माँगने लगे।

मौलवियों की एक टोली हमारे पास आई और कुरान की जिल्दें भेंट करते हुए कहने लगे कि सहधर्मी होने के नाते हम मुसलमानों का और खून न बहाएँ। उन्होंने अपने-अपने शहरों की चाबियाँ हमें सौंपते हुए कहा कि वे हमारे स्वागत की तैयारियाँ करना चाहते हैं। हमने उनका अनुरोध मान लिया और कहा कि हमारे सेनापतियों के साथ वे हर्जाने का ब्यौरा तय कर लें।

अगला दिन जुम्मे का दिन था। क़ुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद में हमारी हाज़िरी में खुतबा पढ़ा गया। हमने सुल्तान इल्तुतमिश और अलाउद्दीन ख़िलजी की मज़ारों पर फ़ातेहा पढ़ा और उसके बाद कुतुबमीनार और शाही मस्जिद को देखने गए। इन हिंदवी लोगों ने कैसे इस विशालकाय मीनार को स्वर्णकारों की-सी बारीकी से सम्पन्न किया था! हमने तो सोच लिया था कि समरक़न्द की मस्जिद बनवाने के लिए हम यहीं से कारीगरों को साथ ले जाएँगे। इसके बाद हम पीर कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी को सिज्दा करने उनकी मज़ार पर गए। हम औलिया मस्जिद देखने भी गए, जहाँ पीर ने कड़े अनुशासन में अपने दिन बिताए थे। आम जनता ने हमारी खूब ख़ातिर की। मस्जिद के पासवाले शम्सी तालाब में तैराकी के मुक़ाबले कराए गए थे। हमने पाया कि इस शहर में चारों ओर खुशहाली का राज है।

हमारे हरम की औरतें कैसरे-हज़ार-सुतून को देखने के लिए बेताब थीं। हमने उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महल देखने जाने की इजाज़त दे दी और खुद हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की मज़ार पर माथा टिकाने ग़यासपुर चले गए।

हिन्दुस्तान के लोगों के लिए यह आम बात है कि वे जितनी जल्दी आपकी तारीफ़ों के पुल बाँधते हैं, उतनी ही तेज़ी से आपसे नफ़रत भी करने लगते हैं। अब ये लोग हमें हर्जाना देने से मुकरने के फेर में पड़ गए थे। रात के अँधेरे में बहुत-से लोग सीरी, महरौली और जहानाबाद से अपने माल-असबाब के साथ कहीं और खिसक लिये। शहर के फाटकों पर हमने जो पहरेदार तैनात किए थे, उनका क़त्ल कर दिया गया था। हमने अपनी फ़ौजों को हुक्म दिया कि शहर में घुसकर जितनी लूटमार करना चाहो, करो और हर हट्टे-कट्टे आदमी को क़त्ल करके उसके बीवी-बच्चों को ग़ुलाम बना लो। अगले दस दिनों तक हमारे सिपाही अपनी तलवारें ख़ून में डुबोते रहे। मारे जानेवाले लोगों की कोई गिनती नहीं की। कोई कहता पचास हज़ार मरे; कोई कहता पाँच लाख मरे। इसका हिसाब भी कोई नहीं था कि कितना सोना-चाँदी और कितने हीरे-जवाहरात हमारे फ़ौजियों ने लूटे। हमारे छोटे-से-छोटे सिपाही के क़ब्ज़े में भी क़रीब दो-दो दर्जन ग़ुलाम थे। दिल्ली से लूटी हुई दौलत हमारे फ़ौजियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी ख़त्म होनेवाली नहीं थी। हमें याद है कि एक बार पैग़म्बर मोहम्मद हमारे सपने में आए और बोले, "अल्लाह ने ऐलान किया है कि हमारे ख़ानदान की बहत्तरवीं पीढ़ी दुनिया पर हुकूमत करेगी।" लगता है वह भविष्यवाणी अब सिद्ध हो रही थी। हमने तय कर लिया कि अब बस और ख़ून-ख़राबा करने की ज़रूरत नहीं है।

हमारे अनगिनत घोड़े-हाथियों पर दिल्ली की लूट को लादा जा रहा था। हज़ारो-हज़ार ग़ुलामों के काफ़िलों के साथ हम समरक़न्द को लौट चले। यमुना नदी को पार कर हमने मेरठ शहर में भी लूट-मार की और तराई की तरफ़ कूच किया। जैसा कि हमने तय कर लिया था, रास्ते में हम मंदिरों और उनमें रखी मूर्तियों को तबाह करते चले। एक जगह ब्राह्मणों ने हमें चेतावनी दी कि हम उनके भगवान कृष्ण की मूर्तियों को न छुएँ। लेकिन सोने की बनी कृष्ण की आदमक़द मूर्ति को हमने रोते-गिड़गिड़ाते पुजारियों के सामने ही तोड़-फोड़कर तबाह कर दिया और पुजारियों के सिर काटकर फेंक दिये।

महीने-भर बाद हम अपनी फ़ौजों के साथ समरक़न्द लौट गए।

दिल्ली से हमें बड़ी दिल दहलानेवाली ख़बरें मिलीं। हमारे आने के बाद मरे हुए लोगों को दफ़्नाने के लिए भी कोई नहीं बचा था। सड़-गल रहे मुर्दों से वहाँ महामारी फैल गई थी। जो थोड़े-बहुत लोग क़त्ले-आम के दौरान बच रहे थे, वे भी बीमारी की लपेट में आकर ख़त्म हो गए। कई महीनों तक दिल्ली शहर पर दिन में कौओं, चमगादड़ों और चीलों का राज रहा और रातों को सियारों, उल्लुओं और लकड़बग्घों का।

लेकिन हमने तो अपनी ज़िंदगी की एक-अकेली मंज़िल हासिल कर ली थी। हमें अपनी जवानी के दिनों में ही पता चल गया था कि जैसे ऊपरवाला एक ही है, वैसे ही ज़मीनी शहंशाह भी एक वक़्त में एक ही हो सकता है। अल्लाह ने हमें जो इन्सानी ज़िंदगी दी थी, उसमें हमने दुनिया के ज़्यादा-से-ज़्यादा मुल्कों को अपनी हुकूमत में लेने की कोशिश की। अपने निज़ाम को महफ़ूज़ रखने के लिए हमने इन्साफ़ को अपने एक हाथ में रखा और ईमानदारी को दूसरे में; और इन्हीं दो चिराग़ों की रोशनी में हम अपने शाही महल को जगमगाते रहे। कुछ लोगों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी निन्दा भी की कि हमने ख़ून-ख़राबा किया। लोगों के भड़काने पर ख़्वाजा उबैद ने मुसलमानों को हमारे नाम पर खुतबा पढ़ने से मना कर दिया, क्योंकि हमने मुसलमानों का भी ख़ून बहाया था। लेकिन उसी के बाद एक रात पैग़म्बर मोहम्मद, ख़्वाजा उबैद के सपने में आए और उन्होंने उसकी दुआ-सलाम लेने से इन्कार करते हुए उसे फटकारा कि बेशक तैमूर ने मेरे बंदों का ख़ून बहाया है, पर वह मेरा और आगे आनेवाली नस्लों का दोस्त और मददगार रहा है। तुम क्यों लोगों को उसकी इबादत और दुआ करने से रोकते हो?

बहरहाल, अल्लाह हमें हमारे गुनाहों के लिए मुआफ़ करे!

7

भागमती

लगता है रात बारिश हुई थी। नींद से जागा तो भीगी मिट्टी की सोंधी गन्ध नथुनों में भरने लगी। पैरों के नीचे दबी गर्म पानी की थैली में अब वह गर्मी नहीं रही थी। मैं रजाई में दुबके-दुबके भी ठंड से काँप रहा था। मेरे फ़्लैट के पास से गुज़रती दबी-दबी आवाज़ें मेरे कानों में किसी बहते हुए स्रोत-स्वरों की तरह आ रही थीं। मैंने अपना टेबल-लैम्प जलाया। सुबह के सिर्फ़ साढ़े चार बजे थे। मैंने फिर बत्ती बुझा दी। हाथों को घुटनों के बीच दिए मैं फिर सोने की कोशिश करने लगा। पर आवाज़ों का आना बन्द नहीं हो रहा था। इतनी सर्द सुबह ये लोग भला कर क्या रहे हैं?

ख़ानसामा चाय का मग लेकर आया तो मैं पूरी तरह जाग गया। वह बिजली का रूम-हीटर जला देता है। कमरा उसकी गुलाबी आँच में दमक उठता है। मैं कह उठता हूँ, "आज बहुत ठंड है।"

"हाँ," वह हाँ में हाँ मिलाते हुए कहता है, "रात-भर बारिश होती रही न! साब, आपकी 'छोटी हाजिरी' लगा दूँ? आज ज़रा जल्दी जाना चाहता था।"

"क्यों?"

"परेड देखने, साब! छब्बीस जनवरी है न! सामने की लाइन में बैठने के वास्ते तो लोग भोर-तड़के से ही जा रहे हैं। बुधसिंह भी आज की छुट्टी माँग रहा है।"

इससे अच्छा मौक़ा और क्या हो सकता था कि दोनों एक-साथ रास्ते से हट रहे हैं! काश, उस बेवकूफ़ भागमती को पता होता कि आज छुट्टी का दिन है! पुलिस के सड़कों को बंद करने से पहले ही अगर वह आ जाती तो⋯तो हम यहीं अँगीठी के ताव में गणतंत्र-दिवस मनाते। पर वह कहाँ पढ़ती है अख़बार! वह तो रेडियो पर ख़बरें तक नहीं सुनती। मैंने उसे एक ट्रांज़िस्टर भी लेकर दिया हुआ है, पर उससे भी सुनेगी तो सिर्फ़ विविध भारती पर आते फ़िल्मी गीत। फिर भी उम्मीद तो रखनी ही चाहिए। पिछले कई हफ़्तों से मैं सेक्स से वंचित हूँ। भीतर जमा होता आवेग अब बेक़ाबू होता जा रहा है। खानसामे को जाने से पहले मेज़ पर नाश्ता लगाने और बैठक की अँगीठी (फ़ायरप्लेस) जलाने को कहता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठक में आया तो देखता हूँ कि अँगीठी में भड़-भड़ आग जल रही है। बाहर आसमान साफ़ दिख रहा है और खिड़की से धूप भी आ रही है। मर्दों, औरतों और बच्चों के काफ़िले के काफ़िले शालों, मफ़लरों में लिपटे राजपथ और कनॉट सर्कस की तरफ बढ़ रहे हैं। मैं अपने-आपको अकेला पाकर खुशनसीब समझ रहा हूँ। परेड देखने जाकर भी क्या करना था! कल तो सब-कुछ आ ही जाएगा अख़बारों में। कमेंट्री रेडियो पर सुन लेंगे। परेड देखने का ज़्यादा ही जी किया तो टेलीविज़न चला लूँगा। और अगर भागमती आ जाये तो कहना ही क्या! उम्मीद तो पूरी है, क्योंकि अक्सर वह छुट्टियों के रोज़ नाग़ा नहीं करती।

लोगों का आना-जाना अब बन्द हो चुका था। पूरे ब्लॉक पर एक रहस्यमय नीरवता-सी छाई हुई थी। लगता था जैसे आसपास रहनेवाले सभी लोग गणतंत्र-दिवस की परेड देखने चले गए थे। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और दिल्ली का हर रुतबेवाला व्यक्ति उस वक़्त परेड देख रहा होगा।

तभी मेरी खिड़कियों के शीशे खड़खड़ाए, मैंने तुरन्त रेडियो चालू किया। राष्ट्रपति को इक्कीस तोपों की सलामी दी जा रही थी। अब वे एक-एक कर थल सेना, वायु सेना और जल सेना की टुकड़ियों की सलामी लेंगे। और फिर नेहरूजी की बारी आएगी। वे बच्चों को प्यार से थपथपाएँगे, उनके चाचा जो ठहरे!

इक्कीस तोपों की आवाज़ के साथ ही मेरे दरवाज़े की घंटी बज उठी। तो भागमती ने मेरे मन की बात सुन ही ली! "वाह, क्या बात है! मैंने तो समझा था कि तुम भूल ही गईं। पुलिस ने तो रास्तों में बैरिकेड लगा रखे होंगे! तुम आईं कैसे?" मेरी खुशी छुपाए नहीं छुप रही थी।

"अजी, तो तुम्हारी इस लौंडिया को रोकने की जुर्रत कर सके, ऐसा इन्सान अभी पैदा नहीं हुआ!" आग के आगे हाथ फैलाते हुए वह बोली, "सर्दी तो जैसे हड्डियों में पैठी जा रही है। अजी, ये दिल्लीवाले भी कैसे चूतिया हैं कि साल-दर-साल इत्ती सर्दी में वही की वही परेड देखने निकल पड़ते हैं?"

मैंने उसके लिए एक कप कॉफ़ी बनायी और थोड़ी-सी रम उसमें पिला दी। वह बातों में इतनी मग्न है कि न तो उसे गंध से पता चलता है और न स्वाद से कि उसमें कुछ मिलाया गया है।

पूरी कॉफ़ी पी चुकी तो लगा कि भीतर से भी वह उतनी ही सिक चुकी है, जितनी बाहर से आग ताप-तापकर। अब मुझे अपना 'गणतंत्र दिवस' मनाने की जल्दी होने लगी। किशोर-सुलभ तत्परता के साथ मैं अपने काम में जुट जाता हूँ और मिनट-भर बाद ही मेरा 'जयहिन्द' हो जाता है। मेरे रेडियो में न जाने कितने लाख दिल्लीवाले 'जयहिन्द' का नारा लगा रहे हैं।

मैं चाहता हूँ कि भागमती अब यहाँ से फूटे और लाल कुआँ चली जाए। पर वह तो ऐसे बैठी है कि लगता है उसका ऐसा कोई इरादा ही नहीं। वह मुझसे बेहद निराश-सी हुई लगती है। निश्चय ही वह मुझे यों ही बख़्शकर नहीं चली जाएगी। "अजी, कित्ती बार तुमको समझाया कि ज़रा धीरज से काम लिया करो। पर तुम्हें तो अपनी माशूक़ा का तनिक भी ख़याल नहीं। उसके भीतर आग भड़काकर खुद 'फट' हो गए। बस! वह तो दशहरे पर जलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंका की तरह आग की लपटों-जैसी तड़प रही है और तुम फ़ायर-ब्रिगेड का सूखा पाइप बने बैठे हो ! हैं ?"

कुतिया ! जब तक इसके बदन में भड़कती आग को ठंडा नहीं करूँगा, यह चैन थोड़े ही लेने देगी ! और इसको ठंडा करने का मतलब है खुद को दोबारा गर्म करना। मैं कोई बहाना बनाने लगता हूँ और उसे समझाता हूँ कि अब लोग घरों को लौटने लगेंगे, इसलिए उनके आने से पहले ही हमें यहाँ से निकल चलना चाहिए। लेकिन उसकी तो यहाँ से टलने की कोई इच्छा नहीं लग रही थी। वह आहें भरने लगती है।

ठंडी हवाएँ चल रही हैं, पर धूप निकली हुई है। सब-कुछ धुला-धुला-सा लग रहा है, एकदम हरा-भरा। दिल्ली इन दिनों बेहद ख़ूबसूरत दिखती है। चारों ओर फूल—गुलाब, बोगेन-बेलिया और न जाने क्या-क्या !

मैं भागमती को सफ़ेद बाघों का परिवार दिखाने चिड़ियाघर ले जाता हूँ। चिड़ियाघर के बाहर ऐसी भीड़ जमा है कि लगता है पूरा दिल्ली शहर ही बाघों को देखने उमड़ आया है। भीड़ देखकर हम इतने निरुत्साहित हुए कि भीतर घुसने का विचार ही छोड़ दिया और चिड़ियाघर के उत्तरी छोर पर बुलंदी से खड़े पुराने क़िले की ओर मुड़ गए।

क़िला पूरी तरह वीरान लग रहा है। आदमी के नाम पर एक बच्चा तक नहीं। मैं भागमती के साथ बावड़ी (कुआँ) की सीढ़ियाँ उतरता हूँ और बर्फ़-से ठंडे पानी को छूता हूँ। ऊपर लौटकर हम शेरशाह का मक़बरा देखने को बढ़ते हैं। वह स्कार्फ़ से अपना सिर ढँक लेती है। इतने सालों से इसे जानता हूँ, पर अभी तक यह भी नहीं समझ पाया कि यह हिन्दू धर्म को मानती है या मुस्लिम धर्म को। कहती है, दोनों को मानती हूँ, और अब तीसरे—सिख धर्म को भी।

हम धूप में टहलने लगते हैं। मैं उसे बताता हूँ कि यह जगह कभी इन्द्रप्रस्थ कहलाती थी—पांडवों की राजधानी ! बस वहीं से मुसीबत मोल ले ली मैंने, क्योंकि भागमती पांडवों के बारे में सब-कुछ जानती है—द्रौपदी और उसके पाँचों पतियों को। बड़े चुभते स्वर में कहने लगी, "आजकल के मर्दों के चलन देखकर तो यही जी में आता है कि हर औरत को भी पाँच-पाँच ख़सम करने चाहिएँ।"

भारतीय वायुसेना के जेट विमान अपने पीछे सफ़ेद पुछल्ले छोड़ते नीले आसमान को चीर रहे हैं। उनके पीछे हेलीकाप्टरों की फ़ौज की फ़ौज गेंदें और गुलाब की पंखुड़ियाँ बिखेरती उड़ गई। गणतंत्र दिवस की परेड को ख़त्म होते देखने के लिए हम शेर मंडल के बुर्ज पर चढ़ जाते हैं। भागमती को बताता हूँ कि यह शेरशाह सूरी की लाइब्रेरी है। "पर इसमें तो किताबें हैं ही नहीं ?" वह शीर्ष पर बने उस अष्टभुजाकार कक्ष को देखकर पूछती है। मैं उसे बताता हूँ कि पुस्तकालय यहाँ आज से कोई चार सौ पचास बरस पहले हुआ करता था। वह समझ जाती है।

मथुरा रोड पर पों-पों, भों-भों करती बसों, कारों और स्कूटरों की आड़ी-तिरछी क़तारें गुज़र रही हैं। पच्छिम की तरफ़, जहाँ हम खड़े हैं, हवा बहुत तेज़ चल रही है। हम पूरब की ओर धूप में हो जाते हैं। "अरे, इसे तो मैंने देखा है," भागमती एकाध मील की दूरी पर दिखाई दे रहे संगमरमर के एक गुम्बद को देखते हुए कहती है, "यह बादशाह हुमायूँ का मक़बरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी बेगम ने उसकी मज़ार पर इसे बनवाया था। तुम भी मेरे मरने के बाद मेरी मज़ार पर मक़बरा बनवाओगे न ?"

भागमती की चिड़चिड़ाहट अब दूर हो चुकी थी। मेरा हाथ वह अपने हाथ में ले लेती है। हम एक-साथ सँकरी सीढ़ियाँ उतरते नीचे आ रहे हैं। मैं एक सीढ़ी चूक जाता हूँ और धड़ाम से कूल्हों के बल जा गिरता हूँ। "या अल्लाह ! अजी, इन जानलेवा सीढ़ियों पर ऐसी लापरवाही से नहीं चलना चाहिए। मुँह के बल गिरते तो माथा ही फोड़ बैठते अपना।" वह कहती है। मैं हुमककर कहता हूँ, "आज से पूरे 430 साल पहले बादशाह हुमायूँ ने यहीं, इन्हीं सीढ़ियों पर ठीक 26 जनवरी, 1530 के दिन कूच किया था।"

भागमती मेरे ज्ञान का लोहा मान चुकी है। लेकिन वह ख़ुद भी पीछे नहीं रहना चाहती। बोली, "अपनी बेगम को मिलने दौड़ा जा रहा होगा। ऐसे उतावले आशिक़ों का यही हश्र होता है।"

"नहीं, अपनी बेगम से मिलने को उतावला नहीं हो रहा था। वह तो अल्लाह से मिलने को मचल रहा था, सो बुला लिया अल्लाह ने।"

भागमती अपने दोनों हाथ मुँह के पास ले-जाकर मरहूम बादशाह की आत्मा की शांति के लिए दुआ करती बुदबुदा रही है।

विषयासक्ति के बुझे अंगारों को फिर से हवा देने के लिए हम घर लौट आते हैं। बड़ा बुरा दिन रहा यह। सुबह से ही मनहूस ! भागमती मुझे जितना उत्तेजित करने की कोशिश करती है, मैं फिर वैसा का वैसा ! कोई उद्दीपन, कोई आवेग ही नहीं जागता मुझमें। उसे समझाता हूँ कि मैं अब बुढ़ा रहा हूँ और मुझे ऐसे उत्तेजित नहीं किया जा सकता। वह पूरी तेज़ी से पलटकर कहती है कि मैं बुढ़ा नहीं रहा हूँ, बल्कि उसके प्रति उदासीन होता जा रहा हूँ क्योंकि मुझे अब उसकी नहीं, मेमसाहबों की ज़रूरत पड़ने लगी है।

भागमती को पता नहीं कैसे मेरे जीवन में आई दूसरी औरतों के बारे में पता चल जाता है। दोपहर-भर हम ऐसे ही छोटी-छोटी बातों पर लड़ते-झगड़ते रहते हैं। मैं उसे मनाने की कोशिश में शाम को गणतंत्र दिवस की चकाचौंध दिखाने ले जाता हूँ। वह अपने कन्धे उचकाकर आहें भरती है। रोशनी में जगमगाते सचिवालयों और राष्ट्रपति भवन की तरफ़ वह कोई ग़ौर नहीं करती। भीड़ इतनी ज़्यादा है कि गाड़ी बस धीरे-धीरे रेंग ही पा रही है। संसद-मार्ग और कनॉट सर्कस होते हुए अजमेरी गेट तक पहुँचते हुए हमें नौ बज जाते हैं। कार का दरवाज़ा खोलते हुए दस-दस के दो नोट उसके हाथों में भींच देता हूँ। वह उनकी ओर वितृष्णा से देखती है और फिर उन्हें सीट पर फेंकते हुए भीड़ में जा मिलती है।

भागमती को कुछ ज़रूर हो गया है। वह धीरे-धीरे ईर्ष्यालु होती जा रही है और मेरे ऊपर हावी भी। एक बार कहने लगी, 'मैं जानती हूँ कि तुम पूछोगे कि मैं होती कौन हूँ तुम्हारी किसी बात में टोकाटोकी करनेवाली !' और हथेली की पीठ से बिन आए आँसुओं को पोंछने लगी, 'मैं तो तुम्हारे लिए अब पुराना क़िला हो चुकी हूँ न, जिसको तुम फ़तह कर ही चुके हो। अब तो तुम्हारी नज़र लाल क़िले और उसके सफ़ेद संगमरमरी गुम्बदों पर है।'

भागमती को यों व्यंग्य के तीर फेंकना शोभा नहीं देता। अब मुझे उससे चिढ़-सी होने लगी है। पर जितना ही उससे पीछा छुड़ाने की कोशिश करता हूँ, उतना ही वह मुझे उलझाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। अपनी नियमित दिनचर्या के बाद हर रात मुझे देखने मेरे फ़्लैट पर आ धमकती है। अगर मैं कभी घर पर नहीं मिलता तो बुधसिंह से तहक़ीक़ात करती है। बुधसिंह भी कोई कम नहीं। आग पर घी छिड़कने में माहिर हो गया है, 'वह तो एक अमरीकन मिस्सी बाबा के साथ गए हैं!'

और वह अमरीकन मिस्सी बाबा है—सोलह साल की जॉर्जीन। समझ में नहीं आता भागमती को इस बुद्धू, नाकचिपटी, चित्तीदार चेहरे और लाल रंग के बालोंवाली अंग्रेज़ लड़की से कौन-सा ख़ौफ़ हो रहा था! दूसरी औरतों को लेकर तो उसने कभी कोई फ़िक्र नहीं की। वैसे भी, एक वेश्या को क्या अधिकार है कि वह अपने ग्राहक से जवाबदेही करती रहे कि वह उसके पीछे किससे मिलता है और क्या करता है! बहरहाल भागमती के लिए तो जॉर्जीन जैसे एक मनोग्रंथि ही बन गई है। मैं मानता हूँ कि जॉर्जीन मेरे लिए भी एक मनोग्रन्थि ही हो चली है। मैं जब-तब उसके बारे में बातें करता रहता हूँ। मैंने खुद ही तो भागमती को उसके बारे में बताया था।

यह पूरा साल ही मेरे लिए अशुभ रहा। इस साल मुझे लेखन के बहुत कम अनुबन्ध मिले; और जो थोड़े-बहुत लेख आदि विभिन्न अख़बारों में भेजे भी, उनसे इतना जुट नहीं पाया कि जिस ठाठ से रहने का मैं आदी था, वैसे रह सकूँ। इसलिए मैंने भारत सरकार के पर्यटन विभाग में गाइड के लिए अपना पंजीकरण करवा लिया। मैंने अपने विज़िटिंग कार्ड भी विदेशी दूतावासों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों में छोड़ दिए। अक्तूबर और मार्च के बीच तो मुझे विदेशी मुद्रा में काफ़ी बख़्शीश मिली, जिसे मैंने अधिक दामों पर रुपयों में बदल लिया। होटलों, ज्योतिषियों और दुर्लभ कलाकृतियों की दुकानों से मुझे ग्राहक लाने के एवज़ में काफ़ी कमीशन भी मिलता रहा। कभी-कभी विदेशी लोग भारत छोड़ने से पहले बची हुई स्कॉच की बोतलें भी मुझे दे जाते। प्रौढ़ विदेशी महिलाएँ यदा-कदा मुझे अपने कमरों में बुला लिया करतीं और मेरी सेवाओं के बदले भेंट-उपहार देतीं।

इस काम में उतनी मेहनत भी नहीं थी। बस कुछेक वंशों और बादशाहों के नाम, उनके शासन-काल की अवधि और उनसे जुड़े क़िस्से-कहानियाँ-भर मुझे रटने होते। मैं उन्हें बताता कि कुतुबमीनार से कितने लोगों ने कूदकर खुदकशी की या फिर कि हुमायूँ के वालिद बाबर ने अपनी बीमार बेटे के पलँग के चारों ओर चार बार चक्कर काटकर प्रार्थना की कि ख़ुदा उसके बेटे की बीमारी उसे बख्श दे, उसके बेटों को भला-चंगा कर दे, भले ही उसकी खुद की जान ले ले, और यह कि कैसे हुमायूँ सचमुच ठीक हो गया और बाबर चल बसा। लालक़िले और इसके हरमों के बारे में बताने के लिए मैंने काफ़ी रोचक सामग्री इकट्ठा कर ली थी। शाहजहाँ, जिसने इसे बनाया था, से लेकर आनेवाले सभी बादशाह जो इसके तख़्तेताऊस पर बैठे, कभी चैन से न जी सके। या तो उनकी आँखें निकाल ली गईं, यातनाएँ दी गईं या फिर उन्हें क़त्ल कर दिया गया। सन् 1857 के ग़दर के बाद अंग्रेज़ इसे अपने मुल्क ले गए। उसके बाद के क़िस्से तो सभी जानते हैं।

मैं अपने पर्यटकों को इंडियन नेशनल आर्मी के अफ़सरों के मुक़द्दमों की बावत भी बताता।15 अगस्त, 1947 के बारे में बताता, जब लालक़िले के परकोटे से लॉर्ड माउंटबेटन ने 'यूनियन जैक' (झंडा) उतारा था और नेहरू जी ने अपना तिरंगा फहराया था। अपना 'होम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्क' अच्छी तरह करके आने के कारण मैं अपने टूरिस्टों को अपने ज्ञान से ख़ासा प्रभावित कर लेता था।

कुछ दिनों के बाद मुझे अपने काम में मज़ा आने लगा। हालाँकि मुझे ऐसा कोई भी नहीं टकराया जो मुझे मुफ़्त में दुनिया की सैर करा देता, फिर भी इतना ज़रूर कहूँगा कि ख़ुद दुनिया मेरे पास चलकर आ पहुँची थी। एक बार इंग्लैंड के एक कारखाने में काम करनेवाले मेरे एक चचेरे भाई ने मुझसे कहा कि उसने अपने कारख़ाने में काम करनेवाली 'इतनी-इतनी' अंग्रेज़ लड़कियों को हलाल किया है। तब मैंने उसको बताया कि दिल्ली में बैठे-बैठे ही, बिना कानी कौड़ी ख़र्च किए मैंने कितनी ही अमरीकन, योरोपियन, जापानी, अरबी और अफ्रीकी लड़कियों को हलाल किया है। सुनकर बेचारे के मुँह से लार टपकने लगी थी।

लेकिन मेरी सबसे बड़ी तकलीफ़ यह थी कि मुझे उनमे से एक के साथ भी दोस्ती करने का मौक़ा नहीं मिला। सारी 'मेरियाँ', 'जेनें', 'फ्रेंकॉएसें' और 'मिकियाँ' एक या दो दिन का साथ निभाकर जाने कहाँ खो जातीं! कुछेक हफ़्तों के बाद तो मुझे उनके नाम, यहाँ तक कि चेहरे भी याद नहीं रहते। बस यही याद रह जाता कि कैसे मौक़े पर किसने मेरे साथ कैसा बर्ताव किया था। कुछ एकदम नीरस थीं, तो कुछ पूरी तरह ज़िंदगी से भरपूर। कुछ की आनन्दातिरेक में चीख़ें निकल पड़ती थीं, तो कुछ जाते हुए मुझे थपेड़े तक लगा जातीं।

ख़ैर, अमरीकन मिस्सी बाबा जॉर्जीन की बात ही कुछ और थी।

अमरीकी दूतावास के साथ मेरा सम्पर्क कार्लाइल नामक एक व्यक्ति के ज़रिए हुआ था। कार्लाइल दूतावास में क्या काम करता था, यह मुझे कभी पता नहीं चल पाया। बस, इतना ही जानता था कि कुछ 'ख़ास आगन्तुकों' की आवभगत और उनके घुमाने-फिराने का ज़िम्मा उसके सिर है। वह बाक़ी गाइडों को परख चुका था। मुझे देखकर उसके विश्वास हो गया कि मैं 'आगन्तुकों' के साथ कोई धोखाधड़ी नहीं करूँगा। इसलिए उसने मुझे ग्राहक देने शुरू कर दिए। अमरीकन ही मेरे सबसे बढ़िया ग्राहक थे। अपने ठंडे व्यवहार के बावजूद वे बाक़ी विदेशियों के मुक़ाबले काफ़ी दोस्ताना और उदार हुआ करते थे।

मैं कार्लाइल के 'ख़ास आगन्तुकों' के साथ विशेष रूप से सतर्क रहा करता था। उनके साथ मैं आदर और विनम्रता से पेश आता और एक ख़ास तरह की दूरी बनाए रखता। उनसे बख़्शीश की उम्मीद मैं नहीं रखता था, न ही उनके टेप-रेकार्डरों, कैमरों या बॉल-पाइंट पेनों को ललचायी नजरों से देखता था। मन-ही-मन तो मैं जानता था कि जाने से पहले वे कोई-न-कोई यादगार तो मुझे देकर ही जाएँगे। कमीशन लेने के चक्कर में मैं उन्हें महँगी दुकानों या एम्पोरियमों में ले जाने के बजाय सस्ती और भरोसेमंद जगहों पर ले जाता और उनकी मनपसन्द ख़रीदारी करवाता।

मेरा 'ऑक्सब्रीज' लहजा बाक़ी विदेशियों के बदले अमरीकनों को ज़्यादा प्रभावित करता था। उनके लिए मैं एक शिष्ट और अच्छे घर का गाइड था, जो शायद किसी मुसीबत में पड़कर यह काम करने को मजबूर हुआ था। वैसे बात ठीक भी थी।

कार्लाइल ने ही मेरा परिचय जॉर्जीन से करवाया था। जॉर्जीन मिसेज़ कार्लाइल की भतीजी थी। वह अपनी क्रिसमस की छुट्टियाँ बिताने दिल्ली आई थी। "यह जॉर्जीन है," कार्लाइल ने बिना उसका पूरा नाम बताए मुझसे कहा और उससे कहा, "और ये हैं तुम्हारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाइड।" मैंने झुककर अभिवादन किया और उसने कहा, "हाय !"

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वह फूहड़-सी, चित्तीदार चेहरेवाली, मुँहासों-भरी, नकचिपटी-सी लड़की थी। पर वक्ष और नितम्ब उसके ख़ासे भरे-भरे-से थे। चुस्त स्वेटर और वैसी ही चुस्त जीन्स पहने हुए थी।

मैंने उससे पूछा कि उसे लोगों के बारे में जानने में ज़्यादा दिलचस्पी है या स्मारकों और मक़बरे वग़ैरह को देखने में? उसने अपने कंधे उचकाकर जीभ निकालते हुए शिकायती-सा जवाब दिया, "मैं कैसे बताऊँ? शायद दोनों में !" फिर उसने कार्लाइल-परिवार की, कार की और घर की तस्वीरें खींचनी शुरू कीं। बाद में कैमरा मुझे थमाते हुए खुद की भी तस्वीरें उतरवाने लगी। बेहद जीवन्त लड़की थी। उसके हाथ और आँखों के हावभाव बोलते-से लगते थे। बोली, "अब किस बात का इंतज़ार है?" फ़ोटो-वोटो खींचने के बाद उसने चलने का इशारा किया।

मैंने कार का पिछला दरवाज़ा उसके लिए खोल दिया। मेरी उपेक्षा करते हुए वह शोफ़र की बग़ल में जाकर अगली सीट पर बैठ गई। मैं यथास्थान बैठा रहा और बोला, "हाँ, तो मिस···"

"जॉर्जीन नाम है मेरा !"

"मिज जॉर्जीन, क्या आप··· ?"

"मिस जॉर्जीन नहीं, सिर्फ जॉर्जीन···इफ़ यू डोंट माइंड।"

"हाँ तो मैं पूछना चाहता था कि आपने भारत के इतिहास पर कोई किताब पढ़ रखी है? क्योंकि अब हम देखने जा रहे हैं···"

"अमरीका में पढ़नेवाली हाई स्कूल की छात्रा से यह प्रश्न पूछना, मैं सोचती हूँ बिल्कुल बेमानी बात है। मैं भला क्योंकर भारत का इतिहास पढ़ने लगी?"

मैंने चुप रहना ही बेहतर समझा। दिल्ली गेट पार कर हम फ़ैज़ बाज़ार पहुँचे। वह पूछने लगी, "ये जिलियन्स यहाँ क्या कर रहे हैं?"

"ये जिलियन्स नहीं, सब्ज़ी बेचनेवाले हैं।"

"तुमको 'जिलियन्स' नहीं मालूम? 'जिलियन्स' माने 'मिलियन्स एंड मिलियन्स' से भी ज़्यादा। अमरीका में तो छोटा-सा बच्चा भी यह जानता होगा।"

"ओ, आई सी," मैं कहता हूँ, "पिछले बीस सालों में दिल्ली की आबादी तीन गुनी हो चुकी है। अब तो चालीस लाख को पार कर चुकी होगी।"

"मुझे यह सब जानने का कोई शौक़ नहीं," उसने कहा। हम फ़ैज़ बाज़ार से बाहर निकल आए। हमारे ठीक सामने जामा मस्जिद पड़ती थी और दाईं तरफ़ लालक़िला। उसने शोफ़र को गाड़ी रोकने को कहा और कुछ और तस्वीरें खींचीं। हम लालक़िले के प्रवेशद्वार पर पहुँचते हैं। मैं उसकी और अपनी टिकट ख़रीदने पंक्ति में जा लगा और वह फ़ोटो खींचती रही—चाँदनी चौक की ओर की, ताँगों की, रेहड़ीवालों की, भिखारियों की और न जाने किसकी-किसकी। प्रवेशद्वार के पास रुककर वह पहरेदारों की भी फ़ोटो खींचने लगी।

जैसे ही हम क़िले के 'शॉपिंग-आरकेड' में घुसे, पीतल के सामान, सोने-चाँदी की तारों से हुई कशीदाकारीवाले कपड़ों और छोटे-छोटे ताजमहलों आदि की दुकानों को देखकर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किलक उठी, "हाय, जी करता है कि सब-कुछ ही ख़रीद लूँ।" वह एक दुकान से दूसरी दुकान में चीज़ों को उलट-पुलटकर देखती रही और उनके दाम पूछती रही। बड़ी घाघ लड़की थी। दुकानदार उसे जितना ही फँसाने की कोशिश करते, वह चालाकी से बच निकलती, "यस मेमसाब, यह मार्बल-शार्बल… ?" अपना सिर हिलाती वह कहती, "नो।"

हम नक्कारख़ाने के फाटक के पास पहुँचे। मैंने अपना गला साफ़ किया। उसने अपनी 'मरे' की गाइड निकालकर पूछा, "तो क्या यहीं पर ढोल बजाकर डोंडी पीटी जाती थी?" और वह सामनेवाली लाल इमारत की तरफ संकेत करते हुए पूछती है, "बादशाह यहाँ पर आम लोगों से मिला करता था। क्यों, ठीक है न?"

"हाँ, बिल्कुल ठीक। यही दरबारे-आम है। तुम्हें तो गाइड की ज़रूरत ही नहीं है। तुम्हें तो पहले से ही सब पता है।"

"नहीं, मुझे कुछ भी नहीं मालूम।" उसने बात करते हुए कहा। 'मरे' की गाइड में से देखकर वह मुझे सम्राट शाहजहाँ के बारे में बताने लगी कि कहाँ वह रहता था, कहाँ उसने अपने हरम बनवाए। उसने सिंहासन के पीछे बने यूनानी गायक ऑरफ़ियस की छवि भी दिखाई।

"और यह रहा दीवाने-ख़ास।"

"जहाँ बादशाह अपने नवाबों और अमीर-उमरावों से मिला करता था। राइट?"

"राइट।"

"और यह मस्जिद उसी बादशाह ने बनवायी थी, जिसने अपने बाप को क़ैद कर लिया था। औरंगेज?"

"नहीं, औरंगज़ेब!"

"ख़ैर। देखा तुमने, सब जानती हूँ न?"

"बिल्कुल, तुम तो खुद ही गाइड बन जाओ, तो काफ़ी कमा लो।"

"मुझे बहुत प्यास लग रही है। कहीं दूध का कार्टन या कोल्ड ड्रिंक मिल सकेगा?"

"दूध तो नहीं। पर कोक? हाँ, कोक मिल सकता है।"

हम शॉपिंग आरकेड में वापस लौटते हैं। वह कोक की दो बोतलें पी जाती है और पेट दबाकर डकार मारती है, "सॉरी, अब मुझे अच्छा लग रहा है।"

आमतौर पर अपने ग्राहकों को लालक़िले की सैर कराने में मुझे डेढ़ घंटा तो लग ही जाता है। पर जॉर्जीन के साथ तो बीस मिनट में ही सब हो गया। मैंने शीशे में जड़ा एक छोटा-सा ताजमहल उठाया और दुकानदार से इशारे से कुछ पूछा। उसने सिर हिलाकर संकेत दिया कि मैं उसे बिना पैसे चुकाए मुफ़्त में ही ले सकता हूँ। ताजमहल जॉर्जीन को भेंट करते हुए मैंने कहा, "मिस… आइ मीन जॉर्जीन, यह तुम्हारे लिए है, विद माइ कॉम्प्लीमेंट्स!"

"मेरे लिए? क्यों?" उसने मेरे हाथ से ताजमहल को लगभग खींचते हुए, सकुचाकर पूछा और उसे वक्ष से लगा लिया—"बेहद ख़ूबसूरत है, थैंक यू!" मेरी नाक पर एक चुम्बन देते हुए वह कहने लगी, "मेरे जैसी भयंकर लड़की के साथ भी तुम कितनी अच्छी तरह पेश आ रहे हो!"

इस बार वह मेरे साथ पिछली सीट पर बैठी। मैंने शोफ़र को जामा मस्जिद चलने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा तो उसने बात काटते हुए फ़ैसला सुनाया, "नहीं, एक दिन में बस एक ही जगह देखेंगे।"

"तब तो दिल्ली देखते-देखते हमें पूरा एक महीना लगेगा।"

"तो क्या ? तुम सवेरे का वक़्त तो रोज़ मेरे साथ बिता ही सकते हो।"

हम चाँदनी चौक, खारी बावली और सदर बाज़ार से होते हुए गुज़र रहे हैं। जॉर्जीन रास्ते-भर तस्वीरें खींचती जा रही है। अचानक वह मेरी ओर मुड़कर ताकती है और खिलखिलाने लगती है, "गॉड, यू आर ए फ़नी लुकिंग मैन !" वह विस्मय से चिल्लाती हुई बोली, "अगर पिछले हफ़्ते किसी ने मुझे बताया होता कि मुझे दाढ़ी-मूँछवाले, सिर पर पट्टा बाँधे किसी 'डार्की' के साथ घूमना पड़ेगा, तो शायद मैं मर ही जाती।"

मैंने कोई टिप्पणी नहीं की। वह समझ गई कि मैंने बुरा माना है। "डोंट माइंड मी," वह बोली, "मैं अक्सर ऐसी ही बेवकूफ़ी की बातें करती रहती हूँ।" इसके बाद कार्लाइल के घर लौटने तक वह कुछ नहीं बोली।

कार से उतरते हुए उसने कहा, "तुम्हारी दाढ़ी खींचकर देखूँ ?" मैं अपनी दाढ़ी को उससे बचा पाता, इससे पहले ही उसने सचमुच मेरी दाढ़ी को पकड़कर एक ज़ोरदार झटका दिया ! और दस-दस के तीन नोट सीट पर फेंकती हुई वह काँच में जड़े ताजमहल को बग़ल में दबाए नीचे उतर गई, "बाय, कल मिलेंगे।"

द ब्लडी बिच ! मैं मन-ही-मन बड़बड़ाया।

कॉफ़ी हाउस में अपने मित्रों को मैंने जॉर्जीन के बारे में बताया। मेरे सिख पत्रकार मित्र ने फ़िकरा कसा कि मैंने एक और वेश्या को फँसाया होगा। राजनीति से जुड़े मेरे दूसरे मित्र ने भी कुछ-कुछ ऐसी ही बेहूदी बात कही कि अगर सोलह साल की लड़की के साथ मैंने कोई ऐसा-वैसा काम किया तो मेरे लिए बुरा साबित होगा। मुझे इन दोनों की बातें बहुत बुरी लगीं।

कॉफ़ी हाउस से बाहर निकला तो दोपहर ढलने वाली थी। जामुन के पेड़ों पर टुइयाँ तोते टें-टें कर रहे थे। मेरा जी कर रहा था कि मैं इतनी ज़ोर-ज़ोर से 'जॉर्जीन, जॉर्जीन' कहकर पुकारूँ कि एकबारगी तो पूरा कनॉट प्लेस ही गूँज जाए, आता-जाता ट्रेफ़िक थम जाय और पेड़ों पर बैठे तोतों की आवाज़ें भी ग़ायब हो जाएँ। बस, एक ही शब्द चारों ओर प्रतिध्वनित होता रहे—'जॉर्जीन' !

उसी शाम मैंने भागमती को जॉर्जीन के बारे में बताया। उसे तो अपने सिवा किसी दूसरी औरत का नाम ही मेरी ज़ुबान से सुनना अच्छा नहीं लगता। मैंने इस बात को हँसी में उड़ाने की कोशिश की कि जॉर्जीन तो उम्र में मुझमें चालीस साल छोटी है।

उस दिन मैंने भागमती को ख़ूब प्यार किया। वह पूछने लगी, "आज क्या बात है ?" मतलब साफ़ था। वह कहना चाह रही थी कि मैंने उसे नहीं, दरअसल उस सोलह साल की छोकरी को ही प्यार किया है। उसकी बात सम्भवतः सही भी थी।

सुबह उठा, तो मन उल्लसित नहीं लग रहा था। बहरहाल, मैंने अपने ठंडे-नम बाथरूम में पूरे बीस मिनट अपनी दाढ़ी को रँगने में बिताए। कार्लाइल के घर पहुँचते-पहुँचते मैं संशय में था कि पता नहीं वहाँ कैसा स्वागत होगा !

जॉर्जीन बाहर ही खड़ी धूप सेंकती मिल गई। वह मुझे अचानक कुछ बड़ी-सी लगी। अपना सिर घुमाकर उसने कहा, "मेरा नया हेयर-स्टाइल कैसा लग रहा है ?" उसने बालों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर के ऊपर करके जूड़े में बाँध रखा था। उसकी गर्दन इससे थोड़ी लम्बी दिखने लगी थी। उसके छोटे-छोटे गुलाबी कान, जोकि हरदम ढँके रहते थे, अब सुन्दर दिख रहे थे।

"बहुत अच्छा। अब तुम बच्ची नहीं, लेडी लग रही हो!"

"वैसे क्या मैं लेडी नहीं हूँ?" उसने कहा। और फिर गाड़ी में बैठते हुए पूछा कि क्या मैं सोते हुए भी पगड़ी पहने रहता हूँ?

मैंने कहा, "अगर तुम थोड़ी बड़ी होतीं तो मैं कहता कि खुद ही आकर देख लो!"

उसका चेहरा लाल हो उठा, "तुम पूरे लम्पट हो! मुझे छेड़ने की कोशिश कर रहे हो?"

अब सकुचाने की बारी मेरी थी। मैंने कहा, "मैं तो कह रहा था कि अगर तुम बड़ी, यानी काफ़ी बड़ी होतीं तो···ख़ैर, मैं तो तुम्हारे पिता से भी कुछेक साल बड़ा ही होऊँगा···।"

"मुझे ये बेवकूफ़ी पसंद नहीं।"

मैंने उसे खुश करने की कोशिश की। गोरे लोग जल्दी पिघल भी जाते हैं। उसने मेरा हाथ थामते हुए माफ़ी-सी माँगी, "इस तरह दिल से लगाने की ज़रूरत नहीं। मैं तुम्हें तकलीफ़ पहुँचाना नहीं चाहती थी।"

"नहीं! तुमने मुझे कोई तकलीफ़ नहीं पहुँचायी," मैंने उसका हाथ थामते हुए कहा, "तुम तो बहुत अच्छी लड़की हो। बहुत खूबसूरत!"

वह बुदबुदायी, "मैं कोई ख़ूबसूरत-वूबसूरत नहीं, यह मैं जानती हूँ।"

पर इतना तो तय था कि मेरी तारीफ़ से वह फूलकर गुलाबी हो आयी थी। कुछ रुककर बोली, "तुम बहुत अच्छे हो! तुम्हें 'पॉप' कह सकती हूँ? वैसे भी तुम्हारा नाम तो जानती नहीं।"

लड़कियों को इस उम्र मे फँसाना ज्यादा आसान होता है, बनिस्बत दो-तीन साल और बड़ी हो जाने के। सोलह साल की उम्र में उनका अपने अंदर विश्वास तो होता नहीं। उनकी शक्लो-सूरत या बुद्धि की तारीफ़ करके आसानी से उन्हें फँसाया जा सकता है। जॉर्जीन अपने पूरे ठंडेपन के बावजूद फँसायी जानेवाली लड़की थी।

मैं उसे यह कहकर कॉफ़ी हाउस में ले गया कि अपने मित्रों से मिलाऊँगा। शरमाते हुए वह बोली, "तुम सचमुच पक्के लोफ़र हो। फिर भी मुझे अच्छे लगते हो।"

कॉफ़ी हाउस में हम 'फ़ैमिली ओनली' वाले केबिन में घुस गए। मैंने उसके लिए एक कोक मँगाया और खुद अपने मित्रों से मिलने चला गया। वे जॉर्जीन के प्रति बहुत अच्छे 'काम्प्लीमेंट्स' नहीं दे रहे थे। सिख पत्रकार ने कहा, "तुम तो ऐसे कह रहे थे कि मैंने सोचा कोई मर्लिन ननरो होगी। और यह? हाँ, आगे-पीछे से काफ़ी गदरायी हुई है···"

राजनीति का विशेषज्ञ बोला, "कोई नूरजहाँ तो नहीं लग रही! किसी भी आम अमरीकन स्कूलगर्ल की तरह ही है। एकदम साधारण-सी। लेकिन तुम तो लगता है, जितना मैंने सोचा था, उससे भी ज़्यादा ही पगला गए हो। याद रखना बच्चू, इसके साथ कोई ऐसी-वैसी बात की तो सीधे सात साल के लिए जेल जाओगे।"

कैसी बेहूदी बातें कर रहे हैं ये लोग! मैं जॉर्जीन के पास लौट आया। वह पूछती है, "क्या कह रहे हैं ये लोग तुम्हारी गर्लफ्रैंड के बारे में?"

"गर्लफ्रेंड? तुम्हारा मतलब, तुम?" मैंने बनते हुए कहा, "बहुत अच्छी लग रही हो तुम!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"झूठे ! वे कह रहे हैं कि तुम इस छोटी-सी लड़की के साथ क्या कर रहे हो ? सत्रह साल की लड़की के साथ गड़बड़ करने का मतलब है सीधे जेल की हवा। क्यों ? कैसा रहा मेरा अंदाज़ा ?"

"ग़लत," मैंने ज़ोर देकर कहा। वह खुश लग रही थी।

इस बार उसने मेरा मेहनताना एक लिफ़ाफ़े में डालकर मुझे थमाया और कहा, "थैंक्स ए लॉट !"

उस शाम मैं काफ़ी खुश था। पर साथ ही मेरी अन्तरात्मा मुझे फटकार भी रही थी। कुछ ऐसी ही असमंजस की स्थिति में मैंने जॉर्जीन का फ़ोन-नम्बर घुमा दिया। फ़ोन उसके अंकल ने उठाया। वह छूटते ही बोला, "जॉर्जीन ने कोई बेवकूफ़ी तो नहीं की कभी ? और सुनो, जब से तुम इसे घुमा रहे हो, मुझसे बिल बनाकर पैसे ले लेना।" और उसने चोंगा वापस रख दिया। मुझसे इतना भी नहीं पूछा कि आख़िर मैंने फोन किया क्यों था। ख़ैर, मेरे हाथ में एक सूत्र तो आ ही गया था कि जॉर्जीन अपने चाचा को बताए बिना ही मुझे पैसे देती जा रही थी। मैंने सोच लिया कि मौक़े पर इस जानकारी का फ़ायदा उठाया जाएगा।

अब मैं उसकी प्रशंसा मुक्तकंठ से करने लगा। वह हर रोज़ नए-नए 'हेयर-स्टाइल' बनाकर आया करती, फलतः प्रशंसा करने के मौक़ों की कोई कमी नहीं थी। एक दिन वह लाल रंग की साड़ी पहनकर आई। उस पर तनिक भी नहीं फब रही थी, न ही उसे इसका इल्म था कि साड़ी बाँधकर कैसे चलना चाहिए। गोरी औरतों की तरह उसकी चाल भी मर्दानी थी। साड़ी में वह बहुत फूहड़ लग रही थी, पर दिखावा करते हुए मैंने कहा, "हाउ चार्मिंग !" वह फूल उठी, "मैंने सोचा आज तुम्हारे देश का पहनावा पहनूँ, तुम्हें अच्छा लगेगा।" मैंने उसे बताया कि देश का तो ठीक, लेकिन पंजाबियों का पहरावा साडी नहीं बल्कि सलवार-कमीज़ है। अगर वह सलवार-कमीज़ पहने तो और अच्छी लगेगी। "ओ ग्रेट, तब तो मैं सलवार-कमीज़ ही पहनूँगी।"

मैं उसे एक दर्ज़ी की दुकान पर ले गया। वह कपड़ा पसन्द करने में व्यस्त थी, तभी मैंने दर्ज़ी को पंजाबी में कहा कि बिल के साथ कपड़े वह मेरे ठिकाने पर पहुँचा दे। जॉर्जीन निर्णय नहीं ले पा रही थी कि कौन-सा कपड़ा ख़रीदे। जो उसे पसन्द आया था वह बहुत महँगा था। मैंने दर्ज़ी को इशारा किया कि वह उसी कपड़े से उसका सूट सिले।

कार में बैठते हुए वह बोली, "क्या मुझ पर सलवार-कमीज़ फबेगा ?"

"हाँ बिल्कुल। हमारे यहाँ पंजाबी में उन औरतों को 'जमाज़ेबी' कहते हैं, जिन पर सब पहनावे फबते हैं। तो तुम भी 'जमाज़ेबी' हो, समझी ?"

वह इस तारीफ़ से निरपेक्ष-सी बोली, "जानती हूँ कि तुम जो ये सब कहते रहते हो, सब कुछ झूठ है। फिर भी, तुम्हारे मुँह से ये सब सुनना भला लगता है। इसलिए, कहते रहा करो। ओ के !"

उसको अपने घर लाने में कोई दिक़्क़त नहीं थी। उसका नाप देने के दो दिन बाद मैं उसे अपनी कार में लेने गया। मैंने सरसरी तौर पर उससे कहा, "तुम्हारे कपड़े मेरे घर पर पड़े हैं। चाहो तो घूमने चलने के पहले उन्हें ले लो।"

"ओ के।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे घर में वह मेरी किताबों और 'पेंटिंग्स' को बड़ी सराहना से देखती रही। बोली, "अच्छा आरामदेह फ़्लैट है तुम्हारा।"

"थैंक यू, बैठो।"

जूते खोलकर वह उछली और 'सैटी' पर पैर मोड़कर बैठ गई। पूछने लगी, "ऐसे घूर-घूरकर क्यों देख रहे हो ?"

मैंने ग़ालिब का एक शे'र अंग्रेज़ी में उसे सुनाया, जिसका मतलब था—

वो आए घर में हमारे, खुदा की क़ुदरत है
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं!

"मतलब तुम मेरे यहाँ आने से खुश हो। अच्छा, मेरी चीज़ें दिखाओ तो!"

मैं उसके कपड़ों का बंडल खोलकर उसे थमाता हूँ।

"मैंने इसका 'ऑर्डर' तो नहीं दिया था! यह तो बहुत महँगा था। तुम्हें याद है न? मैंने इसके लिए मना किया था। वह कमीना दर्ज़ी मुझे ठगना चाहता है। तुम सब इंडियन लोग हमें ठगने की कोशिश में लगे रहते हो। तुम लोग क्या सोचते हो कि हम एकदम बेवकूफ़ हैं?"

"वह तुमसे इसके ज़्यादा पैसे नहीं लेगा। तुमने इसे ही पसंद किया था, इसलिए उसने यही सिल दिया।"

बेचारी अवाक् रह गई। "आयम सॉरी! तब तो बहुत अच्छा है वह। और यह···?" सलमों-सितारोंवाला दुपट्टा खोलते हुए वह चौंकी, "मैंने तो इसके लिए नहीं कहा था!"

"यह भी उसी के साथ है। इसके लिए अलग से पैसे नहीं लगेंगे।"

वह चुन्नी अपने सिर पर लपेटती आईना तलाशने लगी। कपड़ों का बंडल बग़ल में दबाए उसने पूछा, "कहाँ पर इन्हें पहनकर देखूँ?" मैंने उसे बैडरूम का रास्ता दिखाया। कुछ देर बैठक में मैं अकेला ही बैठा रहा। व्हिस्की का एक पेग मैंने गिलास में उँडेला और बिना पानी मिलाए ही गटक लिया। फिर कुर्सी से उठकर सोफ़े पर जा बैठा।

जॉर्जीन अब पंजाबी लिबास में मेरे सामने खड़ी थी। उसके लाल-लाल बाल सफ़ेद सितारों-जड़े दुपट्टे में ढँके हुए थे। कपड़े उसको पूरे दुरुस्त आए थे। लगता था जैसे पंजाबी पहरावे के लिए ही उसका बदन ढला था।

"कैसी लग रही हूँ?" उसने एड़ियों पर घूमते हुए पूछा।

"बहुत अच्छी! इन कपड़ों में बाक़ी सभी लिबासों से ज़्यादा अच्छी लग रही हो।"

"थैंक यू! मुझे भी अच्छे लग रहे हैं।"

वह आकर मेरे पास सोफ़े पर बैठ जाती है और अपना बटुआ खोलकर पूछने लगती है, "कितने पैसे देने होंगे इनके लिए?"

मेरे गले से आवाज़ नहीं निकल रही। किसी तरह उसे समझाने की कोशिश की, "इनके लिए कुछ मत दो। प्लीज़! मेरी ओर से एक छोटा-सा तोहफ़ा समझो, बस।"

"इसके लिए शुक्रिया! पर···तुम्हारे पास इतने फ़ालतू पैसे··· ?"

"हाँ-हाँ, पैसे हैं मेरे पास। रख लो इन्हें। मुझे अच्छा लगेगा।"

"अच्छा, अगर तुम इसी में खुश हो तो इन्हें रखे लेती हूँ।" वह मुड़ी और मेरी दाढ़ी पर चुम्बन देते हुए बोली, "थैंक यू, पॉप!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके चुम्बन ने मेरी आवाज़ को जड़ कर दिया। कुछ देर बाद ही गले से स्वर फूटा, "मुझे तुम्हारे पैसे भी लौटाने हैं। तुम अपनी जेब से मेरा मेहनताना देती रही हो।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"मैंने तुम्हारे अंकल को फोन किया था।"

वह लाल हो उठी, "तुमने यह बेवकूफ़ी क्यों की? फिर अंकल ने क्या कहा?"

मैं उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए तसल्ली देता हूँ, "चिंता की कोई बात नहीं। मैंने उन्हें बताया नहीं है कि तुमने मुझे पैसे दिए। अब तो मुझे डबल पैसे मिलेंगे। वे भी देंगे।"

"तुम वाक़ई बहुत धूर्त हो!" वह हँसने लगी, "चलो, शुक्र है, अंकल को पता नहीं चला।"

"तुमने खुद क्यों नहीं बताया उन्हें?"

"क्या पता?"

अब पहल करने की बारी मेरी थी, "शायद तुमने उन्हें इसलिए नहीं बताया होगा क्योंकि तुम मेरे साथ उनकी जानकारी के बिना घूमना चाहती थीं।"

"शायद।" अपने बालों को हिलाते हुए उसने कहा।

कोई भी अनुभवी लम्पट जानता है कि किशोर वय की लड़कियों के साथ जब मतलब की बात करनी हो तो बेकार की बातों में वक़्त बर्बाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे तो हर बात पर 'ना ना' या 'पता नहीं' ही करती रहेंगी। उनके जिस्म के साथ हाथों से ही बात करनी चाहिए। मैंने उसकी बायीं बाँह पर अपनी अँगुलियाँ फेरनी शुरू कीं। उसके रोएँ खड़े होने लगे। बस, अब मैंने अपनी बाहें उसकी बग़ल में डाल दीं—उसे अपनी ओर खींच लिया। फिर उसकी आँखों, ओठों, नाक और कानों को चुम्बनों से पाट दिया। वह कराहने लगी। उसकी कमीज़ में हाथ डालकर मैंने उसके वक्ष को सहलाया। फिर उसकी सलवार का इज़ारबंद खोलकर उसकी जाँघों के बीच अँगुलियाँ फेरीं। 'ओ गॉड' बुदबुदाती हुई वह आनन्दातिरेक में डूबने लगी।

मैंने पुनः उसके वक्ष पर हाथ रखा, पर अब उसने झटककर उसे हटा दिया और बैडरूम में भाग गई।

अब वह अपनी जीन्स पहनकर लौटी और सलवार-कमीज़ तथा सितारों-जड़े दुपट्टे को 'सेट्टी' पर फेंकती हुई तेज़ी से बाहर निकल गई।

बस, तभी मैंने जॉर्जीन को आख़िर बार देखा था।

कार्लाइल ने उसके बाद मुझे कोई ग्राहक नहीं दिए। पता नहीं, मैंने जॉर्जीन के साथ जो किया था, वह ठीक था या नहीं, पर उसके बाद कई दिन और कई रात महाभारत की ये पंक्तियाँ मेरे दिमाग़ पर छायी रहीं कि जैसे समुद्र में तैरते हुए लकड़ी के दो टुकड़े कभी एक-साथ टकरा जाते हैं और फिर अलग हो जाते हैं, इसी तरह इस संसार में दो जीवात्माओं का मिलन भी हुआ करता है।

•

कई बरस बाद ट्रेन से दिल्ली लौट रहा हूँ।

रेलवे स्टेशन बदला-बदला लग रहा है, पर इतना भी नहीं कि पहचाना न जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लेटफार्मों पर अब भी पचास साल पहलेवाले नम्बर ही लगे हैं। लाइन लगाकर एड़ियों के बल बैठे लाल कमीजों, मैली धोतियों और बाहों पर पीतल के बिल्ले लगाए वही कुली हैं। 'लेमन-सोडा', 'चाय गरम' कहते वही खोमचेवाले और पेशाब-टट्टी तथा फ़िनायल की चारों तरफ़ फैली वही मिली-जुली बदबू।

अक्तूबर की भोर है—सुखद ख़ुशनुमा-सी। शीतलता के आगमन का पूर्वाभास देती धुंधभरी सुबह। प्लेटफॉर्म पर सो रहे लोगों की बग़ल से गुज़रता हुआ सीढ़ियाँ चढ़कर पैदल पुल को पार करता हुआ रिटायरिंग रूम के पासवाली सीढ़ियाँ उतरता हूँ। किसी ने मुझसे टिकट दिखाने को भी नहीं कहा।

स्टेशन से निकलकर हार्डिंग लाइब्रेरीवाले कम्पनी बाग़ की दिशा में खड़ा हूँ। ताज़ी हवा के झोंके जिस्म को स्पर्श कर रहे हैं। सड़क पर जहाँ तक नज़र जाती है तिपहियों और टैक्सियों की क़तारें लगी हैं। सीटों पर लेटे-लेटे ड्राइवर खर्राटे भर रहे हैं। मैं बग़ल से गुज़र रहे एक ताँगेवाले को हाँक लगाता हूँ। मैली-कुचैली चादर में लिपटा कोचवान मेरी तरफ़ संदेहभरी नज़र डालता है। वह मुसलमान है, मैं सिख हूँ। "कहाँ?" वह पूछता है। मैं कहता हूँ, "रायसीना, कितना लोगे रायसीना का?" उसने बरसों बाद किसी को नई दिल्ली को रायसीना कहते सुना होगा। वह समझ जाता है कि मैं दिल्ली का पुराना बाशिंदा हूँ। रायसीना है भी यहाँ से कोई चार-पाँच मील। पैसे भी काफ़ी मिल जायेंगे। बोला, "चाहे जो दे देना, बाबू जी! आप ही पहले ग्राहक हैं। बोहनी आप से ही कर रहा हूँ। टैक्सीवाला तो आपसे दस से कम नहीं लेगा। जो भी ठीक समझो, दे देना।" मैं उचककर पिछली सीट पर बैठ जाता हूँ और अपना बैग उसकी बग़ल में आगे रख देता हूँ।

वह सुनसान पड़ी रिंग रोड के बजाय शहर से होकर जाने का निश्चय करता है। यह रास्ता छोटा है और इस वक़्त उतनी भीड़-भाड़ भी नहीं है। हम कम्पनी बाग़ से होते हुए फ़व्वारे की ओर मुड़ते हैं। फ़व्वारा तो बस नाम का ही है, पिछले पचास सालों में कभी तो इससे पानी निकलते नहीं देखा। रौशनुद्दौला मस्जिद की बाल्कनी नमाज़ पढ़ने आये लोगों से पटी पड़ी है। सामने शीशगंज गुरुद्वारा रंग-बिरंगे लट्टुओं से जगमगा रहा है। साँवले-से लम्बी दाढ़ियोंवाले दो पहरेदार नीले और पीले कपड़े पहने इसके प्रवेशद्वार पर भाले लिये हुए तैनात हैं।

ताँगा बाईं तरफ़ को मुड़ता है। लालक़िले का परकोटा दिखाई देने लगा है। ताँगा अब दायीं ओर दरीबे को मुड़ जाता है। सफ़ेद कपड़ों में लिपटी हिन्दू औरतों की टोली फूलों और नारियल से भरे थाल उठाए यमुना की तरफ चली जा रही है। दरीबे से निकलकर हम जामा मस्जिद के पास पहुँचते हैं। सूरज इसकी पूर्वी मीनारों पर चमक रहा है। इसकी चौड़ी सीढ़ियों पर सैकड़ों इन्सान चादरें ओढ़े सोए पड़े हैं। सरमद की क़ब्र के पत्थर पर एक बुझता-सा चिराग़ टिमटिमा रहा है। लगता है, हाल ही में इसकी हरे रंग से पुताई हुई है। मुरझाए हुए चमेली और गेंदे के फूल मज़ार पर बिखरे पड़े हैं।

बदबू से भरे उर्दू बाज़ार को पार कर, रज़िया सुल्तान की कब्र को जाती गली से होते हुए, काली मस्जिद से गुज़रते हुए हम तुर्कमान गेट के रास्ते पुरानी दिल्ली से बाहर निकलते हैं। सैकड़ों की तादाद में आर.एस.एस. के लड़के लम्बे-चौड़े रामलीला मैदान में डंडे लिये शाखा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्ते खड़े हैं। कुछ प्रौढ़ आयु के पंजाबी छड़ियाँ लिये ताज़ा हवा में सैर कर रहे हैं। रास्ते में घोड़े पर सवार नई दिल्ली की तरफ़ अपनी तलवार चमकाते शिवाजी की प्रतिमा को देखता हूँ तो ताँगेवाले से पूछता हूँ, "यह कब लगी ?" "दो साल हुए।" वह प्रतिमा पर बेहद तकलीफ़ से नज़र डालते हुए जवाब देता है। अब हम मिंटो ब्रिज के नीचे से गुज़रते हैं और कनॉट सर्कस में प्रवेश करते हैं। मैं ताँगेवाले से कहता हूँ कि मुझे कॉफ़ी हाउस के पास छोड़ दे। खंभों से भरे शॉपिंग सेन्टर को पार कर वह कॉफी हाउस के पास आ रुकता है।

"कितना ?" मैं पूछता हूँ। मेरा बैग पकड़ाते हुए वह दोहराता है, "जो आपकी मर्ज़ी, साहब! आप बोहनी करा रहे हैं। अभी जाकर इस पट्ठे को भी खिलाना-पिलाना है।" वह घोड़े की पीठ थपथपाता है। घोड़े ने लगता है, पहले ही काफ़ी कुछ पी रखा है। उसने शराब के रंग की एक लम्बी-सी धार सड़क पर दे मारी है। मैं कोचवान को दस का एक नोट थमा देता हूँ। वह खुदरे के लिए जेब में हाथ डालता है। मैं कहता हूँ, "रहने दो, अपने पट्ठे को बढ़िया से खिलाओ-पिलाओ।" मुझ पर और मेरे सारे ख़ानदान पर वह अल्लाह का रहम बख़्शता है।

मैं रोज़ राजधानी से निकलनेवाले छह अखबार ख़रीदता हूँ। यानी छह गुणा पचास पैसे की बर्बादी—हर दिन। लेकिन पुरानी आदतों को लेकर इन्सान मजबूर होता है। सबसे पहले लोगों के स्वर्गवास की सूचनाएँ देनेवाले पन्ने खोलता हूँ। कइयों के मरने की खबरें हैं। मैं इनमें से किसी को भी नहीं जानता। उनको भी नहीं, जिनके स्वर्गवास की सूचनाएँ काव्यात्मक पंक्तियों में छपी हैं या स्मृति-स्तम्भ के अन्तर्गत हैं।

दिल्ली-डायरी में लिखा है कि आज गुरु तेग़ बहादुर के शहीदी दिवस के उपलक्ष्य में सिखों के लिए अनुभागीय अवकाश है। साथवाले स्तम्भ में लिखा है कि शहर के फ़लाँ-फ़लाँ हिस्से में कर्फ़्यू, या दफ़ा एक सौ चवालीस लगी हुई है। पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल के मुताबिक़ सभी गुंडे-बदमाशों और तमाम असामाजिक तत्त्वों को हिरासत में ले लिया गया है।

यह कहने की ज़रूरत नहीं कि कोई-न-कोई आग भड़कनेवाली है।

जब तक अपना इडली-साँभर और अख़बार खत्म करता हूँ तो देखता हूँ कि कुछ लोग अपनी-अपनी मेज़ों पर जमे राजनीतिक गतिविधियों पर ज़ोरदार टिप्पणियाँ कर रहे हैं। ये वे लोग हैं जिन्हें नियमित रूप से करने को कुछ नहीं है और जो नियमित रूप से इस कॉफ़ी हाउस में आया करते हैं। लेकिन मेरे नियमित मित्रों में से कुछेक ही बचे हैं। गोरैयों-सी आँखोंवाला मेरा फोटोग्राफ़र मित्र गए साल खुदा को प्यारा हो गया। रक्षा मंत्रालय में क्लर्की करनेवाला 'पदेलू' मित्र भी अब हमसे नहीं मिलता, क्योंकि हम उसे इसी नाम से चिढ़ाया करते थे। अब सिर्फ़ सिख पत्रकार रह गया है और राजनीति का वह विशेषज्ञ। तिस पर भी, इन दोनों की आपस में नहीं बनती।

सिख पत्रकार पहले घुसता है और पास आ बैठता है। अपनी छिदरी दाढ़ी से वह एक बाल नोचते हुए कहता है, "अरे तू आ गया ?" और वह कॉफ़ी का ऑर्डर दे देता है। तभी राजनीति का माहिर हमारा यार भी आ धमकता है और बिना दुआ-सलाम किये छूटते ही कहता है, "मैंने तो सोचा था कि सभी गुंडों और बदमाशों को हिरासत में ले लिया गया है, लेकिन यहाँ तो··· !"

पत्रकार बेचारा अचानक शब्द तलाशने लगता है, जबकि आमतौर पर वह हाज़िरजवाबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पीछे नहीं रहता। मैं पूछता हूँ, "अरे भाई, आज क्या कोई ख़ास बात हो गई? गुरु का शहीदी दिवस तो हर साल मनाया जाता है, कभी किसी कर्फ़्यू-वर्फ़्यू या पुलिस-बन्दोबस्त की ज़रूरत नहीं पड़ी।" राजनीतिज्ञ हिन्दू है, हमारी तरफ़ वह एक और तीर दागता है, "सिखों का क्या भरोसा? जब गुरु को प्राणदंड दिया गया था, तब तो कुछ नहीं कर सके। आज तीन सौ बरस बाद अपने ही भाइयों से···" सिख पत्रकार फूट पड़ता है, "हमने मुसलमानों के साथ बहुत पहले ही हिसाब बराबर कर लिया था। तुम्हीं हिन्दुओं की माँओं-बहनों के साथ उन्होंने बलात्कार किए थे, जिसने हमें उनके ख़िलाफ़ भड़काया था। तुम लोग सिखों और मुसलमानों की दोस्ती नहीं सह सकते!"

मैं तनाव को कम करने की कोशिश करता हूँ, "अगर औरंगज़ेब के बदले दारा शिकोह हिन्दुस्तान का शहंशाह बना होता तो हमारी कहानी कितनी अलग होती!"

राजनीतिज्ञ अभी थका नहीं है, "उसने तुम्हारे गुरु को फाँसी नहीं दी होती और गुरु के बेटे को तुम्हारी ठोड़ियों पर ये जंगल उगाने का बहाना नहीं मिलता और हिन्दुस्तान तब असली हिन्दुस्तान होता—हिन्दुओं का वतन···"

"और," सिख पत्रकार उसकी बात काटता है, "अगर ये दाढ़ीवाले ख़ालसे न होते तो तुम्हारे पूर्वज क्या खाकर नादिरशाह और अब्दाली के हमलों का मुक़ाबला करते?"

"बक-बक मत करो!" राजनीतिज्ञ को ग़ुस्सा चढ़ने लगा था।

"बकवास तुम कर रहे हो!"

अतीत वर्तमान पर हावी होने लगा था। शायद दिल्ली के कॉफ़ीघर को छोड़कर दुनिया में और कहीं भी इतिहास की परछाइयाँ ऐसे बेतुके रूप नहीं अपनाती होंगी। उन दोनों को बहस जारी रखने का मौक़ा देते हुए मैं उठकर बाहर निकल आता हूँ।

भागमती तूफ़ान की तरह भीतर घुसती है। अपनी बाहें झटकाती वह शब्दों की बौछार करती जाती है, "सिखों ने तो हथियार ही उठा लिये हैं। सारे शहर में लम्बी-लम्बी तलवारें उठाए घूम रहे हैं और चाँदनी चौक के गुरुद्वारे की तरफ़ बढ़ रहे हैं। तुमको पता है वे क्या कह रहे हैं? कहते हैं तीन सौ साल पहले उनके गुरु का किसी ने क़त्ल किया था। आज वे एक-एक दिल्लीवाले का क़त्ल कर देंगे। इसका कोई मतलब है क्या?"

"अपने दोस्त बुधसिंह से पूछो न?"

"हाय राम! वह तो मेरी ओर ऐसे देख रहा था कि···मुझसे पूछने लगा, 'तू किसकी तरफ़ है—बादशाह औरंगज़ेब की तरफ़ या हमारे गुरु की तरफ़?' "

"तो तुम किसकी तरफ़ हो?"

"वह तो पागल है! मैंने उसे बड़ी नरमी से कहा कि भैया, मैं तो न औरंगज़ेब की तरफ़ हूँ, न तुम्हारे गुरु की तरफ़। जानते हो वह क्या बोला? बोला—'तो तू किसी की भी तरफ़ नहीं है। अगर तू मरद या औरत होती, तो किसी-न-किसी की तरफ ज़रूर होती।' लेकिन मैंने भी उसका मुँह हमेशा के लिए बंद कर दिया। मैं बोली—'अरे बुद्धू सिंह के बच्चे! ऊपरवाला बड़े-बड़े चमत्कार कर सकता है। वह भंगी को बाँभन बना सकता है और बनिया को क्षत्री। हिंजड़े को भी वह आदमी या औरत बना सकता है। पर ऊपरवाला भी तेरे माफ़िक बुद्धू की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोपड़ी में भेजा नहीं डाल सकता।" और बड़े उत्साह से 'हूँऽऽऽ' करती हुई भागमती सोफ़े में जा धँसती है और एक सिगरेट निकालकर माचिस मेरी तरफ़ फेंकती है, "तुम क्या सोचते हो कि शहर में दंगा-फ़साद होगा? चारों तरफ़ पुलिस ही पुलिस फैली है। चाँदनी चौक, नई सड़क, हौज़ काज़ी, अजमेरी गेट और कनॉट प्लेस—सब कहीं ट्रक के ट्रक पुलिस के भरे खड़े हैं।"

"हो सकता है।" मैं जवाब देता हूँ। कुछ दिनों से मैं अन्यमनस्क-सा चल रहा हूँ। मूड कुछ ठीक नहीं। भागमती के लिए मेरी कुछ ख़ास इच्छा नहीं है। उसने ख़ुद ही मेरी मुश्किल हल कर दी, "सिखों का जलूस दोपहर को फ़लाँ-फ़लाँ रास्ते से जायेगा और वे तमाम गुरुद्वारों में फैल जायेंगे। तुम्हारे घर के पीछेवाले में भी।"

"तुम अपने घरवाले के साथ लाल कुआँ में ही सुरक्षित रह सकोगी। बोलो? कहो तो तुम्हें घर छोड़ आऊँ?" उसे टरकाने की कोशिश करता हूँ।

भागमती मेरी ओर संदेहभरी नज़रों से देखती है। मैं दिखावा करते हुए कहता हूँ कि मुझे तो याद ही नहीं था कि आज गुरु तेग़ बहादुर का शहीदी दिवस है। फिर उसे समझाने की कोशिश करता हूँ कि पवित्र पर्वों पर सेक्स-वेक्स से दूर रहना चाहिए। वह ख़ुद भी कहा करती थी कि 364 दिन तो वही करते हैं, एक दिन पूजा-पाठ कर लिया तो कौन-सा मर जायेंगे!

जब वह अपनी सिगरेट ख़त्म कर चुकी तो मैं उसे बीस रुपए थमा देता हूँ। "यह क्या है?" अपनी चोली में उन्हें खोंसते हुए वह कहती है। मैं उसे लाल कुआँ छोड़ आता हूँ।

8

अछूत

दीवाली आने में अभी कुछ दिन बाक़ी ही थे कि बादशाह जहाँगीर की मौत की ख़बर दिल्ली-भर में फैल गई। किसी को भी कुछ दिनों तक दीया-बत्ती या चूल्हा जलाने की इजाज़त नहीं थी। हमारे बुज़ुर्गों ने बताया कि अगले चालीस दिनों तक अगर कोई हँसता या मुस्कुराता हुआ देख लिया गया, तो उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा। मेरी माँ मुझे मुहल्ले के दूसरे लड़कों के साथ खेलने भी नहीं जाने देती थी कि कहीं मैं भूल से हँस न दूँ या शोर न मचाऊँ। इसलिए, हालाँकि तब मैं छोटा ही था, मुझे बादशाह की मौत की अब भी याद है।

जब मैंने बापू से पूछा कि मरनेवाले बादशाह का नाम क्या था तो वह बोला, "तुमको बादशाह के नाम से क्या लेना-देना?" रक़ाबगंज का कोई भी डोम-चमार बादशाह का नाम नहीं जानता था। सिर्फ़ मस्जिद के पासवाली सराय में रहनेवाले मुसलमान और ठेकेदार लक्खी राय ही बादशाह का नाम जानते थे। ठेकेदार लक्खी राय पत्थर की बनी बड़ी-सी कोठी में अपनी ज़नानी और आठ बेटे-बहुओं के साथ रहता था। ये मुसलमान और लक्खी राय का ख़ानदान उन दिनों ऐसे मुँह लटकाकर घूमा करते थे, जैसे इनकी अपनी नानी मर गई हो। कुछ लोग बड़े लोगों की मौत का अफ़सोस मनाते हुए अपने-आपको भी बड़ा आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने लगते हैं।

हम ग़रीब अछूतों का बादशाहों से क्या वास्ता ? मुझे याद है—मेरा बापू कहा करता था कि हमारे लिए तो सब बादशाह एक-से हैं। एक बादशाह जाता है तो दूसरा आता है। ज़ुल्म तो ज्यों-का-त्यों चलता रहता है। मैं नहीं जानता था कि ज़ुल्म कौन है। जब मैं कुछ बड़ा हुआ तो बापू ने बताया कि ज़ुल्म कोई इन्सान नहीं था, बल्कि यह वह था जो अमीर लोग ग़रीबों पर ढाते हैं। हम अछूत तो सबसे ज़्यादा ग़रीब थे। हमारे पास आते ही लोग दूर भाग जाते। बापू ने बताया कि यह भी एक तरह का ज़ुल्म ही है कि वे हमें अछूत समझते हैं। यह हमारे कर्मों में लिखा था। हमने पिछले जन्म में शायद बहुत बुरे कर्म किये होंगे, जो हमें ऐसा जन्म मिला और ये गंदे काम करने पड़े।

मेरा बापू हर बदमाश आदमी को ज़ालिम कहता था। मेरे बापू ने बताया कि यह बादशाह जो अभी-अभी मरा है, बहुत बदमाश आदमी था क्योंकि यह रेलू चाचा से भी ज़्यादा दारू पीता था। रेलू चाचा हमेशा पीकर धुत्त रहा करता था। रेलू चाचा ने भी मुझे बताया कि बादशाह दिन-भर में अर्क के बीस प्याले चढ़ा जाता था और आठ तोले के क़रीब अफ़ीम निगल जाता था, फिर भी अपनी बेगम और हरम की दूसरी औरतों को हर रात भोगता था। चाचा ने बताया कि उसकी बेगम पहले से ही शादीशुदा थी, पर जब उसने बादशाह को देखा जो तब शहजादा ही था, तभी वह समझ गई थी कि वही गद्दी का वारिस होगा। उसने ऐसी चाल चली और शहज़ादे के शराब के प्याले में ऐसा जादू घोला कि वह उसके प्यार में पागल हो गया। शहज़ादे ने उसके शौहर का क़त्ल करवा दिया और जब वह बादशाह बना तो उसने उस औरत से निकाह कर लिया। रेलू चाचा बताते थे कि दरअसल हिन्दुस्तान पर हुकूमत बादशाह नहीं, बल्कि उसकी बेगम ही करती थी। सिर्फ़ बादशाह की पीने की लत और औरतबाज़ी के ही कारण मेरा बापू उससे नाराज़ नहीं था, बल्कि उसकी असली नाराज़ी तो इस बात को लेकर थी कि बादशाह ने हमारे गुरु के साथ अत्याचार किया। बापू कहा करता था, "हमें इससे क्या कि वह कितनी चढ़ाता है या किसकी माँ को···, पर जो आदमी हमारे गुरु पर हाथ उठाए, उसका तो सत्यानाश ही हो जाए।" रक़ाबगंज के हम ज्यादातर अछूतों ने गुरु के चरण-कमलों में शरण ले रखी थी और हम अपने-आपको नानक के सिख कहने लगे थे। किसी ने भी नानक या उनके बाद आनेवाले गुरुओं को नहीं देखा था, जिन्होंने हमारा उद्धार किया था। बादशाह, जो अभी-अभी मरा था, हमारे पाँचवें गुरु अर्जुन देव का क़ातिल था। उसने उनके बेटे हरगोविंद को जेल भेज दिया था। इसलिए इसके मरने पर तो हमारे छाती पीटने का कोई तुक ही नहीं था।

अगर हमारे परिवार में किसी की मौत हुई होती तो उस साल हम दीवाली के दीए नहीं जलाते थे, न ही होली पर रंग खेलते थे; पर मुसलमानों के रीति-रिवाज अजीब होते हैं। बादशाह की मौत के तीन पखवाड़े बाद्र ही शहर की कोतवाली से मस्जिद के सामने आकर कोई डोंडी पीटने लगा। जब सब लोग इकट्ठे हो गए तो बोला, "तुम सब लोग नए बादशाह का हुक्म सुनो !" और तब वह बादशाह का नाम बताने लगा, जो इतना लम्बा था जितनी रक़ाबगंज से पहाड़गंज की सड़क—'आलमपनाह अबुल मुजफ्फ़र शहाबुद्दीन मुहम्मद साहिबे-किरान सानी, शहंशाहे-हिन्दुस्तान।' उसने हमसे कहा कि हम अपने घरों में चिराग़ जलाएँ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाह की सलामती की दुआ माँगें।

हम अछूतों के घर तेल कहाँ कि दीए जलाएँ ! हमारा तो कोई मंदिर भी नहीं, जहाँ जाकर बादशाह की सलामती की दुआ माँगें। इसलिए हमने सोचा कि औरों के घरों में चिराग़ जलते और दूसरे लोगों को ही बादशाह की सलामती की दुआ माँगते देख आएँ।

मेरी माँ ने मुझे धुली हुई कमीज़ पहनने को दी। सभी ने अपने बढ़िया-से-बढ़िया कपड़े पहन रखे थे। रक़ाबगंज के डोम और चमारों ने अपनी टोली बनायी और नाचते-गाते चलने लगे। आदमी आगे-आगे ढोल बजाते नाच रहे थे, औरतें पीछे-पीछे गाती हुई चल रही थीं। मैंने रेलू चाचा का हाथ पकड़ रखा था। उनके साथ जाने में ज़्यादा मजा था, बनिस्बत बापू के साथ जाने के। बिम्बो चाची भी खुश नज़र आ रही थी। उसने मुझसे कहा कि मैं अपने चाचा के साथ चिपटा रहूँ और उसको पीने-वीने न दूँ।

नवाब की हवेली के बाहर मुफ़्त में शरबत मिल रहा था। हमने ख़ूब पिया और ख़ूब मिठाइयाँ खाईं, जिन्हें अमीर व्यापारी बँटवा रहे थे। मेरे बापू ने मुझे कोई पैसा नहीं दिया था, पर अपने हाथी से जो मुट्ठी भर-भर रेज़गारी नवाब फेंक रहा था, उसकी लूट में मुझे भी बहुत-से सिक्के मिले।

नया बादशाह जो शाहजहाँ कहलाता था, अपने बाप की तरह ज़ालिम नहीं था। उसने वैसे तो गद्दी पर बैठने से पहले अपने भाइयों के परिवार का क़त्ल किया था, पर उसके बाद उसने किसी को नहीं मारा। उसकी एक पसंदीदा प्यारी बेगम थी, जो हर वक़्त गर्भवती रहती थी। चौदह साल के वैवाहिक जीवन में उसने चौदह बच्चों को जन्म दिया। चौदहवें बच्चे के जन्म पर वह खुदा को प्यारी हो गई। बादशाह को इतना सदमा पहुँचा कि उसने अपनी बेगम की याद में एक बेहद खूबसूरत मक़बरा बनवाने की सोच ली। पहाड़गंज के संगतराशों के लिए यह बहुत बड़ी खुशख़बरी थी। उन्होंने आगरा की ओर कूच किया। उस मक़बरे को बनाने में पूरे बीस साल लग गए। आगरा से आनेवाले लोगों ने बताया कि वह हमारी कुतुबमीनार से भी ऊँचा है और अरब की सराय के हुमायूँ के मक़बरे से भी ज़्यादा ख़ूबसूरत है। एक दिन बिम्बो चाची ने रेलू चाचा से पूछा, "मैं जब मरूँगी तो तू भी मेरे लिए ताजमहल बनवाएगा ?" चाचा बोला, "अरी तू पहले मर तो सही, फिर सोचेंगे कि ताजमहल बनवाएँ या…"

बादशाह बनने के कुछ बरस बाद शाहजहाँ दिल्ली चला आया। उसको हमारा शहर बहुत पसन्द आया। उसने कहा, "मैं यहाँ रहने आ रहा हूँ।" उसने अपने ख़ास ठेकेदार मुक़र्रम ख़ान को बुलाकर कहा कि यमुना नदी के किनारे एक विशाल क़िला बनाए और उस क़िले के भीतर उसके और उसकी बेगमों के वास्ते ख़ूबसूरत हरम बनाए और एक ऐसी मस्जिद बनाए जो दुनिया की सबसे बड़ी मस्जिद हो। मुक़र्रम ख़ान ने बादशाह के सामने तीन बार झुककर कोर्निश की और कहा, "बादशाह सलामत, अगर खुदा ने चाहा तो मैं आपके लिए इतना बड़ा क़िला बनाऊँगा, जितना बड़ा आगरे का क़िला है। उसमें नहरें, बाग़-बग़ीचे और फ़व्वारे—सबका इंतजाम होगा। आप इस तरफ़ से भी निश्चिंत रहें कि जो मस्जिद मैं बनाऊँगा, वह दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत और सबसे बड़ी मस्जिद होगी। मैं इसे भोजला पहाड़ी पर बनाऊँगा, ताकि पालम और कुतुब से भी इसे देखा जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक़र्रम ख़ान ने उस्ताद हीरा और उस्ताद अहमद को नक़्शे बनाने का काम सौंपा। जब नक़्शे तैयार हो गए, तो उसने बादशाह से नींव का पत्थर रखवाकर काम करना शुरू कर दिया।

वे भी क्या दिन थे ! सभी को काम मिल रहा था। हम लोगों ने गाय-भैंसों की चमड़ी छीलना छोड़ दिया था और मैला ढोना भी। अब तो मैं बड़ा हो गया था। लक्खी राय को मज़दूर इकट्ठा करने का ठेका मिला था। उसने मुझे भी मिट्टी और पत्थर ढोने पर लगा लिया।

दिल्ली का रूप बदलना शुरू हो गया था। हर दिन एक नई इमारत बनती। हर दिन शहर की दीवार ऊँची-दर-ऊँची होती जाती। हर दिन नई मीनारें और नए गुम्बद नज़र आते। जब सारा काम पूरा हो गया तो नौ दिनों तक तमाशा देखने को मिला। शहज़ादों ने भीड़ पर चाँदी के सिक्के वारे। बादशाह ने अपने सबसे बड़े हाथी पर बैठकर शहर की सैर की और मुट्ठी भर-भरकर सोने के सिक्के फेंके। उसके दरबारी कहने लगे कि दिल्ली को अब दिल्ली नहीं, शाहजहानाबाद कहा जाएगा। पर दिल्ली तो दिल्ली ही है और कोई भी बादशाह या नवाब इसको कोई और नाम नहीं दे सकता।

जब इन्सान निन्यानवे के फेर में पड़ जाता है तो वह भगवान को भूल जाता है। और जब निन्यानवे बन जाते हैं तो सौ बनाने की धुन लग जाती ह। जिन दिनों मैं शहर में काम करता था, मुझे शायद ही कभी अपने गुरु की याद आई हो। जब मेरा बापू मरा और मैं परिवार का मुखिया बना तो मेरे गुरु के कारिंदों ने मुझे बुलवा भेजा। मैं दूत के साथ कारिंदे के तम्बू में गया। वह एक चारपाई पर बड़े-से तकिए पर टेक लगाकर बैठा था। मैंने तो उसी को गुरु समझ लिया और उसके सामने घुटने टेककर साष्टांग दंडवत् किया।

"कौन हो ?" उसने मुझसे पूछा।

"मैं रक़ाबगंज का जैता रंगरैता हूँ।" मैंने कहा।

"तुम नानक के सिख हो ?"

मैंने उसे बताया कि मैं तो इतना ही जानता हूँ कि मैं वही हूँ जो मेरा बापू था।

"तुमने अपने बाप की आत्मा की शांति के लिए तो कुछ दिया ही नहीं, न ही तुमने गुरु के पद-ग्रहण पर कुछ चढ़ावा चढ़ाया ?" उसने पूछा।

मैंने कहा कि मुझे बापू के मरने पर रक़ाबगंज के सभी रंगरैतों को दावत देनी पड़ी थी, इसलिए मेरे पास कुछ बचा ही नहीं। उसके नौकर ने मेरी गर्दन पर ठोंककर गुस्से में कहा, "तुम गुरु के कारिंदे के साथ बहस करते हो ?"

तब मैंने लक्खी राय से उधार माँगकर उसको पैसे दिए। मैंने अपने-आप से कहा, 'चलो, मैं कुछ हूँ तो सही। मज़हबी सिख़ ही सही। पता नहीं इसके मायने क्या हैं ! पर रंगरैता कहलाना अछूत कहलाने से तो अच्छा ही है।'

उसके बाद से हर साल गुरु का कारिंदा जब भी दिल्ली आता, मुझे उसको कुछ-न-कुछ देना पड़ता। हालाँकि वह मुझे अपने क़रीब नहीं आने देता था, न ही मेरे दिए हुए पैसे को खुद छूता था (उसके नौकर छूते थे), फिर भी मुझे कुछ नया-नया और भला-सा लगने लगा था। मुझे पता चला कि नए गुरु नहीं चाहते थे कि लोग अपनी दाढ़ी और केश काटें, अतः मैंने भी अपने बाल लम्बे कर लिये और सिर पर पगड़ी भी बाँधने लगा। मेरी दाढ़ी भी काफ़ी घनी हो आई थी। मुसलमान हिन्दुओं को दाढ़ी नहीं रखने देते थे, पर हम अछूतों को वे नहीं रोकते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाहजहानाबाद का निर्माण पूरा हो जाने के बाद हमारे लिए काम नहीं रहा था और मुझे फिर से जमादार का काम करना शुरू कर देना पड़ा था। लेकिन अगर कोई मुझसे पूछता कि मैं कौन हूँ तो मैं यही कहता था कि मैं नानक का सिख हूँ।

शाहजहानाबाद के बनने के कुछ साल बाद बादशाह को दिल्ली आगरे से ज़्यादा अच्छी लगने लगी। लेकिन उसका मन यहाँ अधिक नहीं लगा और वह फिर आगरा चला गया। वह अब हमारे शहर में बहुत कम आता। व्यापारी और कारीगर भी आगरा वापस जाने लगे। लोगों ने कहना शुरू किया कि शाहजहानाबाद भी दिल्ली के बाक़ी पुराने शहरों—महरौली, सीरी, चिराग़, तुग़लकाबाद, कोटला फ़िरोज़शाह और क़िलोखेरी की तरह गूजरों, सियारों, लकड़बग्घों और उल्लुओं का शहर बनकर रह जायेगा।

नालियों और ग़ुसलखानों की सफ़ाई से मुझे कुछ ख़ास नहीं मिलता था। बनिया और लक्खी राय से हमेशा उधार लेते रहना पड़ता था। उनके क़र्ज़ पर ब्याज़ भी चुकाना पड़ता था। ब्याज़ न चुका सकूँ तो वे और क़र्ज़ नहीं देते थे। पैसे की तंगी के कारण मुझे चाँदनी चौक की कोतवाली से लगे फाँसीघर की नौकरी भी करनी पड़ी। यह सचमुच बेहद गंदा काम था। पहले-पहल तो मुझे आदमी का सिर कटते देखने की आदत डालनी पड़ी। जल्लाद पहले सिर काटते, फिर हाथ-पैर भी अलग कर देते। इसके बाद मेरा ज़िम्मा होता कि मैं आदमी के सभी अंगों को इकट्ठा कर लोगों के देखने के लिए सजाकर बाहर ले जाता। मैं जब अपना यह काम करता तो देखता कि लोग मेरी तरफ़ देखने से कतराते थे, जैसे कि मैंने ही क़त्ल किया हो। हर शाम कम-से-कम तीन-चार लाशें तो लावारिस हुआ ही करती थीं, जिनको मैं बैलगाड़ी में डालकर नदी में या कूड़े के ढेर पर फेंक आया करता था। आदमी को इस पापी पेट को भरने के लिए क्या-क्या नहीं करना पड़ता!

जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि मुझे यह काम पसंद नहीं था। लाशों की गाड़ियाँ भरकर डोम-डोम चिल्लाते हुए गुज़रना मुझे क़तई नहीं भाता था। लोग मुझे देखते ही अपने बच्चों की आँखों पर हाथ रख देते, ताकि उनकी नज़र मुझ पर न पड़ जाय। लाशों की गंधाती गाड़ी जिधर से गुज़रती, उधर ही लोग नाक बंद करने लगते। फाटकों पर तैनात पहरेदार भी मुझे देखकर अलग हट जाते। मैं अपने बापू की बातें याद करके ही अपने-आपको दिलासा देता रहता कि बेटा, जहानाबाद के फाटकों से सिर्फ़ दो ही लोग बेधड़क होकर गुज़र सकते हैं—बादशाह या फिर भंगी!

बादशाह शाहजहाँ एक बार दिल्ली-आगमन के दौरान बीमार पड़ गया। बात को गुप्त रखने की बहुत कोशिश की गई, पर कुछ ही घंटों में बादशाह के हक़ीम के ज़रिए बात पूरे शहर में फैल गई। दरअसल हुआ यह कि बादशाह रात में उठा तो उसे पेट-दर्द की शिकायत हुई। बेगम ने बल्लीमाराँ में रहनेवाले एक हकीम को बुलवाया। हकीम ने लौटकर कई लोगों को बताया कि वह गई रात सो ही नहीं पाया, क्योंकि उसे एक ऐसे मरीज़ को देखने जाना पड़ा, जिसका नाम वह बता नहीं सकता। बस, लोगों को समझने में क्या देर लगती! और बादशाह की बीमारी की ख़बर शहर-भर में आग की तरह फैल गई।

मैं जब काम पर गया तो एक डोम 'छुट्टी-छुट्टी' कहता बोला कि आज कोई फाँसी नहीं लगेगी। फाँसियाँ सिर्फ़ उसी दिन टाली जाती थीं, जिस दिन कोई त्यौहार पड़ जाता या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाह, बेगम या उनके बच्चों में से कोई बीमार होता।

लाल क़िले पर धूप नज़र आते ही लोग इकट्ठे होने लगे और टोलियों में खड़े हो-होकर फुसफुसाने-बतियाने लगे। क़साइयों को भी जानवरों को हलाल करने की मनाही हो गई थी। मुल्लों को हुक्म मिला कि बादशाह की सलामती और तंदुरुस्ती के लिए नमाज़ पढ़ें। पुजारियों को मंदिरों में जाकर पूजा करने को कहा गया। दुकानें बंद हो गईं। लोगों ने अपने-अपने घरों में घुसकर भीतर से चिटखनियाँ लगा लीं।

बाद में पता चला कि बादशाह को क़ब्ज़ की शिकायत थी और हकीम ने उसे एक दवा की ऐसी खुराक बनाकर दी कि वह दो दिन और दो रात इस तरह हगता रहा कि उसका पेट ख़ाली हो गया और उसको ख़ून की टट्टियाँ लग गईं।

बड़े लोगों की हारी-बीमारी की भी क्या बात! पहले शिकायत थी कि क़ब्ज़ हो गया, और फिर पेचिश को लेकर दुनिया की नाक में दम!

मेरा बापू एक कहावत सुनाया करता था कि बाप हिचकी भी ले तो बेटे उसके बटुए पर टूट पड़ते हैं! और बादशाह के चारों बेटों ने यही सच साबित कर दिखाया। जैसे ही उन्हें ख़बर मिली कि बूढ़ा बादशाह बीमार है, उनके हाथ अपनी तलवारों की मूठों पर जा पहुँचे। लेकिन तलवारें खींचने से पहले ही वे यह तय कर लेना चाहते थे कि वह सचमुच मरनेवाला है या नहीं। इसलिए पहले उन्होंने अपने बाप के लिए दूतों के हाथ तोहफ़े भिजवाए। बूढ़ा ये सारी चालाकियाँ जानता था, क्योंकि अपने ज़माने में वह खुद यही सब कर चुका था। वह अपने महल की खिड़की में आकर बैठ गया और रियाया को दर्शन देने लगा। उसने मस्जिद में जाकर अपने चंगे होने पर अल्लाह की शुक्रगुज़ारी करते हुए नमाज़ भी पढ़ी। बहरहाल, उसके बेटे इन बहकावों में नहीं आए और उन्होंने दिल्ली और आगरे पर चढ़ाइयाँ शुरू कर दीं। बादशाह ने सोचा कि आगरा जाकर अपना तख़्त सँभाल ले, उससे पहले कि उसके बेटे उस पर अपना कब्जा कर सकें। बावजूद इसके, उसके बेटों ने एक के बाद एक अपने-आपको हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित करना शुरू कर दिया। शुजा उन दिनों बंगाल में था। उसने अपने सिर पर ताज रखकर ऐलान किया कि मैं हिन्दुस्तान का बादशाह हूँ। कुछ दिनों बाद दक्षिण के एक प्रदेश से मुराद ने सिंहासन पर आसीन होकर अपने राज्याभिषेक का नाटक रचा। औरंगज़ेब ज़रा ज़्यादा चालाक था। वह मुराद के पास जाकर बोला, "चलो, हम दोनों मिलकर अपने भाइयों को शिकस्त दें और फिर अपने बूढ़े बाप को क़ैद कर लें, क्योंकि अब वह हुकूमत करने के क़ाबिल नहीं रहा। तुम हिन्दुस्तान के बादशाह बनना और मैं मक्का में जाकर तुम्हारी सलामती के लिए दुआएँ करूँगा।"

दारा बादशाह का सबसे बड़ा लड़का था और सबसे लाडला भी। अपने भाइयों के व्यवहार से वह भड़क उठा। बोला, "मेरे वालिद हिन्दुस्तान के बादशाह हैं। उनके बाद मैं हिन्दुस्तान का बादशाह बनूँगा, क्योंकि मैं सबसे बड़ा हूँ। शुजा, मुराद और औरंगज़ेब—सब हरामी हैं। मैं इन सबको क़त्ल कर दूँगा।"

हम लोग नहीं जानते थे कि चारों में से कौन अच्छा बादशाह साबित होगा। ठेकेदार लक्खी राय तो दारा के पक्ष में था। वह कहता था कि दारा सबसे बड़ा है और हमेशा बड़ा बेटा ही बाप का वारिस होता है। इसके अलावा वह खुदा से ख़ौफ खानेवाला इन्सान है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुओं-मुसलमानों को बराबर मानता है। मुसलमान दारा को पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि वह हिन्दुओं की देवमूर्तियों को ख़ुदा और उसके पैग़म्बर के बराबर मानता था।

उन्हीं दिनों सरमद नामक एक फ़क़ीर ने बाज़ार में सबसे यह कहना शुरू किया कि फ़तह दारा की ही होगी। सरमद नागा साधुओं की तरह अलफ़ नंगा घूमा करता था। दिल्ली के लोग सरमद को ख़ुदा का दोस्त मानते थे और उससे ख़ौफ़ खाते थे। एक दिन मैंने सराय में ऐसे ही किसी मुसलमान से सरमद की कही बातें कह सुनायीं। वह मुसलमान ज़मीन पर थूकते हुए बोला, "लाहौल विला कूवत ! उस नंगे फ़क़ीर की यह जुर्रत ? कभी मिल जाय तो उसकी मर्दी काटकर कुत्तों को डाल दूँ।"

लेकिन फ़क़ीर सरमद ग़लत साबित हुआ। बादशाह के बेटे आपस में तख़्त के लिए ऐसे लड़ रहे थे, जैसे कुत्ते हड्डी के लिए लड़ते हों। दारा के बेटे सुलेमान शिकोह ने शुजा को मात दे दी थी। इसी बीच मुराद और औरंगज़ेब ने दारा को शिकस्त दे दी और आगरा को फ़तह कर अपने बाप को क़िले में क़ैद कर लिया। फ़िर औरंगज़ेब ने अपने भाई मुराद के ख़िलाफ़ भी चाल चली। उसे ख़ूब शराब पिलायी और रस्सियों से हाथ-पैर बँधवाकर काल-कोठरी में डलवा दिया। उसके बाद उसने शुजा, दारा और दारा के बेटों को मौत के घाट उतार दिया।

इस तरह हमें एक नया बादशाह मिला—औरंगज़ेब, जबकि पहला बादशाह—शाहजहाँ अभी ज़िंदा था। सराय के मुसलमान खुश थे। वे नए बादशाह को भला आदमी समझते थे। वह न तो शराब पीता था, न ही औरतों के पीछे घूमता था। नाच-गाने से भी उसे सख़्त नफ़रत थी। कम खाता था, कम सोता था और दिन-भर नमाज़ पढ़ा करता था। वह नमाज़ की प्रतियाँ बना-बनाकर बेचा करता था। उससे उसे जो कमाई होती, उसे ही वह अपने ऊपर ख़र्च किया करता था। लोग कहते कि अगर सारे बादशाह ऐसे ही हो जाते तो हिन्दुस्तान से सदियों पहले काफ़िरों का नामोनिशा़न मिट गया होता। लोगों ने उसे आलमगीर, यानी ज़िंदा पीर कहना शुरू कर दिया।

लक्खी राय इस नए बादशाह के आने पर खुश नहीं था। नए बादशाह ने उसे कोई ठेका नहीं दिया था। एक दिन मैं उसके अहाते में बैठा उसके घर से मिला बासी खाना खा रहा था, तो मैंने उसे बताया कि मुसलमान औरंगज़ेब को ख़ुदा का बंदा कहते हैं, क्योंकि वह शराब नहीं पीता और न ही उसे औरतों का शौक़ है। लक्खी राय गुस्से को क़ाबू में नहीं रख पा रहा था। बोला, "और वह वेश्या हीराबाई ?" फिर ज़रा झिझककर सतर्क होते हुए वह कहने लगा कि यह बात मैं किसी और को न बताऊँ। लेकिन हीराबाई का नाम मैं भूल ही नहीं पा रहा था। मैंने बनिये से हीराबाई के बारे में पूछा। बनिये ने बताया कि हीराबाई तो अब मर चुकी। ख़ैर।

औरंगज़ेब बनिए को भी फूटी आँख नहीं भाता था, क्योंकि उसने हिन्दुओं पर 'जज़िया कर' लगा रखा था। उसने आहिस्ता से मुझसे कहा कि मैं किसी को यह न बताऊँ कि यह बात मुझे उसने बतायी थी। और वह कहने लगा, "हिन्दुओं के नेता शिवाजी मराठा ने इन मुग़लों की नाक में दम कर रखा है। तुमने नहीं सुना कि शिवाजी ने बादशाह के एक सेनापति की आँतें कैसे अपने हाथ से निकाल ली थीं ? राम क़सम किसी को एक शब्द भी मत बताना, नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो ये लोग मुझे काटकर रख देंगे।"

मेरे पेट में बात पचती ही नहीं। एक दिन मैंने सराय के एक मुसलमान ख़ानसामा से पूछा कि उसने शिवाजी के बारे में कभी सुना है? वह मेरे मुँह पर थूकते-थूकते रह गया। गुस्से में भरकर बोला, "उस काफ़िर का नाम तुमने कहाँ से सुना? उसने हमारे बहादुर सिपहसालार अफ़ज़ल ख़ान को दोस्त की तरह गले लगाते हुए धोखे से मार डाला। बादशाह ने उसे पकड़ने के लिए फ़ौजें भेजी हुई हैं। अगर अल्लाह ने चाहा तो चूहे को बिल से निकालकर कुचल डाला जायेगा। इंशाअल्लाह!"

कुछ महीनों बाद मुसलमान ख़ानसामा ने मुझे काफ़ी सारा बचा हुआ खाना दिया। वह काफ़ी ख़ुश लग रहा था। कहने लगा, "तुमने अपने शिवाजी के बारे में सुना? उसको पकड़ लिया गया है और ज़ंजीरों में जकड़कर आगरा लाया जा रहा है। अब उसको जहन्नुम रसीद कर दिया जायेगा।"

मैंने जब यह बात बनिए को बतायी तो उसे यक़ीन नहीं आया और वह बोला कि यह झूठ है। कहने लगा कि शिवाजी ख़ुद अपनी इच्छा से बादशाह को मिलने आ रहे होंगे। दिल्ली में कई दिनों तक लोग शिवाजी की ही बातें करते रहे। मुसलमान उसे बहुत बड़ा खलनायक कहते थे। हिन्दू उसको बहुत ऊँचा नायक समझते थे। उसके बाद हमने सुना कि वह क़ैद से निकल भागा और दक्षिण में अपने पहाड़ी साम्राज्य में जा पहुँचा। बनिए ने उत्साहित होते हुए कहा, "मैंने कहा था न कि राम जी उनके रखवाले हैं। ये लोग उन्हें कभी नहीं पकड़ सकते।"

बादशाह बहुत कुपित हो गया था। उसने बनारस और मथुरा के हिन्दू मंदिरों के विध्वंस का हुक्म दे दिया। बनिया, जो मुसलमानों से इतना डरता था, बादशाह को ज़ालिम कहने लगा। उसने कहा, "जब भी ज़ुल्म हद से ज़्यादा बढ़ जाता है, तो भगवान अपने अवतार को ज़ालिमों का नाश करने के लिए भेजता है। यह गीता में लिखा हुआ है।" लक्खी राय भी मुसलमानों की हाँ में हाँ मिलानेवाला आदमी था। पर अब तो वह भी कहने लगा कि यह कलियुग है। भगवान हमारी रक्षा के लिए अपने अवतार को अवश्य भेजेंगे।

ज़ुल्म और ज़्यादा बढ़ने लगा था। पर किसी भी भगवान ने उसे रोकने या कम करने के लिए अवतार नहीं लिया। दिल्ली से कुछ कोस दूर जाटों और बाँभनों के गाँव तिलपत में मंदिर की अपनी ज़मीन का दावा करने पर बादशाह ने अपनी फ़ौजें भेजकर पूरे-के-पूरे गाँव को उजाड़ दिया। उनके मुखिया गोकुल जाट और उसके सारे समर्थकों को दिल्ली लाकर फाँसी पर लटका दिया गया। कोई अवतार उन्हें बचाने नहीं आया।

तीन साल बाद नारनौल में जो ज़ुल्म हुआ, उसे तो बयान करना ही मुमकिन नहीं। सतनामी साधुओं को हज़ारों की तादाद में क़त्ल कर दिया गया। इस पर भी कोई अवतार उन्हें बचाने या ज़ालिम बादशाह को सज़ा देने धरती पर नहीं जन्मा।

मैंने लक्खी राय से अवतारों के जन्म के बारे में पूछा। उसने सिर्फ़ सिर हिला दिया। मैंने उससे पूछा कि गुरु भी अवतार हैं? वह पूछने लगा, "कौन-से गुरु? इतने सारे तो गुरु हैं। और सब करते क्या हैं—अपने कारिंदों को रुपया उगाहने के लिए भेजने के सिवाय?" लक्खी राय कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहा था!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी गुरु में आस्था ख़त्म-सी होने लगी थी। सराय के मुसलमान उसका मज़ाक़ उड़ाने लगे थे। "अरे, यह किस डकैत की पूजा करते हो तुम भी ?" एक आदमी ने मुझे ठिठोली की। मस्जिद का मुल्ला कहने लगा, "बादशाह तुम्हारे इस गुरु को सीधे रास्ते ले आएँगे और इसे सिखाएँगे कि अल्लाह तक पहुँचने का सिर्फ़ एक ही रास्ता है और वह है पैग़म्बर मुहम्मद के ज़रिए।" हालाँकि मुझे इस गुरु के बारे में ज़्यादा कुछ मालूम नहीं था, फिर भी मुझे उनके बारे में मुसलमानों का ऐसा बोलना अच्छा नहीं लगता था। जब गुरु को आगरा में गिरफ़्तार करके बेड़ियों में जकड़कर दिल्ली लाया गया, तब मुसलमानों ने मेरी खिल्ली उड़ाते हुए कहा, "हम न कहते थे कि तुम्हारा यह गुरु डकैत है। अब देखना, इसके सारे गिरोह को फाँसी लगेगी।"

मैंने गुरु और उसके तीन सिखों को देखा जो साथ ही पकड़े गए थे। मन-ही-मन मैं बोला, 'अगर यह अवतार होंगे तो अपनी रक्षा इस ज़ालिम बादशाह से कर लेंगे और इसका ख़ात्मा भी कर देंगे।' मैं मन-ही-मन यह मनाता रहा कि वे अपनी कोठरी से भाग निकलें या कोई ऐसा चमत्कार कर दें कि रक़ाबगंज के मुसलमानों को मैं अपना चेहरा दिखा सकूँ।

पर हम ग़रीब अछूतों की प्रार्थनाएँ कौन सुनता है ! क़ाज़ी अब्दुल वहाब ने, जिसे लोग बहरा क़ाज़ी कहते थे, गुरु और उनके तीन सिखों को फाँसी की सज़ा सुनायी। ठीक ही लोग उसे बहरा क़ाज़ी कहते थे; अल्लाह ने उसे दिलो-दिमाग़ से भी बहरा बनाकर भेजा था। उसने हुक्म दिया कि उनकी लाशों को कोतवाली के बाहर रख दिया जाय, ताकि आते-जाते लोग उन्हें देख सकें। ज़िंदगी में पहली बार, यह सब सुनकर, डरपोक लक्खी राय को भी जोश चढ़ आया था। उसने मुझसे कहा कि यह नहीं होना चाहिए। गुरु ने अपनी जान बचाने से बेशक इन्कार कर दिया हो, पर हम इन लोगों को उनकी लाश के साथ बदसलूकी नहीं करने देंगे। वह अमीर ठेकेदार मुझे अचानक 'जैता जी' कहकर पुकारने लगा। इससे पहले तो वह मुझे सिर्फ़ 'जैतू' ही कहता था या फिर इससे भी बुरा—'चूड़ा' (भंगी)। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि लक्खी राय के मन में क्या बात थी। पर मैं चुप रहा। ग़रीबों की एकमात्र दोस्त उनकी ख़ामोशी ही होती है।

उस साल के पतझड़ में दिल्ली में बड़ी अजीबो-ग़रीब वारदातें हुईं। दशहरे पर रामलीला तक नहीं हुई। न रावण और उसके भाइयों के पुतले जलाए गए, न कोई आतिशबाज़ी हुई। हिन्दू कह रहे थे कि बादशाह ने हिन्दुओं को त्यौहार मनाने की मनाही कर रखी है, मुसलमान कहते कि यह सरासर झूठ है और उनको पता है कि हिन्दू अपना सबसे बड़ा त्यौहार क्यों नहीं मना रहे।

कुछ दिनों बाद दीवाली भी आ गई। किसी के घर एक दीया तक नहीं जला। पटाख़ों की कोई एक आवाज़ नहीं सुनाई दी। कोई आतिशबाज़ी नहीं। किसी ने किसी के घर मिठाइयाँ नहीं भेजीं। लगता था सारी दुनिया में अँधेरा ही अँधेरा है। जानते हो जब आदमी हज़ारों-हज़ार जलते दीयों की कल्पना कर रहा हो, लेकिन वास्तव में चारों ओर अँधेरा हो, तो कैसा लगता है ? तो हिन्दुओं ने इस साल दीवाली भी नहीं मनायी और मुसलमानों के चूतड़ों में कीड़े कुनमुनाने लगे। सराय मस्जिद के मुल्ले ने लक्खी राय से बड़ी चालाकी से पूछा कि उसने दीवाली पर दीए क्यों नहीं जलाए? लक्खी राय ने जवाब दिया, "मेरे एक क़रीबी रिश्तेदार की मौत हो गई है।" यह सुनकर मुल्ले ने व्यंग्य किया, "लगता है सभी हिन्दुओं का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई-न-कोई क़रीबी रिश्तेदार इस साल मर गया है। या फिर, सभी का कोई बहुत क़रीबी मरनेवाला है, इसीलिए... ?"

लक्खी राय ने जवाब नहीं दिया। मुल्ले ने अपना गुस्सा मुझ पर उतारते हुए कहा, "और तू जैता ? तेरी भी क्या नानी मर गई है जो तूने भी दीवाली पर दीए नहीं जलाए ?" मैंने कहा, "मुल्ला जी, ग़रीब के घर तो रोज़ ही मातम छाया रहता है। हमारे पास दीए जलाने के लिए तेल ही कहाँ है ? आपने पैसे दिये होते तो मैंने रक़ाबगंज के हर घर को चिराग़ों से रौशन कर दिया होता।" वह मुँह-ही-मुँह में बुदबुदाने लगा—'तुझे भी बहुत बढ़-चढ़कर बातें बनानी आ गई हैं।'

दिल्ली में सबके मुँह पर आजकल एक ही बात है कि गुरु अवश्य ऐन मौक़े पर कोई-न-कोई चमत्कार करेंगे। लोग कहते कि जो भी गुरु पर या उसके अनुयायियों पर हाथ उठायेगा, वह अंधा हो जाएगा। पूरी दिल्ली में फाँसी देने के लिए कोतवाल को कोई जल्लाद नहीं मिल रहा था। आख़िर उसे पंजाब के समाना नामक स्थान से जलालुद्दीन नाम के किसी जल्लाद को बुलवाना पड़ा।

उस अँधेरी दीवाली के कुछ ही दिनों बाद जलालुद्दीन ने गुरु के साथ पकड़े गए सिखों के सिर धड़ से अलग कर दिए। जलालुद्दीन न तो अंधा हुआ, न ही उसे कुछ और हुआ। अब गुरु की बारी थी। बहरे क़ाज़ी ने कहा कि जलालुद्दीन वीरवार को गुरु का सिर काटेगा और उनकी लाश को जुम्मे की नमाज़ के बाद लोगों को दिखाने के लिए रखा जायेगा, ताकि दिल्ली का बंदा-बंदा देख ले कि इस्लाम की तलवार में ज़्यादा ज़ोर है या काफ़िर की गर्दन में।

दुनिया का हर बंदा जानता है कि जब भी दिल्ली में भले लोगों का खून बहा है, ईश्वर ने अपना कोप बरपा किया है। वीरवार को धूप इतनी तेज़ थी कि आँखें चुँधिया रही थीं। लोगों की जुबान पर एक ही बात थी कि हो न हो, आज कुछ भयंकर होकर रहेगा। मुसलमान तक चिंतित थे और चाहते थे कि बादशाह को, जो पंजाब के पार गया हुआ था, इस बात का पता चल जाय और वह बहरे क़ाज़ी के हुक्मनामे को ख़ारिज कर दे। कोतवाल ने खुद मुझे बताया कि वह पूरी रात नमाज़ पढ़ता रहा है। वह कहने लगा, "मुसलमानों के लिए यह बहुत बुरा होगा, अगर गुरु को फाँसी लगा दी गई।"

गुरु ने कोई चमत्कार नहीं किया। समाना के जल्लाद जलालुद्दीन ने जब गुरु का सिर धड़ से अलग किया तो उनके मुँह में ईश्वर का नाम था। डोंडी पीटनेवाला सारे शहर में नगाड़े पीट-पीटकर कह रहा था कि न्याय का काम पूरा कर दिया गया है और गुरु की लाश कोतवाली के बाहर दो दिनों तक नुमाइश के लिए रखी जायेगी, ताकि लोग आकर देखें और उससे सबक़ लें।

मैं रक़ाबगंज ख़बर लेकर गया तो वहाँ के सारे हिन्दू और सिख एक पेड़ के नीचे जमा हो गए। कोई कुछ नहीं बोल रहा था। मर्दों ने आहें भरीं और औरतें सुबकने लगीं। सराय के मुसलमान हमें दूर से ही देख रहे थे। लगता था, उनको भी हमारे दुःख से सहानुभूति है।

उस रोने-धोने के बीच मुझे एक विचित्र-सा अहसास हुआ। हमने अपने गुरु की जान बचाने के लिए कुछ भी नहीं किया और अब ये उनके नग्न शरीर को नुमायश के लिए रखेंगे। जानवर और परिन्दे उनकी लाश को नोचेंगे-खसोटेंगे। हम भी कैसे भक्त हैं ? मेरा खून खौलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा था। मुझे अपने-आप पर क्रोध आने लगा। गुरु के ज़्यादातर चेले ऊँची जाति के क्षत्रिय और जाट थे, जिन्हें अपनी बहादुरी पर नाज़ था। लेकिन अपने गुरु की रक्षा वे भी नहीं कर सके। आख़िर क्या किया था उन्होंने अपने गुरु को बचाने के लिए? मैं अछूत ही सही, पर इन ऊँची जातिवालों को दिखा दूँगा कि गुरु के शिष्य का क्या फ़र्ज़ है और उसे अपने गुरु के लिए क्या करना चाहिए। सम्भव है इसमें मेरी जान ही चली जाय, लेकिन मैं अपने अछूत भाइयों के लिए एक गौरवपूर्ण स्थान सुरक्षित करके ही रहूँगा।

मैं चुपके से वहाँ से खिसक गया। लक्खी राय ने मुझे उठते देख लिया। वह भी मेरे साथ उठ आया। उसने कहा, "जैता जी, तुम्हें मेरा एक काम करना होगा।" मेरे कन्धे पर हाथ रखते हुए वह पुनः बोला, "पर अगर तुम मर्द हो, तभी कर सकोगे।" उसकी बात के पीछे कोई गहरा अर्थ छुपा हुआ था।

यह पहली बार था कि उसने मुझे छुआ था। मैं इस अमीर ठेकेदार के मन की बात नहीं ताड़ पा रहा था। अमीरों का क्या भरोसा? पता नहीं उसके मन में क्या हो? मैंने कहा, "मुझे कोतवाली जाना है, अपने काम पर।" लक्खी राय कहने लगा, "मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। मुझे भी वही काम है।" यह कौन-सा खेल खेल रहा है वह? मेरे पास इतना वक़्त नहीं था कि इस पहेली को सुलझाने की कोशिश में लग जाता।

लक्खी राय मेरे कन्धे पर हाथ रखकर चलने लगा तो मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे गुरु ही मेरे साथ चल रहे हों। अब मुझे दुनिया में किसी का भी डर नहीं था—न बादशाह का, न बहरे क़ाज़ी का, न जल्लाद जलालुद्दीन का और न ही कोतवाल और मुग़ल सिपाहियों के कुफ़्र का।

लक्खी राय की अनगिनत बैलगाड़ियों का काफ़िला सड़क पर चल रहा था। उनमें कपड़े के थान लदे थे। उसके आठों लड़के भी साथ चल रहे थे। वह सरकारी ठेकेदार था, इसलिए उसको हथियार रखने की अनुमति मिली हुई थी। उन सभी के पास भाले और तलवारें थीं। लक्खी राय अपने काफ़िले की चौकसी इसी तरह करता था, यह बात सभी को मालूम थी।

हम लोग रक़ाबगंज से दोपहर में चले थे। पहाड़गंज पहुँचते-पहुँचते देखा कि सूरज न जाने कहाँ छिप गया है। हवा भी थम-सी गई है। हमारे सिर पर सैकड़ों चीलें मँडरा रही थीं। तभी हमने देखा कि पच्छिम में धूल और गर्दो-गुबार की दीवार-सी खड़ी होती जा रही है। हम शहर की चहारदीवारी तक पहुँचे तो चीलों का झुंड जामा मस्जिद की ओर उड़ता नज़र आया। इसी दम अचानक ऐसी तेज़ आँधी ने हमें घेर लिया कि हमने उम्मीद भी नहीं की थी कि इतनी जल्दी ऐसा होगा।

अजमेरी गेट पर खड़े पहरेदारों ने आँधी से बचने के लिए अपनी पगड़ियों के कुल्लों से अपने चेहरों को ढँक रखा था। उन्होंने बिना ठीक से देखे ही हमें आगे बढ़ने का संकेत दे दिया। क़ाज़ी का हौज़, लाल कुआँ, चाँदनी चौक और बेगम फतेहपुरी की मस्जिद तक तूफ़ान हमारा पीछा करता रहा। अब हम कोतवाली तक आ पहुँचे थे।

गुरु के गुप्त मंसूबों के बारे में कोई क्या जाने? आँधी ने दिन को रात में बदल डाला था। हर घर की खिड़कियाँ-दरवाज़े आँधी से बचने के लिए बंद कर लिये गए थे। पहरेदार तक कहीं-न-कहीं सिर छुपाने को जा खड़े हुए थे। सिर्फ़ आँधी की साँय-साँय ही चारों ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनाई पड़ रही थी।

मुझे गुरु के शरीर को ढूँढने में ज़्यादा दिक़्क़त नहीं आई। मैंने उनके पैर छुए और उनके शरीर को कन्धे पर उठा लिया और उनके शीश को हाथों में थामे आँखों को अन्धा कर रही आँधी में ही मैं आगे बढ़ने लगा और लक्खी राय के पास जा पहुँचा। लक्खी राय और उसके बेटों ने भी गुरु के चरण छुए। हमने उनके शीश और शरीर को एक बैलगाड़ी में लिटा दिया और उस पर कपड़ों के थान चुन दिए। बैलगाड़ियाँ अब वापस मुड़ने लगी थीं। जो तूफ़ान धकियाता हुआ चाँदनी चौक तक ले आया था, वही हमें वापस उन्हीं-उन्हीं बाज़ारों से होते हुए रक़ाबगंज तक लौटा लाया। रक़ाबगंज पहुँचने की देर थी कि आँधी अचानक थम गई और गर्द उड़नी बंद हो गई। अब तो वैसे भी रात हो चुकी थी।

लक्खी राय की बीवी और पुत्रवधुओं ने अपने आँगन के बीचोंबीच चंदन की लकड़ियों की चिता सजा रखी थी। हमने गुरु के शरीर को उस पर रख दिया। सारे परिवार ने उनके चरण छुए। लक्खी राय ने कोई प्रार्थना की और चिता को आग दे दी। उसकी घरवाली ने गुरु के शीश को एक शाल में लपेटकर मुझे थमाया और कहा, "इसे गुरु के पुत्र के पास आनंदपुर ले जाओ। गुरु तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

राह चलता हुआ मैं पीछे मुड़कर देखने लगा कि कहीं कोई मेरा पीछा तो नहीं कर रहा? देखा, दूर लक्खी राय के घर से चिता की लपटें आकाश तक ऊपर उठ रही हैं। आँधी जितनी तेजी से आई थी, उतनी ही तेज़ी से लौट गई थी, इसलिए आसमान अब बिल्कुल साफ़ दिख रहा था और तारे भी निकल आए थे। पूर्णमासी को अभी कुछ ही दिन बीते होंगे। चाँद निकलने तक मैं आनन्दपुर के रास्ते पर काफ़ी आगे बढ़ गया था।

आख़िरकार गुरु ने चमत्कार कर ही दिखाया। उन्होंने मैला ढोनेवाले एक अछूत को अपने पवित्र शीश को हाथों में उठाने का सम्मान दिया। आज के बाद से जो मुझे गंदा कहे, उसी के मुँह में गू! आब मैं जैता रंगरैता कहा जाने लगा था—गुरु का असली पुत्र।

9

भागमती

हफ़्तों हो गए, मैंने भागमती को नहीं देखा और उससे भी बढ़कर यह कि इस बीच मुझे उसकी याद तक नहीं आई। दरअसल मैं दूरदर्शन के लिए एक धारावाहिक बनाने में इतना व्यस्त रहा कि मुझे अपनी भी सुधबुध नहीं रही। धारावाहिक का नाम था 'दिल्ली—जिसे आपने नहीं जाना।' मैंने शुरुआत महरौली से की—इल्तुतमिश, बलबन और जमाली-कमाली के मक़बरों से। कुछ जीर्ण-शीर्ण मस्जिदें और बावड़ियाँ और मिला दीं। दूरदर्शन पर इस धारावाहिक के प्रसारित होने से मेरी काफ़ी धूम मची और सबसे बड़ा बोनस यह मिला कि मुझे कमला नामक एक महिला का ख़त मिला। उसने मेरा धारावाहिक देखा था और वह मुझसे मिलना चाहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। उसने अपने नाम के साथ न तो 'मिस' लिखा था, न मिसेज़ और न ही अपनी उम्र अथवा अपने जीविकोपार्जन को लेकर कोई संकेत दिया था। अपना पता दिया था—सेना की मेस के एक कमरे का। आमतौर पर जो औरतें अनजाने मर्दों को ऐसे पत्र लिखा करती हैं, वे मिलने पर पक्की 'बोर' क़िस्म की गम्भीर महिलाएँ निकलती हैं। बहरहाल, कुछ है जो मुझे उसको जवाब देने के लिए प्रेरित कर रहा है। लिखता हूँ कि मुझे उससे मिलकर ख़ुशी होगी। बस इसी वक़्त अचानक मुझे थोड़ा अपराध-बोध होता है और भागमती की याद आने लगती है।

इंडिया इंटरनेशनल सैंटर की लाइब्रेरी में घंटे-भर से बैठा हूँ। यहीं कमला को मिलने के लिए लिखा है। वह मुझे शक्ल से पहचानती है, अतः उसे मुझको ढूँढने में दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए।

सैंटर में आकर पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने का मुझे चस्का है। पर लग रहा है आज मेरा जी पढ़ने में ठीक से नहीं लग पा रहा। कोई भी महिला भीतर आती है तो नज़र उधर उठ जाती है। क्या उम्र होगी उसकी? पंद्रह या पचास? मोटी होगी या छरहरी? रंग पता नहीं गोरा या साँवला? और मुझे मिलना भला क्यों चाहती है?

आख़िरकार वह आ पहुँचती है और सीधे मेरी तरफ़ बढ़ी चली आती है। अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए कहती है, "मैं कमला हूँ।"

मैं उठकर उससे हाथ मिलाता हूँ और जवाब देता हूँ, "ख़ुशी हुई आपको देखकर। चलिए बाहर बैठकर कॉफ़ी पीते हैं।"

वह तीसेक साल की छोटे-से क़द की महिला है। रंग थोड़ा साँवला है। हम एक मेज़ के गिर्द बैठकर कॉफ़ी का ऑर्डर देते हैं। बातचीत का सिलसिला मैं ही शुरू करता हूँ, "आपका पूरा नाम क्या है?"

"आप तो लगता है सब-कुछ अभी जानना चाहते हैं। ठीक है, सुनिए। मेरा नाम कमला गुप्ता है—ब्रिगेडियर गुप्ता की पत्नी। हमारे तीन बच्चे हैं, दो लड़के और एक लड़की।"

मैं हैरान होकर पूछता हूँ, "तीन बच्चों की माँ? आप तो जवान लगती हैं। कॉलेज में पढ़नेवाली लड़की जैसी।"

उसके चेहरे पर ख़ुशी चमकने लगती है, "नहीं, इतनी जवान भी नहीं। मैं चालीस के ऊपर हूँ। शादी को ही बीस साल हो आए। लोग मेरी बेटी को मेरी छोटी बहन समझ लेते हैं।"

"आप क्या दिल्ली की रहनेवाली हैं?"

"नहीं, मैं तमिल हूँ। मेरे पति यहीं के हैं।"

"तो स्कूलिंग की होगी कॉन्वेंट ऑफ जीसस एंड मेरी में? कॉलेज की पढ़ाई मिरांडा हाउस और शादी माँ-बाप ने तय की होगी, क्यों?"

"नहीं! आपकी तीनों ही बातें ग़लत! मॉडर्न स्कूल और सेंट स्टीफ़ेंस से पढ़ाई की। सेंट स्टीफ़ेंस में ही मेरी मि० गुप्ता से मुलाक़ात हुई और मैंने उनके साथ भागकर शादी की। हम दोनों के माँ-बाप इस शादी के लिए तैयार नहीं थे, पर बाद में उन्होंने हमें माफ़ कर दिया। वे बनिया हैं, हम मुदलियार। वे हिन्दी बोलते हैं, मैं तमिल। आपस में हम अंग्रेज़ी बोलते हैं और हमारे बच्चे तीनों भाषाएँ बोलते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बड़ा अच्छा लग रहा है यह सब सुनकर। तो आपके बच्चे और पति कहाँ हैं ?"

"मेरे पति की पोस्टिंग 'नॉन-फ़ैमिली स्टेशन' में है। बच्चे मसूरी के बोर्डिंग स्कूल में हैं। मुझे यहीं आर्मी मेस में रहने को क्वार्टर मिला हुआ है। छुट्टियों में हम सब एक जगह मिलते हैं।"

थोड़ी देर की चुप्पी। मैं उसको पढ़ना चाहता हूँ। वह कॉफ़ी के प्याले के साथ ख़यालों में डूबी हुई है। ख़ामोशी को तोड़ते हुए वह कहती है, "बता दूँ, आप क्या सोच रहे हैं ? आप सोच रहे हैं कि यह औरत आख़िर मुझसे क्यों मिलना चाहती थी !"

"हाँ ठीक ! तो बताइए क्यों मिलना चाहती थीं आप मुझसे ?"

"दरअसल मुझे कुछ खास काम-धाम तो है नहीं। आर्मी वालों की बीवियों के साथ मुझे अच्छा नहीं लगता। मैंने सोचा कोई किताब-विताब लिखी जाय। टी.वी. पर आपका कार्यक्रम देखा तो मुझे एक विचार आया कि क्यों न दिल्ली पर कुछ लिखा जाय, इसके स्मारकों-मक़बरों पर ! आपका क्या ख़याल है ?"

"बाज़ार में इस विषय पर हज़ारों किताबें उपलब्ध हैं।"

"होंगी। पर वे सब अलग-अलग क़िस्म की होती हैं। आप जो अपने धारावाहिक में दिखा रहे थे, वैसा तो मैंने कुछ भी कहीं नहीं पढ़ा। और मुझे भी छोटी-छोटी गलियों में गुम ऐसी-ऐसी पुरानी हवेलियों के बारे में पता है, जिनका किसी ने नाम भी नहीं सुना होगा। मेरे पति का जन्म पराँठेवाली गली में हुआ। वहीं वे बड़े भी हुए। आपने कभी सुना है यह नाम ?"

"हाँ सुना तो है। पर देखा नहीं उसे।"

"तो देखा ? आपको भी नहीं पता उसका। और सुनिये, गली नमक-हरामन सुना है ? मैं शर्त लगा सकती हूँ कि आपने नहीं सुना होगा ! मैं आपको वह सब दिखाऊँगी जो मैं जानती हूँ और आप मुझे वह सब दिखाइयेगा जो मैं नहीं जानती। फिर हम दोनों मिलकर एक किताब तैयार करेंगे। क्यों, क्या ख़याल है ?" और वह बात पक्की करने को हाथ बढ़ा देती है। "डन" मैं उसके हाथ को हल्के-से दबा देता हूँ। कुछ कड़ा-सा हाथ है उसका, मज़बूत-सा।

हम घंटा-भर बतियाते वहीं बैठे रहते हैं। लगता है जैसे बरसों से एक-दूसरे को जानते हों। मुझे नहीं लगता कि इस महिला से अधिक कुछ हासिल किया जा सकता है।

उसे आर्मी मेस के पास छोड़ देता हूँ। आर्मी मेस विश्वयुद्ध के ज़माने की इमारत है। शायद अमरीकन सैनिकों को ठहराने के लिए बनाई गई होगी। वह अगले इतवार वहीं सैंटर पर मिलने का वादा करती है, ताकि मैं उसे दूरदर्शन पर दिखाई जगहों पर घुमाने ले चलूँ। "सैन्टर पर ही मिलना ठीक रहेगा। यहाँ मेस में तो सबकी आँखें इधर ही लग जायेंगी," विदा लेते हुए वह कहती है।

वह एक छोटी-सी कंडी में चाय के दो थर्मस और कुछ सैंडविच लिये सैन्टर के फाटक पर ही मेरा इन्तज़ार करती हुई मिलती है। कंडी के लिए सफ़ाई देती हुई कहती है, "कैफ़ेटेरिया या ढाबों में खाने जाने के बजाय घर से ही कुछ खाना-पीना लेकर चलना अच्छा रहता है।"

मैं उसे हरे रंग की एक छोटी-सी गणेश की प्रतिमा भेंट करते हुए कहता हूँ, "मैं इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंगलकारी मानता हूँ। हमेशा एक गणपति अपने पर्स में रखता हूँ। यह इसलिए तुम्हें दे रहा हूँ कि हमारी दोस्ती में कोई गड़बड़ न हो।"

वह प्रतिमा को दोनों हाथों में थामकर झुलाते हुए चूम लेती है—"धन्यवाद ! चलिए, शायद मेरे लिए यह भाग्यशाली साबित हो।"

कुतुब मीनार को पार करते हुए गुज़रते हैं तो वह उसे देखकर टिप्पणी करती है, "हाल ही की रिसर्च से पता चला है कि यह हिन्दू स्मारक है।"

"लाल क़िला और ताजमहल को लेकर भी तो यही कहा जाता है।" मैं तनिक व्यंग्यात्मक स्वर में कहता हूँ, "ये बेवकूफी की बातें तुमने कहाँ से सुनीं ? इन सभी इमारतों पर इनके बनानेवालों के नाम और इनके पूरा होने की तारीख़ें अरबी में खुदी हुई हैं। लगता है तुम हिन्दू फ़ासीवादियों के प्रभाव में आ गई हो। उनका प्रचार सुनती रहती हो क्या ?"

सुबह का वक़्त महरौली में ही बीतता है। कार को औलिया मस्जिद के पास लगा देता हूँ। शम्सी तालाब के पास सैर करते हुए हम जहाज़ महल होते हुए बाज़ार में आ घुसते हैं। भीड़भरी गलियों को पार कर मैं उसे कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी का मक़बरा दिखाने ले जाता हूँ। बहादुरशाह की मज़ार पर मैं उसे बंदा बैरागी को फाँसी लगाए जाने की बात बताता हूँ। उसी के साथ उसके 700 सिख अनुयायियों को भी फाँसी दी गई थी। उसकी बोटी-बोटी करने से पहले उसे खुद अपने हाथों से अपने बच्चों की हत्या करने का हुक्म मिला था।

"कब ?"

"रविवार, 19 जून 1716 को।"

"तब तो आपको मुसलमानों से सख़्त नफ़रत होगी," वह बुदबुदाते हैं, "आपको तो तारीख़ें तक ऐसे याद हैं, जैसे आपका जन्मदिन हो।"

मैं विरोध करता हूँ, "नहीं, मुझे मुसलमानों से नफ़रत नहीं है। बन्दा बैरागी हज़ारों की तादाद में मुसलमानों को मार चुका था, तभी तो उन्होंने उसे और उसके गुट को पकड़ा था। वह दूसरा ही युग था—बर्बरता का युग।"

उसे जमाली-कमाली का मक़बरा दिखाने ले जाता हूँ। वह एक कप में कॉफ़ी उँडेलकर सैंडविच के साथ मुझे थमाती है और नोटबुक और पेन निकालकर पूछती है, "अच्छा, अब इन सब जगहों के बारे में बताइए जो हमने अभी-अभी देखीं। अभी नहीं लिखूँगी तो भूल जाऊँगी।"

मैं उसे उन जगहों के बारे में बताता हूँ और वह कॉफ़ी की चुस्कियाँ लेते हुए नोट करती जाती है। अचानक कहती है, "मुझे विश्वास नहीं होता कि आपको मुसलमान लोग पसन्द होंगे।"

एक बार मैं फिर अपनी दलील देता हूँ, "मेरे ज़्यादातर दोस्त हिन्दू या सिख नहीं मुसलमान ही हैं।"

"मैं नहीं मान सकती कि आप औरंगज़ेब जैसे ज़ालिम को पसन्द कर सकते हैं, जिसने खुद अपने भाई-भतीजों को इतनी बेरहमी से मरवा दिया हो और अपने बाप को क़ैदख़ाने में फेंक दिया हो। उसने हिन्दू मंदिरों का विध्वंस किया और उसके एक गुरु को फाँसी दी। ऐसे किसी आदमी को आप भला कैसे पसन्द कर सकते हैं ? अगर आप मुझसे पूछें तो मैं कहूँगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि सारे हिन्दू-मुस्लिम-फ़साद की जड़ वही औरंगज़ेब था।"

"माई डियर यंग लेडी! लगता है किसी ने आपका ब्रेन-वाश कर दिया है। आपको किसी ने यह क्यों नहीं बताया कि औरंगज़ेब हिन्दू मंदिरों और गुरुद्वारों को ग्रांट भी दिया करता था।"

"यह तो मेरे लिए एक ख़बर है! आपने अभी-अभी गढ़ी होगी।"

हमारा आगामी दौरा उन जगहों पर होनेवाला था, जहाँ वह मुझे लेकर जाती और अपनी खोजों से परिचित कराती।

इस बार भी उसे क्रिस्टल का बना एक और गणपति भेंट करता हूँ, "यह तुम्हारे सौभाग्य को दुगुना करने के लिए!" इस बार वह मेरी दाढ़ी पर एक चुम्बन देती है। लालक़िले के पास पहुँचकर मैं गाड़ी पार्क कर देता हूँ। वह मुझे चाँदनी चौक में ले चलती है। कहती है, "दरीबा और पराँठेवाली गली से नहीं जा सकते। वहाँ मेरे ससुराल की ओर के बहुत-से लोग रहते हैं। पूछेंगे कि इन सरदार जी के साथ क्या कर रही हो?"

"और मैं लाल कुआँ की तरफ़ नहीं जाना चाहता। मेरे कुछ मित्र वहाँ रहते हैं।" मैंने भी कहा।

"लाल कुआँ में आपके मित्र? किस तरह के मित्र?" वह तनिक संदेह से पूछती है।

"वेरी रेस्पेक्टेबल। बेहद अज़ीज़! बताऊँगा कभी।"

हम नई सड़क पर एक सँकरी गली में घुसते हैं। वह मुझे कितनी ही पुरानी हवेलियाँ और पीपल के पेड़ के नीचे बना एक मंदिर दिखाती है। कहीं-कहीं खुली नालियों से उठती दुर्गंध बर्दाश्त के बाहर हो उठी है। लावारिस गायों, पैदल चलनेवाले लोगों और स्कूटरों के कारण उधर से गुज़रना तक मुश्किल है। इसी बहाने मुझे उसका हाथ पकड़ने का मौक़ा मिलता रहता है। हर बार वह मेरा हाथ भींच लेती है। घंटा-डेढ़ घंटा आवारागर्दी करने के बाद हम स्वयं को जामा मस्जिद के पिछवाड़े पाते हैं। मैदान को पार कर लाल क़िले के सामनेवाले पार्किंग स्थल में पहुँचते हैं।

"मुझे कनॉट प्लेस में छोड़ दीजिएगा। थोड़ी खरीदारी करनी थी।" वह कहती है।

मैं जानता हूँ कि मेस के लोगों द्वारा बार-बार मेरे साथ देखे जाने से बचने के लिए यह उसका बहाना है। मुझे उसके इस नज़रिए पर हैरानी होती है। मैं उसे अपने घर चलने को कहता हूँ। इससे भी वह इन्कार कर देती है। लेकिन उसकी बातों से साफ़ ज़ाहिर है कि वह अपनी मौजूदा ज़िंदगी से कतई खुश नहीं है, "आर्मी अफ़सरों की बीवियों की भी क्या ज़िंदगी होती है! आदमी महीनों और हफ़्तों दूर रहते हैं। और जब कुछ दिनों के लिए आते हैं तो उन्हें सेक्स के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं, भले बीवी चाहे या न चाहे। और उसके बाद फिर वही फ़ील्ड पर चले जाना। बीवी का फिर वही अकेलापन!"

अगर वह मेरे घर नहीं आती और मुझे भी अपने कमरे में नहीं ले चलती तो फिर आख़िर कहाँ हमें वह एकान्त मिलेगा, जिसकी उम्मीद अब बढ़ती चली जा रही है? पहल अब मेरे हाथों से निकलकर उसके हाथों में जा चुकी है। पर मामला अब कहीं न कहीं पहुँचना ही चाहिए, इधर या उधर। नहीं तो अब उससे किनारा ही कर लूँगा।

अक्तूबर की एक गुनगुनी सुबह सैन्टर में ही हमारी तीसरी मुलाक़ात होती है। मैं उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और गणपति भेंट करता हूँ, हाथी दाँत का बना। मेरे होंठों को चूमते हुए वह पूछती है, "आप मुझे कितने गणपति और देनेवाले हैं?" मैंने गाड़ी पुराने क़िले की तरफ़ बढ़ा ली है, "जानती हो, मैं सचमुच तुम्हें क्या देना चाहता हूँ?"

"नहीं तो!...बताइए।"

"बच्चा।"

वह बिना चौंके, बिना पलकें झपकाए सीधी सड़क पर नज़रें गड़ाए रखती है। फिर कुछ देर बाद कहती है, "उसके लिए तो कुछ और करना होगा, क्योंकि तीसरे बच्चे के बाद मैं नसबन्दी करा चुकी हूँ। ख़ैर, फिर भी कोशिश करने में कोई हर्ज नहीं।"

ऐसी औरत का मुक़ाबला भी कोई कैसे करे? मैं शर्म से पानी-पानी हो जाता हूँ। मक़बरे का चक्कर लगाते हुए हम उस विषय को फिर से छेड़ने से कतराते रहते हैं। लौटते हुए वह कहती है कि मैं उसे आई.एन.ए. मार्केट ले चलूँ। वहाँ से उसे फल और कुछ और चीज़ें ख़रीदनी हैं। "आप गाड़ी में ही रहिए। मैं ज़्यादा देर नहीं लगाऊँगी," कहकर वह चली जाती है।

जानता हूँ कि वह मेरे साथ बाज़ार में घूमना नहीं चाहती क्योंकि यहाँ आर्मीवाले, और अन्य सरकारी अफ़सर और उनकी बीवियाँ अक्सर आते रहते हैं। थोड़ी देर बाद वह कुली के साथ लौटती है, फलों और बिस्कुट, चीज़ वग़ैरह की भरी टोकरियाँ लिये। इस बार वह मुझसे मेस तक चलने का आग्रह करती है, "मैं ये सब अकेली नहीं ले जा सकती। आपको मदद करनी होगी। और एक 'क्विक ड्रिंक' भी ले लीजिएगा।" टोकरी थामे उसके साथ सीढ़ियाँ चढ़कर एक बरामदे में उतरता हूँ। वह दरवाज़े का ताला खोलती है। देख रहा हूँ कि उसने चैन की साँस ली है कि किसी ने उसे मेरे साथ आते नहीं देखा। सफ़ाई देते हुए कहती है, "मैं अपने पड़ोसियों से ज़्यादा घुलती-मिलती नहीं। इन सबकी आदत है दूसरों के घरों में ताक-झाँक करने की।"

उसके छोटे-से रसोईघर में टोकरी को रखता हूँ। वह तुरन्त कुछ चीज़ें निकालकर अपने नन्हे-से रेफ्रिजरेटर में रख देती है और कुछ को शेल्फ़ों पर सजा देती है।

"मैं तो आपको सिर्फ़ आर्मी की रम ही ऑफ़र कर सकती हूँ। और कुछ है ही नहीं। सोडा के साथ लेंगे या पानी के?"

मैंने कभी रम नहीं पी। कहा, "ऐसे ही दे दीजिए। ऑन द रॉक्स।"

एक ही कमरे में बैडरूम भी है और बैठक भी। थोड़ा-सा छिटपुट सामान है।

गंधयुक्त मीठी-मीठी रम का एक घूँट भरता हूँ। जिस तरह की शराब पीने का अभ्यस्त हूँ, उसके मुक़ाबले यह कच्ची और अनगढ़-सी लगी और पीते ही नशा होने लगा। कुछ बातचीत तो चलनी चाहिए, पर क्या बोलूँ कुछ समझ में नहीं आ रहा है। पता नहीं क्या सूझा कि बोल पड़ता हूँ, "उस दिन आप पूछ रही थीं न कि औरंगज़ेब बहुत कट्टर था। पर मुसलमान इतिहासकार उसको उस नज़र से नहीं देखते। यहाँ तक कि आज का तो आम मुसलमान भी यह सोचता है कि उसे बेबात ही बदनाम किया गया है।"

वह हँसने लगती है, "एक औरत के साथ अकेले बैठे हुए आपको उस मरहूम बादशाह के सिवा और कुछ नहीं सूझ रहा?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, सूझ क्यों नहीं रहा ? कह सकता हूँ कि मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ कि आप-जैसी आकर्षक महिला का साथ मिल रहा है। कितना ख़ुशनसीब हूँ मैं ! लेकिन इसका आग़ाज़ तो मालूम ही नहीं पड़ता।"

"आप मेरे बारे में बहुत कम जानते हैं। आप इतना भी नहीं जानते कि मैं कितनी आकर्षक हूँ," वह अपनी साड़ी का पल्लू नीचे गिरा देती है और ब्लाउज़ के हुक खोलकर अपना वक्ष अनावृत करते हुए पूछती है, "आपने क्या पहले कभी ऐसा कुछ देखा है ? वह भी ऐसी औरत में जो तीन बच्चों को दूध पिला चुकी हो ?"

मैंने सचमुच नहीं देखा था। किसी षोडशी-जैसा पूर्णता की सीमा तक तराशा हुआ सुडौल वक्ष, आबनूसी श्यामलता लिये, गठा हुआ। "सचमुच, तुम्हारा वक्ष बेहद सुडौल है! ऐसा तो मैंने चित्रकारों की कलाकृतियों में भी नहीं देखा।" मैंने कहा। उठकर उसके पास जा बैठने को जी मचलने लगा है, पर वह मेरी झिझक को लक्ष्य कर कहती है, "छुओ ना !"

मैं उठकर उसके पास चला आता हूँ। अपनी हथेलियाँ उसके वक्ष पर फिराता हूँ। उसे तकिए पर झुकाकर चूमता हूँ। मेरे सिर से मेरी पगड़ी उतारते हुए वह कहती है, "यह आपको परेशान कर रही है।" मेरे लम्बे केश उसके चेहरे पर छितर जाते हैं। वह मुझे बालों से खींचकर अपने से भींच लेती है। साँस लेने को पल-भर रुकता हूँ। उसकी आँखें मुँद गई हैं और गहरी साँसें ले रही है। मैं अपने होंठों से उसके मुख को ढक देता हूँ। वह कहती है, ''अब मुझे बच्चा दीजिए ना, जिसका वादा किया था।" मैं उसका कहा पूरा करता हूँ। कुछ ही पलों की तो बात थी।

मैं फ़िर अपना रम का गिलास उठा लेता हूँ। वह उठकर साइड टेबल से अपना सिगरेट का पैकेट उठाकर एक सिगरेट निकाल सुलगाती है, "चलिए अब मन का बोझ हल्का हुआ। अब बताइए, क्या कह रहे थे आप औरंगज़ेब के बारे में ?"

10

औरंगज़ेब आलमगीर : हिन्दुस्तान का शहंशाह

रहमदिल अल्लाह और दुनिया को पनाह देनेवाले पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद के नाम पर हम—अब्दुल मुज़फ़्फ़र मोहिउद्दीन मुहम्मद, जिसको अल्लाह ने हिन्दुस्तान की सल्तनत का ज़िम्मा सौंपा है—अपने नव्वे बरस के जीवन और अड़तालीस बरस के शासनकाल को क़लमबंद करते हैं। अपने ये संस्मरण हम इसलिए लिख रहे हैं, ताकि इन्साफ़-पसंद अल्लाह उन लोगों को सज़ा दे, जिन्होंने हमारे ख़िलाफ़ लिखने में सच को दरकिनार किया। अल्लाह अपने इस नाचीज़ बन्दे को अपनी सफ़ाई अपने ही लफ़्ज़ों में बयान करने के लिए मुआफ़ करे।

यह बदरूह और गुनहगार इन्सान गुजरात के एक छोटे-से शहर दोहाद में पैदा हुआ था। एक शायर ने हमें 'आफ़ताबे-आलमताब', यानी 'वह सूरज जिसकी रोशनी सारी दुनिया में फैले' नाम दिया था। एक भाट ने हमारे ऊपर 'गौहरे-ताज-मुलुक-औरंगज़ेब' नाम से एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारीख़-बीजाक्षरी भी लिखी थी। इन दोनों उपनामों के हरूफ़ को जोड़ने से हमारे जन्म का साल निकलता था—1027 हिज्री, यानी 1618 ईसवी। हम ज़िक़द के पंद्रहवें दिन (3 नवम्बर) को तुला और वृश्चिक की मिली-जुली राशियों में पैदा हुए थे। ज्योतिषियों ने बताया कि हमारे किरदार में इन दोनों राशियों के मिले-जुले निशानात होंगे। तुला राशि से हमें इन्साफ़-पसंदी और दर्दमंदी की भावना मिलेगी और वृश्चिक से हम ज़हरीलापन, दुराग्रह और अपने विरोधियों को कुचलने की ताक़त लेंगे।

हमारे जनम के वक़्त हमारे वालिद साहब, जो उस वक़्त शहज़ादा खुर्रम कहलाते थे, दक्खिन के सूबेदार थे और उनके वालिद शहंशाह जहाँगीर हिन्दुस्तान के बादशाह थे। हमारी अम्मा (जो आगरा के संगमरमरी ताजमहल में आराम फ़रमा रही हैं) ने चौदह साला सुखी-सुहागी ज़िंदगी में चौदह बच्चों को जनम दिया, जिनमें से सात अल्लाह को प्यारे हो गए और सात बच रहे। जहाँआरा हममें सबसे बड़ी थी। उसके बाद दारा शिकोह, शुजा और रोशनआरा बेगम। हम पाँचवें थे। लड़कों में हम तीसरे थे। हमारे बाद मुराद हुआ और गौहर आरा के जनम के साथ ही 7 जून, 1631 को हमारी अम्मी ने इस दुनिया से विदा ले ली।

इन्सान की याददाश्त में अपने जनम के सातवें-आठवें साल के बाद की चीज़ें ही जमा रह पाती हैं। इसीलिए हमें अपने बचपन की ज़्यादा कुछ याद नहीं। बाद में हमें बताया गया कि हमारे दादा जहाँगीर हमारे अब्बाजान से किसी बात पर ख़फ़ा हो गए थे, इसलिए उन्होंने हमें और हमारे बड़े भाई दारा शिकोह को बंधक बनाकर अपने साथ लाहौर में रखा हुआ था। तब हम सिर्फ़ आठ साल के थे।

बादशाह ने बड़े धार्मिक और बुद्धिमान लोगों को हमें पढ़ाने में लगाया। मीर मुहम्मद हाशिम जिलानी और ऐतमाद ख़ान ने हमें कुरान शरीफ़ पढ़ायी और हमारे पाक पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद के रीति-रिवाजों का ज्ञान दिया। हमें फ़ारसी, तुर्की और हिन्दी भी पढ़ाई गई। साथ ही सुलेख का अभ्यास कराया गया। जो कुछ भी सीखने लायक़ था, हमने सब सीखा। वैसे भी खुदा के मुँह से निकले शब्दों (कुरान) और उसके प्यारे पैग़म्बर के रीति-रिवाजों से बढ़कर सीखने लायक़ चीज़ और हो ही क्या सकती थी! लेकिन दाराशिकोह काफ़िरों की किताबें पढ़ना ज़्यादा पसन्द करता था और संगी-साथियों के साथ बैठकर बहस-मुबाहसा किया करता था। उसने रमज़ान पर नमाज़ पढ़ना और रोज़ा रखना भी छोड़ दिया था। अपनी एक अँगुली में वह एक अंगूठी पहने रखता था जिस पर देवनागरी में 'प्रभु' शब्द लिखा हुआ था। वह चित्रकारों, गायकों, बाँसुरीवादकों और नर्तकों तथा इसी तरह के लोगों को अपनी हिफ़ाज़त दिया करता था। खुदा ने उसको अक़्ल और इल्म का जो नायाब तोहफ़ा दिया था, वह उसे अपनी ही ख़ासियत समझकर फूला नहीं समाता था। वह अपने बर्ताव में अक्खड़ और घमंडी होता जा रहा था। बात-बात पर वह अपनी शेख़ी बघारा करता और अमीर-उमरावों से ठीक से बात तक नहीं करता था। ऐसे ही लोगों के बारे में तो कहा गया है कि 'अगर इन्सान की क़िस्मत का कम्बल काले रंग का बुना गया है, तो ज़मज़म और क़ौसर (जन्नत की नदी) का पानी भी उसे धोकर सफ़ेद नहीं कर सकता।'

जैसा कि हर घर का चलन है, कोई भाई-बहन एक-दूसरे को बाक़ियों से ज़्यादा चाहते हैं और एक-दूसरे के ज़्यादा क़रीब होते हैं बनिस्बत औरों के, तो वैसे ही जहाँआरा बेगम और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारा शिकोह एक-दूसरे के ज़्यादा क़रीब थे। यही दोनों हमारे वालिद के लाडले भी थे। हालाँकि हमारे दिल में सभी भाई-बहनों के लिए बराबर का प्यार था, पर रोशनआरा को हमारा साथ ज़्यादा पसन्द था। इसी तरह सबसे छोटी गौहरा मुराद को ज़्यादा पसन्द करती थी।

अक्तूबर 1627 में हिन्दुस्तान के शहंशाह बनने के बाद हमारे वालिद शाहजहाँ ने एक बार अपने बच्चों के बारे में कहा कि दारा शिकोह ने भले लोगों से दुश्मनी मोल ले रखी है। मुराद को पीने की लत पड़ी हुई है। शुजा में संतोष के सिवा और कोई अच्छे लक्षण नहीं दिखाई पड़ते। औरंगज़ेब की दृढ़ता और बुद्धिमानी सिद्ध करती है कि वही एक इस मुल्क की हकूमत सँभालने के क़ाबिल है, लेकिन जिस्मानी तौर पर वह भी कमज़ोर है।

पंद्रह वसंत पार करते ही हमने दुनिया को दिखा दिया कि जैसे हम मन की मज़बूती के लिए मशहूर हैं, वैसे ही हमारे बाज़ुओं में भी मज़बूती की कमी नहीं है। एक दिन सुबह-सुबह अभी जामा मस्जिद की मीनारों पर धूप चढ़ी ही थी कि नदी के किनारे दो हाथियों—सुधाकर और सुरत सुन्दर की लड़ाई देखने भारी भीड़ इकट्ठी होने लगी थी। सुधाकर के दाँत भालों की तरह निकले हुए थे। सुरत सुन्दर दाँतहीन होने के बावजूद अपने प्रतिद्वंद्वी के समान ही तगड़ा था। दोनों हाथियों को हशीश खिलाई हुई थी। दोनों एक-दूसरे के साथ गुत्थमगुत्थी कर रहे थे। तभी लोगों की वाहवाही के शोर और अपने महावत के अंकुश मारने पर सुधाकर बिगड़ उठा और अखाड़ा छोड़कर बौखलाता हुआ-सा भीड़ पर चढ़ दौड़ा। उसने अपने पाँवों से कितने ही लोगों को कुचल डाला। हमारे सिवा सब लोग डर और घबराहट में भागने लगे। हमें अकेला देखकर सुधाकर हमारी ओर लपका। हमने अपने घोड़े की लगाम थामी और जैसे ही अपने भाले से उस भगोड़े हाथी के माथे पर चोट की, उसने हमारे घोड़े को मार गिराया। हम तुरन्त सँभले और अपनी तलवार निकालकर हमने उसकी सूँड काट दी। तब तक शुजा, राजा जयसिंह और बाक़ी लोग भी दौड़ते आए और उन्होंने भी हाथी पर वार करना शुरू कर दिया। तब तक दूसरा हाथी सुरत सुन्दर भी इस हंगामे में शामिल हो गया और उसने सुधाकर को खदेड़ दिया।

आलमपनाह ने हमें अपने इस दुस्साहस के लिए लताड़ा। हमने जवाब दिया, "मौत बादशाहों पर भी अपना साया डालती है। इसमें शर्मिंदगी की कोई बात नहीं। शर्मिंदगी तो इसमें है जो हमारे भाई ने किया।" चूँकि शुजा तो हाथी को मारने के लिए आगे बढ़ा ही था, भले ही बाद में सही, इसलिए सुननेवाले समझ गए थे कि हमारा इशारा दारा शिकोह की तरफ़ ही था, जो कायरों की तरह पीछे खड़ा रहा था। आलमपनाह ऐसे दिखा रहे थे, जैसे उन्होंने हमारी बात सुनी ही न हो। बहरहाल, उन्होंने हमें सोने के सिक्कों से तुलवाया, बहादुर का ख़िताब दिया और कुछ ही महीनों बाद हमें दक्खिन का सूबेदार बना दिया। दारा शिकोह का सीना डाह से छलनी-छलनी हो गया।

सत्रह साल की उम्र में शाहनवाज़ सफ़वी की बेटी दिलरास बानो बेगम से हमारा निकाह हो गया। उसके अगले साल मुराद का ब्याह भी, जो सिर्फ़ चौदह साल का ही था, दिलरास बानो की छोटी बहन से हो गया। इस तरह हमारा भाई होने के साथ-ही-साथ वह हमारा साढ़ू भी बन गया। हालाँकि हम जवान थे और जवानी की अपनी ही ख़्वाहिशें और ज़रूरतें होती हैं, पर हमने औरत के पलँग पर अपना वक़्त बर्बाद नहीं किया। हरम की औरतों के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौज-मस्ती करने के बजाय हम अपने साथियों के साथ तंबुओं में रहा करते थे। हमारे गुरु जिलानी साहब ने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया कि हुकूमत करनेवाले को कभी एक जगह टिककर नहीं बैठना चाहिए। एक जगह टिके रहना आराम का भ्रम देता है और एक शासक के लिए इसका मतलब है, हज़ारों-हज़ार मुसीबतों को बुलावा देना। हमें अपने बचपन में ही पता चल गया था कि बादशाहों का एक ही जगह बने रहना सड़ते हुए पानी की तरह होता है और तब सत्ता उनके हाथ से खिसकने लगती है। हिन्दुस्तान के बाक़ी बादशाहों और नवाबों की तरह हमारे अनेक औरतों से ताल्लुक़ नहीं थे। सिर्फ़ पाँच औरतों से आशनाई रही, जिनसे हमारे दस बच्चे हुए। इनसे से सिर्फ़ एक ही औरत को हमने तहेदिल से मुहब्बत की, लेकिन वह जल्द ही हमारा साथ छोड़कर चल बसी।

तब हमारी उम्र पैंतीस साल की थी। भारी गर्मी के बाद काली घटाओं और ठंडी हवाओं का बरसाती मौसम आ गया था। हम अपनी मौसी से मिलने बुरहानपुर आए हुए थे। ताप्ती नदी के किनारे हम उनके हिरनों से भरे बग़ीचे में टहल रहे थे कि कुछ जवान लड़कियों की हँसी-ठिठोली की आवाज़ें सुनायी दीं। लड़कियाँ पर्दे में नहीं थीं, इसलिए हम उनको शर्मिंदगी से बचाने के लिए जहाँ के तहाँ खड़े हो गए। उन्होंने एक सुर में गाना शुरू किया। गाने का मतलब हमें कुछ-कुछ समझ में आया। प्रीतम के विरह में तड़पती नयी-नवेली बहू की कसक का गीत था। राग मल्हार। समय और मौसम के अनुकूल। उनमें एक बेहद सुरीली आवाज़ सबसे अलग सुनाई पड़ रही थी, हरे पत्तों पर सुबह की शबनम की तरह। हमारे पाँव उसी आवाज़ की तरफ़ बढ़ने लगे। लड़कियाँ हमें देखकर भाग खड़ी हुईं। तब तक सिर्फ़ हमारे कान ही मुग्ध हुए थे, लेकिन अब जो हमने देखा तो अपनी सुध-बुध ही खो बैठे। पारदर्शी सफ़ेद कपड़ों में, आमों से लदे पेड़ की एक डाल को थामे एक बेहद हसीन लड़की हमारे सामने खड़ी थी। बाल कमर के नीचे तक झूलते हुए। वह अब भी झूम-झूमकर गाती जा रही थी और हमें अपनी हिरनी-जैसी आँखों से निहार रही थी। लड़की ने थोड़ा उछलकर एक आम तोड़ा और हमारी ओर उछाला। हमें ऐसा महसूस हुआ जैसे बिजली ही टूट पड़ी हो। लड़की तुरन्त मुड़ी और दौड़कर महल के भीतर घुस गई। "ख़ुदा क़सम," हमारे मुँह से निकला, "यह इन्सान है या जन्नत की हूर?" साथ आया हमारा साथी बोला, "हुजूर, अगर मैं ग़लत नहीं हूँ तो हो न हो यह लड़की आपकी मौसी की बाँदी हीराबाई होगी। उसके सिवा और कोई नहीं हो सकती। इस सारे इलाक़े में उसी के रूप और उसकी गायकी के चर्चे हैं।" हम थोड़ी देर तक गुमसुम-से खड़े रहे। जब हम अपनी मौसी सालिहा बानो को सलाम फ़रमाने गए तो हमारा चेहरा देखते ही वे समझ गईं कि हमें कौन-सी चोट लगी है। हमने उनसे इल्तिजा की कि वे हमारे दिल की पसन्द को हमसे मिलाने में हमारी मदद करें। हमने उनसे कहा कि हमारे हरम की सारी औरतों को ले लीजिए, पर यह हीराबाई हमें दे दीजिए। हमने उनकी बहुत खुशामद की। वे बोलीं कि वे हमारे लिए अपनी जान भी दे सकती हैं, लेकिन उसके शौहर सैफ़ ख़ान को पता नहीं यह मंज़ूर होगा या नहीं। सैफ़ ख़ान जो बुरहानपुर के सूबेदार थे और अपने गुस्से के लिए मशहूर थे, पता नहीं यह सुनकर क्या कहें! हमारा दोस्त मुर्शिद कुली ख़ान तो सैफ़ ख़ान को ही रास्ते हटाने को तैयार हो उठा था, लेकिन हमने उसे ऐसा करने से रोक दिया क्योंकि यह शरीयत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ानून के ख़िलाफ़ होता। मुर्शिद बस एक बार सैफ़ ख़ान से मिलने गया और हमारा प्रस्ताव कह सुनाया। सैफ़ ख़ान ने कुछ देर सोचने के बाद हमारी मौसी से कहा कि वह हमारी बाँदी छतरबाई के बदले हीराबाई को बदलने को तैयार है। इस तरह हीराबाई को डोली में बैठाकर हमारे हरम में लाया गया। कई महीने तक हमें उसके सिवा कुछ सूझता ही नहीं था। बस उसी का साथ। उसके हाथ से तो हमने शराब का प्याला भी पी लिया, जबकि शराब से हमें सख़्त नफ़रत थी। अगर वह शराब के बदले ज़हर भी देती तो हमने उसके हाथों पी लिया होता। हमारी मुहब्बत की कहानी दारा तक भी पहुँची। सुनते ही दारा ने हमारे ख़िलाफ़ आलमपनाह के कान भरने शुरू किए। सुना कि उसने शहंशाह से कहा, "अब देखिए इस पाखंडी का संयम और धर्म-परायणता! मौसी के घर की एक नौकरानी के पीछे दीवाना हुआ पड़ा है!"

अल्लाह का क़ानून तो देखिए! उसने देखा कि हम हीराबाई की मुहब्बत की गिरफ़्त में आकर अपने फ़र्ज़ के रास्ते से हट रहे हैं, तो हीराबाई को ही हमसे छीन लिया। आँसुओं के सोते बहाते हुए हमने उसे औरंगाबाद में दफ़्न कर दिया।

हमारे अब्बाजान को चुग़ली सुनने और चापलूसों की बातें सुनने की आदत थी। हमें किसी ने बताया कि एक बार साधु के भेष में किसी धोखेबाज़ ने उन्हें दो सेब दिए और कहा कि जब तक उनके हाथों में इन सेबों की गंध रहेगी, तब तक कोई हारी-बीमारी उनके लिए जानलेवा नहीं हो सकती। उन्होंने उस फ़क़ीर से पूछा कि उनका कौन-सा बेटा उनके वंश का विनाश करेगा तो उस पाजी ने कहा, 'औरंगज़ेब'! हमने अपने अब्बा हुज़ूर के हाथ कई बार चूमे, पर सेबों की गंध कभी नहीं आई और अपनी सल्तनत का नाश करने के बजाय हमने उसे दूर-दूर तक फैलाने का ही काम किया। हमने अपना साम्राज्य जहाँ तक फैलाया, हमारे पुरखों ने तो वह कभी सोचा भी न होगा। फिर भी अब्बाजान के दिमाग़ में लोगों ने हमारे ख़िलाफ़ ज़हर भर रखा था। हमने सुना कि वे हमारे गोरे रंग और हमारे चरित्र के कारण हमें 'सफ़ेद साँप' तक कहा करते थे। एक घटना से हमारा संदेह पक्का भी हो गया। एक शाम जहाँआरा बेगम अपने कमरे में शमा लेकर जाते हुए गिर पड़ी और उसके मलमल के कपड़ों ने आग पकड़ ली। वह काफ़ी जल गई थी। दो बाँदियों ने उसे अपने बदन से भींचकर उसकी आग बुझायी, लेकिन इस दौरान वे इतनी जल गईं कि उनको बचाया न जा सका। दारा शिकोह ने हम तक ख़बर पहुँचाने में देर कर दी। नतीजतन हम महीना-भर बाद ही आगरा पहुँच सके। बादशाह हमसे इतना नाराज़ थे कि उन्होंने हमारी दक्खिन की सूबेदारी छीन ली और हमारी एक न सुनी। आख़िरकार हमने दुःखी होकर उन्हें लिखा, *"अगर आलमपनाह की यही ख़्वाहिश है कि उनके सभी ताबेदारों में से एक मैं ही अपमान की ज़िंदगी बिताऊँ और बर्बादी की ओर क़दम बढ़ाऊँ, तो उनका हुक्म मानने के सिवा मैं और क्या कर सकता हूँ!"* दस साल पहले ही मुझे यह गुमान हुआ कि मेरे साथ बादशाह ऐसा सौतेला बर्ताव कर रहे हैं और मेरी ज़िंदगी को इस क़दर निशाना बनाया जा रहा है।

उसी साल कुछ समय बाद दारा शिकोह ने मुझे यमुना-किनारे अपने महल में दावत पर बुलाया। पर वह कई बार मेरी बेइज़्ज़ती कर चुका था, इसलिए मैंने उससे दूरी बनाए रखने की ही सोची और महल के प्रवेशद्वार से आगे नहीं गया। उसे इस बात का बुरा लगा और उसने बादशाह से उसका ज़िक्र किया। बादशाह ने हमें बहुत फटकार लगायी कि हमें अपने ओहदे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ख़याल नहीं। इसी बात पर हमें सात महीनों तक दरबार में घुसने की भी मनाही कर दी गई।

ऐसी बहुत-सी वारदातें पहले भी हो चुकी थीं। यह तो उनमें सिर्फ़ एक थी। बादशाह हमें अपने से ऐसे दूर रखते, जैसे हम उनके बीज से पैदा ही न हुए हों। हमारे भाइयों और बहनों को उनके जनमदिनों पर सोने और ज़ेवरात के तोहफ़े मिलते, पर हमारे बच्चों को या हमें उन्होंने कभी कुछ नहीं भेजा। वफ़ादार नौकरों की तरक़्क़ी के लिए की गई हमारी सिफ़ारिशों पर भी अमल नहीं किया गया। हम पर गोलकुंडा की दौलत को हड़पने की भी तोहमत लगायी गयी। यहाँ तक कि दक्खिनी आमों को लेकर भी यह कहा गया कि बादशाह की मेज़ पर जाने के बजाय वे हमारे घर आ रहे थे। हमें यह ख़बर मिली कि इस बार दिल्ली आने पर बादशाह ने दारा को हिन्दुस्तान का भावी सम्राट घोषित किया है। वह दरबार में बादशाह की दी हुई ख़िलवत पहनकर आया था और तख़्ते-ताऊस के साथ लगी सोने की कुर्सी पर बैठा था। अगर दारा सच कहता है (वैसे तो वह सच कभी बोलता नहीं) तो बादशाह ने उससे कहा, "मेरे बच्चे, मैंने सोच लिया है कि आज से मैं कोई भी अहम काम या कोई भी अहम फ़ैसला तुम्हारी सलाह के बिना नहीं करूँगा। अल्लाह का किस तरह शुक्रिया अदा करूँ कि उसने मुझे तुम-जैसा होनहार बच्चा दिया !"

जैसा कि हमने पहले भी कहा है और सौ बार कहेंगे कि बादशाहत की हमें कोई चाहत नहीं थी। लेकिन हमारे गुरु और उस्ताद हमेशा हमें याद दिलाते रहे हैं कि अल्लाह ने बहुत सोच-समझकर ही हमें बादशाहों के वंश में जनम दिया है और हमारा यह फ़र्ज़ बनता है कि हम इन्सानियत की ख़िदमत करें और अपने इस्लाम धरम को दुनिया-भर में फैलाएँ, क्योंकि सच्चा धरम केवल इस्लाम ही है। जिलानी साहब कहा करते थे कि हिन्दुस्तान रोटी के एक टुकड़े की तरह है, जिसको ऊपरवाले ने हमारे पुरखों—तैमूर, बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ को दिया। वे ज़ोर देकर कहा करते थे कि अल्लाह बहुत दरियादिल है, लेकिन जिन्हें उसकी दरियादिली के तोहफ़े मिले हैं, उनका यह फ़र्ज़ बनता है कि वे इस्लाम के साम्राज्य को फैलाएँ। वे कहते थे— अपनी ज़िंदगी को भरपूर जिओ, लेकिन याद रखो कि यह आनी-जानी है और सिर्फ़ अल्लाह का नाम ही सदा रहनेवाला है।

बाग़ में हो तो जिओ हर लम्हा
वसंत गर्मी में बदल जाता है
गर्मियाँ बदल जाती हैं वही पतझड़ में
और मेहँदी के फूल झड़ जाते हैं।

जबकि दारा शिकोह दिल्ली और आगरा में बादशाह का दामन पकड़े बैठा था, हम दक्खिन में काम-काज सँभाल रहे थे। हमें बल्ख़, बदख़्शाँ, क़न्धार और मुल्तान में भी क़ानून और व्यवस्था बनाए रखनी थी। बहकाए हुए फ़ौजियों को हम तलवार से जवाब देते रहे। लड़ाई के एक मैदान से दूसरे मैदान में सफ़र करते रहे। हमारी ज़िंदगी का एक हिस्सा फिर भी कभी नहीं बदला और वह था—हमारा नमाज़ पढ़ने का नियम। हमें इससे कोई मतलब नहीं होता था कि हम कहाँ हैं, पर नमाज़ पढ़ते वक़्त हम अपने हथियार रख देते और अपना मुँह मक्का की तरफ़ करके नमाज़ पढ़ने में डूब जाते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहके हुए इतिहासकारों ने हमारे बारे में कई भ्रामक बातें लिख डालीं कि कैसे हमने शहंशाह शाहजहाँ के जीते-जी हिन्दुस्तान की सल्तनत अपने हाथों में कर ली। उन्होंने हमारा नाम एक साज़िश-पसंद ख़ुदग़र्ज़ की शक्ल में उछाला। वे भूल गए कि कुरान शरीफ़ में लिखा है कि अल्लाह सबसे बड़ा ख़ाकानवीस है। हम तो सिर्फ़ उसके ख़ाकों (नक़्शों) को जारी करने का ज़रिया बने।

ज्योतिषियों और पीरों ने तो पहले से ही आनेवाली घटनाओं का ऐलान कर दिया था। हमारे अब्बाजान के दरबार में मौजूद हमारे खुफ़िया ने हमें बताया कि एक बार एक भविष्य बतानेवाले पीर से बादशाह ने पूछा कि उनके चारों लड़कों में से किसके तख़्ते-ताऊस पर बैठने की उम्मीद है, तो पीर ने उनसे लड़कों के नाम पूछे।

"दारा शिकोह सबसे बड़ा है।" वे बोले।

"इसका भाग्य डेरियस की तरह है, जिसने सिकन्दर के हाथों शिकस्त पाई थी।" पीर ने कहा।

"शुजा दूसरा है।"

"हालाँकि इसके नाम का मतलब है निडर, पर यह निडर नहीं है।"

"मुराद हमारा सबसे छोटा बेटा है।" आलमपनाह जैसे हमें भूल ही गए थे। उन्हें तो वैसे भी हमारा होना, न होना कभी याद ही नहीं रहता था।

"हालाँकि इसके नाम के मायने हैं— कामना या चाहना, पर यह कभी उसे पूरा न कर सकेगा।" पीर ने अपनी ही धुन में जवाब दिया।

तभी शायद आलमपनाह को याद आया, "एक और बेटा औरंगज़ेब भी है।"

"हाँ, उसका नाम अपने गुणों के मुताबिक़ है, क्योंकि आपके बेटों में सिर्फ़ वही एक तख़्त के क़ाबिल है। अक़्ल और ख़ुशहाली का आपस में गहरा नाता है। जिसके पास अक़्ल नहीं, उसे ख़ुशहाली भी नहीं मिल सकती।"

हमें बुरहानपुर में ख़बर मिली कि अब्बाजान 6 सितम्बर, 1657 से बीमार पड़े हुए हैं। शाहजहानाबाद से हमारे कारिंदे ने हमें खुफ़िया ज़बान में ख़बर भेजी कि जहाँपनाह को कई दिन से टट्टी-पेशाब करने में दिक़्क़त आ रही है और उनका इलाज करनेवाले हकीमों को अब यह उम्मीद नहीं है कि वे ज़्यादा दिन हिन्दुस्तान की हुकूमत सँभाल सकेंगे।

हमने अपने कारिंदे को हुक्म दिया कि बादशाह की हालत की वह हमें लगातार ख़बर देता रहे। हमने ख़त लिखकर बादशाह से उनकी ख़िदमत में हाज़िर होने की इजाज़त माँगी। जहाँपनाह ने हमें निहायत ही रूखा, छोटा-सा जवाब दिया कि पेट ख़राब होने की उनकी ज़रा-सी तकलीफ़ को अफ़वाह बनाकर फैलाया गया है और अब वे ठीक-ठाक हैं तथा आगरा जा रहे हैं। उसी बीच हमारे दिल्ली के खुफ़िया ने बताया कि शाही हकीम को मुट्ठी-भर मोहरों की घूस देकर उसने सारी बात उगलवा ली है। उसने कहा है कि अल्लाह ही अगर कोई चमत्कार करे, तो ही बादशाह बच सकते हैं, वरना नहीं। उनकी ख़िदमत में लगी हमारी प्यारी बहन रोशनआरा बेगम ने भी हमें एक खुफ़िया संदेश भेजकर हमारे भाइयों की चालों के बारे में हमें आगाह किया।

हमने अपने भाइयों शुजा और मुराद को समझाया कि वे अपने पुरखों—तैमूर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबर की शान के ख़िलाफ़ बर्ताव न करें। उन्होंने हमारी सलाह नहीं मानी। शुजा उन दिनों बंगाल में था। पहले उसी ने खुद के हिन्दुस्तान का बादशाह होने का ऐलान किया और अपने-आपको अबुल फ़ौज नसीरुद्दीन मुहम्मद तैमूर-तीन, सिकन्दर-दो, शाह शुजा बहादुर ग़ाज़ी नाम दिया। मुराद तब गुजरात में था। कुछ हफ़्तों बाद मुराद ने भी अपने-आपको 'मरुव्वाजुद्दीन' का ख़िताब देकर अपने हिन्दुस्तान का बादशाह बनने की डोंडी पिटवा दी और हमें अपने साथ आगरा कूच करने के लिए बुलाया। अपने गुस्से पर बेक़ाबू होकर उसने अपने वज़ीर अली नक़वी के ख़ून से अपने हाथ रँग लिये, क्योंकि उसको शक था कि अली नक़वी दारा के साथ मिला हुआ है। आगरा में तैनात हमारे आदमी ने हमें ख़बर भेजी कि दारा शिकोह तो लालक़िले का मालिक भी बन बैठा है, जहाँ हमारे अब्बाजान सेहत के लिए क़याम कर रहे हैं। काफ़िर राजपूतों से अपनी साज़िश में शामिल होकर उसने मदद करने को भी कह दिया है।

हमने सारे मामले पर कई दिनों तक ग़ौर किया। हमें भरोसा नहीं हो रहा था कि हमारे भाई इस ढंग से व्यवहार करेंगे। दारा शिकोह की सिर उठाती ख़्वाहिशों से हम सबसे अधिक फ़िक्रमंद थे। वह अगर हिन्दुस्तान का शहंशाह बन गया तो हिन्दुस्तान की सल्तनत को दार-उल-इस्लाम नहीं कहा जा सकेगा और हमारे मुग़ल बाप-दादों और उनसे भी पहले आनेवाले अफ़ग़ानी और तुर्की बादशाहों का सारा किया-कराया मटियामेट हो जायेगा।

एक और बात थी, जो हमारी चिन्ता का बायस बनी हुई थी और वह यह कि अब हम भाइयों के बीच दुश्मनी पैदा होने से रोकी नहीं जा सकेगी। बादशाहत किसी भाईचारे को नहीं मानती। मुहब्बत का कोई भी पुल बादशाह और उसके बेटों के बीच की गहरी खाई को नहीं पाट सकता। बादशाह के बेटों के बीच प्यार का कोई बँधाव नहीं रहता। हालाँकि वे एक ही पिता के अंश होते हैं और एक ही तरह माँ के पेट में पले होते हैं, लेकिन जैसे ही वे बड़े होकर दुनिया को जानने लगते हैं तो वे यह भी जान जाते हैं कि या तो वे अपने भाइयों का ख़ात्मा करें या फिर खुद ख़त्म होने के लिए तैयार हो जाएँ।

मुग़ल बादशाह हिन्दुस्तान पर जितने लम्बे अरसे तक हुकूमत करते रहे हैं, वैसा और कहीं नहीं हुआ होगा। इसीलिए मुग़लों ने दुनिया के किसी भी शाही ख़ानदान से ज़्यादा शाही ख़ून भी बहाया है। हमारे महान पुरखे ज़हीरुद्दीन बाबर ने सन् 1526 में हिन्दुस्तान में मुग़ल सल्तनत की नींव डाली थी। उनके दो बेटों—हुमायूँ और कामरान ने भी आपस में एक-दूसरे के ख़िलाफ़ तलवारें खींची थीं। अल्लाह को तख़्त हुमायूँ को सौंपना था और शायद इसीलिए उसमें इतनी हिम्मत पैदा की कि अपने भाई की आँखें निकालकर उसने उसे मरने के लिए मक्का भेज दिया। अकबर ने जब हुमायूँ की जगह ली तो उसने भी कामरान के इकलौते बेटे को ख़त्म कर दिया। शहंशाह अकबर की अपनी हुकूमत को उसके बेटे सलीम—जहाँगीर की बग़ावत का सामना करना पड़ा। जहाँगीर को भी अपने बेचैन-बेताब बेटे खुसरो को क़ैद में रखना पड़ा। हमारे अब्बाजान को भी ऐसी ही मुसीबतों से गुज़रना पड़ा, क्योंकि हमें और दारा शिकोह को उनके वालिद जहाँगीर ने क़ैदी की तरह रख लिया था। जब अल्लाह ने हिन्दुस्तान की सल्तनत हमारे वालिद के हाथों सौंपी, तो उन्हें भी अपने भाइयों—डाबर बख़्श और शहरयार तथा उनके लड़कों का ख़ात्मा करके अपना रास्ता साफ़ करना पड़ा। पैग़म्बर हज़रत जेरिमिह ने ठीक ही फ़रमाया था, 'बापों ने खट्टे अंगूर खाए और दाँत किटकिटाये बच्चों के।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तख़्ते-ताऊस पर तो हम चार भाइयों में से सिर्फ़ एक ही बैठ सकता था। बाक़ी तीन के लिए फाँसी का तख्ता ही होना था। हिन्दुस्तान में तो एक कहावत ही बन गयी थी कि 'तख़्त मिलेगा या तख़्ता (फाँसी)!' बादशाहत तो म्यान की तरह होती है, जिसमें सिर्फ़ एक ही तलवार रह सकती है।

दारा शिकोह को हिन्दुस्तान का शहंशाह बनने का ऐसा पागलपन सवार हो गया था कि वह कुछ भी कर गुज़रने को तैयार था, क्योंकि दिल्ली की गलियों में नंगा घूमनेवाले उस नीम-हकीम फ़क़ीर सरमद ने उसे भरोसा दिलाकर पक्का कर दिया था कि अगला बादशाह उसे ही बनना है।

अल्लाह हमारे दिल के राज़ को जानता है कि जब हमने मुराद के साथ आगरा चलने के उसके बुलावे को मंज़ूर किया था, तो हमारे मन में बादशाह बनने का ख़याल तक नहीं था। हमारा सिर्फ़ एक ही मक़सद था कि मुग़ल सल्तनत को दारा शिकोह जैसे इस्लाम के दुश्मन के हाथों जाने से बचाना है। काफ़िर राजपूत दारा शिकोह से जा मिले। उसके बेटे सुलेमान शिकोह और राजपूत जयसिंह ने शुजा को बनारस में मात दे दी। उसने जोधपुर के एक और राजपूत जसवंतसिंह को भी हमारे और मुराद के ख़िलाफ़ लड़ने भेजा। हमने उसकी फ़ौजों को मार खदेड़ा और अपनी मंज़िल की ओर बढ़ने लगे। दारा शिकोह हमें आगरा से दस मील दूर समूगढ़ में मिला। एक बार फिर हमारी तलवारों को फ़तह मिली। हमने अल्लाह का शुक्र अदा किया। पर मुराद अपनी आदत के मुताबिक़ शराब में डूब गया और कई दिनों तक धुत्त पड़ा रहा।

फ़तह के बावजूद हम अपने अब्बा हुजूर से इज़्ज़त के साथ ही पेश आए और उन्हें लिखा, 'जब तक सल्तनत आपके पाक हाथों में थी, हम आपके हुक्मपरस्त बने रहे और हमने अपनी सीमाएँ कभी नहीं लाँघीं, जिसके लिए अल्लाह हमारा गवाह होगा। लेकिन आलमपनाह की बीमारी के कारण दारा शिकोह ने सारी सल्तनत को अपने हाथों में करते हुए बुतपरस्त हिन्दुओं के धरम का प्रचार करने और हज़रत मुहम्मद के इस्लाम धरम को बदनाम करने की ओर कदम बढ़ाए हैं, जिससे सन्तुलन में बदअम्नी फैलने का ख़तरा पैदा हो गया है। इसलिए मैं बुरहानपुर से चल पड़ा हूँ। मैं क़यामत के बाद दूसरी दुनिया में बेतरतीबी और बदअम्नी के ख़िलाफ़ न लड़ने का गुनहगार नहीं होना चाहता।'

जीतकर हमारी फ़ौजें आगरा पहुँचीं। दारा शिकस्त खाकर भाग चुका था। तब जहाँआरा बेगम ने हमें फटकारते हुए लिखा, 'तुम्हारा फ़ौजें लेकर आने का मतलब है कि तुमने अपने बाप के ख़िलाफ़ जिहाद छेड़ दिया है। अगर ये फ़ौजें तुम दारा के ख़िलाफ़ भी लाए हो, तो भी बात वही निकलती है, क्योंकि बड़ा भाई क़ानून और चलन दोनों की नज़र से बाप के बराबर होता है।'

हमने सोचा कि अब वक़्त आ गया है जब झूठ के साँप को सच की लाठी से मार डाला जाय। हमने जवाब में लिखा कि दारा अपने छोटे भाइयों को बर्बाद करने पर तुला हुआ है। शुजा को उसने कैसे कुचला, यही हमारी बात का सबूत है। उसने हमारे ख़िलाफ़ भी आलमपनाह के कान भर दिए हैं।

कमज़ोर होने के बावजूद आलमपनाह ने हमारे ख़िलाफ़ साज़िशें रचनी बन्द नहीं कीं। अब वे हमें तोहफ़े भेजने लगे थे। इन्हीं तोहफ़ों में एक बार उन्होंने 'आलमगीर' नाम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तलवार भी हमें भेजी। उन्होंने हमारी मज़हब-परस्ती के लिए हमारी तारीफ़ भी की और एक बार हमें 'आलीजाह' कहकर भी पुकारा। हमारे जासूसों ने आगाह किया कि हरम में बुलाकर औरतों के ज़रिए हमें मरवाने की साज़िश चल रही है। हमने जाल में फँसने से इन्कार कर दिया और नदी से क़िले को जानेवाला रास्ता रोक दिया। अपने अगले ख़त में आलीजाह ने हमसे इल्तिजा करते हुए लिखा, 'अपनी बदक़िस्मती की शिकायत करनेवाले हम कौन होते हैं, जबकि हम जानते हैं कि अल्लाह की मंशा के बिना इस दुनिया में पत्ता भी नहीं हिल सकता। अभी कल तक ही तो हम 9, 00, 000 फ़ौजों के मालिक थे और आज पानी के एक घड़े के लिए तरस रहे हैं। भला हो हिन्दुओं का जो अपने मरे हुए पितरों को भी पानी देते हैं, और यहाँ मेरा कट्टर मुसलमान बेटा अपने ज़िंदा बाप को भी पानी देने से इनकार कर रहा है।'

हमने आलीजाह के लिए पानी का बंदोबस्त करने का हुक्म दिया, लेकिन हमारा उनसे मिलने का तब तक कोई इरादा नहीं था, जब तक कि हमारी हिफ़ाज़त का पूरा इन्तज़ाम नहीं हो जाता। 8 जून, 1658 को लालक़िले के फाटक हमारे लिए खोल दिए गए। हमने जहाँआरा बेगम और बादशाह से परिजनों समेत महल में जाने की दरख़्वास्त की। अपने वफ़ादार खुसरे (हिंजड़े) ऐतबार ख़ान को हमने उनकी पहरेदारी पर लगा दिया और कहा कि हमारी प्यारी बहन रोशनआरा बेगम के सिवाय वहाँ किसी और को आने-जाने की इजाज़त न दी जाय।

उसके बाद हमने दारा शिकोह की खोज में निकलने का बन्दोबस्त किया। दारा दिल्ली की तरफ़ भागा था। लेकिन इससे पहले हमें मुराद से निपटना था। अल्लाह ने हमें साझी चढ़ाई में फ़तह दी थी, हम उसके शुक्रगुज़ार थे, पर अब मुराद अपना दिमाग़ी संतुलन खो बैठा था। दिन-रात गाने-बजाने और पीने-पिलाने में लगा रहता। अब तो यह दिन की धूप की तरह साफ़ हो चुका था कि अगर सल्तनत की बागडोर मुराद के हाथों सौंप दी जाय तो उसकी धुरी शीघ्र ही टूट जायेगी। हमने तय किया कि मुराद को एक ऐसी जगह भेज दिया जाय, जहाँ वह मुग़लों की सल्तनत को नुक़सान पहुँचाए बग़ैर जी-भरकर नशा कर सके।

हमने यह भी सुना था कि शराब के नशे में धुत्त होकर वह अपने दोस्तों-यारों से शेख़ियाँ मारता था कि फ़तह दरअसल उसी की हुई है, हमारी नहीं, और दारा तथा शुजा का ख़ात्मा करने के बाद वह हमारी भी ख़बर लेगा।

हम ऐसी बातों से परेशान होनेवाले नहीं थे। हमने भी सोच लिया कि अब मुराद की प्यारभरी बातों में आने की ज़रूरत नहीं है और उसकी हरकतों पर हमने नज़र रखनी शुरू कर दी।

हिन्दुओं के पाक शहर मथुरा में हमने मुराद का इन्तज़ार करना शुरू किया। जब वह आया तो हमने उसे अपने तंबू में बुलाया और अपने हाथों शराब का प्याला पेश किया। मुराद ने कई प्याले पिए। हमारी बाँदियों ने उसके हाथ-पैरों की मालिश करते-करते एक-एक कर उसके सारे हथियार ले लिये और हमारे इशारे पर उसके हाथों और पैरों में ज़ंजीरें पहना दीं। हमने हुक्म दिया कि जब तक वह जिए, उसे ख़ूब शराब पिलायी जाय और अफ़ीम खिलायी जाय। उसके बाद हम अपने कूच पर निकल पड़े। दिल्ली पहुँचकर हमने शहर का बन्दोबस्त अपने हाथों में ले लिया।

हमारी फ़ौजों के सामने दारा टिक नहीं सका और सारा हिन्दुस्तान हमारे क़दमों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालकर वह भाग निकला। हमारे अब्बा हुजूर इतने बूढ़े और बीमार थे कि अब इतनी बड़ी सल्तनत की ज़िम्मेदारी वे सँभाल नहीं सकते थे और हमारे भाइयों ने अपने कारनामों से अपने-आप को नाकारा साबित कर दिखाया था। हमारी दिली मुराद थी कि हम किसी दरगाह में जाकर अपनी ज़िंदगी के दिन पीरों-फ़क़ीरों की तरह गुज़ारें, लेकिन बाप और भाइयों के निकम्मेपन के चलते हमें बादशाहत का काँटों-भरा ताज अपने सिर पर रखना पड़ा। नजूमी से सलाह लेकर हमने 21 जुलाई, 1658 ई० को हिन्दुस्तान की सल्तनत की बागडोर अपने हाथों में ले ली। ईरान, बुख़ारा, मक्का और इथियोपिया जैसे दूर-दराज़ के मुल्कों से हमें मुबारकें आईं।

अपने रास्ते से दारा का काँटा निकालने के लिए हमें एक साल लग गया। हमारी फ़ौजों ने उसका पीछा पंजाब, राजस्थान और गुजरात तक में किया। सेवराई में हुई एक झड़प में हमने उसकी फ़ौजों को पतझड़ में झरते पत्तों की तरह तितर-बितर कर दिया। अफ़ग़ानिस्तान को भागते दारा को पकड़ लिया गया। हिन्दुस्तान का शहंशाह बनने की अपनी पहली सालगिरह मनाने के कुछ हफ़्ते बाद ही हमारा वफ़ादार ताबेदार मलिक जीवन, दारा को उनके बेटे और दूसरे लोगों समेत बेड़ियों में जकड़कर ले आया।

हमने उलेमा से सलाह की। उन्होंने एक सुर में जवाब दिया कि शरीयत के मुताबिक़ कुफ़्र करनेवाले के लिए सिर्फ़ एक ही सज़ा है और वह है—सज़ाए-मौत। हमारी प्यारी बहन रोशनआरा ने भी यही राय ज़ाहिर की, जबकि वह दारा से भी उतनी ही घुली-मिली थी, जितनी कि हमसे। दारा शिकोह ने माफ़ी माँगते हुए हमसे रहम की भीख माँगी। उसने हमें लिखा कि मेरे भाई और मेरे बादशाह, मुझे फाँसी देना तुम्हारे बड़प्पन के ख़िलाफ़ होगा। मुझे रहने के लिए बस एक ठिकाना दे दो और मेरे ख़िदमतगारों में से एक बाँदी दे दो। मैं अपनी बाक़ी ज़िंदगी तुम्हारे लिए दुआएँ माँगते हुए किसी सुनसान कोने में गुज़ार दूँगा।'

हम दारा के साथ किसी बहस-मुबाहसे में नहीं पड़ना चाहते थे। उसकी माफ़ी की अर्ज़ी के पीछे हमें अरबी की यह मशहूर मसल याद आ रही थी, 'जब आप सल्तनत को बिना किसी हक़ के हड़पते हैं तो बग़ावत का डर तो रहता ही है।'

दारा शिकोह की क़िस्मत के बारे में सोचकर दिल्ली के लोगों के जज़्बात भड़क उठे थे। वे उसके लिए सहानुभूति के आँसू बहा रहे थे और हमारे वफ़ादार मलिक जीवन के मुँह पर थूक रहे थे कि वही दारा को पकड़ लाया। हमारा दिल हालाँकि दुख से भारी था, पर हमने अपने-आपको याद दिलाया कि बादशाहत किसी भाई-वाई के रिश्ते को नहीं मानती। हमने दारा की मौत के हुक्मनामे पर दस्तख़त कर दिए। उसको उसके बेटे सिफ़िर शिकोह से जुदा कर दिया गया और 30 अगस्त, सन् 1659 को उसे फाँसी दे दी गई। उसका कटा हुआ सिर हमारे मुआयने के लिए लालक़िले में लाया गया। अगले दिन उसके धड़ को दिल्ली की गलियों में घुमाया गया और फिर हमारे पितर हुमायूँ की क़ब्र के पास दफ़्ना दिया गया।

दारा के बेटे सुलेमान शिकोह को भी पहाड़ों से ढूँढकर इसी तरह बेड़ियों में जकड़कर दिल्ली लाया गया और 5 जनवरी, सन् 1661 की सुबह वह हमारे दीवाने-ख़ास में हाज़िर किया गया। हमने उसे कई सालों के बाद देखा था। उसकी मर्दानगी और ख़ूबसूरती देखते हुए हम बावले हुए जा रहे थे। लेकिन हमें अपने-आपको याद दिलाना पड़ा कि साँप की चमड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ूबसूरत ही क्यों न हो, भीतर तो ज़हर ही होता है। हमने उसे बताया कि उसने और उसके बाप ने कितना संगीन जुर्म किया था। मैंने उसे ग्वालियर क़िले के क़ैदखाने में भेजने का हुक्म दिया, जहाँ उसे फाँसी दी जानी थी।

हमें अभी उस नीम-हकीम सरमद से भी निबटना था, जिसने दारा के बादशाह बनने की भविष्यवाणी की थी। मर्दों ही नहीं, औरतों के सामने भी नंगा घूमने के अलावा उसका एक और संगीन जुर्म था। वह किसी लौंडे के साथ लगाव रखने की वजह से भी चर्चा में था। दूसरे, इस्लाम को मानते हुए भी वह हज़रत पैग़म्बर की शान को घटानेवाले काम किया करता था। हमने उसको अपने सामने हाज़िर होने को कहा और उसकी भविष्यवाणी के बारे में जिरह तलब की। उस बदमाश की यह हिम्मत कि हमें ऐसा जवाब दे, "ख़ुदा ने दारा को ख़ुदाई सल्तनत बख़्शी है।" हमने आगे पूछा, "हमने सुना है कि तुम सिर्फ़ आधा ही कलमा पढ़ते हो? क्या यह ठीक है?" उसने जवाब दिया, "अल्लाह के सिवा और कोई ख़ुदा नहीं।" तो उसने मेरे सामने ही आधा कलमा पढ़ने की जुर्रत की और बाक़ी आधा यह नहीं पढ़ा कि 'और हज़रत मुहम्मद उसके पैग़म्बर हैं।' वह आगे बोला—

"मुल्ले कहते हैं कि हज़रत मुहम्मद ख़ुदा के पास आसमान में गए थे। मैं कहता हूँ कि ख़ुदा उनके पास आए थे। बाक़ी सब-कुछ बकवास है, झूठ है।"

सरमद शब्दों के साथ खिलवाड़ कर रहा था। हमने उससे पूछा कि नंगा क्यों घूमता है? वह बोला—हज़रत आइजामा भी नंगे घूमा करते थे। हमने हुक्म दिया कि उस कमबख़्त को जामा मस्जिद के सामने सारी ख़लक़त के सामने फाँसी दे दी जाय। बाद में हमें ख़बर मिली कि उसके कटे हुए सिर ने आख़िरकार पूरा कलमा पढ़कर सच को मंज़ूर कर लिया।

हमने तय कर लिया था अपने बाप के जीते-जी, हम आगरा नहीं जाएँगे। हमने दीवाने-ख़ास के पास एक छोटी-सी मस्जिद बनवायी, ताकि हमको कहीं और जाकर बाक़ी मुसलमानों की नमाज़ में दख़ल न देना पड़े, क्योंकि आम जनता और बादशाह के बीच मस्जिदों में भी नमाज़ पढ़ते वक़्त एक परदा लगाना पड़ता है।

इस मस्जिद को पूरा होने में पाँच साल लग गए। हमने इसे बनने के बाद मोती मस्जिद का नाम दिया, क्योंकि यह मोती की तरह बेदाग़ लगती थी। हम यहाँ क़ुरान पढ़ते और तसबीह (माला फेरते) करते घंटों बिता देते।

हमारी क़िस्मत में दोबारा अपने बाप को देखना नहीं बदा था। कई महीनों तक वे हमारे ऊपर तोहमतें लगाते हुए चिट्ठियाँ भेजते रहे कि हमारा बर्ताव बेटे के क़ाबिल नहीं है और हमने अपने भाइयों के साथ ज़ुल्म किये हैं। हमने सोचा कि अब कड़ुवे सच को खोलने का वक़्त आ गया है। हमारे अब्बाजान अपनी बेहाली और अपनी सफ़ेद दाढ़ी के बावजूद शराब के दौर में खोए रहते थे। हमने उन्हें लिखा कि बादशाहत के मायने हैं अपनी प्रजा का पालन करना और अपनी सल्तनत की हिफ़ाज़त का बंदोबस्त करना, न कि अपने जिस्मानी सुखों और ऐयाशी में डूबे रहना। हमने उन्हें यह भी याद दिलाया कि उन्होंने ख़ुद अपनी तख़्तपोशी के वक़्त अपने मुख़ालिफ़ लोगों का सफ़ाया किया था, इसलिए इसी बात पर मेरी ओर उँगली उठाना उन्हें नहीं सजता। हमने उन्हें दो-टूक लफ़्ज़ों में लिखा, 'अगर ख़ुदा को मेरी बादशाहत पसन्द न होती तो मुझे क़दम-क़दम पर फ़तह न हासिल हुई होती। फ़तह तो अल्लाह का ही तोहफ़ा होती है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी, सन् 1666 में हमारे अब्बाजान बीमार हो गए। उनकी ख़्वाहिश के मुताबिक़ उनका पलँग आठ बाजुओंवाली जास्मिन मीनार में लगा दिया गया, जहाँ से वे ताजमहल को देख सकते थे। 22 जनवरी, सन् 1666 को अल्लाह का नाम ज़ुबान पर लिये हुए उन्होंने इस दुनिया को सदा के लिए विदा कह दी।

राजकाज के ज़रूरी कामों ने हमें दो हफ़्ते दिल्ली में ही अटकाए रखा। फिर जैसे ही मौक़ा मिला, हमने अपने माँ-बाप की क़ब्र पर जाकर आँसू बहाए।

हमारे अब्बाजान के मरने के दो साल बाद तक हम तख़्ते-ताऊस पर नहीं बैठे। अब हमने सोचा कि अल्लाह ने हमें जिस काम के लिए इस दुनिया में भेजा है, वह हमें पूरा करना चाहिए। हमने अपने सिपहसालारों—मीर जुमला और शाइस्ता ख़ान को बुलाकर हिन्दुस्तान के कोने-कोने में इस्लाम को फैलाने का हुक्म दिया। हमारी फ़ौजें फ़तह करती हुई पूरब में चटगाँव, उत्तर में तिब्बत के पर्वती इलाक़ों, पच्छिम में क़ाबुल के भी पार और दक्खिन में कर्नाटक तक जा पहुँचीं। हमने जाटों, राजपूतों, सतनामियों और नानकपंथियों के शरारती मज़हबी तबक़ों को बारी-बारी से कुचल डाला, ताकि कोई हमारे ख़िलाफ़ खड़ा होने का साहस करने को बाक़ी ही न बचे। हमने कपटी मराठों की धरती को तहस-नहस कर डाला और उनके नेता शिवा को अपने सामने झुकने पर मजबूर किया। हमने बुतों से भरे मंदिरों को तोड़ डाला और उनके खँडहरों पर मस्जिदें बनवायीं। हमने हिन्दुओं से इस्लाम कबूलवाने के लिए उन पर जज़िया कर लगाया। हम जो भी करते थे, शरीयत की रोशनी में ही करते थे। शराब बनाने पर हमने पाबन्दी लगा दी और शराब पीनेवालों को कठोर दंड देने का क़ानून बनाया। जब हमने तख़्त सँभाला, तब हालत यह थी कि लोग कहते थे—हिन्दुस्तान में सिर्फ़ दो ही लोग शराब नहीं पीते—एक बड़े क़ाज़ी और दूसरे हम। कुछ ही सालों में हमने शराब को एकदम मुश्किल बना दिया। हमने वेश्याओं और तवायफ़ों को भी शादी करके घर बसाने के हुक्म दिए। हमारी मुसलमान रियाया हमारे हुक्मनामों से ख़ुश थी और हमें 'ज़िंदा पीर' कहती थी।

हमने काफ़िरों के ख़िलाफ़ बेमियादी जिहाद छेड़ रखा था। जब कभी काफ़िरी का साँप सिर उठाने की कोशिश करता, उसका फन कुचल दिया जाता। हमारी ज़िंदगी के आख़िरी दिन ज़्यादातर शिवा के पालतू चूहों के साथ आँख-मिचौली खेलते ही बीते। हमने उसके बेटे सम्भा को पकड़कर मौत के घाट उतारा। फिर भी हम समझ गए थे कि यह मुल्क हमारे जीते-जी बुतपरस्तों से ख़ाली नहीं हो सकता। इसलिए हमने अपने बेटों को भी इस जिहाद को जारी रखने को उकसाया।

दूसरे बादशाह शाही ख़ज़ाने को अपनी जागीर समझते रहे और उसे ऐयाशी-भरी ज़िंदगी जीने में, शराब, औरत और मक़बरे बनवाने पर लुटाते रहे। लेकिन हमने अपने-आपको अल्लाह का चुना हुआ आदमी समझकर ही अवाम की देखभाल करना अपना फ़र्ज़ समझा। हम अपनी ग़रीब रियाया की तरह अपने ऊपर कम-से-कम ख़र्च करते रहे। कुरान पढ़ते वक़्त पहननेवाली टोपियाँ सिलकर और कुरान शरीफ़ की प्रतियाँ बनाकर बेचनें से जो पैसे मिलते, उससे ही हम अपना खाने-पहनने का ख़र्च चलाया करते। हमारे-जितने बड़े राज पर हुकूमत करनेवाले कितने बादशाह ऐसी दरवेशोंवाली ज़िंदगी का दावा कर सकते हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस दुनिया में हमारी सिर्फ़ तीन बहनें ही बची थीं। रोशनआरा, जो हमारे सबसे क़रीब थी, उसने भी हमसे बेरुख़ी शुरू कर दी थी। पर हम उससे शिकवा-शिकायत करते, इससे पहले ही वह ख़ुदा को प्यारी हो गई। उसने अपने जीते-जी अपनी क़ब्र के लिए जगह चुन ली थी। अक्सर वह जिस बग़ीचे में सैर करती थी, वहीं खुले में उसने अपनी क़ब्र बनवाने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की थी। बग़ीचा महकते फूलों की क्यारियों से भरा था, जो पानी के हौज़ों और नहरों के आसपास लगवायी गई थीं। उसकी ख़्वाहिश के मुताबिक़ इसी बग़ीचे में, खुले में उसकी मज़ार बनाई गई, ताकि शबनम की बूँदें हर सुबह उसे नहलाती रहें।

अब हमें सिर्फ़ जहाँआरा बेगम से हमदर्दी और मुहब्बत की आस रह गई थी। हमने उससे गुज़ारिश की कि जो लोग हमारे बीच आ खड़े हुए थे, अब वे नहीं रहे, इसलिए अब वह बड़ी बहन का प्यार हम पर न्यौछावर कर सकती है। अपनी तख़्तपोशी की सालगिरह पर हमने उसे 1,60,000 सोने की मोहरें भेंट कीं और उसे बादशाह बेगम का ख़िताब दिया। उसने वादा किया कि वह हमारा अकेलापन बाँटने को तैयार है और हमें सलाह-मशविरा दिया करेगी। जब उसको अल्लाह का बुलावा आया तो हमने हुक्म दिया कि सभी तवारीख़ी दस्तावेज़ों में उसे साहिबातुज़्ज़मानी के ख़िताब के साथ उल्लिखित किया जाय। उसकी ख़्वाहिश के मुताबिक़ उसे हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की मज़ार के करीब दफ़्ना दिया गया। उसकी क़ब्र के पत्थर पर हमने उसका फ़ारसी में लिखा यह शे'र खुदवाया—

फ़क़त हरी घास को मेरी मज़ार ढकने दो,
हरी घास ही उम्दा परदा है, हम जैसे ख़ाकसारों का।

सन् 1706 के वसन्त में जब हमारी आख़िरी बहन गौहरआरा भी ख़ुदा को प्यारी हो गई, तो हम समझ गए कि अब बोरिया-बिस्तर समेटने की हमारी बारी भी आ पहुँची है। हम अहमदनगर में थे, जब हमारी सेहत गिरनी शुरू हुई। हम समझ गए थे कि अहमदनगर ही जिस्मानी सफ़र का आख़िरी पड़ाव बननेवाला है। हमारी प्यारी बेटी ज़ीनतुन्निसा और हमारी बेगम—बीबी उदयपुरी बेगम—हमारी ख़िदमत में लगी थी। हर दिन सैकड़ों हकीम हमारी नब्ज़ देखा करते, लेकिन इन्सान और दवाएँ अल्लाह के हुक्मनामों के आगे क्या कर सकते हैं?

जिस बात से हमें सबसे ज़्यादा ख़ौफ़ लगता था, वह यह थी कि हमारे खुद के बच्चों ने बेईमानी के रास्ते अख़्तियार कर लिये थे। मुहम्मद सुल्तान ने हमारे ख़िलाफ़ अपने चाचा शुजा से मिलकर पहले ही अपनी मुँह काला कर रखा था, अब अकबर काफ़िरों के साथ जा मिला था। आज़म की शादी हमने दारा की लड़की के साथ कर दी थी, वह भी बेकार का लड़का निकला, शेख़चिल्ली! हमें उसको शराब से दूर रखने और अपने ग़ुस्से को क़ाबू करना सिखाने के लिए साल-भर को क़ैद में भी रखना पड़ा था। हमारे सबसे छोटे बेटे कामबख़्श में न तो कोई बड़ी ललक थी, न ही कोई योग्यता। लेकिन हमारे बेटों ने हमारी जितनी भी बेइज़्ज़ती की हो, उससे हमें उतना दुख नहीं पहुँचा, जितना अपनी हुनरमंद बेटी ज़ेबुन्निसा के सलूक से हुआ। ज़ेबुन्निसा को अल्लाह ने शायरी का फ़न दिया था। वह 'मक्फ़ी' के तख़ल्लुस से शायरी करती थी। उसने अपने भाई अकबर को हमारे ख़िलाफ़ बग़ावत के लिए उकसाया। हमने भारी मन से उसे सलीमगढ़ के क़िले में क़ैद करने का हुक्म दिया। उसने अपना आख़िरी तीर हमारे ऊपर छोड़ते हुए लिखा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़मीने-हिंद पर हमने जो बर्बर रुखाई देखी है,
किसी और जहाँ को घर अपना बनाऊँ अब तो।

और इसी के साथ वह इस जहाँ से कूच कर गई।

हमने अपने सबसे बड़े बेटे मुअज़्ज़म से कुछ उम्मीदें बाँधी थीं, लेकिन उसने भी बीजापुर और गोलकुंडा की चढ़ाइयों के दौरान दुश्मन से समझौता कर हमारे भरोसे को गहरी चोट पहुँचायी। हमने इन्साफ़ के रास्ते में कभी अपने प्यार को आड़े नहीं आने दिया। हमने उसे क़ैदख़ाने में डलवा दिया। उसे अपने बाल और नाखून कटवाने की मनाही कर दी गई। वह पानी के सिवा कुछ भी नहीं पी सकता था। इसी हालत में उसे सात साल तक क़ैद में रखा गया।

सन् 1705 की गर्मियों में हम कृष्णा नदी के किनारे देवपुर गाँव में पड़ाव डाले हुए थे। हमें तभी बड़ा तेज़ बुख़ार चढ़ा। अपनी बेहोशी में हम शेख़ गंज की ये सतरें बड़बड़ाते रहते—

'उम्र के अस्सी बसंत पार करते ही,
वक़्त और क़िस्मत तुम्हारा दरवाज़ा खटखटाने लगते हैं,
लेकिन मगर तब भी तुम अड़े रहे सौ की तरफ़ बढ़ने को,
तो समझो कि मौत को ही जिए जा रहे हो तुम!'

एक उमराव हमें देखने आया तो उसने कुछ सतरें इसमें और जोड़ दीं—

'ऐसे में अपने दिल को ज़िन्दादिल बनाओ
और, याद रखो, ख़ुदा का ख़याल तो
बुझते अंगारों में भी जान डाल देता है।'

अब हममें दुनिया का और अधिक सफ़र करने की चाहत बाक़ी नहीं बची थी। बार-बार की बीमारी ने हमारी इस उम्मीद को पूरा कर दिखाया कि अल्लाह अब हमें जल्दी ही अपने पास बुला लेगा। इस बीमारी के दौरों के दौरान ही हमने लिखा—

एक पल, इक साँस में ही
क्या की क्या हो जाती दुनिया!

हमने सोचा, अब अपने भटके हुए लड़कों को कुछ सलाह दे दी जाय। हमने आज़म को लिखा कि हम अकेले ही आए थे और अजनबी की तरह जा रहे हैं। हम नहीं जानते, हम कौन हैं, न ही यह जानते हैं कि हम क्या करते रहे हैं। गद्दी सँभालने में गुज़री घड़ियों ने हमें सिर्फ़ दुख-ही-दुख दिया है। हम अपनी सल्तनत के सच्चे वारिस नहीं बन सके। हमारी यह क़ीमती ज़िंदगी बेकार ही बीत गयी। ख़ुदा हमारे दिल में था, पर हम उसे देख नहीं पाये। ज़िंदगी बुदबुदे जैसी है। बीता हुआ तो बीत चुका, पर आगे के लिए भी कोई उम्मीद नहीं बची है। हमें अपनी रूहानी निजात की फ़िक्र है, पर डरते हैं कि ख़ुदा हमें सज़ा देगा। हमें ख़ुदा के रहमोकरम पर भरोसा है, लेकिन हम डरते हैं कि हमारे किए के लिए वह हमें मुआफ़ नहीं करेगा।

कामबख़्श को हमने लिखा, 'हमारी जान, हम अकेले जा रहे हैं। हमें तुम्हारी लाचारी पर दुख होता है। लेकिन क्या फ़ायदा? हमने जो भी दुख लोगों को दिए, जो भी क़हर लोगों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढाए, सबके नतीजे अपने साथ लिये जा रहे हैं। हैरानी की बात है कि इस दुनिया में कुछ लेकर नहीं आए थे, पर पापों की इतनी बड़ी गठरी साथ लिये जा रहे हैं। हम जहाँ भी देखते हैं, हमें सिर्फ़ ख़ुदा ही दिख रहा है। हमने बहुत पाप किए हैं, पता नहीं कौन-कौन-सी सज़ाएँ हमारा इन्तज़ार कर रही हैं।

ये उस बूढ़े के लफ़्ज़ नहीं हैं जिसे पास आती मौत से डर लग रहा हो, बल्कि उस आदमी का अफ़सोस है जो अपनी मंज़िल पूरी किए बिना जा रहा है। हमने देखा है कि काफ़िर मराठे, राजपूत, जाट और सिख सारे हिन्दुस्तान में सिर उठाने लगे हैं। हम देख रहे हैं कि हम उनके सामने अपनी कितनी कमज़ोर और काहिल औलाद को छोड़े जा रहे हैं। हम जानते हैं कि हमारे बाद बाबर का बनाया यह मुग़ल राज कमज़ोर होकर बिखर जायेगा और सिर्फ़ शोरगुल ही बाक़ी रहेगा। 'अज़्म हमा फ़साद बाक़ी।'

हमने अपनी क़ब्र के लिए जगह चुन ली है। दौलताबाद के क़िले के शुरू में शेख़ ज़ैनुद्दीन की मज़ार के पास एक सीधी-सादी मामूली-सी क़ब्र बने हमारी। हमारे साथी भी जानते हैं कि विदाई का वक़्त अब क़रीब आ गया है। वे हमसे पूछते हैं कि मौत की घड़ियों को थोड़ा और आगे खिसकाने के लिए क्या हम हाथियों और हीरे-जवाहरात का दान करना चाहेंगे? हमारी जीभ में बोलने की ताक़त अब खत्म हो चुकी है। इसलिए हमने लिखकर उन्हें बताया कि मुसलमानों में ऐसे कोई रीति-रिवाज नहीं हैं। और हमने लिखा, 'ख़ज़ाने में से जितना चाहो, ग़रीबों को बाँट दो। मेरी लाश पर कोई मक़बरा न बनाया जाय और इस ख़ाकसार को तुरन्त ही, बिना ताबूत के दफ़्ना दिया जाय।'

11

भागमती

मैं सारी ज़िंदगी भूतों से त्रस्त रहा हूँ। दिल्ली में दुनिया के बाक़ी सारे मुल्कों से ज़्यादा भूत बसते हैं, इसलिए यहाँ जीना एक लम्बे दुःस्वप्न से गुज़रना है। मैंने कभी भूत देखे नहीं, न ही मैं उनके अस्तित्व में विश्वास करता हूँ। फिर भी उनकी वास्तविकता को मैं झुठला नहीं पाता। मैंने भूतों के अपने इस डर से उबरने के लिए क्या कुछ नहीं किया! मृतप्राय लोगों से मिलने जाता रहा हूँ। मृतकों को देखने भी जाता हूँ और यहाँ तक कि क़ब्रगाहों और मुर्दाघाटों के भी चक्कर लगा आता हूँ। इससे मुझे ज़्यादा कुछ फ़ायदा नहीं हुआ, क्योंकि वहाँ से लौटकर मैं सोचता हूँ कि चलो, थोड़ी-सी शांति मिली और मैंने अपने डर के भूत को भी भगा दिया। लेकिन जैसे ही दिन ढलने लगता है कि मृतात्माएँ जीवित होकर मेरे इर्द-गिर्द घूमने लगती हैं। दरवाज़े अपने-आप खुलने लगते हैं। पर्दे बग़ैर हवा के भी लहराने लगते हैं और मुझे अपने आसपास अदृश्य आत्माओं की उपस्थिति महसूस होने लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने सिर्फ़ भागमती को अपने इस डर के बारे में बताया है, क्योंकि वह भूतों में विश्वास करती है। उसे मुझसे तनिक भी सहानुभूति नहीं होती। वह ठठाकर हँसती है और मुझे 'बच्चा' कहने लगती है। वह कहती है, "जब मैं मरूँगी तो तुम्हारे पास सोने आऊँगी। तब तुम्हारा यह बच्चों-जैसा डर ख़त्म हो जाएगा। लेकिन अगर मैंने तुमको किसी और के साथ हमबिस्तर होते देख लिया तो समझ लो, एक रात भी चैन से नहीं जीने दूँगी।"(उसने मुझे अभी तक ब्रिगेडियर की बीवी कमला के साथ हमबिस्तर होने के गुनाह के लिए माफ़ नहीं किया है।) पर कमला के पति को अब 'फ़ैमिली स्टेशन' पर पोस्टिंग मिल गई है और वह उसके पास चली गई है। इसलिए भागमती अब मुझसे उतनी ज़्यादा नाराज़ नहीं है।

भूतों के साथ होनेवाली अपनी बहुत-सी मुठभेड़ों में से एक तो मुझे भुलाए नहीं भूलती। कुछ साल पहले की बात है। मुझे एक फ़ोन आया। मुझसे कहा गया कि मेरे अमुक चाचाजी बहुत बीमार हैं और उनके मरने के पहले मैं उन्हें देख लूँ। वह चाचाजी कई सालों से बीमार चल रहे थे और यह सोचा जा रहा था कि किसी भी दिन चल बसेंगे। दमे के चलते वे दाढ़ीवाले किसी कंकाल-सरीखे दिखने लगे थे—आँखें बाहर निकली हुईं। एक लम्बे अरसे से वे, एक तरह से कहें तो एक जीवित भूत की तरह ही लगते थे। कुछ था कि मुझे लगा, इनसे दूर ही रहना चाहिए। लेकिन मृत्यु के प्रति मेरे विकृत आकर्षण और मरनेवाले के लिए दुःख के भाव ने मुझे अपनी अंतरात्मा की अवहेलना करने पर बाध्य कर दिया और मैं अपने तथाकथित मृतप्राय चाचाजी को देखने चला गया। मैंने देखा कि उनके पलँग के इर्द-गिर्द रिश्तेदारों का जमघट लगा है। कोई प्रार्थना कर रहा था तो कोई एक-दूसरे से फुसफुसाहटों में बतिया रहा था। चाचाजी गाव-तकिए का सहारा लिये घुटनों में सिर दिए लेटे थे। उनकी पत्नी बलग़म से भरा पीकदान लिये पास बैठी थी। उन्होंने खाँसना शुरू किया तो उनकी पत्नी ने पीकदान उनके मुँह से लगा दिया। पस-जैसा पीले रंग का बलग़म उनकी दाढ़ी से होता हुआ पीकदान में जा गिरा। पत्नी ने उनकी दाढ़ी को तौलिए से पोंछा और उनको बताया कि मैं मिलने आया हूँ। वे अपनी बड़ी-बड़ी आँखें मेरे ऊपर गड़ाकर जैसे पहचानने की कोशिश करने लगे। एक मिनट बाद वे किनारे लुढ़क गए। उनकी आँखें और मुँह पूरा-का-पूरा खुला था। चाचाजी मर गए थे। मेरी चाची ने अपना माथा दोनों हाथों से पीटना शुरू किया और रोने लगी, "हाय, मैं मर गई! मैं बेवा हो गई!" उसने अपनी काँच की चूड़ियाँ पलँग की पाटी से पीट-पीटकर तोड़ दीं। बाक़ी लोग उसे सांत्वना देने के लिए भीड़ लगाने लगे। किसी ने मृतक की आँखें और मुँह बन्द किया और उनकी ठुड्डी पर एक पट्टा चिपकाया तथा नाक में रुई भर दी। कुछ देर तक रोना-धोना जारी रहा। उसके बाद लोगों ने ज़ोर-ज़ोर से पाठ करना शुरू कर दिया—'एक ओंकार सत नाम…'

बरसात के दिन थे। आसमान पर बादल छाए थे। मुझे अपने फ़्लैट में अकेले सोते हुए डर लग रहा था। भागमती को ढूँढने का कोई ज़रिया मेरे पास नहीं था, नहीं तो उसे ही अपने पास रात बिताने को बुला लेता। एयर-कंडीशनर ख़राब था, इसलिए मैंने बुधसिंह को कहा कि फ़्लैट के पिछवाड़ेवाले लॉन में मेरी खाट लगा दे। बाक़ी फ़्लैटों की खिड़कियाँ भी लॉन में खुलती थीं। लोगों की आवाजें और नौकरों के क्वार्टरों की रोशनी वहाँ पहुँचती थी, इसलिए मैंने सोचा कि मुझे डर नहीं लगेगा। मैंने खाट पर मच्छरदानी लगाकर स्वयं को और सुरक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लिया था।

इन सभी एहतियात के बावजूद मेरी आँखें बन्द नहीं हो पा रही थीं। जिस भी तरफ़ देखता, मुझे अपने मृत चाचा की आँखें अपनी ओर घूरती दिखने लगतीं।

बत्तियाँ एक-एक कर बुझने लगीं। लोगों की आवाज़ें भी रहस्यमय नीरवता में बदल गईं। आसमान पर धुँधली चाँदनी बिखरने लगी थी। पास के शहतूत के पेड़ पर कोई उल्लू चिंचियाया। मैंने देखा कि वह उड़ता हुआ गया और एक चूहे को दबोच लाया।

पता नहीं मेरी आँख कब लगी। मैं शायद अपने मृत चाचा के बारे में सोच रहा था। देखा, वे जीवित हो उठे हैं, और सधे क़दमों से लॉन को पार कर मेरी तरफ़ चले आ रहे हैं। पास आकर मेरी मच्छरदानी का पल्ला उठाकर वे अपना मुँह मेरे चेहरे के पास ले आए। डर के मारे मेरे मुँह से आवाज़ नहीं निकल रही थी। फिर किसी तरह मेरे गले से एक खरखराहट निकली और मैं ज़ोर से चीख पड़ा। मृतक ने मुझे कन्धे से पकड़कर झकझोरा और कहने लगा, "वाह गुरु, वाह गुरु! साब जी, मैं हूँ बुधसिंह। बारिश होने लगी है। चलिए आपकी खटिया भीतर ले चलूँ।"

मैं पसीने से तर-बतर हुआ पड़ा था। मैंने देखा, बग़लवाले घर की बत्ती जली और किसी ने पूछा, "क्या बात है?" बुधसिंह ने मेरी तरफ़ से जवाब दिया, "नहीं, कुछ नहीं, यह कोई सपना देख रहे थे।"

मैं घर के भीतर गया। मैंने सारे कमरों की बत्तियाँ जला दीं। बुधसिंह को जाने को कहा और अपनी आरामकुर्सी में धँस गया। मैं अपने-आप से ही बातें करने लगा। मुझे अपनी मूर्खता का अहसास हुआ। मैंने भी ख़ूब अपना गधा बनवाया। अब बुधसिंह हर किसी को कहता फिरेगा कि उसका साठ साल का बुड्ढा मालिक बच्चों की तरह व्यवहार करता है।

मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब मैं अपने इस मूर्खतापूर्ण भय से छुटकारा पाकर ही रहूँगा। रात के साढ़े तीन बजे थे। मैंने अपनी पतलून चढ़ाई और बूँदाबूँदी में ही निकल पड़ा। सुनसान सड़क से होता मैं लोदी पार्क पहुँचा। लोदी पार्क में कई मक़बरे हैं। मैंने सोच लिया था कि उन पर बैठकर उनके नीचे गड़े लोगों को 'हलो' कहूँगा। पहले मैंने सन् 1444 में मरे सईद वंश के तीसरे शासक मुहम्मद शाह को पुकारा। ऊँचे स्तम्भ पर बना यह एक अष्टभुजाकार, बड़ा-सा मक़बरा है। मैंने उसको कहा कि उसका इस मैदान में होने का कोई तुक नहीं बनता था, क्योंकि यह पार्क लोदियों का था। वह कुछ नहीं बोला, लेकिन गुम्बद के ऊपर मँडराते चमगादड़ों ने उसकी तरफ़ से जवाब दिया, "यह यहाँ पहले आए थे। लोदी तो बाद में आए। और उस सिकन्दर लोदी का तो यहाँ होना और भी बेमानी था, क्योंकि उसने तो दिल्ली से कहीं ज़्यादा वक़्त आगरे में बिताया।"

मैं बारिश में ही सिकन्दर लोदी के बनवाए मक़बरे—'बड़ा गुम्बद'—की तरफ़ चल पड़ा। कितना सुन्दर गुम्बद है! बिल्कुल उस दक्षिण-भारतीय कमला के सुगठित वक्ष की तरह। मैंने मक़बरे का एक चक्कर लगाया और सिकन्दर लोदी की मज़ार पर बैठ गया। मैं कुछ ही मीटर दूरी पर बने शीश-गुम्बद को निहारने लगा। यह गुम्बद कुछ कम कौतूहलमय लग रहा था। चारों ओर लगी रंगीन टाइलें, जो दिन में लेस लगी ब्रेसरी का अहसास कराती हैं, इस धुँधली चाँदनी में दिखाई नहीं दे रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ से मैं सिकन्दर लोदी के मज़ार पर जाता हूँ। अब मेरी ताक़त जवाब देने लगी थी। उसको एक चौकोर बाग में दफ़नाया गया था और उसकी क़ब्र के चारों तरफ़ ऊँची दीवारें थीं। रात में वहाँ जाने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। अगर किसी प्रेत ने मेरा रास्ता रोक लिया तो ?

मैं सीढ़ियाँ चढ़ा और फिर उतर आया। मैंने दो बार कोशिश की, पर प्रवेशद्वार के पास से ही लौट आया। 'चलो यहाँ तो हो आया,' मैंने अपने-आप को तसल्ली दी—'इसे तो दिल्ली पसन्द नहीं थी, इससे मुझे वैसे भी क्या लेना-देना! और फिर इसका बेटा इब्राहीम लोदी पानीपत में बाबर से लड़ता हुआ मारा गया था। इसलिए लोदियों को ख़ास महत्त्व देने की ज़रूरत भी नहीं।'

अब तक पूरब की ओर क्षितिज साफ़ होने लगा था। सुबह की सैर करनेवाले आठपुले पर टहलते नज़र आने लगे थे। बड़ा गुम्बद के सामने घास पर योग का अभ्यास करनेवालों का जमघट भी लगने लगा था। जीवित आत्माओं का संसार जाग उठा था; मृतात्माओं की दुनिया दिन-भर के लिए आराम करने चली गई थी।

12

नादिरशाह

कई साल पहले की बात है। हम अपने बाप की भेड़-बकरियाँ चराया करते थे और रूखी-सूखी खाकर ज़मीन पर ही सो रहते थे। उन्हीं दिनों हमने एक सपना देखा कि हम गड़रिए से मछुआरा बन गए हैं और हमारे जाल में चार सींगोंवाली एक मछली आ फँसी है। हम जानते थे कि मछली बादशाहत की निशानी होती है। हम यह भी जानते थे कि ख़ाली पेटवाले ही शानो-शौकत और ऐशो-इशरत के ख़्वाब देखा करते हैं। यह कुदरत का क़ानून है कि जो आदमी दिन-भर खटता है, वह रात का समय सपने देखते ही, हूरों के साथ बिताता है, जबकि बादशाह दिन-भर लोगों पर हुकूमत करने के बाद रात को जब सोता है तो अपने ख़िलाफ़ बग़ावत, अपनी हत्या या ऐसे ही बुरे सपने देखा करते हैं। अल्लाह का ऐसा ही अनोखा इन्साफ़ है। एक आदमी को वह दिन में सुकून देता है और रात को बेचैनी, तो दूसरे को सुबह से शाम तक कड़ी मेहनत करवाकर रात को जन्नत का सुख नसीब कराता है।

बहरहाल, हमारा वह सपना हमारी याददाश्त में बना रहा। जब हम इस्फ़हान के बादशाह बने तो हमने एक पीर से, जो सपने पढ़ने के फ़न में माहिर था, पूछा कि हमारे सपने का मतलब क्या है। उसने इस बात को मंज़ूर किया कि मछली सचमुच राजशाही की निशानी होती है और चार सींगों का मतलब है—चार मुल्क। क़िस्सा कोताह यह कि अल्लाह ने हमारी क़िस्मत में लिखा था कि हम चार मुल्कों पर राज करेंगे। हम इस्फ़हान के बादशाह थे और ईरान के भी पादीशाह बन बैठे थे। अफ़ग़ानिस्तान भी जल्द ही हमारी मुट्ठी में आने वाला था। चौथा मुल्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान के सिवाय और कौन हो सकता था !

उन दिनों हमने क़न्धार पर घेरा डाला हुआ था। तभी हमें एक सपना और आया कि हज़रत अली मुर्तज़ा हमारे पास आए और अपने हाथों से उन्होंने हमारी कमर में 'ज़ुल्फ़िक़ार' नाम की तलवार बाँधी। हमने इस सपने पर ग़ौर करना शुरू किया। हमें याद आया कि सपने में जब किसी ने हज़रत अली मुर्तज़ा से प्रश्न किया कि 'पूरब से पच्छिम कितनी दूर है ?' तो उन्होंने जवाब दिया, 'सूरज का एक दिन का सफ़र।'

हमने अपने-आप से कहा, 'तहमास क़ुली ख़ान। दिल्ली की राहें तुम्हें पुकार रही हैं।' और ऐसा ही हुआ। कुछ ही दिनों बाद हमें दिल्ली से बुलावा आ गया। यह बुलावा मुग़लों की गद्दी पर बैठे नसीरुद्दीन मुहम्मद शाह की तरफ़ से नहीं आया था, बल्कि उसके दरबार के दो अमीरों—दक्खिन के सूबेदार आसिफ़ जाह निज़ामुल-मुल्क और दिल्ली के पूरब में पड़ते ऐसे ही महत्त्वपूर्ण सूबे अवध के सूबेदार सआदत ख़ान की ओर से आया था। जिस छुपे तरीक़े से हमें बुलावा भेजा गया था, उससे लगता था कि लिखनेवाले को एक ही मिस्रे में दोहरा मतलब भरने का गुर आता था। हमने अपने-आप से कहा, 'नादिर शाह, तुमने इतने बरसों की हुकूमत से साँपों के सिर उनके दुश्मनों के हाथों ही कुचलवाने का फ़न सीख लिया है।'

हम मुग़ल बादशाह के लिए 'साँप' शब्द का इस्तेमाल इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि उसने हमारे तईं भारी बदतमीज़ी दिखाई है। उसने हमारे और अपने दरबार के बीच तिजारती ताल्लुक़ात को लेकर कोई पहल नहीं की। उसने हमारे ख़तों के जवाब देने में लापरवाही बरती और हमारे दूतों को दिल्ली में रोककर रखा। और, निज़ामुल-मुल्क और सआदत ख़ान जैसे लोगों को भी साँप न कहिए तो क्या कहिए, जो अपने मालिक का नमक खाते हुए भी उसकी बर्बादी का इन्तज़ाम कर रहे हैं ?

ख़ास-ख़ास मामलों में हमें अपने फ़ैसले ख़ुद ही करने की आदत है, क्योंकि हम अपने से कमतर लोगों की सलाह से अपने फ़ैसलों को कमज़ोर नहीं करना चाहते। हम सियासत की क़लम को अपने फ़ायदों की दवात में डुबोकर ही धोखाधड़ी के काग़ज़ों पर लोगों के ख़तों का जवाब दिया करते थे। हमने उनके बुलावे को न तो मंज़ूर ही किया और न ही इनकार किया। हमने सिर्फ़ उनको दिल्ली आने के रास्ते में पड़नेवाली मुश्किलात गिनवाईं। सुलेमान और हिन्दूकुश पहाड़ों के बीच पड़नेवाले सँकरे दर्रों से होकर आना कितना मुश्किल था ! और फिर रास्ते में हमें पठानों और अफ़ग़ानों के लड़ाकू क़बीलों का भी मुक़ाबला करना होगा। क़ाबुल और लाहौर के सूबेदार भी हमसे अदावत रखते थे। हमने अपने ख़त के आख़िर में मुग़ल बादशाह की ताक़तवर फ़ौजों का सामना करने की भी बात उठाई। हम सोच रहे थे कि हमारे ख़त का जवाब ही अब तो हमसे यह तय करवाएगा कि जिन लोगों ने हमें बुलाया है, वे हमें सचमुच अपने हाथ की तलवार बनाना चाहते हैं या फिर अपने मालिक से दुश्मनी के कारण ही उन्होंने हमें यह लिख मारा है।

हमें उनके ख़त का ज़्यादा इंतज़ार नहीं करना पड़ा। उन्होंने न सिर्फ़ हमारी मदद का वादा किया था, बल्कि हमें अपने उन ख़तों की प्रतियाँ भी भेजी थीं, जो उन्होंने दूसरे उमरावों को लिखे थे कि हम उनको सब तरह के ख़तरों से निजात दिलाने के लिए आ रहे हैं। उन्होंने हमें यह भी ख़बर दी कि उनका बादशाह आलीजाह नसीरुद्दीन मुहम्मद शाह अपना वक़्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शराब और ऐयाशी में बिता रहा है और इस तरह मुग़लों की महान विरासत हो सकता है, जल्द ही मराठों के हाथ में चली जाय।

मुहम्मद शाह की ऐयाशी की कहानियाँ दूसरे ज़रियों से भी हमारे पास पहुँच रही थीं। हमें यह बताया गया था कि उसके एक हाथ में शराब का प्याला रहता है, दूसरे हाथ में औरत की कमर। उसको लोग रंगीला बादशाह कहा करते हैं। हालाँकि उसको फ़ारसी का अच्छा इल्म है, पर उसने शेख़ सादी के इस कहे पर तवज्जह नहीं दी थी कि—

जिसकी ख़्वाहिशों को तुम पूरा करते हो
वह तुम्हारे हुक्म का ग़ुलाम हो जाता है,
मगर ऐयाशी की ख़्वाहिशों को पूरा किया,
तो समझो तुम ही उनके ग़ुलाम बने।

हमने पहले क़न्धार और गज़ना को जीता और फिर क़ाबुल को फ़तह किया। अफ़ग़ानिस्तान नाम को ही मुग़लों की सल्तनत का हिस्सा कहलाता था। सारे के सारे अफ़ग़ानिस्तान ने हमारे आगे घुटने टेक दिए। हमने मुहम्मद शाह को ख़त लिखकर बताना ही बेहतर समझा कि, 'आलीजाह को मालूम हो कि हमारा क़ाबुल आना और इसे फ़तह करना सिर्फ़ इसी मक़सद से हुआ कि हम आपसे दोस्ती करना और इस्लाम का प्रचार करना चाहते हैं। हम यह कभी सोच भी नहीं सकते थे कि दक्खिन के काफ़िर मराठे मुग़लों की सल्तनत को ख़तरा पैदा करेंगे। हमने अटक के इस तरफ़ डेरा सिर्फ़ इसलिए डाला हुआ है कि जब ये काफ़िर बुतपरस्त दिल्ली की तरफ़ बढ़ें, तो हम अपनी बहादुर क़ाज़िलबाश फ़ौजों को उन्हें मौत के घाट उतारने के लिए भेज सकें। तवारीख़ गवाह है कि ईरान के बादशाहों और आपके पुरखों के बीच हमेशा दोस्ती का रिश्ता रहा है। हमें हज़रत अली मुर्तज़ा की क़सम कि आपकी दोस्ती और इस्लाम की तरक़्क़ी के सिवा हमारा कोई और मक़सद नहीं। अगर आप कुछ और सोच रहे हों तो आपकी मर्ज़ी। हम हमेशा आपके नामी-गिरामी ख़ानदान के ख़ैरख़्वाह रहे हैं और आगे भी रहेंगे।'

मुहम्मद शाह ने हमारे इस ख़त का भी जवाब नहीं दिया। 'आमीन,' हमने अपने-आपसे कहा कि 'हम एक इस्लामी सल्तनत को काफ़िरों के हाथों सिर्फ़ इसीलिए बर्बाद नहीं होने दे सकते कि इस पर एक ऐसा आदमी राज कर रहा है जो समझता है कि जन्नत एक ऐसा बाग़ है, जहाँ फ़व्वारों के मुँह से शराब बहती है और मामूली रंडियाँ भी जहाँ हूरें लगती हैं।'

हमने मुहम्मद शाह को एक ख़त और लिखा। अपने इस ख़त में हमने अपनी शर्तें इस ढंग से रखीं कि उसकी नासमझी को भी चीर डालें। हमने लिखा कि हम मुग़लों की हुकूमत को ठीक करने के लिए जल्द ही दिल्ली पहुँचनेवाले हैं। उसके लिए हमारा मेहनताना बनता है—एक करोड़ चाँदी के रुपए और मुग़ल सल्तनत के चार सूबे, जिन्हें ईरानी सल्तनत में मिला लिया जाएगा। मुहम्मद शाह के बर्ताव से वाक़िफ़ होने की वजह से आख़िर में हमने उसे इस तरह चेताया, 'हमको इसका जवाब चालीस दिन के भीतर-भीतर चाहिए!'

चालीस दिन बीत गए। फिर पूरा एक साल भी। हमें न तो उसका कोई जवाब मिला, न ही दिल्ली गए हमारे दूतों को वापस आने दिया गया।

अब हमने साथ चलने के लिए फ़ौजें इकट्ठा करनी शुरू कर दीं। हमारे झंडे तले जमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने के लिए लोग शमा पर मँडराते पतिंगों की तरह खिंचे चले आए। वे किसी भी कुर्बानी के लिए तैयार होकर आए थे। हमारी फ़ौजों में क़ाज़िलबाश, तुर्क, उजबेकी, अफ़ग़ान, पठान, बलूची और जॉर्जियन—सभी तरह के लोग शामिल थे। हमने इंजीनियर और तोपची फ्रांस, इटली और इंगलिस्तान से बुलाए। बहुत जल्द ही हमारी कमान में 1,25,000 फ़ौजी जमा हो गए।

6 नवम्बर, 1738 को नगाड़ों के शोर के साथ हमने दिल्ली के लिए कूच कर दिया। सर्दियाँ शुरू हो चुकी थीं। रास्ते की पहाड़ी घाटियों में हमने कोहरे-भरी रातें किटकिटाते हुए गुज़ारीं। क़ाबुल और पंजाब के मैदानी इलाक़ों में डाकुओं के क़बीले थे। वे हमारी फ़ौजों का सामान लूट लिया करते थे। हम चाहते तो उनको सबक़ सिखा सकते थे, लेकिन हिन्दुस्तान का कारोबार हमें वहाँ जल्दी बुला रहा था।

हम ख़ैबर दर्रे के पच्छिमी छोर पर पहुँच गए थे। हमें कहा गया कि यह दर्रा एक जाल की तरह है और डाकुओं का बड़ा भारी दल घाटियों में छुपा हमारी ताक में बैठा है। हम थोड़ी देर के लिए रुके और अपनी फ़ौजों के साथ 'मग़रिब' की नमाज़ पढ़ी। सूरज डूबने ही वाला था कि हमने हुक्म दिया कि तम्बू उखाड़ो और आगे बढ़ो! डाकू तब शायद अपनी रजाइयों में दुबके सो रहे थे, जबकि हम तारों की रोशनी के सहारे उस ख़तरनाक दर्रे में पचास मील तक आगे बढ़ आए। डाकू जब सुबह उठकर आँखें मल रहे होंगे, तब हम पेशावर शहर की सरहद पर आ पहुँचे थे। हमने बिना किसी दिक़्क़त के पेशावर को फ़तह कर लिया।

हम आगे ही आगे बढ़ते चले गए। हमने सिन्धु नदी के चौड़े पाट को पार किया और पंजाब के लम्बे-चौड़े एकसार मैदान में जा पहुँचे, जिसका नाम इसकी पाँच नदियों की वजह से 'पंजाब' पड़ा था। वह ज़मीन हमारी देखी-सुनी सारी ज़मीनों से ज़्यादा सपाट और एकसार थी। लेकिन उस मौसम में वह आँखों को बुरी नहीं लग रही थी। हमारे सफ़र के दौरान कई जगहों से उत्तर और पच्छिम की तरफ़ बर्फ़ से ढँके पहाड़ दिखाई पड़ रहे थे। दूर से देखने से बर्फ़ कितनी अच्छी लगती है! पर पास जाओ तो पता चलता है कि उसको पार करना कितना मुश्किल होता है।

आसमान नीलोपल पत्थर की तरह नीला दिख रहा था। धूप बड़ी सुहानी लग रही थी। भूरे मैदान गेहूँ, सरसों और गन्ने की पैदावार से हरे नख़लिस्तानों में बदले हुए थे। शिकार के लिए भी सुनहरी मौक़े आते रहे। बेशुमार तीतर, मोर और हिरनों के झुंड चारों तरफ़ दिखते रहे। हमने सुना कि शेर, चीते और तेंदुए भी यहाँ अनगिनत हैं। धन-दौलत से भरे इस मुल्क के गाँवों के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी थीं। इनके ज़्यादातर बाशिंदे मुसलमान होने की वजह से हमारी मुख़ालिफ़त नहीं कर रहे थे, क्योंकि वे जानते थे कि हम इस मुल्क को काफ़िर मराठों से निजात दिलाने आये हैं। गाँवों के लोग हमारे साथ दोस्ताना ढंग से पेश आ रहे थे। हम उनसे जो रसद लेते, उसके बदले में उन्हें सोना-चाँदी देते थे। अगर हमारे आदमी कभी उनसे ज़ोर-ज़बरदस्ती कुछ लेते हुए पाए जाते, तो हम उनके सिर कटवा देते। अगर वे हिन्दुस्तानी औरतों से छेड़ख़ानी करते पाए जाते तो उन्हें खस्सी करा दिया जाता और उनकी एक माह की तनख़्वाह उनके फ़ोतों-समेत उनके शिकार के सामने रख दी जाती!

लाहौर का सूबेदार ज़करिया ख़ान पहले-पहल तो हमारे ख़िलाफ़ खड़ा हुआ, लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद में पनाह माँगता हुआ हमारे पास आया। उसने सफ़ाई दी कि हिन्दुस्तान आने के हमारे मक़सद के बारे में वह नहीं जानता था। हमें मालूम था कि वह झूठ बोल रहा है। लेकिन हमें हज़रत अली मुर्तज़ा की यह बात याद थी कि 'अगर कोई माफ़ी माँगता है तो उसका बहाना भी मंज़ूर कर लेना चाहिए।' हमने उसे अपनी क़दमबोसी की इजाज़त दे दी और अपनी फ़ौजों के ख़र्च के लिए बीस लाख रुपए का नज़राना भी मंज़ूर कर लिया।

शहर के कुछ मील दक्खिन में पड़ते शालीमार बाग़ के खुशनुमा आलम में हमने सोलह दिन बिताए। दिन अब लम्बे होने लगे थे और धूप तेज़। शालीमार में रेशमी रुई के पेड़ों पर बड़े-बड़े लाल फूल आने लगे थे। माली बताते थे कि सेमल के रंग को देखकर बताया जा सकता है कि अमुक साल कितनी गर्मी पड़ेगी। जिस साल इसका रंग जितना ज़्यादा लाल होगा, उतनी ही ज़्यादा गर्मी उस साल पड़ेगी।

दिल्ली के हमारे कारिंदों ने बताया कि मुहम्मद शाह हमें दिल्ली की तरफ़ बढ़ने से रोकने के लिए लम्बी-चौड़ी फ़ौज जमा कर रहा है। हमने अपनी फ़ौजों को आगे बढ़ने का हुक्म दिया, क्योंकि हमने महसूस किया कि अगर हम लाहौर में ज़्यादा दिन टिके रहे तो गर्मियाँ शुरू हो जाएँगी और ज़्यादा गर्मी से हमारी फ़ौजों को परेशानी हो सकती है।

हमने पहले तिलौरी गाँव में अपना चौकसी-जत्था भेजा और वहाँ तम्बू गाड़े। कुछ ही दूरी पर करनाल शहर और मरदान अली ख़ान नाम की नहर के बीचोबीच मुग़ल फ़ौजों ने मोर्चेबंदी कर रखी थी। अगले दिन सवेरे हम दुश्मन की फ़ौजों के बन्दोबस्त का जायज़ा लेने के लिए खुद निकले। वह सचमुच बड़ी भारी तादाद में, क़रीबन 3,00,000 फ़ौजों के साथ आया था। फिर भी यह साफ़ ज़ाहिर था कि नसीरुद्दीन अभी बच्चा ही है। तादाद में हमसे दोगुना ज़्यादा होने के बावजूद और 2,000 हाथियों, घुमाऊ तोपोंवाले बेहिसाब ऊँटों और बेशुमार घुड़सवार फ़ौजों के बावजूद उसने जो बढ़ा-चढ़ाकर अपनी डुग्गी पीटी थी, वही उसको भारी पड़नेवाली थी। अल्लाह ने ठीक ही उसे कमदिमाग़ बनाया था और हमारे पल्ले डाला था।

हमने अपनी फ़ौजों को रास्ते में खड़ा कर उनकी रसद आने का रास्ता रोक दिया। शेख़ सादी ने ठीक ही कहा है कि अगर सिपाही का पेट भरा है तो वह लड़ाई में बहादुरी दिखाता है, पर अगर उसका पेट ख़ाली है तो भागने में बहादुरी दिखाता है। हमने अपने दुश्मनों को कई दिनों तक भूखा रखा। जब उनके पेट एकदम ख़ाली हो गए तो हमने अलग-अलग ठिकानों से उन पर हमला बोल दिया। उनके तोपचियों ने हर ओर तोपें दाग़नी शुरू कीं, पर उनका एक भी निशाना सही नहीं रहा।

14 फरवरी, 1739 की दोपहर को मुग़लों ने खाइयों में जो भारी तादाद में फ़ौजें इकट्ठी कर रखी थीं, वे भूख से बेहाल होकर बाहर निकल आयीं और हमसे लड़ने को आगे बढ़ीं। पहले हाथियों की एक भारी क़तार को आगे किया गया। हमने ऊँटों की पीठ पर जलता हुआ पुआल बाँधकर उन्हें हाथियों के बीच छोड़ दिया। हाथी डरकर अपनी ही फ़ौजों को कुचलते हुए इधर-उधर भागने लगे। इससे पहले कि सुल्तान अपनी सेना को तरतीब दे पाता, हमने घुड़सवार फ़ौजों को उनके ऊपर छोड़ दिया। हमारे ख़ूँखार फ़ौजियों ने उनकी मोर्चाबंदी छिन्न-भिन्न कर दी। दो घंटों की मुठभेड़ में दुश्मन के 20,000 फ़ौजी मारे गए और इससे भी ज़्यादा गिरफ़्तार कर लिये गए। मुग़ल दरबार का सुतून कहा जानेवाला नवाब सम्सामुद्दौला भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लड़ाई में मारा गया। यह नवाब शायरों का आक़ा कहलाता था। हमें उसकी मौत से सचमुच बहुत दुख हुआ।

मुहम्मद शाह को मिलने की इजाज़त देने से पहले हम उसे उसकी हार का पूरा अहसास करा देना चाहते थे। उसने हमसे रहम की भीख भी किसके ज़रिए माँगी—आसफ़ जाह निज़ामुल-मुल्क के ज़रिए, जिसने हमें खुद हिन्दुस्तान में बुलवाया था! इस पापी ने अपने मालिक के ख़िलाफ़ नमकहरामी की थी, लेकिन वह हमारी चालों का ज़रिया बना था, इसलिए हमने उसको ख़िल्वत दी और मुहम्मद शाह को अपने सामने हाज़िर होने की इजाज़त दे दी।

दूसरे दिन हिन्दुस्तान का शहंशाह नसीरुद्दीन मुहम्मद शाह हमारे सामने हाज़िर था। उसे डर था कि हो सकता है हम उसकी जान ले लें, इसलिए वह हमारे तंबू के बाहर रुककर एक हिंजड़े को हमारे पास भेजता है कि हम कुरान पर हाथ रखकर क़सम खाएँ कि हमने उसे माफ़ कर दिया। हमने पाक कुरान को चूमकर अपने प्यारे बेटे शहज़ादे नसरुल्ला ख़ान को मुग़ल बादशाह को भीतर लिवाने भेजा। मुहम्मद शाह तंबू में घुसा और झुककर कोर्निश करते हुए अपनी तलवार हमारे क़दमों में रखने लगा। हमने उठकर उसे अपने गले से लगाया और कहा कि वह अपने मन का सारा डर निकाल दे। हमने उसे कहा कि हमारा यह उसूल है कि दुश्मन के साथ खुली लड़ाई लड़ते हैं, चालाकी से उसका क़त्ल नहीं करते।

उसे फिर भी हम पर भरोसा नहीं हुआ। उसके सामने खाने का थाल रखा गया, तब भी हमने उसके चेहरे पर शक की लकीरें देखीं। हमने अपनी थाली से उसकी थाली बदल दी। शराब के प्याले भी हमने आपस में बदल दिए। उसे पूरी तसल्ली दिलाने के लिए हमने उसे अपने हाथ से क़हवे का प्याला थमाया। पर हमारी ओर से हुई ये तमाम कोशिशें उसके दिल में दोस्ती का जज़्बा जगाने में नाकामयाब रहीं। तब हमने सोचा कि अब इसे साफ़-साफ़ बता दिया जाय। हमने कहा, "यह बड़ी हैरानी की बात है कि तुम अपनी हुकूमत के बारे में इतने लापरवाह और ग़फ़लतमंद हो कि हमारी चिट्ठियों का जवाब तक नहीं दिया! हमने तुमसे दोस्ती करने के लिए अपने लोगों को भेजा, फिर भी तुमने हमें कोई तसल्लीबख़्श जवाब नहीं दिया!" हम उसके जवाब के लिए थोड़ी देर रुके, पर मुहम्मद शाह ने तो जैसे मुँह न खोलने की ही ठान रखी थी। हमने आगे कहा, "तुम अपने मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं ले रहे। जब हम तुम्हारी सल्तनत में घुसे तो तुमने अपना कोई आदमी भेजकर हमारा हाल-चाल तक नहीं मँगवाया। तुम्हारे यहाँ से कोई आदमी कोई सँदेशा या सलाम तक लेकर नहीं आया, यहाँ तक कि हमारे सलाम का भी तुमने कोई जवाब नहीं दिया!"

हमने लड़ाई के मैदान में की गई उसकी ग़लतियाँ भी गिनाईं, "तुमने अपने फ़ौजियों को खाइयों में घुसाकर ग़लती की। तुमने यह नहीं सोचा कि खाइयों में खाए-पीए बग़ैर नहीं रहा जा सकता। देख लिया न उसका नतीजा?"

मुग़ल का सिर शर्म से झुका का झुका रह गया था। हम उसको इस ग़फ़लत में नहीं रहने देना चाहते थे कि हम हिन्दुस्तान क्यों आए। हमने कहा, "सिर्फ़ तुम्हारी काहिली और घमंड ही हमें इतनी दूर यहाँ खींच लाया है। हम तुमसे तुम्हारी हुकूमत नहीं छीनना चाहते, पर इतनी दूर आने में हमारा बहुत ख़र्च हुआ है। हमारे फ़ौजी थके हुए हैं और उन्हें चीज़ों की ज़रूरत है। हमें दिल्ली चलना चाहिए। वहाँ हम कुछ दिन रहेंगे। हमारी फ़ौजें तरोताज़ा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायँ और जैसा कि आसफ़ जाह निज़ामुल-मुल्क ने मंजूर किया था, हमें हमारा हर्जाना मिल जाय तो हम तुम्हें तुम्हारी हुकूमत सौंपकर वापस चले जाएँगे।"

मुहम्मद शाह ने हमारे क़दमों में ताकते हुए ही यह सब सुना। हमने उसे जाने की इजाज़त दी और कहा कि अपनी बेगम मलिका-उज़्ज़मानी और अपने बेटे सुल्तान अहमद को हमारे बंधक के तौर पर वह हमारे तंबू में भेज दे।

अब हमने दिल्ली की तरफ़ कूच किया। मुग़ल बादशाह हमारे पीछे-पीछे आया। जब हम मुग़लों की राजधानी के बाहर पहुँचे तो हमने अपने क़ाज़िलबाश घुड़सवारों की एक टुकड़ी को मुग़ल बादशाह को हिफ़ाज़त से महल में पहुँचा आने को भेजा, ताकि वह वहाँ पहुँचकर हमारे ख़ैर मक़दम की तैयारियाँ शुरू कर दे।

हमने अपना तंबू शालीमार में लगाया, जहाँ अमीर-उमरावों ने बरगद के बड़े-बड़े दरख़्तों की हरियाली में अपनी-अपनी ऐशगाहें बना रखी थीं। यहाँ आम नामक फल के बड़े-बड़े बाग़ थे, जिसे यहाँ के लोग बड़े चाव से खाते थे। उन दिनों उनमें बौर आया हुआ था—पीले-हरे रंग के ख़ूबसूरत गुच्छे, जिन पर मधुमक्खियों के झुंड मँडराते रहते थे। आम का पेड़ काले रंग की एक चिड़िया का भी चहेता बसेरा था, जिसे लोग कोयल कहते थे। कोयल दिन-भर कूहू-कुहू करती रहती। आम के अलावा बाग़ में और भी बहुत-से पेड़ थे। अमरूदों का यह मौसम नहीं था। हमारे यहाँ के खुरासान और मशद के बग़ीचों की तो बात ही कुछ और है। वहाँ तो जब अंगूर की बेलों में नई पत्तियाँ फूटती हैं, तो दिन-रात बुलबुलों के मीठे बोलों से गूँजते रहते हैं। हमने अपने-आपसे कहा, 'ईरान का एक दिन हिन्दुस्तान में बिताए सौ दिनों से बेहतर है।'

अगले दिन हमने लाहौरी बाज़ार की ओर खुलते उत्तरी फाटक से मुग़लों की राजधानी में प्रवेश किया। हमने अपनी ज्यादातर फ़ौजें शहर की दीवार के बाहर ही छोड़ दीं, ताकि हमारी फ़ौजों और यहाँ के शहरियों के बीच कोई ऐसी-वैसी बात न हो जाय, जिससे हमारे सफ़र का मज़ा किरकिरा हो जाय।

हमारे खैरमक़दम के लिए शहर के फाटकों की मेहराबों को गुलाब, चमेली और गेंदे के फूलों से फ़ारसी में 'खुशामदीद' लिखकर सजाया गया था! घरों के छज्जों पर खड़ी औरतों ने हमारे ऊपर गुलाब की पंखुड़ियों की बौछारें कीं। ये हिन्दुस्तानी खुशामद की कला में कितने माहिर थे! फूलों की सुगंध के साथ लाहौरी बाज़ार में फैली हींग और लहसुन की गंध भी आ रही थी। हम शाहजहाँ की फ़तेहपुरी बेगम की बनवायी उसी नाम से मशहूर फ़तेहपुरी मस्जिद से गुज़रते हुए एक बड़ी-सी सड़क पर आए, जिसको चाँदनी चौक कहते थे। इसके बीचो-बीच से पानी की एक नाली-सी गुज़रती थी, जिसके दोनों तरफ़ पेड़ लगे हुए थे। जब हम सोनारों के मुहल्ले, जिसको जौहरी बाज़ार कहते थे, से गुज़रे तो थाल भर-भरकर हीरे-जवाहरात हमारी नज्र किए गए। उसके बाद हम एक नयी बनी मस्जिद के पास से गुज़रे। हमें बताया गया कि इसे मुहम्मद शाह के ख़ज़ांची नवाब रौशनुद्दौला ने बनवाया है। हालाँकि यह बहुत बड़ी नहीं थी, पर इस पर मढ़ा सोना ख़ज़ांची की अमीरी की कहानी कहता था। हमें बाद में पता चला कि रौशनुद्दौला बेहद बदनाम घूसख़ोर था। ईरान की तरह हिन्दुस्तान में भी पैसा बनानेवालों ने ही मस्जिदें बनवायी थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्जिद के तुरत बाद शहर की कोतवाली थी। उसी के साथ लगा उसका क़ैदखाना और फाँसीघर था। कोतवाली की बग़ल में फूल बेचनेवालों की मंडी थी। यहाँ फूलों की सजावट के कई नमूने देखने को मिले। बाज़ार के दूसरे छोर पर पड़नेवाले घरों के छज्जों पर फूलों की लड़ियाँ लटक रही थीं। पूरा बाज़ार फूलों की सुरंग-सा दिखाई दे रहा था। दूसरे बाज़ार—दरीबा के फाटक पर जौहरियों ने हमें बेशक़ीमती हीरे-जवाहरात-जड़ी तश्तरियाँ भेंट कीं। कुछ लोग हमारे घोड़े की रक़ाब छूकर हमारे ऊपर मुट्ठी भर-भर सिक्के वार कर भिखारियों को फेंकते जा रहे थे जो शहर-भर में भरे पड़े थे। क़िले के ख़ास दरवाज़े के पास ही उर्दू बाज़ार था, जहाँ फ़ौजियों के तंबू तने हुए थे। वे तंबू हमारे क़ाज़िलबाश सिपाहियों के लिए ख़ाली कर दिए गए थे।

जैसे ही हम क़िले में घुसे, मुग़ल तोपों ने हमें सलामी दी। हम अपनी आवभगत से खुश थे। हमने डंके की चोट पर यह ऐलान करवाया कि दिल्ली हमारी हिफ़ाज़त में है और जब तक यहाँ की रियाया तमीज़ से पेश आती रहेगी, वह अपना काम-काज बिना डरे करने के लिए आज़ाद है। हमने दिल्ली के सूबेदार लुत्फ़ुल्लाह ख़ान और कोतवाल हाजी फ़ौलाद ख़ान को ख़िल्वत दी और अपनी आव-भगत के उम्दा इंतज़ाम के लिए उनका शुक्रिया अदा किया।

दीवाने-ख़ास के आसपास की जगहें हमारे ठहरने के लिए सजाई गई थीं। यहीं पर हमारी मुलाक़ात मुग़ल सल्तनत के शहज़ादों से हुई। हमने उनको भी ख़िल्वत भेंट की।

शाम को जमना के किनारे आतिशबाज़ी की गई। उसके बाद नाच-गाना हुआ। अपनी फ़तह का जश्न तो हम भी मनाना चाहते थे, पर अजनबियों के साथ मौज-मस्ती करने का हमारा कोई इरादा नहीं था। अपने मेज़बान मुहम्मद शाह को खुश करने के लिए हमने उसके हाथ से शराब का प्याला ले लिया। दिल्ली की सबसे ख़ूबसूरत हूर हमें पेश की गई थी, पर उसकी तरफ़ देखे बिना ही हमने उससे कहा कि वह हमारी आरामगाह में हमारा इंतज़ार करे।

मुहम्मद शाह ने इतनी शराब पी ली थी कि वह अपने आपे में नहीं रहा था और यह भी भूल चुका था कि वह किसी की मेहमाँनवाज़ी कर रहा है। उसने अपने पैरों में घुँघरू बाँध लिये और रक़्क़ासाओं के साथ जा मिला। वह उन्हीं की तरह आँखें मटका-मटकाकर नाचने लगा। हाथों में वही लचीलापन, पाँवों में वही फुर्तीलापन। एक अमीर ने उसके रक़्स की तारीफ़ में कहा कि आलीजाह तो हिन्दुस्तान की किसी भी रक़्क़ासा से ज़्यादा हुनरमंद हैं तो वह बंदर की तरह खीसें निपोरकर हँसने लगा और अचानक अपने कपड़ों से अपना लिंग बाहर निकालते हुए बोला, "किसी नचनिया के पास यह तो नहीं हो सकता" और फिर मेरी ओर अपना तीर चलाते हुए सादी की पंक्तियाँ दोहराने लगा—

पुराने दिनों की छोटी अम्मा,
तुमने बड़ी चालाकी से बाल तो अपने रँग लिये,
पर कुबड़ी पीठ तुम्हारी कैसे सीधी हो!

फिर वह अपने दोस्तों की तरफ़ मानीख़ेज़ मुस्कान फेंकते हुए मुड़ा। मदहोशी में डूबे चापलूस वाह-वाह करते हुए चिल्लाने लगे। हम जानते थे कि बात का इशारा हमारी ओर ही है, क्योंकि हमें अपनी दाढ़ी को रँगने का वक़्त नहीं मिला था और इसकी जड़ों से सफ़ेदी झाँक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही थी।

और वह कमीना दोमुँहा सआदत ख़ान, जो कुछ घंटे पहले ही हमारी क़दमबोसी कर रहा था, उससे टेक लेते हुए एक और मिसल छोड़ने लगा—

मैंने सुना है कि एक बुज़ुर्ग बूढ़ा,
सफ़ेद बालों के चलते भी दूल्हा बनने चला था,
ख़ूबसूरत-सी एक हूरी, नाम था जेवर,
और जब वह जेवर को दूसरे मर्दों से छुपाने में
कामयाब हो गया,
तो बूढ़ा चला शादी की रीतें निभाने,
पर पहली ही कोशिश में रहा नाकामयाब बेचारा,
कमान तो उठा ली थी,
तीर ही निशाने पर नहीं लगा!

जी तो हुआ कि सआदत ख़ान को उसी वक़्त थप्पड़ों से लाल कर दूँ, पर फिर कुछ सोचकर उसकी सज़ा को किसी और वक़्त के लिए टाल दिया। बहरहाल, हम शराब के नशे में धुत्त इन लोगों को इस ग़लतफ़हमी में नहीं रहने देना चाहते थे कि हमें यह पता नहीं चला कि उनके ज़हर-बुझे तीर किसकी तरफ़ छोड़े गए हैं। जैसे ही उन्होंने हँसना बंद किया, हमने जवाब दिया—

ख़ूबसूरत मुखड़ा और ज़री का ग़रारा,
गुलाब की झाड़ी, अगरु, सुर्ख़ी और इत्र,
औरतों की ख़ूबसूरती बढ़ाने में मददगार,
मगर मर्द का सिंगार तो है सिर्फ़ उसकी मर्दानगी!

उन्होंने 'मरहबा, सुभान अल्लाह' कहकर हमारी वाहवाही की।

हमने इसके साथ ही महफ़िल बरख़ास्त कर दी और अपनी आरामगाह में चले गए। हम अपने पलँग पर झुके ही थे कि बाँदी ने झुककर सलाम किया और हमारे जूते खोलने लगी। उसने हमारे पैरों की मालिश करनी शुरू की। इतने दिनों की थकान के बाद यह बहुत भला लग रहा था, हल्का-हल्का-सा। हमने अपने पैर उसकी गोद में रख दिए और टाँगें भी दबाने दीं। हमने ग़ौर किया कि लड़की जवान और ख़ूबसूरत है। हमने पूछा, "ऐ लड़की, क्या नाम है तुम्हारा?"

"आपकी बाँदी को नूर बाई कहते हैं। इजाज़त हो तो आलीजाह को मय का प्याला पेश करूँ?" उसने हमारी ओर देखा। अल्लाह ने क्या आँखें दी थीं उसे! ईरानी हिरन की आँखों से भी लम्बी, काली और शीशई। और कैसे उसे आँखों से ही बातें करना भाता था! उसने चाँदी की सुराही से सोने के प्याले में शराब उँडेली और दोनों हाथों से हमें पेश की। मय का प्याला हमने ले तो लिया, पर अपनी आदत के मुताबिक़ बग़ल की मेज़ पर रख दिया। हम अजनबियों के हाथों से कभी खाना, पानी और शराब नहीं लेते थे। नूर बाई ने हमें पीने पर ज़ोर भी नहीं दिया। अपनी बड़ी उँगली को गाल में गड़ाते हुए पूछा, "हुज़ूर को मैं अच्छी लगी कि नहीं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हारा चेहरा तो हमें बहुत अच्छा लगा, पर बाक़ी का तो कुछ अंदाज़ा नहीं।"

वह समझ गई कि हमारा इशारा किस तरफ़ है। उसने हमारे पैर एक मूढ़े पर रखे और उठ खड़ी हुई। फिर उसने अपना ग़रारा खोला और पैरों पर गिरा दिया। शमीज़ उतारी और क़ालीन पर फेंक दी। लाज से उसके दोनों हाथ चेहरे पर जा पहुँचे थे। हमने ऐसी लड़की कभी नहीं देखी थी। दालचीनी-सा साँवला रंग, भरी-पूरी गदराई छातियाँ, कमर इतनी पतली कि दोनों हथेलियों में समा जाय। क़द-काठी छोटी, पर नितम्ब इतने भारी कि हेरात के ख़रबूज़े भी शरमा जायँ।

"नूर बाई, तुम्हारी उम्र क्या है? मर्द से वास्ता पड़ चुका है न तुम्हारा?"

उसने हैरान-सी होते हुए कहा, "हुजूर, आलीजाह के लिए जूठी चीज़ भेजने की जुर्रत भला कौन कर सकता है? मुझे तो आपके ही लिए बड़ा किया गया था। न किसी ने मुझे छुआ है, और न एक बार आपके छूने के बाद, कोई मुझे छू पायेगा!"

वह उम्र में बाली थी, पर मर्दों को रिझानेवाली बातें उसे ख़ूब आती थीं। हमने उसे पास आने को कहा। फिर उसके चेहरे और बदन को सहलाया। वह चिकने अख़रोट-सी लगी, जिस पर एक रोयाँ तक नहीं होता। उसने अपने बदन को सुगन्धित तेलों से सराबोर कर रखा था। सारे कमरे में चमेली की गंध फूट रही थी। हमें लगा इसमें जरूर हमारे मेज़बान की कोई चाल है कि उसने ऐसी जवान और शोख़ लड़की हमारे पास भेजी है।

मुसीबतों और जद्दोजहद-भरी ज़िंदगी के पचास बरस बिताने के बाद आदमी की औरत के बदन की भूख मर जाती है। लेकिन हम अपने मेज़बान को यह दिखा देना चाहते थे कि ईरान के मर्द हरम में भी उतने ही मर्दाने होते हैं, जितने जंग के मैदान में। हमने अपने पलँग पर सफ़ेद चादर बिछवाई और नूर बाई को कहा कि हमें उकसाए। लड़की इस फ़न में माहिर लगती थी।

उसके चेहरे की बच्चों की-सी चाहना घबराहट में बदल गई, जब उसने देखा कि हम उसके साथ क्या करनेवाले हैं। हमने उसके साथ नर्मी बरती, फिर भी वह दर्द में चिल्ला उठी। चादर पर उसके कुँवारेपन और हमारी मर्दानगी की ख़ासी निशानियाँ छूट गई थीं।

हमने उसके नंगे बदन को हीरे-जवाहरात से लाद दिया। हमने उससे कहा कि वह दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत औरत है। उसने अपने आँसू पोंछे और मुस्कुराने लगी। हमने उससे कहा कि हम उसे अपने हरम में रख लेंगे। सुनते ही वह फिर रोने लगी, "अगर हुजूर दिल्ली में ही रहें, तब तो आपकी बाँदी आख़िरी साँस तक आपकी चाकरी करती रहेगी, लेकिन अगर आलीजाह मुझे दिल्ली से बाहर ले गए तब तो यह क़नीज़ ज़हर खाकर अपने-आपको ख़त्म कर लेगी।" उसने बड़ी ढिठाई से कहा।

हमने सुन रखा था कि दिल्ली के लोग अपने शहर को ऐसे प्यार करते हैं, जैसे मधुमक्खी फूलों को, पर हमें भरोसा नहीं हो रहा था कि एक तवायफ़ की बेटी भी ईरान के महल में रहने के बजाय दिल्ली के कोठे पर रहना ज़्यादा पसन्द करेगी। बहरहाल, हम बात को ज्यादा बढ़ाना भी नहीं चाहते थे और न ही लड़की को दुखी करना चाहते थे। हमने उससे कहा कि हम दिल्ली के अपने डेरे के दौरान उसको साथ-साथ रखना चाहेंगे। हो सकता था इस दौरान वह अपना फ़ैसला बदल ले या फिर खुद हमारा ही मन बदल जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला दिन जुम्मे का दिन था। हमने शहर की सारी मस्जिदों में अपने नाम का खुतबा पढ़ने का आदेश दिया। उससे यह काँच की तरह साफ हो जायेगा कि हम दिल्ली में क़ानून और इंतज़ामात की बहाली और इस्लाम का प्रचार-प्रसार करने आए हैं।

दोपहर को हमने सआदत ख़ान को बुलवा भेजा। वह अपने बेटों और ख़िदमतगारों के हुजूम के साथ हमसे मिलने आया। उसने और आसफजाह निज़ामुल-मुल्क ने मिलकर हमें हिन्दुस्तान बुलाया था और हमें लालक़िले में जमा दौलत का जायज़ा दिया था, इसलिए वह हमारे साथ बहुत अपनापा दिखा रहा था। वह अपने साथ आए लोगों को भी अपना ठसका दिखाना चाहता था कि वह हमसे कितना घुला-मिला है। हमारा जी तो किया कि उसके सारे भरम उसी वक़्त तोड़ दें। हमने उसको पिछली रात के उसके सलूक को लेकर कुछ नहीं कहा, पर यह ज़रूर याद दिलाया कि हम दिल्ली इसी शर्त पर आए थे कि अगर हम मुग़ल सल्तनत को काफ़िर मराठों के हमलों से बचा लेंगे तो हमारे सफ़र का सारा ख़र्चा हमें दिया जायेगा। हमने उससे कहा कि जब से हम आए हैं, वह ऐसे बर्ताव कर रहा है जैसे वह अपना वादा पूरा करने का इरादा नहीं रखता।

हज़रत अली मुर्तज़ा ने ठीक ही कहा था कि कभी-कभी बात भी तीर की तरह लगती है और जीभ नश्तर से भी नुकीली हो सकती है। इसलिए हमने बड़ी तल्ख़ आवाज़ में कहना शुरू किया, "सआदत ख़ान, इस्लाम की हिफ़ाज़त करनेवाले की फ़ौजों को अभी तक अपनी कुर्बानियों का मुआवज़ा नहीं मिला है।" हमने रुखाई से आगे कहा, "तुमने जो चार करोड़ देने का वादा किया था, उसमें से एक कौड़ी भी अभी हमें नहीं मिली। अगर इस रक़म की पेशगी कल शाम तक हमें नहीं मिल जाती, तो हम अपनी नाराज़गी ज़ाहिर कर सकते हैं।"

लगता था सआदत के मोमिया दिमाग़ पर मेरी झिड़क का कोई असर नहीं पड़ा। कहने लगा, "दुनिया को फ़तह करनेवाले इन्सान के लिए पैसा क्या चीज़ है?" फिर अपने साथ आए लोगों की ओर मुख़ातिब होकर बोला, "हम नादिर शाह महान के लिए अपनी जान भी दे सकते हैं।" पर जब उसके साथियों ने उसकी इस डींग की तारीफ़ की तो हमारा गुस्सा भड़क उठा। हमने कड़ककर कहा, "यहाँ आओ, सआदत ख़ान!" उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। हमारे क़रीब आते हुए उसके घुटने काँप रहे थे। जैसे ही वह हमारे पास पहुँचा, हमने उसका बायाँ कान पकड़कर खींचा, "हमको ऐसी चालाकी-भरी बातें पसन्द नहीं। हमें उन लोगों से सख़्त नफ़रत है जो वादाफ़रामोशी करते हैं।"

सआदत का चेहरा लाल हो गया। वह हकलाने लगा। हमने उसके कान उमेठकर मुँह पर एक करारा थप्पड़ रसीद किया। वह दूर जाकर गिरा। हमने उसके पेट में ज़ोर की ठोकर मारी, "हमारे सामने से दूर हो जाओ! अगर हमें कल तक अपना मुआवज़ा न मिला तो तुमको चाँदनी चौक की कोतवाली के सामने भरे बाज़ार में कोड़े लगाए जायेंगे।"

सआदत ख़ान को हमारे सामने से उठाकर ले जाना पड़ा। हमारी फटकार उसके लिए ज़रा ज्यादा ही भारी पड़ी थी। उसी रात उसने अपने सीने में ख़ंजर घोंपकर खुदकशी कर ली।

दिल्ली के लोग अहसान-फ़रामोश भी हैं और कायर भी। हमें शुक्रिया अदा करने के बजाय कि हम पहाड़ों, नदियों और रेगिस्तानों को लाँघते हज़ारों मील दूर से इस ज़मीन को काफ़िरों से ख़ाली कराने आए, वे कहने लगे कि हमें इस्लाम की मुहब्बत नहीं, बल्कि सोने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहब्बत यहाँ खींच लायी !

हमें पता चला कि जब जामा मस्जिद का इमाम हमारे नाम का ख़ुतबा पढ़ रहा था, तो यहाँ के शहरियों ने काफी हुड़दंग मचाया। हमारे अफ़सरों ने हमें ख़बर दी कि हमारे क़ाज़िलबाश सिपाहियों पर गलियों में लोग थूक रहे थे। औरतें अपने घरों के छज्जों से उन पर कूड़ा-करकट फेंक रही थीं। सब्ज़ी और मांस बेचनेवाले ईरानी फ़ौजों से आम शहरियों से भी ज़्यादा दाम वसूल कर रहे थे। दिल्ली के बाशिंदों ने इतना भी नहीं सोचा कि उनकी हिफ़ाज़त के मद्देनज़र ही हमने अपनी फ़ौजों को शहर के बाहर छोड़ा था। शाहजहानाबाद की चहारदीवारी के भीतर तो हम थोड़े-से ही ईरानी फ़ौजियों को लाए थे और शायद इसी लिए यहाँ के बाशिंदों ने हमारी ओर इस तरह आँख उठाने की कमीनी जुर्रत की। अब तो उन्होंने मौत के फ़रिश्ते को ही अपने शहर में न्यौता दे दिया है।

शनिवार, 10 मार्च सन् 1739 को ईदुज़्ज़ुहा के पाक दिन, जिस दिन लोग हज़रत इब्राहीम द्वारा अपने बेटे यूसुफ की कुर्बानी की याद को ताज़ा करते हैं, उसी दिन हमारे एक अंगरक्षक ने गली में घूमते कुछ साँडों और ओसरों को कुर्बानी के लिए पकड़ लिया। हिन्दू, जो गाय वग़ैरह जानवरों को मुक़द्दस मानते हैं, इस बात से तैश में आ गए। उन्होंने हमारे फ़ौजियों को चावल बेचने से इनकार कर दिया। हमने अपनी फ़ौजों से कहा कि चावल के बजाय वे मुसलमान दुकानदारों से आटा खरीदें। पर उसी वक़्त दिल्ली के मुसलमानों की असलियत भी हमारे सामने खुल गई। उन्होंने आटे का दाम तिगुना कर दिया। हमने बमुश्किल अपने गुस्से पर क़ाबू पाया। लेकिन हज़रत अली मुर्तज़ा की यह बात हमें याद आई कि ग़ुस्सा पागलपन की ही निशानी है। हमने गेहूँ का दाम रुपए में दस सेर तय कर दिया और ग़ल्ले की सारी दुकानों को खुला रखने का हुक्म जारी कर दिया।

दोपहर में हमें ख़बर मिली कि हमारे जो आदमी ग़ल्ला ख़रीदने अजमेरी फाटक से कुछ दूर पहाड़गंज गए थे, उन पर हमला बोला गया है। अफ़वाहों पर भरोसा करने की हमारी आदत नहीं थी। हमने अपने सात लोगों को असलियत का पता लगाने के लिए भेजा। उन सात में से सिर्फ़ तीन ही वापस लौट सके। इन तीनों के जिस्म पर लगे घावों से साफ़ ज़ाहिर था कि उनके साथ कैसा सलूक किया गया होगा। उन्होंने बताया कि भीड़ के अगुआ दो पठान थे—नियाज़ ख़ान और शहसवार ख़ान।

इन ठगों ने हमारे बन्दूक़याफ़्ता लोगों को ज़िंदा जला दिया। यह भी पता चला कि हमारे फ़ौजियों को भारी तादाद में मार डाला गया है और हथियारबंद भीड़ के साथ वह बदमाश नियाज़ ख़ान हमारे ऊपर भी हाथ डालने के लिए लालक़िले की ओर बढ़ा आ रहा है। हम लाहौरी फाटक की तरफ़ खुलनेवाले क़िले के परकोटे पर चढ़ गए, जहाँ से उर्दू बाज़ार और चाँदनी चौक का पूरा नज़ारा मिलता था। हमने बन्दूक़ों की आवाज़ें सुनीं। सामने से भाले, तलवारें और बंदूकें लिये इन्सानों का समुन्दर ही जैसे चाँदनी चौक और जामिया मस्जिद से उमड़ता हुआ क़िले की ओर बढ़ा आ रहा था।

उर्दू बाज़ार में तैनात हमारे ख़ास फ़ौजी बड़ी बहादुरी से अपनी चौकी सँभाले उस पगलाई भीड़ का मुक़ाबला कर रहे थे। हमने उनको ख़बर भेजी कि वे उर्दू बाज़ार की चौकी को खाली करके क़िले की पूर्वी दीवार के पास नदी-किनारे पहुँच जायँ। हमने दक्खिन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पच्छिम में पड़नेवाले लाहौरी और दिल्ली दरवाज़ों के ऊपर तोपें चढ़वा दीं और हुक्म दिया कि जब तक बारूद नहीं आता, भीड़ पर अंगूरों की ही बौछारें करते रहें। हमने शालीमार में अपनी फ़ौजों के सिपहसालारों से तुरन्त और फ़ौजें भेजने को कहलवाया और उन्हें आगाह किया कि वे अगले दिन सुबह शहर में आने के लिए तैयार रहें।

रात लोगों की चीख़-पुकार और तोपों की गड़गड़ाहटों से डरावनी हो उठी थी। हमारे दिल का सुकून इससे भी भंग हुआ जा रहा था कि मुहम्मद शाह ने अपनी रियाया की इस करतूत के लिए माफ़ी भी नहीं माँगी थी। हमें ख़बर मिली कि बाज़ारों में खुलेआम चर्चे थे कि हमें नूरबाई के हाथों ज़हर दे दिया गया है और हमारा हाल बेहाल है।

जब वह मुग़ल बादशाह हमारे पास आया, तो हम उसके चेहरे पर यह पढ़ सकते थे कि वह यही देखने आया था कि हमारे ऊपर ज़हर का क्या असर हुआ है। हमने अब अपना मन बना लिया था। हमने बीती रात की यादों से दिल में उमड़ती कड़वाहट को मीठा नहीं होने दिया। हम अपनी आरामगाह में चले गए। हमने नूरबाई को शराब की वही सुराही लाने को कहा, जिसमें से गयी रात उसने हमें शराब उँडेलकर दी थी।

नूरबाई कल की ही तरह कूल्हे मटकाती, वैसी ही शोख़ी से मुस्कुराती चली आ रही थी। उसकी आँखों से धोखा और बेवफ़ाई नहीं झलक रही थी। पर जैसे ही उसने ग़ुस्से से भरा हमारा चेहरा देखा, वह डर गई। हमारे पैर पकड़कर बोली, "आपकी बाँदी से कोई ख़ता हो गई क्या हुज़ूर?"

अगर वह झूठ बोल रही थी, तब तो वह शायद दुनिया की सबसे कम उम्र की, सबसे चालाक झूठी होगी। हमने पूछा, "तुम्हें शराब की यह सुराही किसने दी?" वह सचमुच परेशान दिखने लगी, "किसी ने नहीं, आलीजाह, यह तो यहीं थी। मैंने यही तो सोचा कि आपकी मनपसन्द शीराज़ की मय होगी। क्या कोई गड़बड़ हो गयी, हुज़ूर?"

हमने सुराही उठायी और एक प्याला भरकर उसकी तरफ़ बढ़ाया। "पियो!" हमने कड़ककर हुक्म दिया।

उसकी आँखों में डर समा गया था। उसने प्याला हमारे हाथों से ले लिया, "मैंने कभी शराब नहीं पी। होंठों तक से नहीं लगायी।"

"पियो, नहीं तो ज़बरदस्ती तुम्हारे गले में उँडेल देंगे।"

नूरबाई ने प्याले में अपनी अँगुली डुबोई और अपनी जीभ पर रखी। उसने बिगड़ा-सा मुँह बनाया। फिर उसने एक हाथ की अँगुलियों से अपनी नाक बंद की और दूसरे से पूरा प्याला ग़टाग़ट अपने हलक़ से नीचे उतार लिया। थोड़ी-सी शराब उसने मुँह से उलट भी दी और खाँसने लगी। उसका चेहरा सुर्ख़ हो गया। गला ऐसे पकड़ लिया जैसे रुँधा जा रहा हो। आँखों में आँसू भरकर हमसे पूछने लगी, "आलीजाह, आप लोग तो इस ज़हर को मज़े के लिए पीते हैं न।"

हमें तब भी पक्का पता नहीं चल सका कि यह वही शराब थी, जो कल रात हमारे कमरे में भेजी गई थी या नहीं। लेकिन न तो नूरबाई को, न ही हमें इससे कोई नुक़सान पहुँचा। पर हमें यह तो पता चल ही गया कि इसमें ज़हर नहीं मिलाया गया था। हमने नूरबाई को पास आने को कहा। हमने उसका चेहरा अपने हाथों में लेकर उसकी आँसुओं-भरी आँखों में झाँका,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नूर बाई, अगर कोई हमारे लिए कुछ कहे या हमें कुछ करने को कहे तो तुम हमें ज़रूर बता देना! तुम्हें हमारी तरफ़ से पूरी हिफ़ाज़त मिलेगी। हम तुम्हें सोने से लाद देंगे।" वह नीचे गिरकर हमारी क़दमबोसी करने लगी। हमने मोतियों का हार उसके गले में डाला और उससे कहा कि वह अपने कमरे में जाय। हमने उसकी हर हरकत पर निगाह रखने के लिए एक सिपाही लगा दिया।

इतवार के रोज़ हम थोड़ी जल्दी जग गए। हमने औरंगज़ेब की मोती मस्जिद में अपनी 'फ़जर' की नमाज़ पढ़ी और हल्का-फुल्का नाश्ता किया। हमारी फ़ौजों के सिपहसालार शहर में आ गए थे और हमारे हुक्म का इंतज़ार कर रहे थे। हमने उनको लाहौरी फाटक के पास मोर्चा सँभालने का हुक्म दिया।

दिन चढ़ते ही दिल्ली की गलियाँ लोगों से भर गईं। हमने देखा कि शैतानियत और हैवानियत का भूत लोगों के सिर पर आँधी-तूफ़ान की तरह सवार है। हमने सोचा कि हमें देखकर शायद उनका गुबार कुछ ठंडा हो।

लालक़िले के परकोटे पर धूप चढ़ आई, तो हम अपने हिफ़ाज़तगार फ़ौजियों के साथ घोड़े पर सवार होकर चाँदनी चौक पहुँचे। हमारे कितने ही वफ़ादार साथी सड़कों पर मरे पड़े थे। उनके जिस्म बुरी तरह कटे-फटे थे। वे दोमुँहें लोग जिन्होंने अभी दो दिन पहले हीरे-जवाहरात और फूलों से हमारी अगवानी की थी, अब हमारे ऊपर गालियों की बौछारें कर रहे थे। फूलों की मंडी के फूल बेचनेवाले, जिन्होंने हमारे ऊपर गुलाब की पंखुड़ियों की बारिश की थी, अब हमारे ऊपर पत्थर फेंक रहे थे। हम रौशनुद्दौला मस्जिद के पास घोड़े से उतरे और उसके छज्जे पर बैठ गए। आसपास के घरों के छज्जों से हमारे ऊपर पत्थरों की बौछारें होने लगीं। फिर किसी ने बन्दूक़ की गोली दाग़ी। गोली हमारी बग़ल से होती हुई हमारे वफ़ादार चँवर डुलानेवाले नौकर को जा लगी। वह बेचारा हमारे ऊपर ही लुढ़क गया। उसका ख़ून हमारे चोले को भिगोने लगा और 'या अल्लाह' कहता हुआ वह हमारे आग़ोश में ही चुप हो गया। हमने अपने इस वफ़ादार नौकर को फ़र्श पर लिटा दिया। हमारे सब्र का प्याला अब छलकने लगा था। हमने अपनी तलवार निकाली और दहाड़ते हुए कहा, "जब तक यह तलवार इस म्यान से बाहर है, इस कमबख़्त शहर के हर बाशिंदे की ज़िंदगी हमारे पास ज़ब्त रहेगी। मारो! किसी एक को भी मत छोड़ना!"

हमने हिन्दुस्तानी लोगों के किरदार का एक पहलू और देखा। जिस तरह चालाकी से उन्होंने मदद के लिए हमें बुलाया था, उसी चालाकी के अब ये सोच रहे थे कि वो अपने बादशाह के वफ़ादार रहें या हमारे। लेकिन इसका फ़ैसला वो यह देखकर ही करना चाहते थे कि ज़्यादा ताक़तवर कौन निकलता है—बादशाह या हम? हम उनकी बढ़ा-चढ़ाकर की गई बातें सुन चुके थे, जिसमें चापलूसी के मीठे बोलों के पीछे उनका मतलबी मक़सद छुपा हुआ होता। हमने देखा कि हमारे थोड़े-से फ़ौजियों को लापरवाही की हालत में भीड़ की भीड़ उन पर टूट पड़ी थी और अब जब कि मौत का फ़रिश्ता उनके सिर पर मँडराने लगा था, तो कैसे भेड़-बकरियों की तररह काहिल बने बैठे थे! हमारे फ़ौजी उन्हें तब तक क़त्ल करते रहे, जब तक उनके हाथ थककर चूर नहीं हो गए।

हम रौशनुद्दौला मस्जिद से लालक़िले चले गए। दरीबा का फाटक पार करते हुए हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने फ़ौजियों से कहा कि उस मनहूस गली के एक-एक क़ाफ़िर का घर रौंदकर मिट्टी में मिला दिया जाय! हमारे फ़ौजियों ने दरीबे के हर आदमी, औरत और बच्चों को मौत के घाट उतार दिया और बाज़ार में आग लगा दी। शाहजहानाबाद में सिर्फ़ जामिया मस्जिद और दिल्ली फाटक के आसपास पड़ते बाज़ारों को बख़्शा गया, क्योंकि नवाब सरबुलन्द ख़ान ने आकर हमारे सामने इल्तिजा की कि इन मुहल्लों को बख़्श दिया जाए, क्योंकि इनमें से कोई भी दंगाइयों के साथ नहीं था।

दोपहर में मुहम्मद शाह ने हमसे मिलने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। तब तक हमारे गुस्से की आग ख़ून की नदी में बुझ चुकी थी। हमने उसको अपनी क़दमबोसी की इजाज़त दी। उसे लफ़्फ़ाज़ी जाल बुनना भी ख़ूब आता था। गिड़गिड़ाते हुए बोला, "आपकी बदलेवाली तलवार के आगे एक भी जान बाक़ी नहीं बची है। अगर आलीजाह का और तबाही मचाने का जी हो तो मुर्दों में ही जान डालने पड़ेगी।"

हमें नहीं मालूम कि कितने लोग मारे गए, सिवाय इसके कि छह घंटों तक हमारे हज़ारों बहादुर फ़ौजी लगातार क़त्लेआम करते रहे। मुहम्मद शाह की दरख़्वास्त सुनने के बाद हमने अपनी तलवार म्यान में डाल ली और हुक्म दिया कि डंके की चोट पर हमारी ख़ुशी ज़ाहिर की जाय।

उस क़त्लेआम के नतीजे को अपनी आँखों से देखने का हमें कोई शौक़ नहीं था। हमने हुक्म दिया कि गलियों से लाशें और ख़ून के धब्बे हटाकर उन्हें साफ़ किया जाय। हैरतअंगेज़ बात यह थी कि यह होली का दिन था, जिसे काफ़िर लोग एक-दूसरे पर रंग डालकर मनाते हैं।

काफ़िरों ने अपने मुर्दों को जलाया, जैसा कि उनमें रिवाज था और इस तरह उन्हें जहन्नुम में भेजा जिसके कि वे क़ाबिल थे। मुसलमानों ने अपने मुर्दों को नदी के किनारे ज़मीन में दफ़्नाया। जिनको जलाने या दफ़्नानेवाला कोई भी नहीं बचा था, उनको चीलों, कौओं, बिल्लियों, कुत्तों और सियारों ने ठिकाने लगा दिया, जिनकी दिल्ली में कोई कमी नहीं थी।

हालाँकि हम इस कमबख़्त शहर पर माफ़ी की शीरीं बयार बहने दे रहे थे, पर हम इसके बाशिंदों को यह समझने का मौक़ा नहीं दे रहे थे कि उनके क़सूर की माफ़ी हो चुकी थी। हमने अपने कारिंदों को अमीर-उमरावों और व्यापारियों के घरों में भेजा और कहा कि जो कुछ भी वहाँ से ला सकें, ले आएँ। जिन्होंने कुछ देने में आनाकानी की, उन्हें हमारे सामने लाया गया और उनके ख़ानदान के लोगों के सामने उन्हें कोड़े लगवाए गए। उनके घरों के फ़र्श खुदवाए गए और उनकी औरतों को नंगा किया गया। उनमें से बहुतों ने इस सज़ा के बाद जीने से मरना बेहतर समझा और अपनी ज़िंदगी को ख़त्म कर लिया। सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात हमारे ख़ज़ाने में ऐसे भरते जा रहे थे, जैसे नदियों का पानी समुन्दर में। हमने यह ख़ुशख़बरी ईरान में भिजवायी, साथ ही यह ऐलान भी वहाँ करवाया कि ईरानी रियाया पर अगले तीन साल तक कोई कर नहीं लगाया जायेगा। हज़रत अली मुर्तज़ा ने ठीक ही कहा था, 'उदारता का असली महत्त्व सिर्फ़ देने में ही नहीं है, बल्कि जल्दी देने में है।'

इस सबसे फ़ारिग़ होने के बाद हमें पता नहीं क्यों ऐसा लगा कि हमें कुछ अच्छा नहीं लग रहा। हमने अपने सभी नौकरों को जाने को कहा। कई घंटे बैठे-बैठे हम ख़ुद से ही बहस-मुबाहसा करते रहे। अपने सपने के मुताबिक़ हमने चारों मुल्कों को फ़तह कर लिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम के भाले से हमने काफ़िरों की ज़मीन का सीना चाक कर डाला था और हज़ारों बुतपरस्तों को जहन्नुम भेज दिया था। हमने अल्लाह और उसके पैग़म्बर की भारी ख़िदमत की थी।

हमने बेपनाह दौलत इकट्ठा कर ली थी और लाखों ईरानियों के घरों में ख़ुशहाली के चिराग़ जला दिए थे। हमारे लड़के और उनके लड़कों के लड़के भी सात पुश्तों तक खाते-उड़ाते रहें, तो भी हमारी तलवार की यह पैदावार ख़त्म नहीं हो सकती थी। एशिया के लोग हमारे नाम से थर-थर काँपते थे। फ़ौजी हमारे झंडे-तले कहीं भी जाने को तैयार हो जाते। हमारे हरम में दुनिया की सबसे खूबसूरत औरतें थीं—गोरी नस्ल की, तुर्की, ईरानी, अरबी, अफ़ग़ानी और हिन्दुस्तानी। हमारे बीज से हमारे अनगिनत जवाँमर्द लड़के और ख़ूबसूरत लड़कियाँ थीं। हमारे पास वह सब-कुछ था जो एक इन्सान पाना चाहता है, पर फिर भी यह कैसा दुःख है जो हमारे वजूद पर छाया हुआ है?

नूर बाई हमेशा दिल पर छाई रहती थी। हमने उस रात को याद किया जो उसने हमारे साथ बिताई थी। हमें भरोसा नहीं हो पा रहा था कि वह हमें नुक़्सान पहुँचाना चाह सकती थी। लेकिन लोगों ने हमारे कान नूर बाई के ख़िलाफ़ भरने शुरू कर दिए थे। हमने ताली बजाकर नूर बाई को अपने सामने हाज़िर होने को कहा।

नूर बाई ने अपने आँसुओं से हमारी क़दमबोसी की।

वह क़ालीन पर लेटकर रोते-रोते पूछने लगी कि क्योंकर हमने उस पर शक किया? हमारे पास इसका कोई जवाब नहीं था, इसलिए हमने कोई ज़वाब उसे नहीं दिया। हम सिर्फ़ उसे नीचे लेटा देखते रहे। कमान की तरह बल खाती उसकी कमर, गदराए कूल्हे। लेकिन अच्छी लगने के बावजूद वह हमारे भीतर कोई अहसास नहीं जगा सकी। शायद हम यह भी जान गए थे कि हम उसके जिस्म को तो फिर फ़तह कर सकते हैं, लेकिन उसके दिल को नहीं जीत सकते।

एक बार फिर उस पर अपने शक के लिए पछताते हुए सोने की चूड़ियों का जोड़ा उसकी कलाई में सरका दिया। वह हमारे घुटनों पर सिर रखकर बैठ गई और हमारे चेहरे की ओर देखने लगी, "आलीजाह को दुनिया से नाराज़गी है।" उसने सचमुच हमारी फ़ितरत को पढ़ लिया था। कहने लगी, "आपने इतने लोगों को मरवाकर अच्छा नहीं किया!"

हम उसकी दिलेरी पर हैरान थे। हमने उसके सिर को थपथपाया। अचानक हमें अपने-आप से नफ़रत होने लगी। हमने अपनी आँखों से उमड़ते आँसुओं को छुपाने के लिए अपने दोनों हाथों से अपना चेहरा ढाँप लिया, लेकिन छाती से निकलती आह को हम नहीं छुपा पाए। नूर बाई की हिम्मत और बढ़ी और हमारी इजाज़त माँगे बिना ही वह हमारी गोद में बैठ गई। कमज़ोरी का ग़ैरमर्दाना दौर गुज़र गया और हमने धीरे-धीरे नूर बाई को अपनी गोद से उतारा और उससे कहा कि हमें अकेला छोड़ दे। जाने के पहले उसने हमसे वादा किया कि हम बल्लीमाराँ के हकीम अलवी ख़ान को बुलवा भेजेंगे। उसने कहा, "वह आपके बदन पर जोंकें चिपकाकर आपका सारा ग़ुस्से-भरा ख़ून बाहर खींच लेगा, फिर आपको काफ़ी राहत मिलेगी।"

अगले दिन हमने हकीम अलवी ख़ान को बुलवाया। हमें बताया गया था कि उसमें ईसा की तरह लोगों को चंगा करने की ताक़त है। वह काफ़ी बूढ़ा हो चुका था। उसकी लम्बी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफ़ेद दाढ़ी थी और छड़ी लेकर चलता था। बूढ़े लोग जानते हैं कि अब और कितने दिन बाक़ी बचेंगे, इसलिए वे गुस्ताख़ क़िस्म के हो जाते हैं और किसी से नहीं डरते। हकीम ने देखते ही हमें फटकारना शुरू किया, "अगर तुमको अपने गुस्से पर क़ाबू पाना नहीं आया तो तुम्हारा गुस्सा ही तुम्हारे ऊपर क़ाबू पा लेगा, समझे ?"

हमने माना कि हमारा गुस्सा बहुत तेज़ है। वह बोला, "न सिर्फ़ तुम गुस्सेवाले हो, बल्कि बहुत बुरी तरह बदमिज़ाज भी हो। गुस्सा पागलपन का ही एक रूप होता है। अगर इसको क़ाबू में न रखा जाय तो यह हमेशा के लिए पकड़ लेता है।"

उसकी बातें उसकी दी हुई दवाओं से ज़्यादा कड़वी थीं। लेकिन खुशामदियों और चापलूसों की चटर-पटर के बाद उस आदमी की खरी-खोटी बातें भी मुझे मीठी तान-सी लग रही थीं। उसी की ज़ुबानी हमें पता चला कि शहर में कैसा ग़दर हुआ है। हमने उसको समझाने की कोशिश की कि दिल्ली के लोगों ने ही पहले हमारे फ़ौजियों पर हाथ डाला था, हमने तो उनको सिर्फ़ बदला लेने की आज़ादी दी थी।

"लाहौल वला कुव्वत !" बूढ़ा हकीम चिल्लाया, "औरतों और बच्चों का क़त्ल करवाना भी क्या बदला लेना है ? तुम्हारे मुल्क में क्या न्याय इसी तरीक़े से होता है ?"

हमने उसकी बात का बुरा नहीं माना और उसको जो बोलना था, बोलने दिया। उसके बाद हम हकीम अलवी ख़ान को ज़्यादा तो इसीलिए बुलाते थे कि सुनें—क्या कहता है, बनिस्बत अपनी बीमारी का इलाज कराने के लिए। उसमें हमारी कमज़ोरियों को हमारे मुँह पर बताने की हिम्मत थी। पर साथ ही वह हमें मर्दाना ताक़तवाली दवाएँ भी देता था, जैसे कि यमन के शहद में सुच्चे मोती की भस्म। ऐसे तो हमारी तन्दुरुस्ती बिल्कुल ठीक थी, पर हम सोचते थे कि हमारे हरम की तैंतीस औरतें और अब यह नूर बाई भी हमसे न जाने कितनी उम्मीदें रखती होंगी।

हमें याद नहीं आ रहा कि हकीम अलवी ख़ान की सलाह थी या नूर बाई की सेवा, जिसने हमारा मन बदल दिया था। हमने पंद्रह दिनों तक किसी को भी सज़ाए-मौत नहीं दी। हम अपने साथियों के साथ हँसी-मज़ाक भी करने लगे। मुग़लों के ख़ज़ांची क़ज़मरुद्दीन ख़ान से हमने पूछा कि क्या यह सही है कि तुम्हारे हरम में 850 औरतें हैं ? उसने बताया कि बात सही है। हमने कहा, "तब तो तुमको 150 और कर लेनी चाहिएँ, ताकि पूरे मिमबाशी (एक हज़ार फ़ौजियों का सिपहसालार) हो जाओ !" लोग सुनकर इतना हँसे कि उनकी आँखों में पानी आ गया। चापलूसों ने हमारा यही मज़ाक़ न जाने कितनी बार हमारे ही सामने दोहराया।

हमने मुग़ल बादशाह को अपना फ़ैसला खुद करने की मोहलत दी कि वह खुद ही अपनी पेशकश हमारे सामने रखे। लेकिन मुहम्मद शाह की खोपड़ी में अक़्लमंदी के बदले चालाकी भरी थी। वह हमारे सब्र का मुक़ाबला अपनी मक्कारी से करना चाहता था। उसने हमें कहलवाया कि हम दोनों के ख़ानदानों को शादी के रिश्ते से हमेशा-हमेशा के लिए जुड़ जाना चाहिए। हमने यह सोचकर हामी भर दी कि शायद वह अपनी देनदारी दहेज के रूप में देना चाहता है। और इस तरह हमारे बेटे शहज़ादे नसरुल्ला मिर्ज़ा की शादी औरंगज़ेब की पड़पोती—कामबख़्श के बेटे यज़्दान बख़्श की बेटी के साथ तय हो गई।

ऐसे मौक़ों पर हिन्दुस्तान के लोगों में हँसी-दिल्लगी करने का रिवाज है। अपने ख़ानदान पर फ़ख्र करनेवाली मुग़ल बेगमों ने हमारे लड़के से पूछा कि सात पीढ़ी पीछे तक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने पुरखों के नाम गिनाए। शहज़ादा नसरुल्ला मिर्ज़ा के मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे। बेचारा पानी-पानी हुआ जा रहा था। उसे उन दिनों की ख़बर थी जब हमारी सारी मिल्कियत सिर्फ़ एक ऊँट और कुछ भेड़ें हुआ करती थीं। उसकी ज़ुबान खुल ही नहीं पा रही थी। उसके बदले जवाब हमने दिया, "बेटा, बोलो कि तुम नादिरशाह के बेटे हो, यानी तलवार के बेटे और तलवार के पोते। बस ऐसे ही गिना दो सात पुश्त पीछे तक।"

औरतों ने "अश, अश, मरहबा" कहकर वाहवाही की।

दिल्ली की रियाया को उसकी गुस्ताख़ी की भारी सजा देने के पंद्रह दिन के भीतर ही यह सब हो गया। लगता था कि वे सब-कुछ भूल जाना चाहते थे और शादी के जश्न में शामिल होना चाहते थे।

लालक़िले के परकोटों पर तेल के दीए जलाए गए, आातिशबाज़ी की गई, ख़ूब नाच-गाना और खाना-पीना हुआ। निकाह 26 मार्च, 1739 के दिन हुआ और उसके बाद दावते-वलीमा। मुग़ल बादशाह ने हमें और हमारे अफ़सरों को तोहफ़े दिए। शायद वह सोच रहा था कि अपने ख़ानदान की लड़की हमारे लड़के को देकर ही उसने सारा हिसाब चुकता कर दिया है और दहेज में कुछेक झाँझरें-पाज़ेबें देकर ही उसको निजात मिल जाएगी। हमने भी उसको सबक़ सिखाने की सोच ली थी। ईरानी भी धोखाधड़ी और छल-कपट में हिन्दुस्तानियों से कोई कम नहीं हैं। लड़ाई के मैदान में तो वह हमारा जौहर देख ही चुका था।

हमको पता चला था कि मुग़ल ख़ानदान के कब्ज़े में दो बेहद नायाब और बेशक़ीमती चीज़ें हैं। एक है तख़्ते-ताऊस, जो ठोस सोने का बना है और हीरों, मोतियों और पन्नों से मढ़ा हुआ है। उसकी क़ीमत नौ करोड़ रुपए आँकी जाती थी। दूसरी नायाब चीज़ है कोहेनूर हीरा, जो कबूतर के अंडे से भी बड़े आकार का बताया जाता है और उसकी क़ीमत पूरी दुनिया के लोगों की सात दिनों की आमदनी के बराबर है। हमने महल के तहख़ानों की तलाशी करवायी, लेकिन न तो तख़्ते-ताऊस का कोई पता चला, न ही कोहेनूर हीरे का।

तब हमने मुहम्मद शाह से पूछा। उसने बताया कि तख़्त तो उन्नीस साल पहले ही तोड़ डाला गया था और कोहेनूर हीरा उसने ख़ुद कभी नहीं देखा! लेकिन सआदत ख़ान ने हमें बताया कि कोहेनूर मुहम्मद शाह के पास ही है। उसके पहले के बादशाह उसे बाँह में पहना करते थे, पर यह इसे अपनी पगड़ी में छुपाकर रखता है। हमने भी कोहेनूर हीरे को हासिल करने की तरकीब निकाल ही ली।

हमने एक दरबार बुलाया, जहाँ सारे हिन्दुस्तानी अमीर-उमरावों और अपने ईरानी सिपहसालारों को हाज़िर होने को कहा। दरबार लगा। पहले हमने मुहम्मद शाह को बादशाह के सारे फ़र्ज़ गिनाए और फिर हम उसको उसके पितरों के संगमरमर के तख़्त के पास ले गए और अपने एक ताबेदार को इस मौक़े पर ख़ासतौर से मुहम्मद शाह के लिए बनवाया गया ताज लाने को कहा। हमने मुहम्मद शाह की पगड़ी उतारकर ताज उसके सिर पर पहना दिया। "अल्लाह तुम्हें बेपनाह धन-दौलत और लम्बी ज़िंदगी दे!" दरबारियों ने तालियाँ बजाकर अपना ख़ुशी ज़ाहिर की। हम ग़ौर कर रहे थे कि मुहम्मद शाह की आँखें इस बीच लगातार अपने और हमारे दरमियान पड़ी पगड़ी पर लगी थीं। उसने भी हमें मुख़ातिब होकर कुछ शब्द कहे, लेकिन उसकी नज़रें बार-बार पगड़ी की तरफ़ ही जाती रहीं। हमारा काम उसने बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसान कर दिया था। वह जैसे ही बैठा, हम उठकर खड़े हो गए और बोले कि हमें मालूम हुआ है कि हिन्दुस्तान में यह रिवाज है कि दो लोग जब आपस में भाईचारे और दोस्ती की क़समें खाते हैं, तो एक-दूसरे से पगड़ियाँ बदलते हैं। हमने उसके सिर से ताज उतारकर अपनी पगड़ी उसके सिर पर रख दी और अपना सिर उसके सामने कर दिया, ताकि वह भी अपनी पगड़ी मेरे सिर पर रख दे। बेचारे को वही करना पड़ा, जो मैंने कहा था। और इस तरह खुद अपने हाथों से उसने कोहेनूर हीरा हमारे हवाले कर दिया। हमने उसको गले से लगाया और महफ़िल बरख़ास्त कर दी।

अप्रैल के आख़िरी दिन थे। धूप इतनी तेज़, जैसे जहन्नुम की लपलपाती लपटें। हमारे पूरे बदन में घमौरियाँ निकल आई थीं। हकीम अलवी ख़ान के नुस्ख़े के मुताबिक़ बने शर्बतों के बावजूद हमें न तो भूख लगती थी, न ही औरत को छूने की तबीयत होती थी। "दिल्ली तुम्हारे लिए वाजिब जगह नहीं है," हकीम ने हमसे कहा। हमारे मुँह से खुद-ब-खुद निकला, "आमीन ! तुम्हारे मुल्क में बिताए सौ दिन भी इस्फ़हान के एक दिन के बराबर नहीं हैं।"

हमने सच्ची बात ही कही थी। लोगों ने तो दिल्ली के बारे में बड़ा बढ़-बढ़कर बताया था, पर हमें यहाँ ज़रा भी अच्छा नहीं लग रहा था। हमें न तो यहाँ का खाना पसन्द आया, न ही यहाँ की मय। यहाँ ख़रबूज़ों तक में कोई स्वाद नहीं था और खाते ही पेट में हवा की शिकायत होने लगती। आमों की जो इतनी तारीफ़ सुनी थी, वह हमें ज़रूरत से ज़्यादा मीठे लगे। दिल्ली की आबोहवा भी इन्सान में काहिली पैदा करनेवाली है। गर्मियों में घमौरियाँ निकल आएँ तो इन्सान चिड़चिड़ा न हो, तो क्या हो ?

हमने हुक्म दिया कि दिल्ली से जो भी इकट्ठा किया गया है, हाथियों, ऊँटों और ख़च्चरों पर लादकर ईरान लौटने की तैयारियाँ शुरू कर दी जायँ। हमने हिन्दुस्तान की हुकूमत का भी माकूल बन्दोबस्त कर दिया था। सिन्धु नदी के उस तरफ़ पड़ते चार सूबों को हमने अपनी ईरानी सल्तनत में मिला लिया था और बाक़ी के मुहम्मद शाह और निज़ामुल-मुल्क के पास रहने दिए। बादशाह मुहम्मद शाह सीधा-सादा और मौज-मस्तीपसन्द था, पर उसका वज़ीर बेहद काइयाँ था। हमने यह भी सोच लिया था कि अगह हमारा यह बन्दोबस्त ठीक-ठाक न चला तो हम हिन्दुस्तान को अपनी सल्तनत में मिला लेंगे।

5 मई, 1739 को हमने मुग़लों की राजधानी दिल्ली से ईरान-वापसी के लिए कूच किया। सिर्फ़ दो जनों को हम यहाँ अपने दिल का कुछ हिस्सा सौंपे जा रहे थे—एक था कड़वी ज़ुबानवाला हक़ीम अलवी ख़ान और दूसरा—वह लड़की नूर बाई। बादशाह को अपनी सल्तनत की सरहद में आती किसी भी चीज़ को माँगने का हक़ है, सिवाय एक ईमानदार आदमी और एक औरत के दिल के। हम चाहते तो दोनों ज़बरदस्ती अपने साथ ले जाते, लेकिन हम जानते थे कि बूढ़ा हकीम उतने लम्बे सफ़र की दिक़्क़तें नहीं झेल पाएगा और लड़की पूरे वक़्त रोती ही रहती। और फिर हम सिर्फ़ नूर बाई का जिस्म ही तो लेकर जा सकते थे, दिल तो उसका यहीं, दिल्ली में ही लगा रहता।

हमने हकीम को तोहफ़ों से लाद दिया और नूर बाई को उसके वज़न के बराबर सोना दिया। हमने दिल्ली को अलविदा कहा और ईरान को वापस कूच किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13

भागमती

भागमती अभी-अभी गई है। मुझे डर है कि पिछली रात के प्यार-मुहब्बत से उसे संतुष्टि नहीं मिली। पर मैं भी क्या करूँ? अब मैं बूढ़ा हो चला हूँ। थोड़ा-सा रूखा और चिड़चिड़ा भी होता जा रहा हूँ। फ़ोन की घंटी बज रही है। मैं रिसीवर उठाता हूँ। तुग़लक रोड पुलिस स्टेशन से कोई बोल रहा है, "आप क्या बुधसिंह के मालिक हैं?"

"हाँ, ऐसा ही समझिए। वह हमारे पूरे ब्लॉक का चौकीदार है। मैं अपने घर की निगरानी करने के लिए उसको कुछ अलग से भी देता हूँ। क्या बात है? क्या कोई एक्सीडेंट-सेक्सीडेंट हो गया है उसका?"

"नहीं, औरतों के साथ छेड़ख़ानी करता पकड़ा गया है वह।"

बुधसिंह के बारे में मैं और कुछ भी मान सकता हूँ, पर औरतों से छेड़ख़ानी की बात नहीं मान सकता। ज़रूर कोई ग़लतफ़हमी हुई है। अगर उस बेचारे ने मुझे अपना मालिक बताया है तो मेरा फ़र्ज़ बनता है कि मैं उसको बचाने जाऊँ। मैं पुलिस स्टेशन पहुँचता हूँ।

बुधसिंह हथकड़ियों में जकड़ा फ़र्श पर बैठा है और उसकी हथकड़ी की ज़ंजीर कुर्सी पर बैठे पान चबाते एक सिपाही के साथ बँधी है। उन दोनों में से किसी का भी ध्यान मेरी ओर नहीं गया। मैं झुककर बुधसिंह से पूछता हूँ कि क्या बात हुई? वह बिना कुछ कहे मुझे घूरने लगता है। मैं उससे खुशामदी लहजे में पूछता हूँ कि जो कुछ भी हुआ, मुझे बता दे ताकि मैं उसको ज़मानत पर छुड़ा ले जाऊँ। सिपाही फ़र्श पर पान की पीक थूकता कहता है, "पागल है साब!" बुधसिंह धीरे से अपना सिर घुमाकर कांस्टेबल को बहुत कातर दृष्टि से देखता है और बुदबुदाता है, "पागल तू, तेरी माँ पागल, तेरी बहन पागल! तू मुझे पागल कहता है, बहिनचोद!"

"मैंने आपको कहा न कि यह पागल है," सिपाही वैसे ही शांति से पान की जुगाली करते-करते बोलता है, "इससे बात करने का कोई फ़ायदा नहीं। भीतर जाइए, इंस्पेक्टर साहब से बात करिए।"

मैं भीतर रिपोर्टिंग रूम में जाता हूँ और उनको बताता हूँ कि मैं किसलिए आया हूँ। सब-इंस्पेक्टर मुझे बैठने को कहता है और बताता है कि बुधसिंह औरतों के साथ छेड़ख़ानी करता पकड़ा गया है। मैं उसकी बात का विरोध करता हूँ और उसको बताता हूँ कि बुधसिंह बिल्कुल बेदाग़ चरित्र का आदमी है। इसको औरतों से कभी कोई वास्ता नहीं रहा। लेकिन कभी-कभी इसके दिमाग़ में कुछ सनक-सी सवार हो जाती है।

सब-इंस्पेक्टर सिर हिलाता है और मुझे बुधसिंह के कारनामों के बारे में बताने लगता है। वह बताता है कि बुधसिंह कनॉट प्लेस के बरामदों में कुछ बुदबुदाते हुए चल रहा था (मैं बीच में उसकी बात काटकर कहता हूँ कि वह अक्सर पाठ करता रहता है, वही बुदबुदा रहा होगा) कि अचानक चलते-चलते उसने एक औरत की छातियाँ दबा दीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ओ हो, बेचारा ! आपको मालूम है कि वह कभी फ़ौज में ट्रक-ड्राइवर था। उसने शायद भोंपूवाला हॉर्न समझकर ही ऐसा किया हो !" मैं उसे समझाता हूँ। कनॉट सर्कस की शिकायत करनेवाली उस औरत से सब-इंस्पेक्टर ज़्यादा समझदार है। लेकिन मुझे बताया गया कि बुधसिंह ने ऐसा कई औरतों के साथ किया। वहाँ बड़ा शोर-शराबा मच गया था और कुछ छात्रों ने इसको पकड़कर मारा भी। लेकिन बात यहीं पर ख़त्म नहीं हुई। एक औरत केलों की टोकरी लिये बरामदे में बैठी केले बेच रही थी। बुधसिंह ने उलट-पुलटकर केलों को देखा और उनके दाम पूछे। उसे लगा कि उनका दाम ज़्यादा लगाया जा रहा है, तो उसने अपनावाला केलेवाली को दिखाते हुए उससे भी कम दाम पर देने की पेशकश की। केलेवाली बुधसिंह के इस कारनामे पर भड़क उठी और उसने कहा कि वह जाकर अपनी माँ को ही दे। बस, बुधसिंह ने केलेवाली के भोंपू भी पकड़ लिये और बौं-बौं करने लगा। उसके बाद ही पुलिस ने उसको गिरफ़्तार किया।

"वह अपनी ट्रक-ड्राइवरी के दिनों को ही याद कर रहा होगा," मैंने फिर दोहराया, "उसको बीच-बीच में कुछ ऐसे ही दौरे पड़ते हैं।"

सब-इंस्पेक्टर काफ़ी भला आदमी है। उन लोगों ने बुधसिंह को पहले ही काफ़ी मारपीट लिया था। अपने किए की काफ़ी सज़ा मिल गई थी उसे। सब-इंस्पेक्टर कहता है, "ध्यान रखें कि यह आगे से ऐसा न करने पाए।"

14

मीर तक़ी 'मीर'

बस यही एक बात मुझे ज़िंदगी-भर समझ नहीं आई कि मैं एक आशिक़ पहले हूँ या शायर। आशिक़ी और शायरी दोनों ने ही मुझे ताउम्र उलझाए रखा। आशिक़ी के चलते मैं बदनाम हुआ और शायरी ने तमाम हिन्दुस्तान में मेरा नाम किया। मेरे इश्क़ ने मुझे दर्द से वाक़िफ़ कराया और मेरे कलाम ने मुझे ज़िंदगी की सबसे अहम खुशी का अहसास दिलाया। लेकिन जो चीज़ मुझे न इश्क़ दे सका और न मेरी शायरी, वह थी दौलत, रुपया-पैसा। फिर भी जो कमाया, लफ़्ज़ों के हार पिरोने के दम पर ही कमाया। जिन लोगों के बीच यह ज़िंदगी बसर हुई, उन्हें तो हीरे की कनी और काँच के मोती के बीच का फ़र्क़ भी कभी मालूम न हुआ। पेट भरने के वास्ते रुपया कमाने के लिए मेरे फ़न का उम्दा होना उतना ज़रूरी नहीं था, जितनी मेरे क़द्रदानों की सनकें और चाहतें। मेरे अब्बा हजूर मीर मोहम्मद अली, जो एक सूफ़ी थे, एक दिन मुझसे बोले, "बेटा, मुझे तुम्हारे कल की सोचकर फ़िक्र होती है। तुम्हारे दिल में जो आग भड़की हुई है, पता नहीं वह तुम्हारे लिए कैसी साबित होगी !" मेरी उम्र तब सिर्फ़ नौ साल थी। उनकी बातों पर मैं हँस दिया। अब्बा लेकिन जानते थे। उम्र के तजुर्बे ने ही शायद उन्हें यह अहसास करा दिया था कि मेरे भीतर उठती प्यार की आग मुझे बनाएगी भी और बिगाड़ेगी भी। इसीसे वे मेरे लिए फ़िक्रमंद थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रोज़ शाम को नमाज़ से उठते ही मुझसे बोले, "बेटा, ज़माना बड़ी रफ़्तार से बदलता है और इसके साथ चलने के लिए क़दम भी उतनी ही तेज़ी से बढ़ाने पड़ते हैं। ज़िंदगी की यह डगर भी बड़ी ऊबड़-खाबड़ होती है। हर क़दम यहाँ फूँक-फूँककर रखना होता है। इसलिए जो भी वक़्त मिले, उसे अपनी खोज में लगाओ, अपने-आपको जानने में।" तब मैं दस साल का रहा होऊँगा। जो जी में आता, किया करता था। अब्बू की बातें सुनकर सोचने लगा कि वे भी क्या अजीब बातें करते हैं! अपने बारे में ऐसा क्या है जो मैं नहीं जानता?

हम अकबराबाद (आगरा) के बाहरी हिस्से में एक दरगाह में रहा करते थे। मेरे सगे और सौतेले भाइयों के अलावा चचा अमानुल्ला भी हमारे साथ रहते थे। चचा भी अब्बा की ही तरह ज़्यादातर वक्त नमाज़ और तस्बीह फेरने में ही बिताया करते थे। इनसे फुर्सत पाते तो 'मुहब्बत' को लेकर बहस में उलझे रहते। अब्बा कहते कि खुदा को प्यार करने का मतलब है, उसकी बनाई तमाम कुदरत को प्यार करना। चचा इसे दूसरी तरह कहते। वे कहते कि खुदा के बनाए जीवों को प्यार करना खुदा को मुहब्बत करना है। मुझे कभी समझ में न आया कि ये दोनों बूढ़े कैसे और क्यों उसी घिसी-पिटी बात को लेकर हर रोज़ नए सिरे से बहस करने में घंटों उलझे रहते हैं। यह तो बहुत बाद में मुझे पता चला कि चचा अमानुल्ला जिस मुहब्बत की बातें किया करते थे, वह दरअसल क्या थी। मुझे कभी-कभी हैरानी होती कि चचाजान खुदा से मुहब्बत करने की नसीहत देते वक़्त अपनी नज़रें ज़मीन से क्यों नहीं उठाते थे, ख़ासकर जब औरतें आसपास हुआ करती थीं। और फिर एक शाम आगरा बाज़ार में सैर करते हुए उन्हें एक ख़ूबसूरत छोकरे से आँखें लड़ाते हुए पाया गया। उस लड़के से उन्हें ऐसी मुहब्बत हुई कि वे अपनी भूख-प्यास, सुख-चैन सब भुला बैठे। कुछ दिनों बाद उस लड़के की मुहब्बत का ग़म ही उन्हें ले डूबा और वे इस दुनिया से चले गए।

मेरे अब्बाजान के लिए मुहब्बत का मतलब कुछ और था। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, "बेटा, मुहब्बत को ही अपनी ज़िंदगी का सच्चा साथी बनाना। मुहब्बत से ही यह सारी कायनात, यह कुदरत चलती है। दुनिया में जो कुछ भी तुम्हें दिखाई देता है, वह सब मुहब्बत की ही जुदा-जुदा सूरतें हैं। आग क्या है? प्यार का एक रूप ही तो! धरती क्या है? मुहब्बत की ही तो नींव है! हवा को देखो, जैसे मुहब्बत की बेचैनी। रात मुहब्बत का ख़्वाब है और दिन उससे जागना।"

उस वक़्त उनकी बातों का मतलब मेरी समझ में नहीं आया करता था। फिर भी, कुछ न जानते हुए भी, मुहब्बत की तलाश बचपन से ही मेरी रूह में ऐसी समाई कि मेरी हर हरकत की लगाम उसके हाथ में आ गई। लेकिन बदक़िस्मती से यह मुहब्बत न तो चचा अमानुल्ला की मुहब्बत थी, न अब्बाजान की। यह तो मुहब्बत का वह उफ़ान था जो इन्सान को तहस-नहस कर डालता है। यह इश्क़ का वह उबाल था जो औरत को अपना दिलो-दिमाग़ देकर मर्द भुगतता है।

मेरे अब्बा ने दो शादियाँ की थीं। पहली बीवी उनकी दिल्ली के मशहूर शायर आरज़ू की बहन लगती थी। उससे उनके एक लड़का हुआ—हफ़ीज़ मुहम्मद। मेरी अम्मा उनकी दूसरी बीवी थी, जिससे तीन और बच्चे हुए। मैं उनमें सबसे बड़ा था। मेरे सौतेले भाई को अपने बाप से रत्ती-भर लगाव नहीं था। सौतेली माँ और उसके बच्चों से, ख़ासकर मुझसे उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नफ़रत थी। मेरे अब्बाजान को इसकी ख़बर थी और इसीलिए वे चाहते थे कि जो कुछ भी उनके पास है, उसे जीते-जी हम लोगों में बाँट दें।

गर्मियों की एक दोपहर की बात है। ज़ोरों की लू चल रही थी। सूरज सिर पर चमक रहा था। ऐसे में ही वे अपने किसी बीमार शागिर्द को देखने आगरा चले गए। लौटकर आए तो लू लगी हुई थी। उन्हें शायद अहसास हो गया था कि अब वे अपनी आख़िरी साँसें ही गिन रहे हैं। मुझे और हफ़ीज़ मुहम्मद को पास बुलाकर कहा, "मेरे बेटो, मैं तो फ़क़ीर आदमी हूँ। मेरे पास न रुपया-पैसा है, न ज़मीन-जायदाद। ये तीन सौ किताबें ही मेरी ज़िंदगी की कुल जमा-पूँजी है। इसके अलावा सिर पर तीन सौ रुपयों का क़र्ज़ भी चढ़ा हुआ है। आँखें बंद करने से पहले मैं ये किताबें और क़र्ज़ तुम दोनों में बराबर-बराबर बाँट देना चाहता हूँ।"

सुनते ही मेरा सौतेला भाई बोला, "अब्बाजान, आपको अच्छी तरह मालूम है कि इस ख़ानदान में एक मैं ही पढ़ने-लिखने का शौक़ीन इन्सान हूँ, जो इन किताबों का असली फ़ायदा उठा सकता है। तक़ी इनका क्या करेगा? पन्ने निकाल-निकालकर उड़ाता रहेगा बस, पतंग बना-बनाकर!"

मेरे अब्बा उसकी बातों से बहुत परेशान हुए, लेकिन मौत के किनारे बैठे वे उसे कहते भी क्या? हल्के-से झिड़कते हुए बोले, "हफ़ीज़ मुहम्मद, मेरी बात ध्यान से सुनो! इल्म की आग तेरे घर को नहीं, तक़ी के घर को चमकाएगी।"

फिर मेरी तरफ़ मुख़ातिब होकर बोले, "बेटा, जब तक मेरा सारा क़र्ज़ न उतार दो, मेरे जिस्म को दफ़्नाना नहीं। फ़िक्र न करना। रुपया आएगा तुम्हारे पास, ज़रूर आएगा।"

ख़ुदा का नाम ज़ुबान पर रखकर मेरे अब्बा ने दुनिया से विदा ले ली। उनके इन्तक़ाल की ख़बर आगरा पहुँची तो अफ़सोस मनानेवालों का हजूम ही हमारे घर पर इकट्ठा हो गया। उनमें कई हिन्दू दुकानदार थे, जिन्होंने मुझे रुपए भी देने चाहे, पर मैंने इन्कार कर दिया। लेकिन मेरे अब्बा के एक मुसलमान शागिर्द ने जब पाँच सौ रुपयों की थैली मेरी गोद में रख दी तो मैं इन्कार न कर सका। मैंने अपने बाप का क़र्ज़ चुकता किया और चचा अमानुल्ला के बराबर ही उन्हें दफ़्ना दिया। उस वक़्त मेरी उम्र ग्यारह साल थी।

मैं अनाथ हो गया था। विधवा माँ और छोटे भाई-बहन का भार मेरे सिर पर था। अब्बाजान को दफ़्नाने की रस्म पूरी करने के बाद मेरे पास सौ रुपए बच रहे थे। अब मेरे पास ये कुछ रुपए थे और अपने बाप का दिया हुआ इल्म।

चाचा अमानुल्ला ने मुझे फ़ारसी और उर्दू सिखायी थी। उन्होंने ही मुझे शायरी का गुर भी सिखाया था। मेरा यह इल्म अमीरों के बच्चों को पढ़ाने के काम आया।

दिल्ली और आगरा के नामी-गिरामी शायरों को सुनने के लिए कभी-कभी मैं मुशायरों में भी जाया करता। मुझे लगा कि उनमें से ज़्यादातर शायरी के नाम पर घिसी-पिटी तुकबन्दी ही कर रहे थे। उनकी शायरी में न कोई नया रुख़ होता, न कोई नयी बात। ऐसे शायरों से मुझे बड़ी कोफ़्त होती, ख़ासकर मसूद नाम के एक गवैए शायर से, जिसे ख़ासा पसन्द किया जाता था और मैं बर्दाश्त नहीं कर पाता था। मसूद लफ़ंगा-सा लगनेवाला ख़ूबसूरत शख़्स था, जो अपने गए-बीते शे'रों की कमी को सुरीली आवाज़ में गा-गाकर पूरी किया करता था। मुशायरा शुरू होते ही लोग 'परवाना-परवाना' (उसका तख़ल्लुस) की पुकार लगाना शुरू कर देते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरतें उसकी दीवानी थीं। हर महफ़िल में मैं देखता कि पर्दानशीन औरतें पर्दों के पीछे से अपनी बाँदियों के हाथ उसके पास अपनी फ़रमाइशें भेजतीं। ये नज़्में ज़्यादातर शमा से परवाने के प्यार की तड़प को लेकर होती थीं। मुझे हैरानी होती कि यह घिसा-पिटा मुहावरा लोगों को इतना क्यों रुचता है? मुझे ज़्यादा चिढ़ तो इस बात से आती कि यह परवाना इस पिटे-पिटाए मज़मून पर भी मजाल है कि कोई नयी चीज़ पेश करता, या कम-अज़-कम नए तरीक़े से ही अपने कलाम को पढ़ने की ज़हमत उठाता। मैं क़बूल करता हूँ कि परवाना को लेकर मेरे मन में पैदा हुई होड़ ने ही मुझे शायरी में अपना हाथ आज़माने के लिए उकसाया।

घर के सारे लोग जब सो रहे होते, तो मैं दीए के सामने बैठा शे'र रच रहा होता। दरिया के पानी की तरह वे मेरे भीतर से बहने लगते। मजलिसों में जाकर लोगों को सुनाने में मुझे झिझक होती थी, पर कुछ अच्छे शायरों को, जिनको मैं औसत दर्जे से ऊँचा मानता था, अपने इन शे'रों को दिखाया करता था। वे हैरान हुआ करते थे कि इतनी छोटी उम्र में मैं शब्दों के साथ कैसे उतना सहज हूँ! कइयों को शक भी होता था कि शायद किन्हीं दूसरे शायरों के कलाम से चोरी की होगी। शे'र सचमुच तुम्हारे अपने हैं, तब तो परवाना के दिन लद चुके! उसे तो फिर शमा पर कूदकर खुदकुशी ही करनी पड़ेगी।

मैंने ज़रा तीखेपन से कहा, "अमाँ यार, आप उस पतंगे को शायर कहते हैं? वह तो महज़ तुकबाज़ है। और वह भी ऐसा बेसुरा कि अब क्या कहें! हिंजड़े को गाते सुना हो तो…"

बात दूर-दूर तक फैल गई कि बारह साल के छोकरे की हिम्मत तो देखो कि आगरा की महफ़िलों के माने हुए बादशाह के बारे में ऐसी बेइज़्ज़त करनेवाली ज़ुबान का इस्तेमाल कर रहा है! बात परवाना के कानों तक भी पहुँची। वह गुर्राया, "कौन है यह मीर तक़ी का बच्चा? ऐसा सबक़ सिखाऊँगा बच्चू को कि ज़िंदगी-भर याद रखेगा!"

उसकी जान-पहचान के लोगों ने उसके डर से मुझसे बात तक करनी बंद कर दी। फिर भी शायद उसके दिल को तसल्ली न हुई और भरी महफ़िल में मेरी बेइज़्ज़ती करने की तरकीब सोची।

आगरा के सबसे बड़े अमीर नवाब रईस मियाँ के घर मुशायरा बुलाया गया था। इन रईस मियाँ की बेगम परवाना की दीवानी थी। किसी ने नवाब के कान में डाल दिया कि मैं भी महफ़िल में हाज़िर हूँ। मैं देख रहा था कि बतानेवाले के इशारे पर नवाब की आँखें शायरों की भीड़ में मुझे तलाश रही हैं। उन्होंने मुझे देखकर सिर हिलाया और सबको सुनाते हुए बोले, "अब देखना तमाशा!"

पहले ही शायर ने अपना कलाम ख़त्म किया तो परवाना के दोस्तो-यारों ने चिल्लाना शुरू किया "परवाना साहिब, परवाना साहिब!"

परवाना ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर लोगों को चुप होने को कहा, "क़द्रदानो, आप मेरे हुनर की क़द्र करते हैं, मैं आपका शुक्रगुज़ार हूँ। बंदा आपका ग़ुलाम है, आप जो भी फ़रमाइश करेंगे, पूरी होगी। पर आज शाम अपना कलाम सुनाने से पहले मैं आपसे इल्तिजा करूँगा कि हिन्दुस्तान के एक उभरते हुए शायर को सुनने के वास्ते आप सब ख़ामोश होकर बैठ जायँ। यह आपका क़सूर बिल्कुल नहीं है कि आपने अभी तक इन साहब का नाम नहीं सुना, क्योंकि अभी तक दुनिया ने इनका कलाम भी नहीं सुना। ख़ैर, अब सुनिए! साहबज़ादे की अभी मसें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नहीं भीगी हैं और यह अपने-आपको उस्तादों के उस्ताद समझ बैठे हैं !"

तन्ज से लदी उसकी बातों को सुनकर उसके यार-दोस्त ठट्ठा मारकर हँसने लगे। वह अपने एक दोस्त की ओर मुख़ातिब होकर पूछने लगा, "क्या नाम बताया था तुमने इस लौंडे का?" फिर ख़ुद ही बोला, "हाँ, याद आया, मीर। पूरा नाम मीर तक़ी 'मीर'। तो चलो, शमा को इनकी शाही हस्ती के आगे खिसकाया जाय।"

मैं तो हक्का-बक्का रह गया! इससे पहले किसी महफ़िल में अपना मुँह तक नहीं खोला था। न ही अपनी लिखी कोई नज़्म या ग़ज़ल साथ लेकर आया था। शमा मेरे सामने खिसका दी गई थी। सैकड़ों आँखें मेरी ओर लगी थीं। मेरे माथे से पसीना टपकने लगा और हाथ काँपने लगे। आँखें मूँदकर मैंने अब्बा हजूर को याद किया और मन-ही-मन कहा, 'या अल्लाह, अब तुम्हीं मेरे रखवाले हो।'

उस वक़्त मुझे सिर्फ़ वही शे'र याद आ रहे थे, जो शमा-परवाना के मज़मून पर थे। लेकिन ये परवाना के शे'रों से अलग क़िस्म के थे। फिर मैं यह भी दिखाना चाहता था कि एक ही मज़मून पर कैसे अलग अंदाज़ में कुछ नई चीज़ कही जा सकती है। मैं अपना मज़ाक उड़ानेवाले किराए के उस टट्टू परवाना को नीचा तो दिखाना चाहता था, पर मैंने अपना होश और सलीक़ा बरक़रार रखा। बड़ी मुलायमियत के साथ उसकी पेशे-नज़र करते हुए मैंने अपनी बात यों शुरू की, "परवाना साहब, अपना कलाम पढ़ने से पहले मैं आपको एक तोहफ़ा देने की इजाज़त चाहूँगा और मुझे पूरा यक़ीन है कि आप इसे मंज़ूर करेंगे।" फिर बड़ी सधी और साफ़ आवाज़ में मैं सुनाने लगा—

चाहत का इज़हार किया सो अपना काम ख़राब हुआ,
इस पर्दे के उठ जाने से उसको हमसे हिजाब[1] हुआ,
क्या कहिए महताब[2] में शब[3] की वह भी टुक आ बैठा था,
ताबे-रुख़[4] इस मह[5] ने देखी सौ दर्जा बेताब हुआ,
शमा जो आगे शाम को आयी इश्क़ से जलकर ख़ाक हुई,
सुबह गुले-तर सामने होकर जोशे-शर्म से आब[6] हुआ,
भरते न थे हम इश्क़ के रफ़्ता बेकफ़नी से यानी 'मीर'
देर मयस्सर इस आलम में मरने का असबाब हुआ।

इश्क़ का यह पहलू अब तक किसी शायर की नज़र से नहीं गुज़रा था। लोगों के दिलोदिमाग़ में जब लफ़्ज़ों का असर पैठा, तो एकसुर में महफ़िल गूँज उठी, "मरहबा! सुभान अल्लाह! क्या बात है!" अपनी तारीफ़ से ऊँचे होकर मैंने इश्क़ पर ही एक ग़ज़ल पढ़ने की इजाज़त भी माँगी। यह ग़ज़ल मेरे दिमाग़ में ताज़ा थी, क्योंकि गई रात ही मैंने इसे लिखा था—

क्या कहूँ तुमसे मैं कि क्या है इश्क़
जान का रोग है, बला है इश्क़।
इश्क़ ही इश्क़ है, जहाँ देखो,
सारे आलम में, फिर रहा है इश्क़।

---

1. लज्जा, 2. चाँदनी, 3. रात, 4. चेहरे की चमक, 5. चाँद, 6. पानी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इश्क़ माशूक़, इश्क़ आशिक़ है,
यानी अपना है, मुब्तिला है इश्क़।
इश्क़ है तर्ज़-ो-तौरे - इश्क़ तईं,
कहीं बन्दा, कहीं खुदा है इश्क़।
गर परस्तिश[1] खुदा की साबित है,
किसू सूरत में हो, भला है इश्क़।
दिलकश ऐसा कहाँ है, दुश्मने - जाँ,
मुद्दई है ये, मुद्दआ है इश्क़।
है हमारे भी तौर का आशिक़,
जिस किसी को कहीं हुआ है इश्क़।
कोई ख़्वाहाँ[2] नहीं मुहब्बत का,
तू कहे जिंसे - नारवा[3] है इश्क़।
'मीर' जी ज़र्द होते जाते हो,
क्या कहीं तुमने भी किया है इश्क़?

महफ़िल मेरे कलाम की क़ायल होती जा रही थी। 'वाह, वाह, वाह, मुकर्रर' की आवाज़ें एक पर एक उभर रही थीं। मुझे हर मिसरे को बार-बार दोहराना पड़ रहा था। कई लोगों ने आगे बढ़-बढ़कर मुझ पर चाँदी के सिक्के वारे। तभी एक बाँदी ने मुझे सोने की अशर्फ़ी थमाते हुए एक पर्ची पकड़ायी। लिखा था कि अपने हाथ से अपने उस कलाम की नक़ल बनाकर लाऊँ और अगली सुबह हवेली में हाज़िर होऊँ।

मेरी शायराना ज़िंदगी और मुहब्बत के सफ़र की शुरुआत यहीं से होती है।

उस रात मैं सो नहीं सका। जो वाहवाही मुझे मिली थी, बार-बार दिमाग़ में गूँजती रही। मैंने उस नीम-हकीम परवाना की सारी शेख़ी मिट्टी में मिला दी थी। अब जिस महफ़िल में मैं होऊँगा, वहाँ अपनी सूरत तक दिखाने की जुर्रत वह नहीं कर सकता था। लेकिन यह औरत कौन है, जिसे मेरा कलाम मेरी लिखत में चाहिए? मैं सोच-सोचकर चकरा-सा गया था।

रात-भर की उनींदी के बावजूद सुबह मैं एकदम तरोताज़ा महसूस कर रहा था, एक नए जोश और उमंग से भरा हुआ। मैंने अपनी अम्मीजान को वह सब हाल कह सुनाया, जो बीती रात गुज़रा था। सोने की अशर्फ़ी और चाँदी के सिक्के भी उनके हवाले किए। वे बोलीं, "यह सब तुम्हारे अब्बा की ही दुआ से हुआ है। वे जहाँ भी होंगे, तुम्हें देख रहे होंगे। उनकी दुआ यही होगी तुम हिन्दुस्तान के नामी शायर बनो।"

मैंने बड़ी साफ़-साफ़ लिखावट में अपना कलाम लिखकर तैयार किया और नवाब रईस मियाँ की हवेली की तरफ़ चल पड़ा। मेरे पहुँचने की ख़बर जब भीतर गई, तब नवाब अपने घोड़ों की कसरत करा रहे थे। कुछ देर बाद एक बाँदी आई और मुझे ज़नाने में ले गई। वह ज़रा मुँहफट थी। रास्ते में ही कहने लगी, "अजी! तुम तो अभी लड़के ही हो। मसें भी नहीं भीगीं तुम्हारी तो। ज़नाने में तुम्हारे घुसने पर भला किसे एतराज़ होगा! चलो।"

---

1. पूजा, 2. चाहनेवाला, 3. बुरी चीज़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर ज़नाने में मोटे-मोटे पर्दों की वजह से क़रीब-क़रीब अँधेरा था। ईरानी क़ालीन पर दीवारों से सटे कुछ गाव-तकिए लगे हुए थे। कुछ देर बाद बेगम साहिबा भीतर दाख़िल हुईं। मैंने उन्हें झुककर सलाम किया। फिर दोनों हाथों से अपने कलामवाला पर्चा उनकी नज्र करते हुए बोला, "आपने मेरे मामूली-से कलाम की इतनी तारीफ़ की है, मैं तो बेहद फ़ख्रमंद महसूस कर रहा हूँ।"

वे बात काटते हुए कहने लगी, "नहीं-नहीं, बल्कि फ़ख्र तो हमें होना चाहिए आपको यहाँ देखकर। जब आप हिन्दुस्तान के सबसे बड़े शायर कहलाने लगेंगे, तो याद करिएगा कि इसी हवेली की किसी बेगम ने आपके हुनर और क़ाबलियत की क़ीमत सबसे पहले समझी थी।"

उनके लफ़्ज़ मानो मेरे कानों में अमरित घोल गए। मैंने आँख उठाकर ऊपर देखा। वे गाव-तकिए पर झुकी क़ालीन पर बैठी थीं। उनकी नज़रें मुझ पर ही लगी हुई थीं, इसलिए मैं उनकी ओर ज़्यादा देर तक नहीं देख सका। थोड़े छोटे क़द का गठा हुआ-सा बदन था उनका। उम्र होगी कोई तीसेक साल। गोरा रंग, गोल चेहरा, काली कजरारी बड़ी-बड़ी आँखें और बाल घुटनों तक झूलते। नज़र उनके कसे हुए सीने पर जा ठहरी। उनका एकटक मेरी तरफ़ ताकना मुझे बेचैन किए जा रहा था। लगता था जैसे नज़रों की राह ही निगल जाएँगी मुझे! काफ़ी देर के बाद उन्होंने मुझे बैठने को कहा और अपनी बाँदियों को मेरे लिए नाश्ता-पानी लाने का हुक्म दिया।

खाते-खाते भी मुझे अपने ऊपर उनकी आँखों का ताप महसूस होता रहा। उन्होंने मुझे अपने छोटे बेटे के बिस्मिल्लाह के मौक़े पर आने का न्यौता दिया। फिर पूछा कि क्या मैं उनकी लिखी नज़्मों को देखने और उनमें सुधार करने के लिए कुछ वक़्त निकाल सकूँगा? अपने बच्चों को पढ़ाने की बाबत भी उन्होंने मुझसे पूछा। मुझे ऐसा लग रहा था गोया मैं एक परिंदा होऊँ और मेरे ऊपर रेशम का जाल फैलाया जा रहा हो। एक तरह से मैं ख़ुश भी था, पर एक दबा-दबा-सा डर भी कहीं मुझे दबोचे जा रहा था। मेरी ग़रीबी के दिनों के कटने के आसार तो नज़र आ रहे थे, लेकिन लगता था कि ज़िंदगी की आज़ादी हाथ से जानेवाली है।

मैंने अम्मी को इस मुलाक़ात के बारे में सब जस-का-तस बतला दिया। मेरी तरह उन्हें भी ख़ुशी के साथ-साथ कहीं एक हल्का-सा ख़तरा भी महसूस हुआ। बोलीं, "मैंने इन बेगम साहिबा के बारे में काफ़ी कुछ सुन रखा है। ग़रीब ख़ानदान से थीं यह। सोलह साल की थीं तो नवाब रईस को सौंप दी गईं। रईस की उम्र तब पचास से ऊपर ही थी और पहली बेगम से कई बच्चे भी थे नवाब के। लोग तो कहते हैं कि इन बेगम का दूसरा बच्चा अपने शौहर से नहीं है, बल्कि उस शायर परवाना से है, जो कुछ दिनों तक उनका (बेगम का) उस्ताद रहा; शायरी सिखाता था उनको। नवाब रईस अब काफ़ी बुड्ढा हो चला है और अक्सर तो दिल्ली भागा रहता है।" वे कुछ सोचकर फिर बोलीं, "बेटा, तू भी अब शादी के लायक़ हो चला है। कोई अच्छी-सी लड़की तलाशनी है अब तेरे लिए।"

मैं तब सिर्फ़ पंद्रह साल का ही था। लेकिन समझ रहा था कि अम्मी को क्या फ़िक्र सताने लगा था। वे सोच रही थीं कि क्यों न बेगम साहिबा के पास ख़ुद जाकर उनकी ख़ातिर-तवज्जह के लिए शुक्रिया अदा कर आएँ और मेरे लिए लड़की ढूँढने की बात छेड़ उनसे सलाह माँगें!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेगम साहिबा ने मेरी अम्मीजान की जी-भर ख़ातिर की। लौटते वक़्त उन्हें रेशमी कपड़े भेंट किए। उन्हें सराहते हुए कहा कि वे ऐसे लाल की माँ हैं जो कुछ ही दिनों में हिन्दुस्तान के आसमान पर चमकते हुए सितारे की तरह मशहूर शायर बनने जा रहा है। तभी अम्मी ने उनके मेरे वास्ते लड़की देखने की बात चलायी। बेगम बोली, "यह तो आप मेरे ऊपर छोड़ दें। मेरी नज़र में एक बिल्कुल क़ाबिल लड़की है उनके वास्ते। आप चाहें तो उसे देख भी सकती हैं।" मेरी अम्मी क्या कहतीं! बोलीं, "बेगम साहिबा! अगर आपकी नज़र में लड़की जँच रही है तो हमें क्या कहना है! आपकी पसन्द सिर-आँखों पर।"

अगले दिन मैं गया तो बेगम साहिबा मुझे चिढ़ाते हुए बोलीं कि उन्होंने मेरे वास्ते लड़की देख ली है। कहने लगीं, "हूरी तो नहीं है वह, सीधी-सादी लड़की है। सफ़ेद संगमरमर-सी साफ़-पाक। उसके-जैसी बीवी के रहते तुम्हें बदनामी का कोई ख़तरा नहीं होगा। उसके माँ-बाप अमीर तो नहीं हैं, लेकिन शादी का सारा ख़र्च हम खुद उठाएँगे और दान-दहेज भी देंगे। तुम्हें मेरी पसन्द पर अफ़सोस करने का मौक़ा कभी नहीं आएगा।"

मेरे लिए चुनी गई उस लड़की के बाप से बेगम साहिबा की दूर की रिश्तेदारी थी। नवाब के किसी बग़ीचे की देखभाल का काम उसके ज़िम्मे था। बेगम साहिबा के मंसूबों का पता तो मुझे सलीमा से शादी करने के बाद ही चला। मेरी बीवी हूरी तो क्या, बाँस के डंडे की तरह पतली थी। दोनों हाथों के बीच उसकी कमर थामी जा सकती थी। सीना एकदम चिपटा, सपाट। मुँह बन्द करके रहने पर भी उसके दो दाँत बाहर निकले दिखते थे। बोलती तो मसूढ़े भी दिखने लगते। सफ़ेद संगमरमर की तरह साफ़-पाक होने के सिवा उसके पास चारा भी क्या था!

बेगम साहिबा मनमर्ज़ी की मालिक थीं। एक बार जो तय कर लेतीं, पूरा करके छोड़तीं। शौहर की जगह बूढ़ा नवाब था। आशिक़ी के वास्ते अपने-आपको शायर कहनेवाला तुक्कड़ गवैया परवाना था। शायरी की क़द्र करने की बेगम की कसौटी थी लोगों से शायर को मिलनेवाली वाहवाही, न कि उसकी अपनी हुनरमन्दी। अब शायरी के आसमान पर मीर तक़ी का सितारा बुलन्द होते देखा तो उसकी माशूक़ा बनने के ख़्वाब देखने लगी। तक़ी को बीवी भी ऐसी ढूँढकर दी कि जिसकी तरफ़ वह ताके तक नहीं।

बेगम साहिबा का नाम मैं नहीं बताऊँगा, क्योंकि 'पाक शरीयत' में गिनाए गए गुनाहों में सबसे बुरा गुनाह है उस औरत को दग़ा देना, जिसने अपनी खुशी से अपना तन-मन आपको सौंपा हो। इसलिए मैंने जो नाम उनको दिया था, वही बताऊँगा—क़मरुन्निसा।

अब वह मेरी क़मरुन्निसा थी, बेगम साहिबा नहीं। क़मरुन्निसा नाम मैंने उसे इसलिए दिया, क्योंकि उसका चेहरा चाँद की तरह गोरा और गोलाई लिये हुए था। यह नाम उसे बेहद पसन्द भी आया था। वह बहुत खुश हुई। औरत में जितनी ख़ूबियाँ होनी चाहिएँ, वे सब मेरी क़मररुन्निसा में थीं। उसे मर्द को रिझाना आता था और रिझाने के बाद उसे अपने में उलझाए रखने का फ़न भी उसे ख़ूब आता था। ऐसा मुग़ालता पैदा कर देती थी कि मर्द बेचारा यही समझे कि वह बस उसकी ज़िंदगी का सबसे अहम हिस्सा है। अपने तन-मन को वह खुलकर अपने आशिक़ पर वारती। जब तक वह मेरी महबूबा रही, मुझे ऐसा लगता रहा कि बस मैं ही उसका एक खुदा हूँ और मेरा लिखा हर हर्फ़, हर लफ़्ज़ उसके लिए कुरान का सूरा है। कभी वह मेरी माँ बन जाती, कभी महबूबा, कभी हमसफ़र और कभी सेवादार बाँदी। मुझसे एक पल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी जुदा होना उसे बर्दाश्त नहीं होता। अपनी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ किसी से मेरा मिलना-जुलना और दोस्ती-यारी भी उससे सहन न होती। उसने मुझसे ज़िंदगी-भर वफ़ादार रहने के वादे किए। कभी-कभी मुझे लगने लगता कि मैं बेड़ियों में जकड़ा हुआ हूँ। मैं उन्हें तोड़कर आज़ाद होने के लिए कसमसाने लगता। लेकिन फिर लगता कि उसकी रेशमी ज़ुल्फ़ों का जाल खुदा ने ही मेरे लिए बुनकर भेजा है और मैं उसकी गिरफ़्त से निकलना भी चाहूँ तो निकल नहीं सकूँगा।

पर वह दिन भी आया जब उसने मुझे घिसी हुई जूती की तरह अपने दिलो-दिमाग़ से निकाल फेंका। हुआ यह कि मेरे दिल्ली जाने के दौरान एक और तुकबाज़ शायर आगरा की महफ़िलों पर छाने लगा। उसकी ख़ूबी बस इतनी ही थी और बेगम साहिबा अब उस पर मर मिटने को आमादा हो बैठी थीं। बेगम की बेवफ़ाई ने मेरा दिल ऐसा तोड़ा कि मुझे बर्बाद करके छोड़ा। ख़ैर, मुझे बनाया भी तो उसी ने था! और अब बर्बाद भी उसी ने किया! यही कहानी है मीर तक़ी 'मीर' की, एक शायर और एक आशिक़ की।

यह तो पहले ही बता चुका हूँ कि नवाब रईस की हवेली में आने का न्यौता मुझे कैसे मिला। मुझे उनके बेटों को पढ़ाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई। पढ़ाने के दौरान बेगम साहिबा वहीं बनी रहतीं। मैं बच्चों को पढ़ा रहा होता और उनकी निगाहें मुझी पर जड़ी होतीं। सबक़ ख़त्म होते ही वे ज़िद करने लगतीं कि पिछली रात मैंने जो कुछ भी लिखा हो, उन्हें पढ़कर सुनाऊँ। हर मिसरे पर वे 'वाह, वाह' कहतीं और क़तअ पूरा होने पर कहतीं, 'सुभान अल्लाह!' जब पढ़ चुकता तो काग़ज़ मेरे हाथ से लेकर अपने सीने से लगा लेतीं। फिर वे अपनी लिखी ग़ज़लें और नज़्में मुझे दिखातीं। हालाँकि वह मामूली क़िस्म की शायरी होती, पर सब-की-सब मेरे ऊपर लिखी और मुझी को नज़्र होती। मैं उनकी तारीफ़ करता, फिर उन्हें इसलाह देता कि तुक और ताल में क्या-क्या सुधार किए जा सकते हैं। कभी मैं काग़ज़ उनके हाथ से लेकर अपने माथे से लगा लेता।

मेरा दोपहर का खाना उन्हीं के यहाँ होता। शाम को घर लौटता तो देखता कि बिरयानी वग़ैरह उन्होंने घर पर भी भेज रखी है। बस इसी तरह वे मुझे मुग़ल सल्तनत का सबसे खुशनसीब इन्सान होने का अहसास कराती रहतीं। हड्डियों के ढाँचे-सरीखी अपनी बीवी को बिस्तर में छूते हुए भी यही सोचा करता कि बेगम क़मरुन्निसा के गदराए बदन को छू रहा हूँ।

बेगम साहिबा जब एक बार किसी चीज़ को हासिल करने का तय कर लेतीं, तो ऐसे मंसूबे तैयार करतीं कि सब खुद-ब-खुद उनके जाल में आ फँसते। पुतलियाँ नचाने की कला में कोई उनका सानी नहीं था। हम जिस तरह एक-दूसरे के कलाम की अदला-बदली करते थे, वे समझ तो गई थीं कि मुझे फँसाया जा सकता है। फिर उन्होंने काँटा अपने शौहर पर फेंका। नवाब को उन्होंने यक़ीन दिला दिया कि उनका तुरन्त दिल्ली जाना बहुत ज़रूरी है। दिल्ली से अफ़वाहें आ रही थीं कि नादिरशाह वहाँ हमला करनेवाला है। अफ़वाहों की सच्चाई की जानकारी दिल्ली जाकर ही हो सकती थी। नवाब को उन्होंने यह भी कहा कि दिल्ली के सबसे ताक़तवर नवाब सम्सामुद्दौला से कहकर मेरी मुलाक़ात बादशाह से करवा दें। अब भला कौन शक कर सकता था कि उनकी नज़र मुझ पर है, क्योंकि अगर ऐसा होता तो आगरा से दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली में मुझे भेजने का बन्दोबस्त क्यों करतीं? उनके शौहर ने उनकी बातें मानीं सो मानीं, मुझसे हवेली में ही रहने की गुज़ारिश भी की, ताकि उन्हें लगे कि उनका कोई ख़ैरख़्वाह उनके पीछे भी उनकी हवेली में रहेगा तो बेगम को सहारा रहेगा और बच्चों की तालीम भी ठीक-ठीक चलती रहेगी।

नवाब रईस के अपने घुड़सवारों के साथ दिल्ली की तरफ़ कूच करते ही हवेली के भीतरी बन्दोबस्त में ख़ासी फेरबदल हुई। लड़कों को अपने अब्बा हज़ूर के कमरे में भेज दिया गया, उनका कमरा मुझे सौंप दिया गया और इन दोनों कमरों के बीच बेगम साहिबा ने अपनी आरामगाह रखी।

वे जानती थीं कि ये क़ीमती लम्हे ज़्यादा दिनों के नहीं हैं, इसलिए एक पल भी वे बर्बाद करना नहीं चाहती थीं। वे जितनी चालाक थीं, उतनी ही बदहिम्मती भी। सुबह ही उन्हें मैंने अपने बूढ़े मियाँ को आँखों में आँसू भरे विदाई देते देखा था और अब टाँगों और बग़लों के बाल सफ़ा करवाकर ख़ुशबूदार तेलों से मालिश करा रही थीं। मैंने यह सब दोपहर के खाने के एक घंटा-भर बाद देखा, जब बच्चे सो रहे थे और नौकर-चाकर आराम के वास्ते अपनी कोठरियों में चले गए थे।

रात को वो मेरे पास ऐसे चली आईं, जैसे बिस्तर में इन्तज़ार करते शौहर के पास आई हों। बरसों से शादी-शुदा जोड़ों की तरह हमने इश्क़िया बातों में वक्त बर्बाद नहीं किया। उन्होंने बत्ती तक बुझाने का इंतज़ार नहीं किया कि अपने कपड़े उतारने शुरू कर दिए। फिर उन्होंने मेरे गले में बाहें डाल दीं और हम एक-दूसरे के होंठों का शहद न जाने कितनी देर तक पीते रहे। फिर उन्होंने मुझे बिस्तर पर हल्का-सा धक्का दिया और ख़ुद भी लुढ़क गईं। उनका सारा बदन थरथरा रहा था। लुत्फ़ का ऐसा सैलाब मैंने अपनी ज़िंदगी में कभी नहीं जाना, न ही उसे लफ़्ज़ों में बाँधना मेरे बस की बात है।

वे उठने को हुईं तो मैंने उन्हें कमर से थामकर रोका और बाहों में बाँध लियां। उम्र और अनुभव में वे मुझसे बड़ी थीं, मैं छोटा था। शायद इसीलिए मुझमें जोश भी अधिक था। उनकी मुस्कराहट में उनकी 'हाँ' छुपी थी। उन्होंने मुझे ख़ुद पर अपना मालिकाना हक़ जमाने की इजाज़त दे दी। मैं उनके चेहरे, गर्दन, छातियों—सब कहीं अपने जोशीले प्यार के अशआर जड़ता रहा। वह सारी रात हमारी मस्ती की गवाह बनी।

मैं शायद थककर सो गया था। पता नहीं कब वे मेरे कमरे से निकलकर अपनी आरामगाह मं चली गईं। मैं जान नहीं पाया। सुबह उठा तो लगा जैसे पलकें गोंद से चिपका दी गई हों; आँखें खुल ही नहीं रही थीं। लेकिन फिर भी थकान नहीं लग रही थी, बल्कि एक नई ताज़गी, एक नयी फुर्ती मेरे सारे वजूद पर तारी थी। उनके शौहर के साथ मैंने दग़ा किया था। उनके भरोसे का नाजायज़ फ़ायदा उठाया था। अपनी बीवी को भी मैंने धोखा दिया था। लेकिन किसी भी बात के लिए मेरे मन में गुनाह का कोई अहसास नहीं था, बल्कि लग रहा था कि हम दोनों तन और मन से एक-दूसरे के लिए ही बनाए गए हैं। ख़ुदा ने हमारी इस ख़ुदाई मुहब्बत को अपनी दुआएँ बख़्शीं थीं।

मैं अहाते की तरफ़ गया तो देखा—बेगम साहिबा मूढ़े पर बैठी दो बाँदियों से अपने पैरों की मालिश करवा रही हैं। फ़र्श पर चारों तरफ़ नवाब के पालतू कबूतर इधर-उधर फुदकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुटरगूँ कर रहे हैं। मैंने अपना आदाब पेश किया तो बेगम साहिबा बोलीं, "उम्मीद है कि हमारे शायर साहब को नींद अच्छी आई होगी !" फिर एक बाँदी को मेरे लिए नाश्ता लाने को कहा। नवाब साहब का अपने नाम सिकन्दरा से लिखा ख़त पढ़कर सुनाने के बाद बोलीं कि मेरी बीवी के लिए सूखे मेवों का थाल उन्होंने मेरे घर भिजवा दिया है।

बेगम ने हम दोनों की ज़िंदगी का ढर्रा अपने मन-मुताबिक़ तय कर दिया था। अपने बेटों को पढ़ाने के लिए जितना पैसा वे मुझे देती थीं, उतने की उम्मीद मेरी माँ और बीवी ने कभी नहीं की थी। मेरी बीवी को फुसलाने का उनका ढंग भी निराला था। उससे कहतीं, "मेरे बच्चों को क्या तुम अपना नहीं मानतीं ? तुम्हारे शौहर उन्हें पढ़ाते हैं, यह क्या कम एहसान है उनका हम पर ! उनके एवज़ में हम उन्हें दे ही क्या सकते हैं ! यह जो हम देते हैं, यह तो उनके पान-ख़र्च के बराबर भी नहीं होगा।" रुपयों-पैसों और तरह-तरह की भेंटों से वे मेरी बीवी को बहलाए रखतीं। अपने नवाब साहब को भी हाथ में रखतीं। उन्हें लिखा कि मुझसे बाक़ी सभी काम छुड़वाकर मुझे उन्होंने अपने बच्चों की पढ़ाई पर लगा रखा है।

यह बात ज़रूर थी कि मेरे साथ वे पूरी सच्चाई से पेश आतीं। वे दुनिया से झूठ बोल सकती थीं, पर मुझसे नहीं। कई बच्चों के बाप रईस मियाँ के साथ अपनी शादी की बाबत उन्होंने बताया कि नवाब को अपनी और अपने बच्चों की देखभाल के लिए कोई औरत चाहिए थी। वे बस वही करती हैं और नवाब साहब को पूरा वक़्त देती हैं कि वे अपने घोड़ों को कसरत कराया करें या अपने कबूतरों को दाने चुगाते रहें। महीनों बाद कभी-कभार नशे के जोश में उसके बिस्तर पर भी आते हैं। परवाना के साथ अपने इश्क़ को लेकर भी उन्होंने मुझे सब बता दिया और यह भी बताया कि उसका हमल ठहर जाने पर कितनी मुश्किल से उन्होंने उसे गिरवाया था। हम दोनों के बीच अनकहा कुछ भी नहीं बचा था। हमारी राज़दारी इस हद तक बढ़ चुकी थी कि अपनी बीवी के क़रीब जाते हुए मुझे कसूरवार होने का अहसास होता। बेगम साहिबा ने मुझे यह यक़ीन तो दिला दिया कि हमारे इस रिश्ते को बनाए रखने के लिए यह ज़रूरी है कि इसका पता नवाब साहब को न चले, और इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि वे उनके साथ प्यार का ढोंग करती रहें। लेकिन उन्होंने इस बात की क़तई ज़रूरत नहीं समझी कि मैं भी अपनी बीवी के दिल में ऐसा ही कोई भरम बनाए रखूँ। वैसे भी उस बेचारी का मुझ पर बस ही क्या चलता था जो इस मसले को लेकर मुझसे कभी जवाब तलब करती। वह तो यही समझती रही कि मैं शे'रो-शायरी और बच्चों की तालीम में उलझा हुआ हूँ।

बेगम के साथ कितने ही खुशगवार दिन ऐसे ही बीतते रहे। उनके गदराए बदन ने मुझे ज़िंदगी का बेहतरीन मतलब समझाया। हम एक-दूसरे की जिस्मानी और दिली ज़रूरतों को जी-भरकर पूरा करते रहे और हर बार यही सोचते रहे कि हमारे तन-मन की भूख हमेशा-हमेशा के लिए मिट जाएगी। पर जब मिलते, तो ऐसा लगता जैसे पहली बार मिल रहे हों। एक-दूसरे की बाहों में सोते-सोते ही सुबह हो जाती। सुबह होते ही वे अपना चेहरा पर्दे में ऐसे ढँक लेतीं, जैसे नई-नवेली दुल्हन हों। मैं जब-तब उनके घूँघट की ओट में छिपे मुखड़े का राज़ जानने को बेताब रहा करता। जब-जब उन्हें देखता, मुझमें उनकी चाहत के जज़्बात भड़क उठते। सच्चे मोती-सी दमकती उनकी काया ! उनके मुख की चमक के सामने तो चाँद की चाँदनी भी फीकी पड़ जाती। उसी आलम में मैंने लिखा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्ती अपनी हुबाब[1] की-सी है,
यह नुमाइश सुराब[2] की - सी है।
नाज़ुकी उसके लब की क्या कहिए,
पंखुड़ी इक गुलाब की - सी है।
बार - बार उसके दर पे जाता हूँ,
हालत अब इज़्तराब[3] की-सी है।
मैं जो बोला कहा कि यह आवाज़,
उसी ख़ाना-ख़राब[4] की-सी है।
'मीर' उन नीम-बाज़[5] आँखों में,
सारी मस्ती शराब की-सी है।

मैं उस हसीन बेगम की मुहब्बत की गिरफ़्त में ऐसा बँधा कि अपनी माँ, बीवी और बाक़ी सारी दुनिया से एकदम अलग-सा हो गया। मेरे रिश्तेदार मुझे ताने देने लगे कि मैं अपने ख़ानदान का ख़याल नहीं रख रहा। उन्हें क्या पता कि मुहब्बत की तड़प से बढ़कर कौन-सी दूसरी खुशी है इस दुनिया में, जो इन्सान को इस क़दर हर एक चीज़ से गाफ़िल बना सकती है !

महीना-भर बाद नवाब रईस दिल्ली से लौट आए। तब तक मुझे पूरा यक़ीन हो चुका था कि अब बेगम की ज़िंदगी में नवाब के लिए कोई जगह नहीं है और किसी-न-किसी बहाने बेगम उन्हें फिर कहीं भेज देंगी। पर मुझे यह देखकर बेहद हैरानी हुई कि नवाब के आने पर वह औरत कैसे इस क़दर बदल सकती है। उनके सामने मेरे साथ वे ऐसे बर्ताव करने लगीं, जैसे मैं कोई बेगाना होऊँ।

नवाब के आने पर वे ख़ूब सजीं-धजीं। अपने सबसे बढ़िया रेशमी कपड़े निकालकर पहने। आँखों में काजल लगाया, होंठों को मिस्सी से लाल किया और ऐसे दिखाने लगीं जैसे नवाब के साथ अकेली होने को बेचैन हो रही हों। दोपहर के खाने के बाद बोलीं, "नवाब साहब सफ़र की थकन से बेहद पस्त हैं," और उन्हें लेकर अपनी आरामगाह में चली गईं। हाथ में क़लम थामे मैं अकेला ही वहाँ खड़ा रह गया।

मेरा मन बेचैन होने लगा। हम दोनों के बीच जो चीज़ पैदा हो चुकी थी, उसके बाद क्या यह मुमकिन था कि हममें से कोई भी किसी और की छुअन तक भी बर्दाश्त कर सके ? पर वे कैसे अपने शौहर के साथ अकेली होने को मचल रही थीं !

दोपहर को अपने कमरे से निकलीं तो उनका हुलिया देखकर मैं और परेशान हो गया। बाल बिखरे हुए थे, काजल गालों तक फैला हुआ था, जैसे दुनिया को बताना चाहती हों कि भीतर अपने शौहर के साथ क्या करती रही हैं। मुझे रूठा हुआ देखकर वे कुछ फ़िक्रमंद-सी दिखीं। लोगों से मेरे बारे में खोज-ख़बर लेनी शुरू की उन्होंने। अपने शौहर के सामने ही कहने लगीं कि मेरी बीवी को उन्होंने कहला भेजा है कि मैं किसी ज़रूरी काम से हवेली में रुका हुआ हूँ। फिर बोलीं, "अब नवाब साहब आपको बताएँगे कि नवाब सम्सामुद्दौला और इनके बीच दिल्ली में क्या-क्या बातचीत हुई !

1. बुलबुला, 2. मृग-मरीचिका, 3. बेचैनी, 4. अभागा, 5. अधखुली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवाब साहब कहने लगे, "हाँ, मुझे फिर जल्द-से-जल्द दिल्ली जाना पड़ेगा, क्योंकि फ़ारस से होनेवाले हमले की खबरें हवा में हैं। अगर बात सच निकली तो हमें अपनी तलवारें कसकर तैयार रहना पड़ेगा। अगर ख़बर उड़ती-उड़ती हुई, तब मैं महीना-भर बाद ही लौट आऊँगा। इस दौरान तुम्हें यहीं रहना होगा और हरम की देखभाल का ज़िम्मा उठाना पड़ेगा।"

बेगम साहिबा भी ख़ुशामद-सी करती बोलीं, "आपको हमारे सिर की क़सम! अगर आपने हमारी बात न मानी तो हम दोनों ही आपसे कभी नहीं बोलेंगे।"

हालाँकि मैं बहुत ख़फ़ा था, पर मेरे पास उनकी बात मानने के सिवा और कोई चारा नहीं था। उस शाम आगरा के तमाम लोग नवाब साहब की ख़ैरियत जानने एक के बाद एक आते रहे और दिल्ली के हाल पूछते रहे। नवाब बड़ी होशियरी से उनकी बातों का जवाब देते। कई बार बात बदलकर टाल देते, "अजी छोड़िए इन बातों को कि दिल्ली में क्या हो रहा है! आप तशरीफ़ रखिए और हमारे ग़रीबखाने की रूखी-सूखी दाल-रोटी खाकर तक़ी साहब का कलाम सुनिए। मीर साहब का कलाम नहीं सुना तो समझिए आपने कुछ भी नहीं सुना।"

बढ़िया दावत के बाद मुशायरा शुरू हो गया। मैं ख़ामोश बैठा बकवास क़िस्म के शायरों की तुकबन्दी सुनता रहा। तभी किसी नौकर ने काग़ज़ का एक पुर्ज़ा मेरे हाथ में थमाया। बेगम साहिबा के हाथ की लिखावट मैं पहचान गया। लिखा था—'आपका कलाम इस नाचीज़ बाँदी को लेकर होना चाहिए।' शमा मेरे आगे खिसका दी गई। पर्दे के पीछे से मुझे उनकी नज़रें ख़ुद पर जड़ी महसूस हुईं और लगा कि उनके कान मुझे सुनने को बेताब होंगे। मैंने शुरू किया—

या रब, कोई हो इश्क़ का बीमार न होवे,
मर जाय वले[1] उसको ये आज़ार न होवे,
ज़िंदाँ[2] में फँसे, तौक़ पड़े, क़ैद में मर जाय,
पर दामे-मुहब्बत[3] में गिरफ़्तार न होवे,
इस वास्ते काँपूँ हूँ कि है आह निपट सर्द,
यह बान कलेजे के कहीं पार न होवे,
सहराए-मुहब्बत[4] है, क़दम देख के रख 'मीर',
यह सैर सरे - कूचा - ओ - बाज़ार न होवे।

इसे सुनकर बेगम के दिल पर क्या गुज़री होगी, पता नहीं; पर मुशायरा देर तक चलता रहा और मेरे कलाम के लिए बार-बार फ़रमाइशें आती रहीं। वाहवाही की शराब मुझे मदहोश किए जा रही थी।

मुशायरे के बाद मैं छत पर अपनी चारपाई पर पड़ा आसमान में बिखरे तारों को ताकता हुआ सोचता रहा कि जो औरत मेरे वजूद का एक हिस्सा बन चुकी है, वही इस वक़्त इसी छत के नीचे किसी और मर्द के आग़ोश में पड़ी है, बेशक वह मर्द उसका शौहर ही सही। मेरे दिल में आग-सी सुलग रही थी। मुझे तो बेगम ने मेरी बीवी से हमेशा-हमेशा के लिए अजनबी बना दिया था और ख़ुद अपने शौहर के साथ उसी तर्ज़ पर जी रही थी, जैसे पहले जीती आई थी।

1. लेकिन, 2. क़ैद, 3. प्रेम-पाश, 4. प्रेम का मरुथल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे महसूस हुआ कि मेरे साथ सख़्त धोखा हुआ है।

नवाब रईस का दिल्ली लौटना तय हो गया था। मैं दिल्ली दरवाज़े तक उन्हें छोड़ने गया। उस दिन हवेली में लौटने की बजाय मैं अपने घर लौट गया। दोपहर को मैंने अपनी बीवी को हमबिस्तर किया और उसे ख़ूब-ख़ूब प्यार किया। उसे पूरा भरोसा हो गया कि मैं उससे मुहब्बत करता हूँ। उसी दोपहर को शायद उसने मेरे दूसरे बेटे को अपनी कोख में लिया और तभी दोपहर को बेगम के नौकर फलों और मेवों के थाल लेकर मेरे घर आ पहुँचे। बाँदी नसीमा ने, जो कि बेगम की राज़दार थी, मुझे एक पर्ची थमा दी। मेरी ही लिखी एक नज़्म थी—

सोज़िशे - दिल[1] से मुफ़्त गलते हैं,
दाग़ जैसे चिराग़ जलते हैं।
इस तरह दिल गया कि हम अब तक,
बैठे रोते हैं, हाथ मलते हैं।
भरी आती हैं आज यूँ आँखें,
जैसे दरिया कहीं उबलते हैं।

आगे लिखा था कि मेरे बिना उसकी दुनिया सूनी हो गई है। अगर मैं अगली सुबह तक न लौटा, तो वह अपनी जान ले लेगी और इल्ज़ाम मेरे सिर जाएगा।

मेरा गुस्सा पल-भर में काफ़ूर हो गया। मुझे अपने किए पर पछतावा होने लगा। मैंने नसीमा से कहा कि मैं कल सुबह आ जाऊँगा।

दूसरे दिन हवेली में पहुँचा तो ऐसा लगा कि कोई मुजरिम होऊँ और अपने गुनाह के लिए माफ़ी माँगने पहुँचा हूँ। मेरी तरफ़ देखे बिना ही बेगम साहिबा ने तन्ज़िया लहजे में कहा, "मीर साहब तो हमसे भिखारियों का-सा बर्ताव करते हैं। जब उनका जी चाहे अपने रहमोकरम के दो टुकड़े हमारे ठूठे में फेंक देते हैं।"

मैं ख़ामोश रहा। कुछ देर बच्चों को पढ़ाया। वे इस बीच बिना बोले मेरी तरफ़ बेचैनी से देखती रहीं। मैंने दोपहर का खाना खाया और अपने कमरे में चला आया। देखा—तकिए के नीचे एक पर्ची पड़ी थी। यह भी मेरा ही कलाम था—

आँखें सफ़ेद, दिल भी जला इंतज़ार में
क्या कुछ न हम भी देख चुके हिज्रे-यार में!

मैं पूरी दोपहर उनका इंतज़ार करता रहा। वे नहीं आईं। शाम को आँगन में अकेली देखकर मैंने रुखाई से पूछा, "मुझे अपने घर जाने की इजाज़त है?" वे बोलीं, "जाइए और मेरे जनाज़े पर भी आपको अब आने की ज़रूरत नहीं।" और चेहरे को दुपट्टे में छुपाकर भीतर भाग गईं।

मुझे इस नाटक में किसी बुरे इन्सान का किरदार निभाने की कोई ख़्वाहिश नहीं थी। मैं सोच रहा था कि काश, नवाब रईस मुझे अपने साथ दिल्ली ले गए होते तो कम-से-कम मैं इस औरत के शिकंजे से तो निकलता! इसने तो मुझे शहद के मटके की मक्खी की तरह फाँस रखा है। अब और न जाने क्या-क्या होनेवाला है! खाना खाकर आराम करने के लिए लेटा ही था कि वे भीतर आईं। बाहर नौकर-चाकर बर्तन माँज रहे थे। उनकी परवाह किए बिना ही उन्होंने

1. दिल की जलन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे पाँवों पर गिरकर रोना शुरू कर दिया। आगरा के सबसे बड़े अमीर की बेगम और एक ग़रीब शायर के क़दमों पर पड़ी रोए!

रोते-रोते ही वे बोलीं, "तुम मुझसे नाराज़ हो? जो चाहे सज़ा दे लो। मुझे मारो! मुझसे रंडियों जैसा बर्ताव करो, पर इस तरह ख़फ़ा मत होवो मुझ पर!"

मैंने उन्हें उठाकर अपनी चारपाई पर बैठाया और उनके आँसू पोंछने लगा। उन्होंने मेरा सिर अपने सीने में छुपा लिया। मैंने उनकी आँखों और होंठों को चूमा। हम एक-दूसरे के आग़ोश में बँधे थे कि वे बोलीं, "चलो, कहीं भाग चलें और शादी कर लें। अपने शौहर से मुझे नफ़रत है। तुम क्या जानो कि उसके हाथों की छुअन भी मुझसे बर्दाश्त नहीं होती, पर…"

मैंने मुस्कुराते हुए उनकी ओर देखा और पूछा, "और तुम्हारे बच्चों का क्या होगा? फिर जो बातें बनेंगी, उनका… ?"

उन्होंने मेरी आँखों मे झाँका, "तुम्हारे लिए मैं सब-कुछ और सबको छोड़ दूँगी। बस तुम्हारी ख़िदमत करूँगी। वादा करो कि मुझसे निकाह करोगे?"

मैंने वादा किया और हम फिर एक-दूसरे की मुहब्बत में खो गए। तनिक झिझकते हुए मैंने पूछा कि क्या उन्होंने नवाब के लौटने के बाद उन्हें अपना बदन सौंपा था। वे नाराज़ी से बोलीं, "मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। तुम क्या समझते हो कि मैं अब कभी उन पर मेहरबान हो सकती हूँ? मुझे मालूम था तुम क्योंकर मुझसे इतने नाराज़ हुए फिर रहे थे। मैं क्या करती? दुनिया के सामने तो दिखावा करना ही पड़ता है न?"

उन्होंने भी मुझसे पूछा कि क्या इस बीच मैंने भी अपनी बीवी के पास जाकर उनसे बेवफ़ाई की है? मैं भी क्या कहता! उन्हीं की तर्ज़ पर बोला, "क्या तुम सोच सकती हो कि मैं ऐसा कर सकता हूँ?"

सब-कुछ भूलकर हम फिर से एक हो गए। इश्क़ और जिस्मानी मिलाप पर जो कुछ भी कभी किन्हीं किताबों में लिखा गया होगा, हमने सब आज़माया। हमने अपनी आपसी बोली भी ईजाद कर ली। वे मुझे 'जान' कहतीं, मैं उन्हें 'क़मर' कहता। किसी भी मर्द और औरत ने शायद एक-दूसरे को उस हद तक नहीं जाना होगा, जिस हद तक हमने एक-दूसरे को जाना।

दिन इसी तरह गुज़रते रहे और रातें भी। जब कभी हम अकेले होते, अपने बीते कल की बातें एक-दूसरे को सुनाते। मेरे पास बताने के वास्ते बहुत कम था, पर बेगम ने अपना कुछ भी मुझसे नहीं छुपाया। बताया कि कैसे वे उस आवारा, बदचलन परवाना के चंगुल में फँस गई थीं जिसने उन्हें आख़िरकार धोखा ही दिया; उनके और अपने रिश्ते का ढिंढोरा पीटा। एक-दूसरे का हर राज़ हम जान गए थे। मर्द के चाहे जितने क़िस्से रहें, लोग भूल-भाल जाते हैं, पर औरत के दामन पर लगा दाग़ हमेशा उसके साथ रहता है। वह औरत जो मेरे सामने उरियाँ पड़ी थी, उसके बारे में क्या मैं सोच भी सकता था कि उसकी ज़िंदगी में कभी कोई और मर्द भी आ सकता है? लेकिन औरतज़ात के बारे में मेरा तजुर्बा बहुत ऊपरी था।

जल्द ही हमारी बदनामी होनी शुरू हो गई। लगता था कि बेगम साहिबा इस तमाम बदनामी को लेकर परेशान नहीं थीं। उनके लिए तब तक फ़िक्र की कोई बात नहीं थी, जब तक यह मामला उनके शौहर के कान तक नहीं पहुँचता। नौकर-चाकर जानते थे कि उनके मुँह से अगर रत्ती-भर बात भी निकली तो बेगम साहिबा के कोप से वे तो क्या, उनके पूरे के पूरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ानदान तबाह हो सकते हैं। इसलिए नवाब रईस को तो वे यही बताते थे कि बेगम साहिबा उनकी ग़ैरहाज़िरी में न खाती थीं, न पीती थीं और रात-दिन उनके सही-सलामत लौटने की दुआएँ माँगा करती थीं। बेचारा बूढ़ा नवाब सुनता तो उदास हो उठता। आदमी के मन की भी क्या कहें ! लेकिन हवेली ही कोई आगरा नहीं थी। मैं जब आगरा के बाज़ारों में निकलता तो जान-पहचान के लोग दोहरी मानीख़ेज़ ज़बान में बात करते, "मीर भाई, आपकी क़लम में कौन-सी ताक़त है कि जो दिलों को चीरने के साथ-साथ··· !" और कोई मेरी पीठ पर धौल जमा कर कहता, "मीर तक़ी, मुक़द्दर की बरसात के क्या हाल हैं ?"

एक शाम मैं अपने घर गया तो अम्मी ने मुझे कोने में ले जाकर कहा, "बेटा तक़ी, जितने मुँह उतनी बातें हो रही हैं। कोई किसी का मुँह तो नहीं बंद कर सकता। आगरा में हर कोई तुम्हारे और बेगम के बारे में बातें कर रहा है। मैं तो इन सब पर यक़ीन नहीं करती, पर अगर उसके शौहर को यह सब पता चल गया तो जानते हो वह क्या करेगा ? उसका गुस्सा बड़ा ही ख़तरनाक है। हम सबका क़त्ल ही करवा देगा वह। सो, मेरी तुमसे इतनी ही बिनती है कि बेटा, हवेली में जाना बंद कर दो। कोई बहाना बना दो। बोल दो कि तुम्हारी बूढ़ी माँ बीमार है ; मरन-किनारे बैठी है। या जो चाहे बहाना बना दो, पर वहाँ जाने का सिलसिला बंद करो।"

मैंने बेगम को माँ की कही सारी बातें बता दीं। सुनकर एक बार तो वे सकते में आ गईं। फिर बोलीं, "लोगों के दिमाग़ भी कितने गंदे होते हैं !" उसके बाद मैंने देखा कि उनका उत्साह ठंडा पड़ गया है। उन्होंने मुझे समझाना शुरू किया कि मेरे लिए हिन्दुस्तान-भर में शोहरत पाने के लिए मुग़ल-दरबार में जाना-माना जाना कितना ज़रूरी है।

महीने-भर बाद उन्होंने मुझे अपने शौहर का लिखा ख़त पढ़कर सुनाया। उन्होंने दिल्ली के राजदरबार में मेरा तआरुफ़ करवाने की बाबत बेगम साहिबा को लिखा था और मुझे इत्तिला देने को कहा था कि मैं तुरन्त दिल्ली के लिए रवाना हो जाऊँ।

उदासी का ढोंग भरती-सी वे बोलीं, "मेरी तो ज़िंदगी ही तुम्हारे बिना वीरान हो जाएगी। पर फिर सोचती हूँ कि एक दिन जब तुम्हारा सितारा हिन्दुस्तान-भर में बुलन्द होगा, तो मैं फ़ख्र करूँगी कि यह शख़्स कभी मेरा आशिक़ था और मैं इसकी माशूक़ा।"

विदाई की घड़ी आई तो उन्होंने हरे रेशमी रूमाल में सोने की कई अशर्फ़ियाँ बाँधकर मुझे थमा दीं और बोलीं, "खुदा ख़ैर करे ! उसका रहमो-करम हमेशा तुम पर बना रहे !" वे आगे कहने लगीं, "अल्लाह हमेशा तुम्हारे साथ रहे ! तुम्हें हर ख़तरे से बचाता रहे ! तुम्हारा नाम और शोहरत हर कोने में ब्यापे !" उनकी दुआओं में बस यही नहीं था कि अल्लाह करे तुम मेरे पास वापस लौट आओ।

जाने से पहले मैंने कुछ शे'र लिखकर उन्हें थमाए, ताकि हमारे प्यार की यादगारें उनके पास बनी रहें। मुझे याद है, मैंने लिखा था—

जब कि पहलू से यार उठता है,
दर्द बे - इख़्तियार उठता है।
अब तलक भी मज़ारे-मजनूँ से,
नातवाँ[1] इक ग़ुबार उठता है।

1. हल्का-सा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह नहीं सकता कि मेरे आगरा छोड़ने से बेगम साहिबा को दुख हुआ होगा या तसल्ली हुई होगी कि चलो पीछा छूटा। यह इन्सान का मन भी क्या है! जज़्बात की एक पोटली ही तो! पहले तो मुझे भी यही लग रहा था कि जैसे पिंजड़े में बंद परिंदे को उड़ने की आज़ादी मिल गयी हो, पर फिर लगा कि सोने के उस पिंजरे को मैं भूल नहीं पा रहा, जिसमें उन्होंने मुझे क़ैद कर रखा था। दो बरस से भी ज़्यादा का साथ रहा था हमारा। मुहब्बत के गीत उन्होंने गाए थे मेरे लिए, मुझे खिलाती-पिलाती रही थीं, मेरी सेवा और मेरा ख़याल करती रही थीं। शायद यह उनकी मुहब्बत ही थी, जिसने मुझे इस क़ाबिल बनाया कि मैं एक नामी शायर बन सका। बहरहाल, जो भी हो, मथुरा को पार करने के बाद मेरे दिमाग़ में न अपनी माँ थी, न अपना छोटा भाई, न अपनी बीवी, न अपना दो साल का बेटा कालू; मेरे दिमाग़ पर छायी थीं तो सिर्फ़ क़मरुन्निसा की यादें।

ये बड़ी उथल-पुथल के दिन थे। जाटों, गूजरों, मराठों और रोहिल्लों के जत्थे मुल्क-भर में घूमते बेक़सूर राहगीरों को लूटा करते। आगरा से दिल्ली की शाही सड़क भी इनके हमलों से महफ़ूज़ नहीं थी। मैंने अपने-आपसे कहा, 'ऐ मीर, सफ़र की शुरुआत में ही क्यों काँटों की शिकायत करने लगे? अभी तो दिल्ली का लम्बा सफ़र बाक़ी है।' मैं हथियारयाफ़्ता घुड़सवारों के काफ़िले के साथ जा रहा था। हम सिर्फ़ दिन में ही सफ़र करते थे। रात को क़िलेबंद सरायों में रुककर आराम करते। ग़यासपुर में हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया और ख़्वाजा अमीर ख़ुसरो की मज़ारों पर सिर नवाने के लिए मैंने अपने हमसफ़र मुसाफ़िरों से विदा ली। इन दोनों शख़्सों के कलाम ने काफ़ी हद तक मुझ पर असर डाला था। दो दिन और दो रातें मैं हुमायूँ के मक़बरे के पास अरब की सराय में रुका रहा। इसी के संगमरमर के बुर्जों पर चढ़कर मैंने मुग़ल बादशाहत के शानदार शहर दिल्ली का पहले-पहल नज़ारा किया था। वही दिल्ली, जो आनेवाले कई बरसों तक मेरी रिहायशी जगह बननेवाली थी।

शहर में मैं दिल्ली-फाटक के रास्ते से दाख़िल हुआ। फाटक पर तैनात हवलदार को नवाब रईस ने पहले ही ख़बर पहुँचाई हुई थी कि मुझे भीतर आने दिया जाय। हवलदार ने अपने एक सिपाही को मुझे रईस मियाँ के डेरे तक पहुँचा आने को कहा। नवाब साहब मेरे ऊपर हद से ज़्यादा मेहरबान थे। वे उस शख़्स पर मेहरबानी कर रहे थे, जिसने उनकी बीवी से मुहब्बत कर उनके साथ नमकहरामी की थी।

मैंने उन्हें बताया कि बेगम साहिबा और बच्चे सब ठीक-ठाक हैं और उनके लौटने की राह देख रहे हैं। और कुछ नहीं तो झूठ बोलने की कला तो मैंने बेगम से सीख ही ली थी।

नवाब रईस के असर से दिल्ली में मुझे रहने की जगह ढूँढ़ने में ख़ास दिक़्क़त नहीं हुई। फतेहपुरी मस्जिद के पास मुझे कुछ कोठरियाँ किराए पर मिल गईं। थीं तो वे घटिया मड़ैयों-सरीखी ही, पर जितने पैसे मेरे बटुए में थे, उनसे उससे बेहतर जगह मिल भी नहीं सकती थी। मैंने अपने इस घर को 'शेख़चिल्ली की क़ब्र' नाम दिया था। इसके बारे में मैंने अपने रोज़नामचे में भी लिखा है। दीवारें जगह-जगह से तिड़की (दरारें) हुई थीं, चारों तरफ़ गर्द ही गर्द, किसी कोने में चूहों की बिलें, कहीं छुछूँदरों के बिल। मच्छरों का तो पक्का डेरा था। वहाँ दीवारों पर मकड़ियों का राज था। छत की कड़ियाँ धुएँ की कालिख से पुती हुईं। रात होते ही झींगुर भी मच्छरों के साथ तान छेड़ देते। यही था मुफ़लिस मीर का ग़रीबख़ाना, जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घंटों-दर-घंटों वह बिताया करता था।

कुछ दिनों बाद नवाब रईस ने मुझे नवाब सम्सामुद्दौला के भतीजे मुहम्मद वसीत से मिलवाया। नवाब सम्सामुद्दौला मुग़ल बादशाहत के पीछे की असली ताक़त थे। मुहम्मद वसीत ने मुझे उम्मीद बँधाई और कहा कि कुछ ही दिनों में होनेवाले एक मुशायरे में मैं अपने हुनर के करतब दिखाऊँ, क्योंकि इसमें उसके चाचा नवाब सम्सामुद्दौला भी तशरीफ़ लानेवाले थे, महफ़िल के ख़ास मेहमान बनकर।

मुशायरे का इंतज़ाम फ़ैज़ बाज़ार, यानी दरियागंज की एक इमारत की छत पर किया गया था। पूरनमासी की रात थी। मुझे उस दिन अपनी क़मरुन्निसा की बेहद याद आई। फ़र्श पर बिछे क़ालीनों पर बर्फ़-सी सफ़ेद चद्दरें बिछी थीं। गाव-तकिए लगे हुए थे। बेला और गुलाब की पंखुड़ियों की सुगंध से सारा आलम महक रहा था। छत की बन्नियों (मुँडेरों) पर शरबत की भरी सुराहियाँ सजी हुई थीं। हवाओं में घुली ख़स की सुगंध बेहद मनभावन लग रही थी।

सिर्फ़ शहर के बड़े अमीर-उमरावों को ही मुशायरे में शामिल होने की दावत दी गयी थी। दिल्ली के दर्जन-भर नामी-गिरामी शायर मौजूद थे। मेरी सौतेली माँ के भाई सिराजुद्दीन अली ख़ान 'आरज़ू' भी तशरीफ़ लाए हुए थे। मेरा नाम वहाँ बहुत-से लोगों ने सुन रखा था, लेकिन किसी ने भी न तो कभी मेरी शक्ल देखी थी, न ही मेरा कलाम सुना था। मैं बेहद घबरा रहा था। हथेलियों से छूटते पसीने को बार-बार क़मीज़ की कन्नी से पोंछता जाता। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि ऐसी शाही मजलिस में मैं अपना कलाम कैसे सुना पाऊँगा!

शाही दरबार के नवाब एक-एक कर तशरीफ़ ला रहे थे। जैसे-जैसे उनके नाम बोले जाते, हम उठते हुए उन्हें सलाम करते। नवाब सम्सामुद्दौला सबसे बाद में तशरीफ़ लाए। हरेक आदमी ने उन्हें झुककर सलाम किया। हमारे दुआ-सलाम का जवाब देकर उन्होंने हमें बैठने को कहा। कुछ देर बाद मेज़बान ने ऐलान किया कि नवाब सम्सामुद्दौला की तरफ़ से अर्ज़ है कि शुअरा और सभी मेहमान मुशायरा शुरू होने से पहले अपनी-अपनी मूँछें गीली कर लें। सुनते ही सभी की बाछें खिल गईं। मैंने यह पहली बार देखा था कि किसी मुशायरे में शरबत के साथ-साथ शराब भी पेश की जा रही हो। सुराहियाँ इधर से उधर जाती रहीं और जल्द ही हर कोई शराब के सुरूर में आ गया। मैंने शराब पहले भी चखी थी, लेकिन इतनी बेहतरीन शराब पहले कभी नहीं पीने को मिली—क़न्धार के अंगूरों से बनी और हिमालय से लाई बर्फ़ में ठंडी की हुई। शराब मुझे वैसे भी रास नहीं आती थी, क्योंकि मेरा जिगर ठीक नहीं रहता था। इसलिए मैंने सोचा कि अगर इस शहर में अपने पहले मुशायरे के दौरान ही मैंने अपना उल्लू बनवा लिया, तो मख़ौल उड़वाने के सिवा और कुछ न हासिल कर पाऊँगा।

मुशायरे की शुरुआत दिल्ली के शायरों से हुई। उनके कलाम उन्हीं पुराने घिसे-पिटे मज़मूनों पर थे—शमा और परवाना, बुलबुल और गुलाब, लैला और मजनूँ। न कोई नया मुद्दा, न कोई नई बात। फिर भी उनकी वाहवाही हो रही थी। काफ़ी देर के बाद क़ंदील मेरे सामने रखी गई। मेज़बान ने मेरा नाम पुकारा। उसने लोगों को मेरे बारे में बताते हुए कहा कि हालाँकि मैं नौ-उम्र हूँ, लेकिन आगरा के बच्चे-बच्चे की ज़ुबान पर मेरा नाम है। उसने लोगों को बताया कि दिल्ली में मेरा कलाम पहली बार सुना जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने झुककर सलाम किया और शुक्रिया अदा करते हुए सबको सुनाते हुए कहा, "साहबान, सुनाने तो मैं जा रहा था इश्क़ पर लिखी अपनी एक नज़्म जिसे आगरा में ख़ूब पसन्द किया गया था, पर यहाँ मय की सुराही को देखकर मुझे कुछ नया सूझ रहा है, जिसे आपको सुनाने की तमन्ना जाग उठी है (सच बताऊँ तो यह ग़ज़ल मैंने आगरा में तब गढ़ी थी, जब एक रात क़मरुन्निसा मुझे आपने होंठों से पिलाकर मदहोश बना रही थी)। महफ़िल 'इरशाद, इरशाद' की आवाज़ों से गूँज उठी। मैंने सुनाना शुरू किया—

ये क्या कि तुम तो
होश में हो,
मैं नशे में हूँ।
डालो न अपने जाम से मय
मेरे जाम में,
अपने नशे को कम न करो
मैं नशे में हूँ।
साक़ी से छुप के,
बैठा हूँ मैं,
खुम की ओट में।
साक़ी कहेगी,
और पियो,
मैं नशे में हूँ।
भूली हुई बातों का,
न यों तज़किरा करो,
यारा, मुझे न छेड़ो,
हटो,
मैं नशे में हूँ।
जो होश में हों,
उनसे करो,
आक़िबत की बात,
मुझसे नशे की बात करो,
मैं नशे में हूँ।

लोग सुनकर हैरान रह गए। एक के बाद एक अमीर उठ-उठकर आते और मुझे गले से लगा लेते। मुझे नवाब सम्सामुद्दौला के पास ले जाया गया। मैंने उनके हाथ को चूमा। वे बड़ी शालीनता से बोले, "बेटा, मैं तुम्हारे वालिद का शागिर्द रह चुका हूँ। तुमको यहाँ दिल्ली में देखकर मैं यही अंदाज़ा लगा सकता हूँ कि वे अब दुनिया में नहीं रहे होंगे। मैं उनका क़र्ज़दार हूँ, उनका क़र्ज़ मुझे उतारना भी है। कल घर पर चले आओ। देखते हैं तुम्हारे वास्ते क्या इंतज़ाम किया जा सकता है!"

मैंने फिर उनका हाथ चूमा और अपनी जगह आकर बैठ गया। अब मैंने अपना प्याला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई बार भरा और पानी की तरह शराब पीता गया। तरह-तरह की आवाज़ें मेरे कानों से टकराती रहीं, पर किसी भी शायर का कलाम मुझे याद नहीं आ रहा।

खाना-पानी वग़ैरह के पहले ही मैं वहाँ से खिसक गया। शराब के नशे में धुत आदमी को सब माफ़ होता है। दिल्ली की उस चाँदनी रात को, क़न्धारी शराब के नशे में डूबे शायर को हर चीज़ बेहद ख़ूबसूरत नज़र आ रही थी। लग रहा था जैसे सड़कों पर चाँदी बिखरी हुई हो। ऊपर आसमान पर कुछेक तारे टिमटिमा रहे थे। मेरे पाँव कुछ लड़खड़ा रहे थे, लेकिन फ़ैज़ बाज़ार से जामिया मस्जिद और वेश्याओं की गली से होते हुए चावड़ी बाज़ार और फिर हौज़ क़ाज़ी की हिंजड़ों की बस्ती तक पहुँचने में मुझे कुछ ख़ास दिक़्क़त नहीं आई। क़मरुन्निसा की यादें बराबर मेरे साथ बनी हुई थीं।

मैं सोच रहा था कि वह इस वक़्त मेरे साथ होती तो हम कितने ख़ुश होते और मुशायरे में मेरी जीत का जश्न उसने और मैंने एक-साथ कितने उत्साह से मनाया होता!

एक पनवाड़ी की दुकान के पास आकर मैं रुक गया। लोगों के घेरे को भेदकर मैं आगे पहुँचा और पनवाड़ी से बोला, "भाई, मेरे लिए एक बढ़िया-सा पान बना दो।" पानवाला मुझे कुछ देर देखता रहा। फिर बोला, "मीर साहब, ऐसा पान लगाता हूँ आपके लिए जैसा आपने पहले कभी नहीं खाया होगा। आप इतने ख़ुश हो जाएँगे कि उस पर एक क़सीदा लिख डालेंगे और हो सकता है उसमें मेरा भी नाम शामिल मिले!"

मैंने पूछा, "पर भाई, तुम मुझे कैसे जानते हो?"

वह मुस्कुराया, "दिल्ली में आज किसकी ज़ुबान पर आपके कलाम का ज़िक्र नहीं है! हजूर, सबकी ज़ुबान पर आपका ही कलाम है।"

अपनी तांबे की परात से उसने मगही पान के पत्तों का एक गड्डा निकाला और उसमें से एक पत्ते पर चूना-कत्था लगाकर सुगंधित सुपाड़ी और ज़र्दा डाला। फिर सच्चे मोतियों का चूरा और सोने की भस्म मिलाकर पत्ते को तहाया और फिर लौंग से बींधकर सुनहरी वर्क़ में लपेटा। पान का बीड़ा थमाते हुए वह बोला, "दिल्ली में हम इसे पलँगतोड़ कहते हैं। ज़रा आज़माइए तो हजूर! और अगर आपको लगे कि मेरी बात रत्ती-भर भी झूठ है तो मेरा नाम हरीराम चौरसिया नहीं...इस शाहजहानाबाद का सबसे मशहूर पनवाड़ी!"

उसका सबके सामने इस तरह मुझसे बात करना मुझे पसन्द नहीं आया। मैंने उसे चाँदी का एक सिक्का दिया और लाल कुआँ की तरफ़ बढ़ने लगा। मैंने पान मुँह में भर लिया। काफ़ी असरदार चीज़ थी। मेरे सारे बदन से पसीने छूटने लगे। तभी मुझे लगा कि पनवाड़ी की दुकान पर खड़े ग्राहकों में से कोई मेरा पीछा कर रहा है। मैंने पीछे मुड़कर एकदम उससे पूछा, "क्यों जनाब, आपको मुझसे कोई काम है क्या?"

उसने बड़े अदब से जवाब दिया, "मीर साहिब, ऐसी हसीन रात इश्क़-प्यार पर कुर्बान की जानी चाहिए और आप इसे सुनसान सड़कें नाप-नापकर बर्बाद कर रहे हैं। चलिए दिल्ली की सबसे हसीन हूर से मिलवाएँ। शाही ख़ानदान की शहज़ादियों से कम नहीं है वह। उम्र है सिर्फ़ सोलह साल। अगर आपको उसने ज़िंदगी का सबसे आला लुत्फ़ न दिया तो मेरा नाम छप्पन मियाँ नहीं!"

कह नहीं सकता कि शराब के सुरूर का असर था या पान का या क़मरुन्निसा की याद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कि मैंने तमाम एहतियात को भूल लाल कुआँ से निकलकर किसी अँधेरी गली में मुड़ती राह पर उस दल्ले के पीछे-पीछे चलना शुरू कर दिया।

एक मामूली-से मकान के पास पहुँचकर उसने दरवाज़ा खटखटाया। भीतर से एक औरत की आवाज़ आई, "इतनी रात गए कौन आया है भला?"

"खोलो, ग्राहक लेकर आया हूँ।"

एक बूढ़ी औरत ने दरवाज़ा खोला और हमें भीतर कर लिया। मुझे सलाम करते हुए वह बोली, "हजूर, रात बहुत हो चुकी है। पर मैं उठाती हूँ अपनी बेटी को और तैयार होने को कहती हूँ···पान के लिए कुछ मिलेगा, हजूर?"

शाम को मिली सोने की अशर्फ़ियों में से एक मैंने उसे थमा दी। अशर्फ़ी पाकर वह खुश हो गई। लेकिन बड़ी ही घाघ क़िस्म की औरत थी वह। अशर्फ़ी को उँगलियों पर नचाते हुए बोली, "मैंने तो सोचा था कि आपके ओहदे के इन्सान से तो··· !" मैंने एक और अशर्फ़ी उसकी हथेली पर रख दी। दलाल को भी उसके हिस्से का देकर मैं बूढ़ी के साथ और भीतर चला।

भीतर चिराग़ जल रहे थे। बुढ़िया ने मेवों की एक तश्तरी मेरे आगे कर रख दी, जिसे मैंने धीरे से वापस खिसका दिया। कुछ देर बाद उसने 'बेटी' कहकर एक लड़की को आवाज़ दी। बेशक लड़की ख़ूबसूरत और कमसिन थी। मेरी क़मर भी इस उम्र में शायद ऐसी ही कमसिन लगती होगी। पर यह लड़की ज़रा ज़्यादा शर्मीली थी।

"अभी बच्ची है, ज़रा नर्मी से पेश आना साहिब इसके साथ!" कमरे से निकलते हुए उसकी माँ ने हिदायत दी।

मैंने एक अशर्फ़ी लड़की को थमायी; बोला, "यह तुम रखो। अम्मी को या उस दल्ले को बताने की ज़रूरत नहीं है।" अशर्फ़ी उसने ले ली और मेरी गोद में सिर रखकर रोने लगी। मैंने उसके लम्बे बालों को सहलाया, उसकी पीठ पर हाथ फेरा और ग़रारे के भीतर उसके कूल्हों को टटोला। मेरी वहशत जाग उठी थी। मैंने उस लड़की को हमबिस्तर किया। क्या मैंने क़मरुन्निसा के साथ बेवफ़ाई की थी? शायद नहीं। इस छोटी लड़की को मैंने मुहब्बत तो नहीं की है। मैं तो इसके साथ अपनी क़मरुन्निसा के साथ बिताए लम्हात को ही दोहरा रहा था।

लड़की ने मेरी खुमारी तोड़ी। बोली, "छप्पन मियाँ बता रहे थे कि आप बड़े नामी शायर हैं। इस बाँदी को भी एक शे'र भेंट कीजिए न!"

मैं उस वक़्त शायरी करने की हालत में नहीं था। पर लड़की का दिल भी नहीं तोड़ना चाहता था। कहा, "अच्छा फिर लाओ काग़ज़, क़लम और स्याही। कुछ लिखता हूँ तुम्हारे वास्ते।"

उसने एक पन्ना और नरकट की क़लम मेरे आगे कर दी और मिट्टी की स्याही की दवात थामकर खुद सामने खड़ी हो गई। कुछ पल सोचकर मैंने लिखा—

राह आँसू की कब तलक तकिए,
ख़ूने-दिल का ही अब मज़ा चखिए।

पता नहीं उसकी समझ में कुछ आया भी होगा कि नहीं!

जब मैं अपने डेरे फ़तेहपुरी लौटा, तो पौ फटनेवाली थी। सिर दर्द से फटा जा रहा था और मुँह सूखा जा रहा था। तभी मुझे अहसास हुआ कि कल शाम अपने कलाम के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली सोने की अशर्फ़ियाँ मेरी जेब से ग़ायब हैं। सब समझ में आ गया। उस सोलह साल की मुग़ल शहज़ादी-जैसी हूर के सिवा और कौन मेरा चोर हो सकता है! मैंने अपने-आपसे कहा—'मीर, ज़रा बचके! यह कोई ऐसी-वैसी जगह नहीं। यह दिल्ली है, दिल्ली!'

नवाब सम्सामुद्दौला के घर पहुँचा तो मेरे दिल की हालत कुछ ठीक नहीं थी। नवाब भी कुछ उखड़े-उखड़े ही लग रहे थे। उनके भतीजे मुहम्मद वसीत ने मेरे लिए उनसे भत्ता बाँधने की बाबत कहा। नवाब ने सुर्ख़-सी आँखों से मुझे देखा और कहा, "हाँ, कल रात हमने इनका कलाम सुना था। बेशक यह क़ाबिले-तारीफ़ शायर हैं। फिर हम इनके मरहूम वालिद के अहसानमन्द भी हैं। इनको रोज़ाना एक रुपया मिल जाया करेगा। अब अगला⋯।"

अगले ग़र्ज़मन्द के मुँह खोलने से पहले ही मैंने काग़ज़ का पुर्ज़ा उनके आगे बढ़ाकर कहा, "नवाब साहिब, अपना हुक्म यहाँ लिख दीजिए।" हालाँकि मैं उम्र में छोटा था, पर जानता था कि नवाब साहब के जिन मुलाज़िमों से मुझे भत्ता मिलना था, वे बिना सबूत मेरी बात मानने को राज़ी न होते, तो मुझे फिर न जाने कितनी बार भटकना पड़ता।

लेकिन मेरी इस छोटी-सी इल्तिजा से ही नवाब साहब का रुख़ बिगड़ गया। बोले, "यह लिखने-लिखाने का वक़्त नहीं है।" मैंने फिर भी उनके साथ जिरह जारी रखी।

नवाब के चेहरे पर मुस्कान उभरी। बोले, "मीर तक़ी, तुम काफ़ी गुस्ताख़ क़िस्म के छोकरे हो। ख़ैर, लाओ। लिख देते हैं काग़ज़ पर अपना हुक्मनामा।"

उन्होंने अपने हाथों मेरे लिए हुक्मनामा लिखा और उस पर दस्तख़त किए। फिर अपनी मोहरवाली अँगूठी से उस पर ठप्पा लगा दिया।

"जाओ, फलो-फूलो! तुम्हारा कलाम तुम्हारे वालिद का नाम रौशन करे!"

उन दिनों दिल्ली के रात-दिन कितने ख़ूबसूरत हुआ करते थे! लोग अपने कलाम पर सलाह-मशविरा लेने के लिए मेरे घर पर भीड़ लगाए रहते। मैं जहाँ भी जाता, मुझे लोग पहचान लेते और मेरी तारीफ़ों के पुल बाँधने शुरू कर देते। शहर-भर में ऐसा कोई मुशायरा नहीं होता, जहाँ मुझे बुलाया नहीं जाता था और जहाँ मैं अपनी धाक न जमा आता था। जामा मस्जिद में जुम्मे की नमाज़ भी अपने-आपमें देखने लायक़ चीज़ होती। हालाँकि मैं शायद ही अपने-आपको मुसलमान समझता था, और हिन्दुओं-मुसलमानों में मुझे कोई फ़र्क़ नहीं नज़र आता था, फिर भी मैं जुम्मे के दिन नमाज़ में शामिल होने ज़रूर जाता, क्योंकि नमाज़ के बाद तमाम भीड़ मुझे घेर लेती थी। दिल्ली के लोगों को मुझसे मुहब्बत थी और मुझे उनसे और उनके शहर से मुहब्बत थी।

हाय! ख़ुशी के दिनों की ज़िंदगी भी कितनी कम होती है! ख़बर मिली कि फ़ारस के नादिरशाह ने अफ़ग़ानिस्तान पर क़ब्ज़ा कर लिया है और अब वह सिन्धु नदी के मुहाने तक आ पहुँचा है। हमलावर का मुक़ाबला करने की तैयारियाँ ज़ोर-शोर से हो रही थीं, लेकिन दिल्ली में एक दहशत-सी छाई हुई थी। अमीर ब्योपारी शहर छोड़-छोड़कर जाने लगे थे। मेरी बीवी मुझे आगरा लौटने के लिए कई ख़त लिख चुकी थी। उसने यह भी लिखा था कि बेगम साहिबा ने खाने-पीने का सामान और भेंटें वग़ैरह भेजना बन्द कर दिया है। अपने बेटों के लिए उन्होंने नया उस्ताद भी रख लिया है। आगरा से आनेवाले लोगों से भी मुझे ख़बर मिली कि बेगम साहिबा, जिन पर मैंने अपना दिलो-जाँ कुर्बान कर रखा था, अब अपने बच्चों के नए उस्ताद पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ुर्बान हुई बैठी हैं और अब खाने-पीने की चीज़ें और तोहफ़े उसके घर जाने लगे हैं। मुझे इन क़िस्सों पर एतबार नहीं हो रहा था। मैंने तय किया कि नवाब रईस से चलकर मिलता हूँ। शायद असलियत का कुछ पता चले।

नवाब रईस उन दिनों दिल्ली आए हुए थे और ईरानी हमले का मुक़ाबला करने के लिए फ़ौज का बन्दोबस्त करने आगरा लौटने ही वाले थे । मैं मिला, तो वे अपने बच्चों के नए उस्ताद की जी-भरकर तारीफ़ करने लगे। कहने लगे कि हालाँकि वह तुम्हारे-जैसा ऊँचा शायर तो नहीं, पर तालीम ख़ूब बढ़िया दे रहा है बच्चों को। उनके बेटे ख़ूब ख़ुश हैं उससे। और अब वह घर का ही एक आदमी बन चुका है। नवाब की ग़ैरहाज़िरी में वही आजकल हवेली का बन्दोबस्त देख रहा है।

दिल्ली पर होनेवाले ईरानियों के हमले को लेकर मेरा मन उतना परेशान नहीं था, जितना आगरा में हो रही इन बातों के बारे में सोच-सोचकर। फिर भी मैं दिल्ली में ही टिका रहा। जब तक यहाँ रहने में जान पर नहीं बन आती, तब तक तो रहना ही था, क्योंकि रोज़ी-रोटी तो कम-अज़-कम मिल ही रही थी यहाँ। मैंने अपने जी को समझाया कि अगर वह औरत इतनी ही दग़ाबाज़ है तो उसकी याद कर-करके मर मिटने से तो अच्छा है उसे भूल ही जाऊँ। पर जितना मैं उसकी यादों को मिटाने की कोशिश करता, उतनी ही ज़्यादा चुभन के साथ उसकी यादें मुझे कोंचती। दिल की जलन को तो आँसुओं के सैलाब से ही बुझाया जा सकता है, एकाध बूँद से तो वह और भड़क उठती है। जिस औरत की मुहब्बत को मैंने नगीनों की तरह अपने कलाम में जड़कर अमर बनाया, जिसके साथ मैंने तन-मन की अदला-बदली की, उसी ने मुझे धोखा दिया ! शायद इसीलिए मेरे मन में सारी इन्सानियत के लिए ही नफ़रत पैदा हो गई और मैं दिन पर दिन झगड़ालू, ग़ुस्सैल और मायूस होता चला गया।

सन् 1737 की पतझार तक नादिरशाह पंजाब के मैदानी इलाक़ों तक बढ़ आया था। मुग़ल फ़ौजें उसे दिल्ली पहुँचने से रोकने के लिए दिल्ली के बाहरी इलाक़ों में तैनात हो गईं। सेनापतियों में नवाब सम्सामुद्दौला भी थे। मैं मुग़लिया फ़ौजों की जीत की ख़ैर मना रहा था, ताकि मेरा ख़ैरख़्वाह और क़द्रदान सम्सामुद्दौला ठीक-ठाक लौट आए।

सन् 1738 के एक दिन करनाल में इन दोनों फ़ौजों की मुठभेड़ हुई और जीत हुई ईरानियों की। हज़ारों लोगों को उस लड़ाई में शहादत मिली। उन्हीं में एक था मीर का रखवाला और पालनहार नवाब सम्सामुद्दौला। उनकी तारीफ़ में मैं जितना भी लिखूँ, उनके बड़प्पन और ज़िंदादिली के लिए नाकाफ़ी होगा। वे तो मेरे सिर पर एक ऐसा साया थे, जिससे मैं अब तक सभी दुःखों-तकलीफ़ों से बचता आया था। मैंने खुदा से मनाया कि उनकी रूह को सकून मिले। मुझसे जलनेवाले शायरों की कमी नहीं थी और अब उनसे मुझे बचानेवाला कोई हिमायती नहीं था, न ही कोई ऐसा दाता बचा था जिसके सामने मैं अपनी ग़रीबी की झोली फैलाता। बिजली का तो काम ही गिरना है। ऐ मीर ! अब यह तुझ पर गिरी है।

करनाल के ख़ात्मे का सुनते ही मैंने एक घोड़ा किराए पर लिया और आगरा के लिए कूच कर गया। अब हिफ़ाजत के लिए किसी काफ़िले में शामिल होने की ज़रूरत नहीं थी, क्योंकि सारा रास्ता ही दिल्ली छोड़कर किसी दूसरे शहरों और गाँवों को भागते लोगों के काफ़िलों से भरा हुआ था। सफ़र के दौरान ईरानियों से ज़्यादा तो अपने ही मुल्क के बाशिंदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से डर लग रहा था। मराठों, जाटों और गूजरों के हाथ जो भी लगता, वे उसे लूट रहे थे। जो भी औरत उनके सामने पड़ती, उसी को वे रौंद डालते। आगरा पहुँचते-पहुँचते मुझे पाँच दिन लग गए। तब तक दिल्ली में नादिरशाह की फ़ौजों ने तबाही मचानी शुरू कर दी थी। मैंने खुद से कहा, 'शहर तो फिर बन और बस जाएगा, पर टूटे हुए दिल को दुनिया की कोई भी ताक़त नहीं जोड़ सकती।'

आगरा मेरे दिल की बर्बादी का शहर था। मैं अपनी आँखों अपने दिल का मलबा देखने फिर लौट आया था। दोस्त, रोना तो मेरा पेशा ही है। कब तक तुम मेरी आँखों के आँसू पोंछते रहोगे ! मुझे याद आती रहीं बीती हुई वे घड़ियाँ, जब क़तरा-दर-क़तरा हमारा इश्क़ बढ़ा था। कैसे हम नदी की तेज़ धार में बहती काग़ज़ की कश्ती की तरह इसमें बहते चले गए थे। मुहब्बत एक ऐसा रोग है जो किसी को नहीं बख़्शता, चाहे कोई बूढ़ा हो या जवान, अकेला हो या शादीशुदा। कैसे मैंने अपने इश्क़ में उस औरत के पाँवों-तले फूल बिछा दिए थे। पहली नज़र में वह मुझे ऐसी कोई ख़ूबसूरत भी नहीं लगी थी, मेरे इश्क़ ने ही उसे मेरी आँखों में दुनिया की सबसे ख़ूबसूरत औरत बना डाला था। सितारों की महफ़िल में वह मुझे चाँद की तरह लगती थी। गुलाब की खिलाती कली-सी उसकी मुस्कान मुझे भुलाए नहीं भूलती। वही मेरी महबूबा अब किसी दूसरे मर्द की बाहों में होगी, मेरा दिल इस असलियत को मंज़ूर कर ही नहीं पाता था।

मुझे अब भी उसकी तलाश थी। उसकी आस थी। आगरा लौटकर मेरे दिल की लगी और भड़क उठी थी। जिस आग को मैं बुझ चुकी समझ रहा था, वह फिर सुलगने लगी थी। मेरा हाल मुझे जाननेवालों से भी छिपा नहीं था। पर बेगम ? क्या उनको भी मेरी तड़प का अहसास होगा ?

पत्ता - पत्ता, बूटा - बूटा हाल हमारा जाने है,
जाने न जाने गुल ही न जाने, बाग़ तो सारा जाने है।
आशिक़ - सा तो सादा कोई और न होगा दुनिया में,
जी के ज़ियाँ[1] को इश्क़ में उसके अपनी वारा जाने है।
क्या-क्या फ़ितने सर पर उसके लाता है माशूक़ अपना,
जिस बेदिल - बेताबो - तवाँ को इश्क़ का मारा जाने है।

मैं ख़ाली हाथ घर लौटा था। पर घरवालों ने मेरा दिल खोलकर ख़ैरमक़दम किया। अपने दूसरे बेटे को मैं पहली बार देख रहा था। दुःखी मन से मैं सब सुनता रहा कि मेरे जाने के महीना-भर बाद ही बेगम साहिबा का रुख़ मेरे ख़ानदान के तईं बदल गया था। हवेली जाने पर तबीयत ख़राब होने का बहाना बनाकर उन्होंने उनसे मिलने से भी इनकार कर दिया। मेरे सौतेले भाई को तो मेरा दिल दुखाने में मज़ा आता ही था। मसाले लगा-लगाकर उसने बताया कि बेगम के उस नए उस्ताद से रिश्ते की चर्चा कैसे सारे शहर में हो रही है। उसकी बातें मेरे दिल को भीतर तक बींध गईं।

अगले दिन मैं नवाब रईस को सलाम करने हवेली गया। ईरानियों का मुक़ाबला करने के लिए उन्होंने दिल्ली में फ़ौज तो क्या भेजनी थी, वह तो उल्टे मुग़लों की फ़ज़ीहत करने लगे

1.नुक्सान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि उनको नादिरशाह का मुक़ाबला करने के बजाय, उससे सुलह कर लेनी चाहिए थी। उनकी नज़र में नादिरशाह एक नेक और वफ़ादार मुसलमान था, क्योंकि वह हिन्दुस्तान में बुतपरस्ती को उखाड़ डालने की चाह रखता था। वे मुझे ज़नाने में ले गए, जहाँ सब-कुछ पहले की तरह ही लग रहा था, सिवाय इसके कि बच्चों को मेरी जगह कोई और उस्ताद पढ़ा रहा था और बेगम साहिबा मूढ़े पर बैठी उसे देख रही थीं। बच्चों ने उठकर बड़े प्यार से मुझे दुआ-सलाम की। उस्ताद ने भी मुझे सलाम किया। पर उसके बदसूरत चेहरे पर उसकी फ़तह की ख़ुशी साफ़ झलक रही थी।

बेगम साहिबा पहले से थोड़ी भारी लग रही थीं। मेरी ओर देखकर उनकी आँखों में जो चमक उभरा करती थी, वह अब मर चुकी थी। मेरी तरफ़ से वे ऐसी बेपरवाह बनी रहीं, गोया मैं कोई अजनबी होऊँ। उनका दिल बुझे हुए दीए की तरह ठंडा हो चुका था।

बोलीं, "मीर साहब, हमने सुना है दिल्ली में आपका ही नाम गूँज रहा है। आगरा के लोगों के लिए यह बड़े फ़ख्र की बात है।" तीन मर्दों की मौजूदगी में भी यह औरत कितनी सहज दिख रही है और वे तीनों मर्द भी कौन? वही, जो बारी-बारी से उसके साथ हमबिस्तर होते रहे हैं!

मेरा चेहरा ग़ुस्से से तमतमाने लगा था। जी हुआ वहाँ से भागता हुआ जाऊँ और आगरा के बच्चे-बच्चे से कहूँ कि देखो इस औरत को, जिसने न सिर्फ़ अपने शौहर को धोखा दिया, बल्कि अपने आशिक़ों को भी दग़ा दिया है। लोग इसे पत्थरों से मार-मारकर ज़िबह कर डालेंगे, एक बार नहीं, तीन-तीन बार। लेकिन मैं चुप रहा और कोई बहाना बनाकर वहाँ से निकल आया।

रही आगरा के लोगों की मुझ पर फ़ख्र करने की बात, सो मुझ पर फ़ख्र करना तो दूर, मुझे देखते ही वे दूर खिसक जाते। ये वही लोग थे जो मेरे वालिद के पैरों की धूल को भी अपनी आँखों में काजल की तरह लगाते थे। वही लोग आज मुझसे आँखें चुराने लगे थे। मेरी आवाज नक़्क़ारख़ाने में तूती की तरह किसी को भी सुनाई नहीं पड़ रही थी। छह महीने तक इस ख़ामोशी को सहने के बाद मैंने आगरा छोड़ने का फ़ैसला कर लिया।

गर्मियों के बीच मैं दिल्ली वापस चला आया। मुझे अपने-आप पर हैरानी हो रही थी कि ता-उम्र साथ निभाने के वादे करनेवाली जिस औरत की बेवफ़ाई के चलते दुःखी होकर मैं आगरा छोड़कर दिल्ली चला आया हूँ, उसकी यादों से एक पल भी मुझे छुटकारा क्यों नहीं मिल रहा? जिस औरत से बदला लेने के उपाय मैं दिन-रात सोचा करता हूँ, उसी की मुहब्बत क्यों मुझे परेशान किए रहती है?

मैं उसे दिल्ली के हर खँडहर में ढूँढता रहा। नरगिस के प्यालों की तरह अपनी आँखों के कटोरे लिये मैं उसकी एक झलक को तरसता हुआ दर-दर भटकता रहा। हर गली-कूचे के हर घर का दरवाज़ा खटखटाने मैं सुबह ही निकल पड़ता। सहर की हल्की हवाओं में हिलती मोमबत्ती की लौ जैसा हाल मेरा था। मैं भीतर-ही-भीतर जलता, पिघलता, ख़त्म होता हुआ मौत के क़रीब पहुँच रहा था। एक अजीब-सा पागलपन मुझ पर हावी होने लगा था। हकीमों-चारागरों के मुताबिक़ पागलपन हमारी ख़ानदानी बीमारी थी और अब यह मेरे लहू में आ गई थी। इसका इलाज सिर्फ़ एक ही था कि मेरा ख़ून बहाया जाय। उन्होंने मुझे जलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोहे से दाग़ा, मेरे शरीर पर जोंकें चिपकायीं, मुझे अँधेरी कोठरी में बंद कर दिया, गोया मैं कोई बेहद ख़ौफ़नाक पागल होऊँ। एक हकीम साहब मुझे देखने आए तो मेरी हालत पर हैरान होते हुए बोले, "मुहब्बत के मारे इन्सान के लिए मैं क्या दवा दे सकता हूँ?" उन दिनों बस एक ही ख़ैरख़्वाह इन्सान की मुझे हमदर्दी मिली। वह मेरी दूर की रिश्तेदार एक बूढ़ी औरत थी। बेचारी मेरे वास्ते खाने-पीने का सामान और बदलने के वास्ते कपड़े लाया करती थी। हमदर्दी के बोलों से उन दिनों अगर किसी इन्सान ने मुझे राहत पहुँचाने की कोशिश की तो बस, वही एक औरत थी।

मैं हिम्मत हार चुका था। मैंने अपने-आप से कहा, 'मुहब्बत की आग में जलने से तो बेहतर है काल-कोठरी की यही क़ैद।' उन्हीं दिनों मैंने ये सतरें लिखीं—

जब रफ़्तनी[1] को इश्क़ का आज़ार हो गया,
दो-चार दिन में बरसों का बीमार हो गया।
निस्बत बहुत गुनाहों की मेरी तरफ़ हुई,
नाकर्दा - जुर्म[2] मैं तो गुनहगार हो गया।
दिल ले के मेरी जान का दुश्मन हुआ निदान,
जिस बेवफ़ा से अपने तईं प्यार हो गया।
क्या जुर्म था किसू पे न मालूम कुछ हुआ,
जो 'मीर' कुश्तो-ख़ूँ[3] का सज़ावार हो गया।

मैं अपनी आख़िरी ख़्वाहिश लिखना चाहता था कि 'ऐ दोस्त मीर, दिल की हर मर्ज़ी को मान लेना, लेकिन एक बात इसकी कभी न मानना। इसे कभी मुहब्बत में न पड़ने देना! मुहब्बत किसी को नहीं बख़्शती—न आशिक़ को, न माशूक़ को।'

कई हफ़्तों के बाद मुझे कोठरी की क़ैद से रिहा किया गया। मैं गली-कूचों में भटकता रहा। जिस तरफ़ निगाह उठती, नादिरशाही बर्बरियत के निशान दिखते। एक भी घर को उसने नहीं बख़्शा था। लालक़िले से सारे हीरे-जवाहरात उखाड़ लिये गए थे। शहज़ादों की हालत भिखारियों-जैसी हो गई थी। कइयों को तो कई-कई दिनों तक खाए-पीए बग़ैर रहना पड़ा। ऐसे में अपने मुक़द्दर की शिकायतें करनेवाला मैं कौन था!

मैं उस लड़की को ढूँढने लगा, जिसकी बाहों में मैंने कभी एक रात गुज़ारी थी। लेकिन उस गली का एक भी घर नादिरशाह की तबाही से नहीं बचा था। कोई भी मुझे यह नहीं बता सका कि वह बुढ़िया और लड़की कहाँ चले गए। बूढ़ी शायद मर चुकी होगी और लड़की भी, हो सकता है ईरानी फ़ौजियों की दहशत का शिकार हो गई हो।

मेरे प्यारे शहर पर यह कैसा क़हर बरपा था! सिख, मराठे, चोर, गिरहकट, भिखारी, हुक्मराँ—सभी के हाथों लुट रहा था आम आदमी। सुखी वही था जिसके पास कुछ नहीं था। उन दिनों ग़रीबी ही सबसे बड़ी दौलत बन गई थी। इस हिसाब से तो मैं ही शायद दिल्ली का सबसे बड़ा दौलतमंद था।

घूमते-घूमते एक दिन मैं दिल्ली के उस कोने में पहुँचा, जहाँ कुछ इमारतें अभी-अभी

1. पानेवाले, 2. बेक़सूर, 3. मृत्युदंड।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्बाद हुई लग रही थीं। वह जगह कुछ जानी-पहचानी सी लग रही थी, लेकिन यह पता नहीं चल रहा था कि कौन-सा मकान किसका रहा होगा, क्योंकि इमारतें सारी इस तरह ढह-ढहा गई थीं कि उनकी पहचान के कोई निशान नहीं बचे थे। उनमें रहनेवालों का भी कुछ पता नहीं चल रहा था। पूछने पर लोगों से यही जवाब मिलता, "अब तो यहाँ इस नाम का कोई नहीं है।"

गली के सारे मकान एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक बर्बादी की कहानी कह रहे थे। बाज़ार ही नहीं रहे थे, तो उसमें घूमनेवाले कहाँ से दिखते! ख़ूबसूरती के नज़ारों के लिए आँखें तरस गईं। कहाँ गए मेरे सारे के सारे ऐशो-इशरत-भरे दिनों के साथी? न आशिक़-दीवाने नौजवान बचे थे, न इल्म के ख़ज़ाने बुज़ुर्गवार।

नादिरशाही ख़ूँरेज़ी से तबाह हुई इस दिल्ली में मुझे अपना कोई ख़ैरख़्वाह नहीं मिला, जिसके पास मैं मदद के लिए पहुँचता। हारकर मैं सिराजुद्दीन अली ख़ान 'आरज़ू' के पास पहुँचा, जो मेरे आने से पहले दिल्ली का सरताज शायर माना जाता था। शुरू-शुरू में वह मुझसे खुश नज़र आया और उसने मेरे हुनर के क़द्रदान ढूँढने में भी मेरी मदद की। उसी की सलाह से मैंने फ़ारसी में लिखना बंद कर, आम लोगों की बोलचालवाली ज़ुबान को अपनाया था, वही बोली जो जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठे लोग बोला करते थे। इससे मुझे ख़ूब शोहरत भी मिली।

बाद में पता नहीं क्यों 'आरज़ू' मुझसे नाराज़ होकर मेरे ख़िलाफ़ हो गया। मेरा अंदाज़ा यही था कि शायद मेरे सौतेले भाई ने उसे नवाब रईस की बेगम के साथ मेरे ताल्लुक़ात के बारे में लिख दिया होगा। यह भी हो सकता है कि मेरी माँ शिया थीं, तो वह सोचता होगा कि शायद मेरा झुकाव शियाओं की तरफ़ होगा, क्योंकि 'आरज़ू' खुद सुन्नी मुसलमान था। पर मैं तो न शिया था, न सुन्नी, न हिन्दू था, न मुसलमान। मेरे लिए तो इश्क़ ही सबसे बड़ा धर्म था—

बुतख़ाने से दिल अपने उठाए न गए,
का'बे की तरफ़ मिज़ाज लाए न गए।
तौरे-मसजिद को बरहमन क्या जाने,
याँ मुद्दते-उम्र में हम आए न गए।

वैसे दूसरे मुसलमानों की तरह मैं जुम्मे को मस्जिद जाया करता था। हिन्दुओं की तरह माथे पर तिलक भी लगाता था। बुतपरस्ती करता था और बरसों पहले इस्लाम को अलविदा कह चुका था। पर मुझे लगता था, आरज़ू की नाराज़गी इन सब वजूहात से नहीं रही होगी। शायद उसकी नाराज़ी के पीछे मेरी शोहरत से पैदा हुई चिढ़ ही। सुल्तान-उल-शुअरा (शायरों का बादशाह) का ताज अपने सिर से मेरे सिर पर आते देखकर ही शायद उसे जलन हुई थी। जलन की आग दोस्ती को तलवार की धार से भी ज़्यादा तेज़ी से काट डालती है। 'आरज़ू' की दुश्मनी के कारण मुझे अपने कई क़द्रदानों से हाथ धोना पड़ा और दिल्ली में मेरा जीना मुश्किल हो गया। आमदनी का और कोई ज़रिया न होने से बनिए, कुँजड़े और दूधवाले का उधार मेरे सिर चढ़ता गया।

पर जैसा कि मैंने पहले ही कहा कि जब दुख-दर्द की आवाज़ें लालक़िले के संगमरमरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112597

महलों को भी नहीं बख़्श रही थीं, तो मीर अकेला कौन होता था अपनी तक़दीर पर रोनेवाला! नादिरशाह दिल्ली की गलियों में हज़ारों बेवाओं को छाती पीट-पीटकर रोने के लिए और हज़ारों बेसहारा बच्चों को गली-गली भीख माँगने के लिए छोड़ गया था। उस वक़्त के हालात का जितना कम बखान किया जाय, उतना ही अच्छा।

और बन्दोबस्त का हाल यह था—एक बादशाह था मुहम्मद शाह। तीन उसके मुख़्तार थे—वज़ीरे-आज़म नवाब सफ़दरजंग एक तरफ़ और ख़ज़ांची इन्तिज़ामुद्दौला दूसरी तरफ़। बादशाह की हालत यह थी कि उनका हुक्मनामा तो उनके हरम तक में नहीं चल रहा था। उनकी हिन्दू बेगम जो कभी नाचनेवाली हुआ करती थी, अपने सलाहकार नवाब जावेद ख़ान के साथ मिलकर हुक्म जारी किया करती थी। जावेद ख़ान शाही हरम का ख्वाजासरा (हिंजड़ा) था। पर हिंजड़ा होने के बावजूद कहते हैं कि उस हिन्दू बेगम का दिल उस पर आया हुआ था। होगा वह बेगम का यार। 'मीर' को इससे क्या लेना-देना! जावेद भले ही अपनी मर्दानगी खो चुका था, पर मेरे दुश्मनों की परवाह न करके, और मेरे सिर पर अपनी मेहरबानी की छतरी फैलाकर उसने मेरी नज़रों में बहुत बड़ी मर्दानगी का काम किया था। कम-से-कम एक वक़्त का खाना और बदलने के लिए दो जोड़ी कपड़े तो नसीब होने ही लगे थे 'मीर' को।

कुछ ही दिनों में नवाब सफ़दरजंग के दिन फिरने लगे थे। मुहम्मद शाह के मरने पर उसने उनके इक्कीस-साला बेटे अहमद शाह को मुग़लिया तख़्त पर बैठाया। अहमद शाह को राज-काज से ज़्यादा पसन्द था कमसिन हसीनों का साथ और शराब का सुरूर। इसलिए राज-काज सँभालने का काम उसने अपनी माँ और उसके आशिक़ जावेद ख़ान पर छोड़ रखा था। जावेद सफ़दरजंग से जलता था। नवाब इमादुलमुल्क और नवाब इन्तज़ामुद्दौला के साथ मिलकर वह नवाब सफ़दरजंग को रास्ते से हटाने की उधेड़-बुन में जुट गया। सफ़दरजंग के वज़ीरे-आज़म बनने के कुछ ही दिनों बाद उस पर जानलेवा हमला किया गया। निगमबोध घाट के पास उस पर गोलियों की बौछारें हुईं। घोड़े से गिरने की वजह से सफ़दरजंग तो बच गया, पर उसके कई सिपाही मारे गए। सफ़दरजंग को इस साज़िश के पीछे जावेद ख़ान का हाथ होने का सुराग़ मिल गया था। उसने जावेद के साथ दोस्ती का ढोंग रचा और उसे भरतपुर के जाट राजा सूरजमल के साथ खाने पर बुलाया। खाने के बाद वह जावेद को अलग ले गया, जहाँ उसके एक नौकर ने छुरा घोंपकर जावेद की हत्या कर दी। उसका सिर धड़ से अलग कर जमुना की रेत पर फेंक दिया गया। बेगम सोच में डूब गई थी। मैं अपने एक और मेहरबान से हाथ धो बैठा।

अब सफ़दरजंग और बेगम के वफ़ादार सिपाहियों के बीच एक जंग-सी शुरू हो गयी थी। आए दिन उनमें झड़पें हुआ करतीं, गोलियाँ चलतीं, तलवारें टकरातीं और ख़ून बहाया जाता। उन्होंने रोहिल्लों, जाटों और सिखों से भी किराए पर मदद लेनी शुरू की। ये किराए के टट्टू दिन में इन लोगों की आपसी रंजिश के लिए लड़ते और रात को आम लोगों को लूटने की वारदातें करते। अपने घरों में बैठे लोग भी महफ़ूज़ नहीं रह गए थे। लोगों ने बेगम से कहा कि उन्हें ऐसी जगह मुहैया की जाय जहाँ वे सही-सलामत रह सकें। बेगम ने उनकी ख़्वाहिश मान ली और चाँदनी चौक के पास साहिबाबाद के बग़ीचों में उनको रहने की इजाज़त दे दी। हज़ारों-हज़ार परिवार अब जगह-जगह से आकर यहाँ खुले में रहने लगे। ख़ुदा के रहम से उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साल बरसात कम हुई और लोग ज़्यादा तादाद में नहीं मरे।

आख़िरकार नवाब सफ़दरजंग ने हार मान ली। वह शिया था, लेकिन उसकी फ़ौजों में शायद ही कोई शिया मुसलमान हो। जाटों और मराठों पर भी बस न चलने से उसने हारकर अपना ओहदा छोड़ दिया। यहाँ से छुट्टी लेकर वह रायसीना से कुतुब को जानेवाली सड़क पर अपनी आख़िरी आरामगाह बनाने में जुट गया। अवध में उसकी काफ़ी ज़मीन-जायदाद भी थी। इन ज़मीनों की देखभाल भी वह अब करने लगा।

अहमद शाह की बादशाहत उसके क़िले के भीतरी महल में रहने के बावजूद ख़त्म हो चुकी थी। होल्कर की अगुवाई में मराठों ने दिल्ली की गलियों में लूट-मार मचाने के बाद बादशाह औरंगज़ेब के पड़पोते मुहम्मद अज़ीज़ुद्दीन को नया बादशाह मुक़र्रर किया। 5 जून, सन् 1754 को उसकी ताजपोशी हुई और उसे बादशाह आलमगीर-दो का ख़िताब दिया गया। इस नए बादशाह की बादशाहत बस लालक़िले की दीवारों के भीतर तक ही चला करती थी।

लेकिन शहर के बादशाहों की दुखभरी दास्तानें सुना-सुनाकर भला क्यों अपना वक़्त बर्बाद करूँ? नादिरशाह के हमले के बाद दिल्ली कभी वैसी नहीं हो पायी। उस बर्बर ने दिल्ली की रूह को ही क़त्ल कर डाला था। राजे-महाराजे, अमीर-उमराव इस शहर के मुर्दे को चीलों और गिद्धों की तरह नोचने-खसोटने को आते और चले जाते। मैं दिल्ली में इसलिए बना रहा कि आगरा के सिवाय मेरे पास कहीं और जाने का कोई ज़रिया नहीं था और आगरा मैं जाना नहीं चाहता था, क्योंकि औरत से मिले धोखे ने मेरा दिल हमेशा-हमेशा के लिए उस शहर से फेर दिया था। इस मार-काट के दौरान, एक बार भी उसने मेरी ख़ैरियत जानने की कोशिश नहीं की। इसलिए उसे भूल जाना ही बेहतर था। मेरी बीवी और तीन बच्चे—दो लड़के और एक लड़की—मेरे पास दिल्ली आ गए थे। हमने भारी ग़रीबी के दिन यहाँ एक-साथ काटे। नाम और शोहरत के सिवा मैं कुछ और नहीं कमा पा रहा था। तीनों बच्चों को पढ़ाते हुए मैंने पाया कि तीनों का झुकाव शायरी के सिवा और किसी तरफ़ नहीं है, कि कहीं से उनके ज़रिए ही पैसा आने की उम्मीद बँधती।

सन् 1758 के जाड़ों में, नादिरशाह का वारिस अहमद शाह अब्दाली अफ़ग़ानिस्तान से मुग़लिया सल्तनत पर अपना हक़ जताने आ पहुँचा। अफ़ग़ानी पंजाब तक घुस आए, पर किसी ने भी उन्हें रोकने की जुर्रत नहीं की। उन्होंने दिल्ली पर भी अपना क़ब्ज़ा कर लिया। अब्दाली ने दिल्ली के लोगों को जान-माल की हिफ़ाज़त की तसल्ली दी, पर अभी रात ढली भी नहीं थी कि अफ़ग़ानी जालिमों ने क़हर बरपाना शुरू कर दिया। उन्होंने घरों के दरवाज़े तोड़ दिए, अंदर मिले लोगों को बाँध-बाँधकर ज़िंदा जला डाला या उनके सिर धड़ से अलग कर दिए। उन्होंने चारों ओर ख़ून-ख़राबा और तबाही मचा दी। लोगों के कपड़े उतारकर उन्हें नंगा गलियों में ठेल दिया। कई-कई दिनों तक किसी को खाने को कुछ न मिला। सताए हुए लोगों की आवाज़ें आसमान तक उठने लगीं। अब्दाली, जो अपने-आपको दुर्रे-दौराँ (मोतियों में मोती) कहता था, भूखे बाघ की तरह ख़ूँख्वार हो उठा था। मुसलमानों की हालत पर भी उसको ज़रा तरस नहीं आ रहा था। हज़ारों की तादाद में लोग दिल्ली छोड़कर गाँवों की तरफ़ भागे, पर उनमें से ज़्यादातर तो भूख-प्यास से मर गए या दूसरी मुसीबतों, तक़लीफ़ों को झेलते चल बसे। सदरे-राह पर खड़ा मेरा मकान ढह गया था और मैं ग़रीबी-दर-ग़रीबी में डूबता जा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी मेहरबान आक़ा की तलाश में अब मैं मुसलमान नवाबों के बजाय हिन्दू राजे-रजवाड़ों की ओर झुका। राजा जुगल किशोर और राजा नागरमल को शे'रो-शायरी का शौक़ था। वे अपने कलाम सुधारने के लिए मेरे पास भेजा करते थे।

सन् 1759 की सर्दियों में हालात ने और भी बुरा रुख़ इख़्तियार किया। नवाब इमादुल-मुल्क ने आलमगीर-दो को क़त्ल कर एक बार फिर अपने हाथों को नापाक किया। मिर्ज़ा अब्दुल्ला अली गौहर बादशाह का बड़ा लड़का था। वह अवध को भाग निकला और वहाँ जाकर उसने अपने-आपको आलमगीर-दो होने का ऐलान कर दिया (बाबर के ख़ानदान की वह सत्रहवीं पुश्त था)। दिल्ली में अब मेरा जीना दूभर हो गया था। मैंने ख़ुदा का नाम लेते हुए तय किया कि अपनी हिफ़ाज़त के वास्ते अब किसी छोटी-मोटी जगह पर जाकर रहूँ। उस दिल्ली से, जो हर छह महीनों के बाद उजाड़-बियाबान में बदलती रहती थी, जाटों के बीच जाकर रहना बेहतर था।

आख़िर मैं भरतपुर चला गया, जहाँ सूरजमल जाट का राज चल रहा था। जब मराठा फ़ौजें उत्तर-पच्छिम की तरफ़ बढ़ रही थीं, मैं वहीं था। ये फ़ौजें अब्दाली और उसके अफ़ग़ान साथियों का मुक़ाबला करने के लिए बढ़ रही थीं। 17 जनवरी, सन् 1761 को हमें ख़बर मिली कि दो दिन पहले पानीपत के मैदान में मराठों को बड़ी तादाद में मौत के घाट उतार दिया गया है। जो अफ़ग़ानों की तलवारों से बच निकले हैं, वे भी गूजरों और जाटों के गिरोहों के हाथों मारे गए। अफ़ग़ानों के लौट जाने और फिर से अम्न बहाल होने तक मैंने भरतपुर में ही टिके रहने का फ़ैसला किया।

छह महीने बाद मैं घर लौटा। सन् 1761 की गर्मियों के दौरान मैंने अपने रोज़नामचे में लिखा—

'मैं अपने प्यारे शहर दिल्ली में लौट आया हूँ। तबाही की तस्वीरें देखकर मेरी आँखें नम हो रही हैं। हर अगले क़दम पर मेरा दुख और ग़ुस्सा बढ़ता जाता है। जाने-पहचाने मकानों में से कोई नहीं बचा, जिसे पहचाना जा सके। पहले रहनेवाले बाशिंदों का कहीं नामो-निशान तक नहीं है। सब कहीं बस एक ख़ौफ़नाक सुनसानी दिख रही है। अचानक मैं अपने-आपको उस जगह पाता हूँ, जहाँ मैं कभी बसर किया करता था। मुझे अपनी बीती ज़िंदगी की याद आई—शाम को दोस्त-यारों से मिलना, शायरी करना, इश्क़ फ़रमाना, हसीन माशूक़ाओं के लिए रात-रात-भर तड़पना, और लम्बी ज़ुल्फ़ों पर, जिन्होंने मुझे बाँध रखा था, ग़ज़लें लिखना। ज़िंदगी तो वही थी। अब इस ज़िंदगी में क्या रखा था? कुछ भी तो नहीं! एक बंदा भी नहीं बचा था, जिससे दो बातें हो सकतीं। मैंने क़सम खाई कि जब तक जियूँगा, इस शहर की तरफ़ मुँह भी नहीं करूँगा। दिल्ली वह शहर है जहाँ की सुनसान गलियों में गर्द उड़ रही है। कभी वे दिन भी थे, जब इसी शहर में आदमी अपनी झोली सोने से भर सकता था।'"

'राजा नागरमल ने भी मुझे माली मदद देनी बंद कर दी थी। तो क्या हुआ! चलो अब इस मुसीबत से तो बचे कि रात-दिन बैठे सुधार से परे उनके कलाम को सुधारते रहो। मेरे पास उन दिनों फूटी कौड़ी भी नहीं थी। अमीरों के दरवाज़ों पर दस्तक देकर भीख माँगने की नौबत आ पहुँची थी। शायर के तौर पर नाम था, तो कुत्ते-बिल्लियों की तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही सही, जीने का तो इन्तज़ाम बना ही रहा !'''

'मैं मनाता हूँ कि दिल्ली को कभी उन कमबख़्त अफ़ग़ानों का मुँह दोबारा न देखना पड़े ! अब्दाली की फ़ौजों ने इतनी ज़्यादा लूट की थी कि उसको ले जाने के लिए हाथी-घोड़े कम पड़ रहे थे। फ़ौजियों ने अब्दाली को साफ़-साफ़ कह दिया था कि अगर वह हिन्दुस्तान में रहना चाहता है तो वह अकेला ही रहे; वे यहाँ नहीं रहेंगे। अब्दाली ने अक़्लमंदी की कि उनकी बात मान ली और अपने जीते हुए इलाक़े की हुक्मरानी का बन्दोबस्त करके वापस अफ़ग़ानिस्तान लौट गया। अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है !'''

'अफ़ग़ानों का दिमाग़ सातवें आसमान पर चढ़ गया था। अल्लाह ने उन्हें सबक़ सिखाने के लिए सिखों के हाथों शर्मिंदा करवाया। चालीस-पचास हज़ार सिखों की फ़ौज ने लौटते हुए अफ़ग़ानों का रास्ता रोका और उनके साथ घमासान मचाकर ऐसी बहादुरी दिखाई, जो अपने-आप में एक मिसाल है। सभी जानते हैं कि बुरी तरह घायल होने के बावजूद सिख लड़ाई के मैदान में पीठ नहीं मोड़ते। उनके दस्ते तेज़ी से अफ़ग़ानी फ़ौजों को घेरते हुए तलवार के घाट उतारते गए। सूरज डूबते ही वे अफ़ग़ानी फ़ौजों पर टूट पड़ते और दिन निकलते ही भाग खड़े होते। उन्होंने लौटते हुए अफ़ग़ानों की नाक में दम कर दिया। ये सिख लम्बी दाढ़ी और बाल रखते हैं और बड़े ही ख़ूँख़्वार दिखते हैं। अफ़ग़ानों पर धावा बोलने के पहले कभी-कभी ये अपने बाल भी खोल लेते। अफ़ग़ानी फ़ौजें डरकर भाग खड़ी होतीं। अफ़ग़ान घुड़सवारों से ये पैदल ही लड़ते और उनके घोड़ों की काठियों में तलवारें भोंक देते। क़िस्सा कोताह यह है कि सिखों ने जिस तरह अफ़ग़ानों को नीचा दिखाया, उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। अफ़ग़ानों की आगे लड़ने की हिम्मत ही जाती रही और वे फ़तह किए हुए इलाक़ों की हुकूमत को एक हिन्दू के हाथों सौंपकर जान बचाकर भाग निकले और सिख फ़ौजें रास्ते-भर तख़्तों-ताजों को उखाड़ती-रौंदती उन्हें अटक नदी तक खदेड़ आईं। फिर वे पंजाब लौटे और अब्दाली के तैनात किए हिन्दू हुक्मरान को क़त्ल कर पंजाब के शासक बन बैठे। अब उनकी ख़ूँख़्वार आँखें दिल्ली पर जा लगीं। एक ख़ूबसूरत शहर का इससे बुरा हश्र और क्या हो सकता है कि वह एक के बाद एक बर्बर ज़ालिमों के हाथों रौंदा जाता रहा !'

पानी-भरे बादल की तरह मैं एक जगह से दूसरी जगह भटकता रहा। दिल्ली से अब मेरा और मेरे कुनबे का दाना-पानी उठ चुका था। एक बार मैं फिर भरतपुर की शरण में गया। मेरी शोहरत वहाँ मुझसे पहले ही पहुँची हुई थी। लोग उत्तर-दक्खिन, पूरब-पच्छिम सभी ओर से मेरी एक झलक पाने को वहाँ पहुँचने लगे। बहरहाल, शोहरत और तारीफ़ आदमी का पेट तो नहीं भर सकते। मैं जानता था कि यह ज़िंदगी बस एक ही बार इन्सान को मिलती है। हज़ारों उम्मीदें थीं पूरी करने को। अब तो उम्र का बोझ भी महसूस होने लगा था जिस्म पर। लगता था ज़िंदगी की लौ तेज़ हवा में बुरी तरह काँप रही है।

ईरानियों, अफ़ग़ानियों और मराठों के बाद अब जाटों की बारी थी। मैं उन दिनों भरतपुर में ही था, जब जाट राजा सूरजमल ने दिल्ली में लूटमार शुरू की। यों दिल्ली में अब लूटने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचा ही क्या था ! पर मेरे दोस्तों के ख़तों से पता चलता कि जाटगर्दी नादिरशाही से भी बढ़कर है। दिल्ली को अब बस एक नवाब नजीबुद्दौला से ही उम्मीद बाक़ी थी, जिसने सिखों और जाटों को अब तक दिल्ली से दूर रखा था। नजीबुद्दौला की मौत के साथ दिल्लीवालों की यह उम्मीद भी जाती रही। मराठों को अब्दाली ने चार साल पहले पानीपत की लड़ाई में तबाह कर दिया था, पर अब वे फिर से सिर उठाने लगे थे। लगता था जैसे मराठों या सिखों में से कोई अब दिल्ली पर राज करेगा। आनेवाली इस मुसीबत से अल्लाह ही हमारी हिफ़ाज़त कर सकता था।

दस सालों तक मैं बेघर-बार ख़ानाबदोश की तरह एक शहर से दूसरे शहर में भटकता रहा। जब शाहआलम-दो दिल्ली लौटे तो मैंने भी लौटने की सोची। शोहरत और पैसे की चाह अब भी मुझमें बाक़ी थी। मैंने मिर्ज़ा नजफ ख़ान से, जो वज़ीरे-आज़म थे और ईरानी होने की वजह से शिया थे, अपनी उम्मीदें जोड़ीं। मिर्ज़ा पक्का जुल्फ़िक़ारुद्दौला, यानी तलवारबाज़ था। उसने आगरा को जाटों के कब्ज़े से आज़ाद कराया था और सिख तथा रुहेला लुटेरों को मार भगाया था। यहाँ तक कि मराठे भी उसके साथ तलवार लड़ाने में कतराते थे। अल्लाह उसकी तलवार को हमेशा फ़तहयाब करे !

लेकिन अल्लाह की मंशा शायद यह नहीं थी। अप्रैल, सन् 1782 में मिर्ज़ा नजफ़ख़ान का इन्तक़ाल हो गया और उसको नवाब सफ़दरजंग के मक़बरे के पास ही दफ़्ना दिया गया। तबाही की ख़ूनी तलवार फिर अपनी म्यान से निकल आयी। नजफ ख़ान के भतीजे मिर्ज़ा शफ़ी ख़ान ने गुज़रे हुए शासक के गोद लिये बेटे—मिर्ज़ा अफ़्रासियाब के हाथों से सल्तनत छीन ली। सितम्बर, सन् 1783 को अफ़्रासियाब के किराये के हत्यारों ने मिर्ज़ा शफ़ी का क़त्ल कर दिया। कुछ महीनों बाद अफ़्रासियाब भी मिर्ज़ा शफ़ी के भाई के हाथों मारा गया। एक दिन भी ऐसा नहीं गुज़रता था, जब कोई-न-कोई क़त्ल नहीं होता था। किसी की ज़िंदगी की कोई हिफ़ाज़त नहीं थी।

भूख और ख़ौफ़ मुझे मेरे प्यारे शहर दिल्ली से भगाकर लखनऊ ले गए। यहाँ नवाब आसफ़ुद्दौला ने बड़े प्यार से मेरी अगवानी की और बीवी-बच्चों को पालने के लिए मेरा वज़ीफ़ा बाँध दिया। लेकिन लखनवी लोग जो अपनी नफ़ासत और तहज़ीब के लिए जाने जाते हैं, मुझसे अच्छी तरह पेश नहीं आए। जब मैं वहाँ की पहली महफ़िल में शामिल हुआ, तो लोगों ने मेरी बड़ी-सी पगड़ और ढीले-ढाले कपड़ों को देखकर फ़िकरे करे और पूछा कि मैं दुनिया के कौन-से कोने से आया हूँ ? मैंने भी उन्हें माक़ूल जवाब दिया—

कहता है यह—'अपनी आँखों देखेंगे'— फ़क़ीर,
बीनश नहीं रखते क्या जवाँ हों क्या पीर।
अंधे हैं जहाँ के सारे लोग ऐ 'मीर',
सूझे न जिसे वैसे ये कहते हैं बसीर।

लखनऊ के लोग मुझे नहीं समझते और मैं उनको नहीं समझता। अपनी दास्तान इस अजनबी ज़मीं पर किसको सुनाऊँ और कैसे सुनाऊँ ! मैं जो बोली बोलता हूँ, उसे ये लोग समझ ही नहीं सकते। इन्हें पता ही नहीं कि मीर के हर लफ़्ज़ में एक ऐसा मानी छुपा होता है, जो सभी मानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से परे होता है। जो भाषा मैं बोलता हूँ, उसे दिल्ली के अवाम ही समझ सकते हैं।

ऐ मीर, बेजान लोगों की इस महफ़िल में तू बोलना ही क्यों चाहता है भला! मेरी रोती आँखों से आँसू झरनों की तरह बह रहे हैं। दिल्ली की तरह मेरा दिल भी उजड़कर बियाबान हो चुका है। ताज़े खिले गुलाबों को देखकर भी अब दिल नहीं खिलता, न ही इनके काँटों की चुभन अब इसमें कोई दर्द पैदा कर पाती है। दिल-ही-दिल में मैं मानता हूँ कि मुझे दिल्ली लौट जाना चाहिए, जहाँ मैंने प्यार-मुहब्बत के नशे में चूर ज़िंदगी के तमाम दिन बिताए थे; मुहब्बत के रस को अपने दिल के ख़ून की गुलाबी शराब के साथ मिलाकर पिया था। मैं इतना उदास और दुखी क्यों हो गया हूँ, मुझे खुद ही समझ नहीं आ रहा था—

हम 'मीर' से कहते हैं कि ना रोया कर,
हँस-खेल के टुक चैन से भी सोया कर।
पाया नहीं जाने का वो दुर्रे- नायाब,
कुढ़-कुढ़ के अबस जान को मत खोया कर।

दिल्ली से आई ख़बरें सभी की आँखों में आँसू भर देती हैं। नजीबुद्दौला के पोते—क़ातिल गुलाम क़ादिर और उसके रुहेलों के जत्थे दिल्लीवालों पर जैसा क़हर बरपा रहे हैं, वैसा तो नादिरशाह और अब्दाली ने भी नहीं बरपाया था, न ही जाटों, सिखों और मराठों ने। इस कमीने ने शाहआलम-दूसरे को बेइज़्ज़त करके उसे गद्दी से उतारा और उसकी आँखें तक निकाल लीं। अल्लाह उसके मुर्दे को दोज़ख़ की आग में जलाए! सिर्फ़ खुदा ही जानता होगा कि दिल्ली में लूट और क़त्ल का यह खेल कब तक जारी रहनेवाला है। क़त्ल करने के लिए अब तो क़ातिलों को मुर्दों में ही जान फूँकनी पड़ेगी और लूट मचाने के लिए पहले का लूटा माल वापस लाना होगा।

दिल्ली अब एक जीता-जागता पंजर बन चुकी थी।

एक अच्छी ख़बर मिली है। मराठों ने रुहेलों को तगड़ी मात दी है। गुलाम क़ादिर को ज़िंदा पकड़ लिया गया और तड़पा-तड़पाकर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया है। उसके वास्ते किसी ने एक क़तरा भी आँसू का नहीं बहाया। मेरे जी को तसल्ली मिली। चलो एक क़ातिल को तो मेरे प्यारे शहर को उजाड़ने की सज़ा मिल ही गई। लेकिन दिल्ली की शानो-शौकत के दिन क्या कभी वापस लौटेंगे? अल्लाह ही जाने!

मैं अब ज़िंदगी के अट्ठासी वसंत पार कर चुका हूँ। मेरी आँखों की रौशनी मंद पड़ चुकी है। तीन बरस में मेरे चार अज़ीज़ चल बसे हैं—दो बेटे, मेरी बेटी और मेरी बीवी। अब मैं न लिख सकता हूँ, न पढ़ सकता हूँ। कोई मेरी देखभाल करनेवाला भी तो नहीं बचा। काश, मेरी मिट्टी दिल्ली की महकदार मिट्टी में मिल पाती! पर मेरी यह आख़िरी ख़्वाहिश भी तो पूरी नहीं हो सकती। क़िस्मत मुझे लखनऊ की उस महफ़िल में ले आई है, जहाँ साक़ी सबके प्यालों में तो शराब उँडेलती है, लेकिन मेरे प्याले में ज़हर। 'मीर' को यहाँ आराम की कोई जगह नसीब नहीं हो सकती। उसे तो दुनिया के बग़ीचों से बहते पानी की तरह बह जाना है।

लोग मौत के सफ़र की इतनी ख़ौफनाक तस्वीरें क्यों पेश करते हैं, जबकि कितने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग साथ देने के लिए साथ चल रहे होते हैं ? मुझे मौत का कोई डर नहीं। मैंने ज़िंदगी में दो ही चीज़ों को प्यार किया—एक बेगम क़मरुन्निसा को और दूसरा—दिल्ली को। एक ने मुझे बर्बाद किया, दूसरी मेरे देखते-देखते बर्बाद हो गई। जीने के लिए मेरे पास अब बचा ही क्या है ! मेरी इन दोनों माशूक़ाओं के लिए मेरा कलाम—

नाचार हम तो तुझ बिन जी मारकर रहेंगे,
पर इस रविश को तेरी ये लोग क्या कहेंगे ?

15

भागमती

भागमती को मेरे साथ शाम बितानी है। वह चाहेगी कि मैं उसे बिस्तर पर ले जाऊँ। अगर मैं कोई उत्साह नहीं दिखाता तो वह कहेगी मैं उसकी उपेक्षा कर रहा हूँ, या फिर कहेगी कि मैं नामर्द ही हो गया हूँ। मेरे पास उससे बचने का कोई-न-कोई बहाना तो होना ही चाहिए—चाहे तेज़ बुख़ार कहकर छुटकारा पाऊँ या टूटी बाँह का बहाना बनाकर। लेकिन असल बात तो यह है कि मेरे पेट में आजकल बहुत गैस बनने लगी है। जिसे भी गैस की यह तकलीफ़ है, वह जानता है कि जब तक इसे बाहर न निकाल लो, तब तक काम-वासना की आग जिस्म में नहीं जाग सकती।

मुझे यह तकलीफ़ काफ़ी दिनों से चल रही है। मैंने गैस पैदा करनेवाले खाद्य पदार्थों की सूची तक बना रखी है। इसमें मेरी पसन्द के कई खाद्य आ जाते हैं—कच्चा प्याज़, आम, चीकू, आइस क्रीम, केक वग़ैरह-वग़ैरह। अपनी मुसीबत से बचने के लिए मैंने प्यार-मुहब्बत के अपने समय में फेर-बदल करनी शुरू की थी। इन सब वर्जित चीज़ों को मैं उसके बाद खाता था, पहले नहीं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई, मेरी इस 'बाद में, न कि पहले' वाली सूची में बढ़त होती गई और धीरे-धीरे चावल, दाल, आलू और तली हुई चीज़ें—सब एक-एक कर इस सूची में आती रहीं। सूची की बढ़त तब तक जारी रही, जब तक हर खाने योग्य चीज़ इसमें शामिल नहीं हो गई। बावजूद इसके शाम होते-होते मेरा पेट गैस से भर उठता। मैंने लंच खाना ही छोड़ दिया और प्यार-मुहब्बत का समय शाम से दोपहर कर दिया। कुछ दिनों तक तो सब ठीक चलता रहा, लेकिन प्यार-मुहब्बत का समय आप अकेले तो नहीं तय कर सकते न। इसमें दूसरे की सहमति भी तो ज़रूरी होती है ! और भागमती को दोपहर का वक़्त बिल्कुल पसन्द नहीं। इसलिए जब भी मुझे लगता कि भागमती टपकनेवाली है तो मैं नाश्ते में सिर्फ़ ब्लैक कॉफ़ी और विटामिन की गोलियाँ खाकर ही गुज़ारा कर लेता हूँ। वैसे भी मुझे यह रहस्योद्घाटन हुआ कि विटामिन की गोलियाँ कामोत्तेजना जगाने के मामले में फ़ायदेमंद रहती हैं।

आज सुबह से मैंने सिर्फ़ ब्लैक कॉफ़ी के ही दो मग पिए हैं। फिर भी पेट गैस-बैलून की तरह फूला हुआ है। कामोत्तेजना का नामोनिशान तक नहीं। मना रहा हूँ कि एक लम्बा-सा पाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल जाय। सारे कमरे में एक पैर पर लँगड़ी कूद कूदकर जान निकाल ली है, पीठ के बल लेटकर और घुटनों को पेट में घुसेड़कर क़वायद करके भी देख लिया, पेट की मालिश भी की, पर कमबख़्त पाद है कि निकलने का नाम ही नहीं ले रहा। शेख़ सादी का कहा याद हो आया—

ऐ पीर, पेट तो वायु की क़ैदगाह है
अक़्लमंद इसे क़ैद करके नहीं रखते,
अगर पेट को सताए वायु, तो निकाल दो, पादो,
क्योंकि पेट में भरी वायु सीने पर धरा पत्थर है।

ऐ शीराज़ के पीर! यह वायु तो सचमुच मुझे सीने पर धरे पत्थर से भी ज़्यादा सता रही है। हाय, कैसे छुटकारा पाऊँ इससे?

पादना ज़िंदगी के तीन सबसे अहम मज़ों में से एक है। ज़िंदगी का पहला मज़ा है—सेक्स, दूसरा है रूसी से भरे सिर में तेल की मालिश और तीसरा—लम्बा संतोषजनक पाद। प्रौढ़ावस्था के पदार्पण के साथ ही मैंने इन मज़ों के क्रम में थोड़ा परिवर्तन कर डाला है। अब ज़िंदगी का सबसे बड़ा मज़ा पादना बन गया है।

पादों के भी कई प्रकार होते हैं।

पादों का राजा है—भोंपू। हमारे पूर्वज जिसे उत्तमपादम् कहते थे और इससे उत्पन्न शब्द को पादकम्। यह पाद दरअसल आपकी इच्छा का मातहत होता है। यह घोषणात्मक और मर्दानगी-भरा होता है। इसमें आवाज़ ज्यादा, बदबू कम होती है। अतएव जितनी ज़ोर का पाद, उतनी कम बदबू। मेरा गंजा फ़ोटोग्राफ़र दोस्त, गोल-गोल आँखोंवाला, इस विषय पर काफ़ी रिसर्च कर चुका है और इस भोंपूवाली श्रेणी में माहिर है। उसका यह दृढ़ मत है कि भोंपू वही लोग बजा सकते हैं जो सिर्फ़ ताज़े फलों और ज़मीन से ऊपर उगनेवाली रेशे-रहित सब्ज़ियों का सेवन करते हैं। ऐसा भोजन सात्त्विक होता है। अंडे, मछली, मांसादि, यद्यपि पौष्टिक भोज्य पदार्थ हैं, लेकिन ये राजसी हैं—द्वितीय श्रेणी के। मसालोंवाले, बासी भोजन, अचार, मुरब्बे, चटनियाँ और ज़मीन के नीचे उगनेवाली सब्ज़ियाँ जैसे—आलू, मूली, गाजर, लहसुन आदि और ज़मीन से चिपककर पैदा होने वाली सब्ज़ियाँ जैसे—प्याज़, पत्तागोभी, शलजम, फूलगोभी वग़ैरह पक्की तौर पर तामसी कही जा सकती हैं, अर्थात् सबसे गरिष्ठ। मेरे फ़ोटोग्राफ़र दोस्त ने ख़ाली पेट एक गूदेदार तरबूज़ निगलकर भोंपू बजाकर भी दिखा दिया। घंटे-भर तो उसका पेट जेट हवाई जहाज़ की तरह हवा से भर गया था।

पादों की दूसरी क़िस्म है—शहनाई। हमारे पूर्वजों ने भी इसे 'मध्यमा' ही कहा है। इसमें आवाज़ ऐसे निकलती है—'ठें-ठें।' मैं इसकी तुलना शहनाई से करना बेहतर समझता हूँ। शहनाई यानी हवा से बजनेवाला वाद्य, जिसको शोहरत मिली है बनारस के उस्ताद बिस्मिल्लाह ख़ान से। 'भोंपू' की तरह 'शहनाई' भी आपकी इच्छा की मातहत है और तनिक-सा हिल-डुलकर या पेट को थोड़ा-सा दबाकर निकाला जा सकता है। 'भोंपू' से इसमें इतना ही फ़र्क़ है कि इसकी आवाज़ ज़रा कम होती है और थोड़ी ज़्यादा लम्बी जाती है। इसकी आवाज़ स्कॉटलैंड के वाद्य बैगपाइप के शुरू के स्वर-जैसी होती है—'फींह'।

तीसरी श्रेणी है—'खुरचनी', जिसकी आवाज़ अनुपचारित चमड़े की फचफच या पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काग़ज़ की सरसराहट-जैसी होती है। यह दरअसल एक बार में नहीं निकलता। यह एक के बात एक कई 'पिर्र-पिर्र-पिर्र-पिर्र' की आवाज़ के साथ आता है। 'खुरचनी' ज़्यादा तामसिक भोजन का नतीजा है। उम्र के साथ मलाशय की मांसपेशियों के घिस जाने का भी यह प्रतीक है।

इसकी चौथी कोटि है—'तबला'। 'तबला' अपनी उद्घोषणा केवल एक 'फट' के साथ करता है, जैसे बांगो ड्रम पर किसी ने एक थाप दी हो। 'तबला' एक ख़ुदमुख़्तार पाद है, क्योंकि यह अपने मालिक की इजाज़त के बिना ही निकल आता है। अगर वह बेचारा या बेचारी लोगों के बीच बैठे हों, तो शर्म से पानी-पानी हो जाना पड़ता है।

पाँचवाँ कहलाता है—'फुस्की'। यह एक निःशब्द 'बदबू-बम' है। चूँकि इसमें आवाज़ नहीं होती, इसलिए यह पास बैठे व्यक्ति को बदबू का गुप्त दान देने के लिए बढ़िया है और गुप्त दान देनेवाला अपने नाक को बंद कर 'मैंने नहीं किया' का दिखावा करता बड़ी आसानी से किसी और पर इसका दोष मढ़ सकता है। लेकिन साथ ही उसको जापान की यह कहावत भी याद रखनी चाहिए कि 'जो बोला, सो पादा।' इसलिए अगर कहीं आपने बदबू का गुप्तदान दिया हो तो मुँह को बिल्कुल बंद किए रखिए। लोगों को ख़ुद ही दाता को ताड़ने दीजिए। आप कुछ मत बोलिए!

हर देश में पादने को लेकर अपने-अपने रवैए हैं। योरोपियन और अमरीकन इस मामले में ख़ास बेशर्म हैं। यह ख़ासियत उन्हें यूनानियों से उत्तराधिकार में मिली है। पहली शताब्दी ईसा-पूर्व में हुए नारकॉस ने पेट में वायु के बनते ही पादने पर ज़ोर दिया था—

अगर पाद दाबा, तो मरना भी मुमकिन,
निकलता है अक्सर मधुर तान बनकर।
और गाना भी ऐसा कि मिलती तसल्ली,
यह मारक भी है और रक्षक भी है।
शहंशाह है पाद सबसे बड़ा!

नारकॉस बदबूदार 'फुस्की' और धमाकेदार 'भोंपू' के बीच के फ़र्क़ को भी जानता था। सुनिए—

यह हेनरी ने आह भरी है
कि उसने पादा है?
पर उसकी साँस चढ़ी है,
तो क्या फ़र्क़,
कराहा हो या कि पादा हो?

पाद का समर्थन समकालीन अंग्रेज़ी साहित्य में भी मिल जाता है—

ओ बुद्धिजीवियो! जाने से पहले बताओ मुझे
कि तुम कभी पादते क्यों नहीं?
सचमुच कभी नहीं पादते?
जवाब—
प्यारी मिस ब्राइट!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें पादने की ज़रूरत ही नहीं,
हम लिखते जो हैं !

यद्यपि गोरी नस्ल के लोग बेहद चिकना और तामसी भोजन करते हैं, जिससे ज़्यादा गैस नहीं बनती, तो भी अगर उन्हें लोगों के बीच बैठे-बैठे भी पाद आ जाता है तो वे बिना हिचक के तुरंत पाद देते हैं। लेकिन तब बड़ी घिन आती है जब शराब पीनेवालों का गुप्तदान बर्दाश्त करना पड़ता है, क्योंकि शराब पीनेवाले बड़े ही बदबूदार पाद मारते हैं। पाद को लेकर अश्लीलता की हद तो एक फ्रांसीसी करता था। वह पादने की अपनी ताक़त को स्टेज पर खड़े होकर दर्शाया करता था। उसने अपनी पतलून का थोड़ा-सा हिस्सा भी कटवा रखा था। थोड़े-से पैसों की शर्त पर ही वह तीन फुट दूर रखी मोमबत्ती को पाद मारकर बुझा देता था।

अगर इस मामले में अंग्रेज़ों से घिन आती है तो हिन्दुस्तानी भी कुछ कम नहीं। हिन्दुस्तानियों में 'सेंस ऑफ ह्यूमर' भी कम होता है। और चूँकि हम लोग ख़ूब मसालेदार तामसिक भोजन करते हैं, इसलिए हम दुनिया के 'चैम्पियन पदेलों' में से हैं और इसको लेकर एक-दूसरे पर ख़ूब हँसते भी हैं। एक बार कैबिनेट स्तर के एक मंत्री महोदय का ऑल इंडिया रेडियो की विदेश सेवा के लिए वार्ता देते हुए ज़ोर का 'भोंपू' निकल गया। वार्ता को फिर से रेकॉर्ड करना पड़ा। लेकिन कुछ ऐसा हुआ कि प्रसारण के समय ग़लती से पहलेवाली रेकॉर्डिंग ही प्रसारित हो गई। ख़ैर, जो भी हुआ, इतना तो ज़रूर हो गया कि सिर्फ़ एक हिन्दुस्तानी को ही यह विशिष्टता प्राप्त हुई कि उसका पाद दुनिया के हर कोने में सुनायी दिया। 'गिनीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रेकॉर्ड !' कृपया नोट करें।

पाद को लेकर बेहद कठोर रवैया अपनाने के लिए अरबों और ईरानियों की तारीफ़ होनी चाहिए। एक किंवदंती है कि एक युवा ईरानी का एक महफ़िल में बैठे-बैठे पाद निकल गया। उसे इतनी शर्मिंदगी हुई कि वह शहर ही छोड़कर चला गया। कई सालों तक स्वतः निर्वासित रहने के उपरान्त बेचारे ने सोचा कि 'चलो, अपने शहर वापस लौटा जाय, अब तक तो लोग उस शर्मनाक घटना को भूल-भुला चुके होंगे।' इतने बरस बाद लौटा था। शहर का रूप-रंग काफ़ी बदल चुका था। उसने कुछ लड़कों से अपना नाम बताते हुए अपने घर जाने का रास्ता पूछा। छोकरों ने तपाक से बदले में पूछ लिया, "अच्छा, उस पदैले के घर जाना है ?" बेचारा वह आदमी अपने घर जाने के बजाय वापस निर्वासन पर लौट गया।

पदैलों के प्रति शिष्टाचार के लिए प्रथम पुरस्कार बल्ख़ के सूफ़ी अब्दुल रहमान हातिम इब्न उनवान अलअसाम को जाता है, जो पदैलों के प्रति अपने सौजन्य के कारण 'बहरा हातिम' कहलाता था। कहा जाता है कि एक बार वह एक वृद्धा को धार्मिक उपदेश दे रहा था कि वृद्धा का पाद निकल गया। बेचारी को शर्मिंदगी से बचाने के लिए हातिम उससे ज़ोर से बोला, "ज़रा तेज़ बोलिए ना ! मुझे सुनाई कम पड़ता है।" वह वृद्धा पंद्रह साल तक और ज़िंदा रही, इसलिए बेचारा हातिम अपने-आपको बहरा ही जताता रहा और लोगों की ऊँची आवाज़ें बरदाश्त करता रहा। तो बहरा हातिम इस तरह शर्मसार पदैलों का सबसे बड़ा तारनहार संत बना।

पता नहीं भागमती उस असली चीज़ के बदले पाद पर मेरी यह ज्ञानवार्ता सुनना पसन्द करेगी या नहीं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16

1857

एलिस ऑल्डवेल

अपने शौहर को दिल्ली आने को मनाने के लिए मैं अपने-आपको क़तई माफ़ नहीं कर सकती। वे तो हमेशा यही कहा करते थे कि कलकत्ता में आख़िर किस चीज़ की कमी है ? हम यहाँ मज़े में तो हैं।

कलकत्ता में रहने में वैसे तो कोई ख़राबी नहीं थी, लेकिन ऐसे कई कारण थे जिनके चलते मैं वहाँ अब और नहीं रहना चाहती थी। पहला कारण तो यही था कि वहाँ यूरेशियन लोगों की भरमार थी, और अगर आप अपने-आपको उनसे अलग-थलग करके नहीं रखते तो कुलीन अंग्रेज़ हमें भी उन्हीं लोगों जैसा समझ बैठते हैं। विश्वास कीजिए, मुझे वैसे यूरेशियन लोगों से कोई व्यक्तिगत शिकायत नहीं है। उनमें भी ऐसे कुछ अच्छे और शिष्ट लोग हैं ही, जो अपने हिन्दुस्तानी रंगरूप के बावजूद अंग्रेज़ों के बहुत क़रीब लगते हैं। वर्णसंकर होने में आख़िर उनका अपना भी क्या क़सूर ? पर, मुझे तो किसी तरह इन सबसे दूर जाना था। मम्मी की बात और थी। वह तो कलकत्ते में इतने सालों से रह रही थी कि अपने वतन को भूल ही चुकी थी। पर मैंने पक्के अंग्रेज़ साहब से शादी की थी, हर मैजेस्टी की डाक और तार सेवाओं में कार्यरत एलेक्ज़ेंडर ऑल्डवेल एस्क्वायर से। उस समय मेरी उम्र सिर्फ़ सोलह साल की थी और वे पचासवें में क़दम रखनेवाले थे। ख़ैर, जो भी हो, थे तो वे ख़ालिस अंग्रेज़। मैं क़तई नहीं चाहती थी कि वे कलकत्ता के ऐरे-ग़ैरे नत्थुओं से मिलें और मेल-जोल बढ़ाएँ।

शादी के पहले दो वर्षों में ही हमारे यहाँ दो बेटियाँ हो गईं और उसके बाद उनकी 'टैं' हो गई। पचपन के होते ही उन्हें नौकरी से छुट्टी मिल गई। सोच रही थी कि अब वे हमें अपने विलायत ले चलेंगे, पर वे तो कलकत्ता छोड़ने का नाम ही नहीं लेते थे। बस, एक ही रट कि कलकत्ता में रहना सस्ता है। विलायत वापस जाकर क्या करेंगे ? न आया मिलेगी, न नौकर-चाकर। वैसे भी नौकरी से उन्होंने बचाया ही क्या था कि हमारे वहाँ जाने का किराया तक निकाल पाते ! चौरंगी के पास के इलाक़े में, जहाँ यूरेशियन लोग रहते थे, वहीं हमें घर लेना पड़ा। मैं अपने पड़ोसियों से कम-से-कम वास्ता रखती थी, पर एलेक तो उनके साथ ऐसे घुल-मिल गए थे, जैसे पानी में मछली। उन्होंने यूरेशियन लोगों के घर आना-जाना शुरू कर दिया था और उनके साथ बैठकर देसी शराब भी पीने लगे थे। मैंने उनसे बड़ी ख़ुशामद की कि मैं अपनी बेटियों को यहाँ हिन्दुस्तान में बड़ा करना नहीं चाहती। मैं उनको अपने विलायत में अच्छे स्कूलों में पढ़ाना चाहती हूँ। और अगर यहीं रहना है और तुम अपनी पेंशन पर इनको नहीं पाल सकते तो चलो, कहीं और चलें, जहाँ कम-से-कम ये यूरेशियन साहब लोग तो न हों ! मुझे पूरा भरोसा है कि तुम्हें कोई न कोई नौकरी मिल ही जाएगी। तुम्हारी पेंशन और तनख़्वाह मिलाकर तो लड़कियों को ठीक से पाला ही जा सकेगा। इसमें से कुछ बच-बचा गया तो चले जाएँगे विलायत। पर कम-से-कम इस बीच अच्छे लोगों के बीच रहने को तो मिलेगा ! मैं यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब एक नहीं, हज़ार बार कह चुकी थी, पर आप क्या सोचते हैं कि मिस्टर एलेग्ज़ेंडर ऑल्डवेल मेरी बात कभी सुनते थे ? एक कान से सुनी और दूसरे से निकाल दी। कहते, "मुझे कोई इस उमर में कौन-सी नौकरी देगा," और तेज़ी से बाहर निकल जाते।

मैं तो तंग ही आ चुकी थी। एलेक को बिना बताए ही मैं जॉर्ज ऐटकिंस से मिलने चली गई। जॉर्ज एटकिंस कभी इनके बॉस हुआ करते थे। मिस्टर ऐटकिंस बहुत भले आदमी थे। उम्र सिर्फ़ चालीस साल। अभी तक कुँवारे थे। उन्होंने मेरी बात को ध्यान से सुना और दिलासा दिया कि वे इस मामले पर ग़ौर करेंगे। उन्होंने मुझे कलकत्ता क्लब में भोजन पर निमंत्रित किया। बड़ी आडम्बरपूर्ण जगह थी वह। मर्द अपने औपचारिक, पीछे से लटकते हुए कोटों में और महिलाएँ लम्बे लहराते गाउनों में। बैरे, ख़िदमतगार, आबदार वग़ैरह इधर से उधर घूम रहे थे। मिस्टर ऐटकिंस बहुत छबीले लग रहे थे। उन्होंने कहा कि मुझ-जैसी ख़ूबसूरत महिला का साथ होना उनके लिए फ़ख्र की बात है। मैंने प्यार से उनके नाक़ पर एक चुम्बन जड़ दिया। खाना खाकर, नाच चुकने के बाद उन्होंने मुझे अपनी बग्घी में घर वापस छोड़ दिया। मैंने उन्हें गुडनाइट कहते हुए भरपूर चुम्बन दिए।

कुछ दिनों बात मिस्टर ऐटकिंस ने मुझे अपने बँगले पर खाने पर बुलाया। कितना रोमांटिक लग रहा था सब-कुछ ! क़ंदीलों की मद्धिम रोशनी, शैम्पेन, इंगलिश हैम, चैड्डर चीज़, और न जाने क्या-क्या ! सब-कुछ कलकत्ता के पॉश स्टोर 'हॉल ऑफ ऑल नेशंस' से आया होगा।

मैं जानती थी कि मुझे क्यों बुलाया गया है, ऐटकिंस को मुझसे क्या चाहिए था ! और मैं यह भी जानती थी कि मुझे उनसे क्या चाहिए था !

डिनर के बाद हम अपने असली मक़सद में जुट गए। मैंने उनकी तमन्ना भरपूर पूरी की। मैंने बताया न कि मेरे पति तो अब चुक गए थे। और मेरी उम्र ही क्या थी ! सिर्फ़ छब्बीस साल। और पिछले एक साल से मर्द के जिस्म की गर्मी से वंचित रह रही थी मैं।

जॉर्ज ऐटकिंस को तो औरत को छूने का क-ख-ग भी नहीं आता था। पहली बार तो उनसे तनिक भी इंतज़ार बर्दाश्त न हुआ। पर दूसरी बार उन्होंने मेरा अंग-अंग तोड़ डाला और फिर बड़ी विनम्रता से पूछने लगे, "डार्लिंग, मैंने तुम्हें 'हर्ट' तो नहीं किया ?" मैं क्या कहती भला ? जॉर्ज ऐटकिंस तो ऐसे उत्फुल्ल लग रहे थे, जैसे कोई बाज़ी जीत ली हो। इस बार मैंने उन्हें उकसाना शुरू किया। मेरी उँगलियाँ उनकी छाती पर फिरने लगीं। मैंने उनके पेट में चूमा और अपनी नाक उनकी नाभि में गड़ा दी। मैंने देखा, वे उत्तेजित होने लगे हैं। मैं चाहती थी कि यह रात उनके लिए यादगार रात बने। वे कहने लगे, "लगता है तुम्हारे भीतर की हिन्दुस्तानी ख़ासियत ने भी तुम्हें इतनी अच्छी तरह प्यार करना सिखाया है।" मुझे उनकी यह बात अच्छी नहीं लगी। मैंने कहा, "ऐसी बात नहीं है। मुझमें हिन्दुस्तानियों की कोई ख़ासियत नहीं है। मैं बिल्कुल ख़ालिस अंग्रेज़ हूँ: ठीक उतनी, जितने कि आप। पूरी सौ-फ़ीसदी ब्रिटिश। और मुझे इस पर फ़ख्र है। आपको एलेक के लिए कहीं और नौकरी का इंतज़ाम करना पड़ेगा। वादा कीजिए !" और उन्हें चूमते हुए मैंने फिर पूछा, "बोलिए, वादा करते हैं न ?" वह शायद नज़र चुराने की कोशिश में थे, पर मैंने उनका चेहरा हाथों में थामा हुआ था, "बोलिए ना ! वादा दीजिए मुझे। और फिर देखिए मैं भी आपके लिए कुछ भी करने में पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हटूँगी।"

"मैं भरसक कोशिश करूँगा," उन्होंने जवाब दिया।

बस मुझे अब और क्या चाहिए था!

उनका साईस मुझे रात तीन बजे घर पर छोड़ गया। अगले दिन सुबह मैंने एलेक को कोंच-कोंचकर किसी तरह ऐटकिंस के पास जाने के लिए मना ही लिया। मैंने उन्हें ऐटकिंस के साथ अपनी मुलाक़ातों की बाबत कुछ भी नहीं बताया। यही कहा कि मैंने किसी के हाथ ऐटकिंस से उनकी नौकरी के लिए कहलवाया है। अब तो मुझे बस एक ही ख़तरा लग रहा था कि शायद ऐटकिंस मुझे कलकत्ता से जाने ही नहीं देगा। लेकिन शायद आपको पता होगा कि मर्द-ज़ात क्या होती है। हफ़्ते-भर के भीतर ही उन्होंने एलेक को दिल्ली में नौकरी ढूँढ दी। मैं उनके बँगले पर उन्हें शुक्रिया अदा करने गई। इस बार न मोमबत्तियाँ जल रही थीं, न शैम्पेन थी और न ही अंग्रेज़ी पकवानों से मेज़ सजी हुई थी। उन्होंने मुझे बिस्तर पर खींचा और ख़त्म!

इस तरह हम 1856 की सर्दियों की शुरुआत में दिल्ली आ पहुँचे। हमने दरियागंज में एक बड़ा-सा दोतल्ला मकान किराए पर लिया। अधिकतर अंग्रेज़ों के घर दरियागंज में ही थे। हमारे बँगले में एक बड़ा-सा कम्पाउँड था। आया, ख़ानसामा, मशालची, आबदार, भिश्ती, साईस, जमादार और दूसरे नौकरों के लिए क्वार्टर भी साथ ही लगे हुए थे। ऊँची चहारदीवारी और लोहे के फाटकवाला हमारा घर किसी क़िले से कम नहीं था। हमारे बँगले के पूरब की ओर दिल्ली शहर की दीवार पड़ती थी और यमुना नदी उसके ठीक नीचे बहती थी।

नवम्बर में मेरा तीसरा बच्चा हुआ। इस बार फिर लड़की। कश्मीरी गेट के सेंट जेम्स चर्च में हमने इसका नामकरण किया। मैंने इसका नाम जॉर्जीना रखा और मिस्टर ऐटकिंस को अपनी बेटी के जन्म और नामकरण के बारे में लिखा। पंद्रह दिन बाद जॉर्जीना के जन्म की खुशी में हमने एक पार्टी रखी। दिल्ली के सभी जाने-माने लोगों को न्यौता दिया गया। पचास से भी ज़्यादा मेहमान आए थे। रेसीडेंट मिस्टर थियाफ़िलस मेटकॉफ़ भी, जिन्हें लोग बड़ा साहिब कहते थे, कुछेक मिनट के लिए आए थे। चाँदनी चौक वाले बैंक का मैनेजर मिस्टर ब्रेस्फ़ोर्ड भी अपनी पत्नी और बच्चों के साथ आया था। लालक़िले के सुरक्षा-दस्ते का कमांडर कैप्टेन डग्लस, कमिश्नर मिस्टर साइमन फ्रेज़र के साथ आया। बच्ची के कारण मैं तो न नाच सकी, न ड्रिंक ले सकी। बाक़ी लोगों ने ज़रूर खूब मज़ा उड़ाया।

हमने किसी भी हिन्दुस्तानी को नहीं बुलाया था। फिर भी कइयों ने हमें तोहफ़े भेजे। उन्हीं में बूढ़े बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र की बेगम ज़ीनत महल का भेजा किमख़ाब का एक बेशक़ीमती कपड़ा भी था।

मिस्टर मेटकॉफ़ ने मुझे अकेले में ले जाकर मुझसे कहा कि मैं ज़रा नवाबों की बेगमों पर नज़र रखूँ कि वे क्या बातें करती हैं, क्योंकि यह जानना उनके लिए बहुत ज़रूरी है। पता नहीं कैसे उन्हें यह पता चल गया था कि मैं थोड़ी-बहुत हिन्दुस्तानी समझती हूँ। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से मुझसे कहा था, इसलिए मैंने भी वादा किया कि मेरी बच्ची थोड़ी बड़ी हो जाय, तो मैं ज़रूर उनका काम करूँगी।

दिल्ली की सर्दियाँ बड़ी खुशनुमा होती हैं। दिसम्बर तक इतनी ठंड पड़ने लगती है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतिशदानों में लकड़ियाँ जलाना शुरू कर दिया जाता है। सुबह तो चारों ओर धुंध ही धुंध दिखाई देती है। दिन चढ़ने पर आलम खिला-खिला-सा लगने लगता है। मैंने अपने घर को ख़ूब आरामदेह बना रखा है और अंग्रेज़ों के लिए इसके दरवाज़े पूरी तरह खुले हैं। कैप्टेन डग्लस और उसके मातहत अफ़सर तो अक्सर आया करते थे। लौंग और जायफल मिली रम पीना वे ख़ूब पसन्द करते थे। हम लोग क्रिसमस के दिन 'कैरॉल' गाने के लिए सेंट जेम्स चर्च जाया करते और उससे अगले दिन बरामदे में फलों की टोकरियों और फूलों के गुलदानों के ढेर लगे होते। बड़े दिन पर मेरे मियाँ के अधीन काम करनेवाले सभी मुलाज़िम कुछ-न-कुछ ज़रूर दे जाते। उस दिन दोपहर का समय मिस्टर मेटकॉफ़ सिर्फ़ यूरोपियन समुदाय के लोगों के लिए ही रखते। कश्मीरी गेट के दूसरी तरफ़ उनके विशाल भवन में हम सब 'हर मैजेस्टी'—इंगलैंड की रानी के नाम पर जाम टकराते और पीते। शाम को हम लोगों को अपने घर बुलाते। 'क्रिसमस-ट्री' के गिर्द खाना-पीना चलता। कुछ छड़े अंग्रेज़ हमारे मेहमान होते। सब लोग इतना पीते कि नशे में धुत्त हो जाते। एलेक को तो इतनी चढ़ जाती कि उन्हें बिस्तर में लिटाना पड़ता। बाक़ी मर्द मुझसे इश्क़बाज़ी करते रहते; ऐसा कोई गहरा-गम्भीर इश्क़ नहीं, बस यों ही हल्की-फुल्की छेड़छाड़। 'बॉक्सिग डे' पर एलेक कैप्टेन डग्लस के साथ शिकार पर गए। लौटे तो दो हिरन, चार बत्तख़ें और कोई पचास तीतर मारकर लाए। हमने अपने सारे दोस्तों-यारों में बाँटे।

नए साल की पूर्व-संध्या पर हमने बड़े भारी भोज का आयोजन किया। मिस्टर मेटकॉफ़ ने इस बार भी पधारकर हमें धन्य किया। अबकी बार फिर उन्होंने मुझे अकेले में ले जाकर अपने वादे की याद दिलायी कि बेगमों से मिलकर उनके बीच चल रही गुफ़्तगू की ख़बर उन तक भी पहुँचाऊँ। लगता था अब तो कुछ करना ही पड़ेगा। मैंने उनको आश्वासन दिया कि मैं जल्द ही कुछ करूँगी।

असली मज़ा तो मिस्टर मेटकॉफ़ के जाने के बाद आया। एलेक को इतनी चढ़ गई कि उसे बिस्तर पर लिटाकर आना पड़ा। कैप्टेन डग्लस के एक मातहत अफ़सर ने मुझे ऐसा पकड़ा कि बस बलात्कार ही बाक़ी रह गया था, और वह भी पीकर धुत्त पड़े एलेक की आँखों के आगे—गज़-भर की ही दूरी पर। और नशे में धुत्त पड़ा मेरा वह मूर्ख पति उसे और उकसा रहा था, "धर लो, पकड़ लो इस कमीनी कुतिया को…"

तो यह थी दिल्ली की ज़िंदगी!

त्यौहार का जश्न ख़त्म हुआ तो मैंने सभी हिन्दुस्तानियों की बीवियों को उनकी भेंटों के लिए शुक्रिया भेजा। उन सबने बड़े दिन और जॉर्जीना के जन्म पर हमें तोहफ़े भेजे थे। कुछ बेगमें तो उसके बाद मुझसे मिलने आईं और कहने लगीं कि यह क्या कि मैंने इतना तकल्लुफ़ किया कि लिखकर उन्हें शुक्रिया अदा किया, जबकि वे तो हमें अपने ही परिवार का समझती हैं। मुझे मन-ही-मन ख़ूब हँसी आई। हम हिन्दुस्तानियों के परिवार के हैं? हँह! हिन्दुस्तानियों को तो ऐसे ही बढ़ा-चढ़ाकर कहने-बोलने की आदत पड़ी हुई है। मुझे सब-के-सब बहन कहा करते। उनके बच्चे मुझे मौसी कहते। मुँह पर तो बड़ी तारीफ़ करेंगे, पर पीठ घुमाते ही छुरा घोंपने को तैयार!

अप्रैल सन् 1857 का कोई दिन था शायद। याद है कि गर्मी काफ़ी पड़ रही थी उन दिनों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाज़ों पर लगे ख़स के पर्दों पर भिश्ती पानी छिड़का करते थे। किसी की हिम्मत नहीं होती थी कि दोपहर को बाहर निकल जाए। यहाँ तक कि रातें भी ख़ूब गर्म ही होतीं। हम लोग अपनी छत पर सोया करते थे और पंखा झलनेवाले नौकर रात-भर बारी-बारी से हमें हवा किया करते।

एक दिन बेगम ज़ीनत महल ने हमें ताल-कटोरा वाले अपने बाग़ के आमों और ख़रबूज़ों की टोकरियाँ भिजवाईं। मैंने टोकरियाँ पहुँचानेवाले नौकरों को ख़ूब बख़्शीश दी और इसकी ख़बर मिस्टर मेटकॉफ़ को भिजवा दी। उन्होंने मुझे जवाब भेजा कि कुछ और भी यूरोपियन महिलाओं को बेगम ज़ीनत महल ने आम और ख़रबूज़ों की टोकरियाँ भिजवाई थीं और वे सब उनका शुक्रिया अदा करने के बहाने उन्हें मिलने जा रही हैं। मुझे भी उनके साथ ही बेगम को मिलने चले जाना चाहिए।

बैंक मैनेजर मिस्टर ब्रेस्फ़ोर्ड ने हमारे लिए बग्घी भेजी। मैंने अपनी दो बड़ी बेटियों को भी साथ ले लिया।

कैप्टेन डग्लस हमें लाहौरी गेट पर मिले। लगता था आज की दोपहर मेमसाहिबाओं के लिए ही थी। सार्जेंट फ़्लेमिंग की बीवी और बेटी भी आई थीं। मिसेज़ स्कली के साथ और भी बहुत-सी अंग्रेज़ महिलाएँ आई थीं। कैप्टेन डग्लस ने हमें एक मोटे-से हिंजड़े बसंत अली ख़ान के साथ कर दिया। बसंत अली ख़ान हरम के चौकीदारों का मुखिया था।

वह हमें मीना बाज़ार की तरफ़ से भीतर ले जा रहा था। हमने न जाने कितने बरामदे पार किए। बरामदों के दोनों तरफ़ कमरे थे जिनमें शाही ख़ानदान के सलातीन सदस्य (बाँदियों एवं अन्य परिचारिकाओं से हुई शाही औलादें) रहते थे। दुर्गन्ध से भरी कोठरियाँ! मेरे नौकरों के क्वार्टरों से भी गयी-बीती! और उनकी औरतों ने ऐसे घटिया कपड़े पहन रखे थे कि मेरी आयाएँ भी न पहनें।

हमें रानी की बैठक में ले जाया गया, जो नदी की ओर वाले हिस्से में पड़ती थी। हम लोगों को दीवानों पर बैठाया गया। दीवानों पर ईरानी क़ालीन बिछे थे और किमख़ाब के ग़िलाफ़ोंवाले गाव-तकिए सजे थे। गर्मियों के इस मौसम में क़ालीन? हिन्दुस्तानियों की बात ही अलग है।

हम जितनी भी अंग्रेज़ महिलाएँ गई थीं, सबके पीछे दो-दो बाँदियाँ खड़ी पंखे डुलाने लगीं। हमारे ऊपर केवड़ा और गुलाब जल भी छिड़का गया। तभी एक बाँदी ने आकर ऐलान किया कि, 'हिन्दुस्तान की मलिका-ए-आज़म' पधार रही हैं!

मलिका-ए-आज़म ने प्रवेश किया। इसमें कोई शक नहीं कि वे निहायत ख़ूबसूरत स्त्री थीं। बादाम के आकार की लम्बी-लम्बी आँखें, चिकनी त्वचा, एकदम काले केश। उन्होंने बेशक़ीमती ग़रारे और कुर्ते के ऊपर झीना-सा दुपट्टा सिर से घुमाते हुए ओढ़ रखा था। हम सब उनके स्वागत में उठकर खड़ी हो गईं। इन्होंने एक-एक कर हम सबसे हाथ मिलाए और अंग्रेज़ी में गुड आॅफ़्टरनून कहा। फिर मेरी बेटियों की गालें थपथपायीं। मेरी बेटियों ने भी उनको झुककर कोर्निश की। हमारे आगे फलों और मिठाइयों की तश्तरियाँ घुमायी गईं। हम पर बहुत ज़ोर दिया जा रहा था कि हम लोग कुछ खाएँ। लगता था उन्हें थोड़ी-बहुत अंग्रेज़ी आती थी, फिर भी वे हिन्दुस्तानी में ही बोल रही थीं। हम में से ज़्यादातर ने हिन्दुस्तानी के कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़े-बहुत शब्द बोलना सीख रखा था, इसलिए हमारी ख़ासी छन रही थी। जब कुछ समझ में न आता या कुछ बोलते न बनता तो सिर्फ़ हँसने या खिलखिलाने से भी काम चल रहा था। बेगमें और उनकी बेटियाँ एक के बाद एक आ-जा रही थीं। मेम साहिबाओं को देखने और उनसे बात करने का उन्हें ख़ूब चाव था। मर्दों को ज़नाने में आने की इजाज़त नहीं थी। लेकिन बेगम का सोलह साल का इकलौता बेटा शहज़ादा जवाँबख़्त अपनी बेगम के साथ वहीं था। अभी हाल ही में अपनी चचेरी बहन से उसकी शादी हुई थी।

मलिका ने हम सबको तोहफ़े दिए। हम लोग भी उनके और उनकी बहू के लिए तोहफ़े लेकर गए थे। मेरी बेटियों को उन्होंने रेशमी क़मीज़ें, सलवारें और सोने की चूड़ियाँ दीं। मैंने मलिका को यार्डले का इत्र दिया और उनकी पुत्रवधू को ज़नाना घड़ी दी। हमारे तोहफ़े उन्हें बहुत अच्छे लगे। वे सब बहुत ख़ुश हुईं।

हम लोग छोटी-छोटी टोलियों में बैठकर बतियाने लगे। मैं जवाँबख़्त और उसकी बहूवाली टोली में मिल गई। लगता था लड़के को सिखाया नहीं गया था कि महिलाओं के बीच बैठने पर कैसे व्यवहार करते हैं। वह कमबख़्त पान चबा-चबाकर चाँदी के पीकदान में थूकता जा रहा था। वह जहाँ-जहाँ जाता, हिंजड़ा थूकदान लिये पहुँच जाता। मैंने देखा कि उसको गुप्तांगों को खुजलाने और कानों में बातें करने की गंदी आदतें भी थीं। बीच-बीच में वह फ़ारसी में बोलने लगता, क्योंकि वह सोचता था कि हमें फ़ारसी समझ में नहीं आती होगी। मैंने उसके साथ बात करने की पहल की थी, सो मुए की बुरी नज़र और बदतमीज़ ज़ुबान मेरी ही ओर तन गई। हम समझेंगी नहीं, यही सोचकर वह अपनी बीवी को एक शे'र सुनाने लगा, जिसका मतलब था—

बुलबुलों से वफ़ा की क्या उम्मीद,
जो फूल-फूल फुदकती हैं और गाती हैं।

उसकी बेवकूफ़ बीवी दोनों हाथों से चेहरे को ढँकती हुई हँसते-हँसते दोहरी हुई जा रही थी। शहज़ादे की आँखें मेरी ही तरफ़ लगी थीं, इसलिए मैं समझ सकती थी कि तीर मेरी ही ओर दाग़े जा रहे हैं। अपनी माँ को दूसरी औरतों से बातों में मगन देखकर वह फ़ारसी में एक और शे'र पढ़ने लगा—

जवाँ हूरी के लिए साथ मर्द बूढ़े का,
है दर्दनाक चुभन तीर की से भी बढ़कर।

उसकी बहू ने और ज़ोरों से हँसना शुरू किया और उस उजड्ड को इससे और भी राहत मिली।

अब तो मुझे सचमुच गुस्सा आने लगा था। मैंने उसकी बीवी से पूछा, "यह तुम्हारा शौहर क्या बक-बक कर रहा है?" जवाँबख़्त ने चालाक बनने की कोशिश की थी, पर उस मूर्ख को नहीं मालूम था कि मैं फ़ारसी समझती हूँ। बोला, "ऑल्डवेल मेम साहिब, यह तो हुस्न और जवानी की तारीफ़ में शे'रो-शायरी कर रहे हैं हम।" फिर खीसें निपोरते हुए कहने लगा, "गुस्से में आने की तो आपको क़तई ज़रूरत नहीं। गुस्सेवाली औरतों के लिए तो शेख़ सादी ने कहा है—

औरत जो बिस्तर से उठे बेमज़ा
लड़ेगी तो ही मर्द से बेवजह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं जानती हूँ तुम क्या कहना चाह रहे हो !" मैंने उसकी बात को फ़ारसी में ही काटा, "तुम्हें शर्म आनी चाहिए ! बताऊँ तुम्हारी अम्मा से जो बकबक तुम कर रहे हो ?" लड़के का चेहरा अब देखने लायक़ था, एकदम सूखे पत्ते-जैसा ! उसकी माँ ने मेरी ओर मुड़कर पूछा, "क्यों, क्या हो गया आप दोनों में ?"

मैंने कहा, "मलिका-ए-आज़म, अपने बेटे से ही पूछिए।" और जवाँबख़्तवाली टोली छोड़कर मैं उठ खड़ी हुई और एक युवा लड़की से बतियाने लगी। लड़की ने अंग्रेज़ी के कुछ शब्द सीख रखे थे, जिन्हें वह मेरे साथ आज़माना चाह रही थी। जवाँबख़्त भी फटाफट उठा और मिसेज़ स्कली से बात करने लगा। मुझे पता नहीं उसने क्या कहा कि वह तुरंत उठ खड़ी हुईं और मिसेज़ फ़्लेमिंग से कहने लगीं, "मम्मी, आपने सुना यह बदमाश क्या कह रहा है ? कह रहा है कि जल्द ही अंग्रेज़ों को अपने पैरों तले कर लेगा और उसके बाद सारे हिन्दुओं का क़त्ल कर देगा।"

मिसेज़ फ़्लेमिंग बूढ़ी थी और एकदम मुँहफट्ट। गुस्से में भरी वह उससे पूछने लगी, "क्यों जवाँबख़्त, क्या तुमने कहा ऐसा ?"

मलिका ने भी ग़ुस्से में भरकर उसकी ओर देखा। जवाँबख़्त ने बंदर की तरह लाल-लाल दाँत निपोरते हुए कहा, "मैं तो मज़ाक कर रहा था।"

"यह कैसा मज़ाक सीख रहे हो तुम ?" मिसेज़ फ़्लेमिंग ने पूछा, "पहले तो तुम उस महिला (मेरी ओर इशारा करके) के साथ बदतमीज़ी से पेश आए और अब अंग्रेज़ों को लेकर बक-बक कर रहे हो ? हिन्दुस्तान में कोई भी उथल-पुथल हुई तो बच्चू सबसे पहले तो तुम्हारा ही सिर जाएगा।"

"लाहौल-वला-कुव्वत," बाँदियों ने एक सुर में कहा। मलिका ज़ीनत महल का चेहरा संकोच और लाज से पानी-पानी हुआ जा रहा था। सभी जानते थे कि वे अंग्रेज़ साहिबों के दरवाज़े खटखटा रही हैं कि उनके बेटे को दिल्ली का अगला बादशाह बनाया जाय। और यह बेवक़ूफ़ उनकी सारी उम्मीदों पर पानी फेरनेवाला काम किए जा रहा है ! मलिका ने कड़ाई से उसे हुक्म दिया, "यह कैसी बेहूदी बातें कर रहे हो ? चलो अभी माफ़ी माँगो !"

"अम्मी जान," उस उजड्ड ने रिरियाते हुए कहा, "मैं तो इतना ही कह रहा था कि ईरान के हिन्दुस्तान पर हमला करने के अंदेशे की ख़बर हवा में है। और जैसे सौ साल पहले नादिर शाह ने यहाँ तबाही मचायी थी, वैसे ही वे फिर आकर हिन्दुओं का क़त्लेआम कर सकते हैं। अम्मी जान, आप तो जानती ही हैं कि मैं दिल्ली की अंग्रेज़ औरतों की हिफ़ाज़त के लिए अपनी जान भी दे सकता हूँ।"

अब तो आप समझ गए होंगे कि मैं हिन्दुस्तानियों के लिए क्यों ऐसा कहती रहती हूँ कि वे सिर से लेकर पैर तक झूठे होते हैं। ख़ैर, चलिए, मिस्टर मेटकॉफ़ को बताने के लिए कुछ तो मिला !

हमारी आवभगत का आख़िरी दौर था। ज़ीनत महल ने पान के बीड़ों की तश्तरी मँगवायी और अपने हाथों हमें पान पेश किए। बाक़ी अंग्रेज़ों की तरह मुझे भी पान से सख़्त नफ़रत है। लेकिन शाही शिष्टाचार तो निभाना ही था। हम सबने अपने-अपने मुँह में पान के बीड़े ठूँस लिये और मलिका को सलाम कर विदा ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने महल की इस गोष्ठी के बारे में अपने पति को बताया। उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने बताया कि उन्होंने भी लोगों को ईरान अथवा रूस के सम्भावित हमलों को लेकर चिंता व्यक्त करते सुना है। यहाँ तक कि जामिया मस्जिद पर इस तरह के पोस्टर चिपके भी देखे हैं कि हमला गर्मियों के दिनों में होनेवाला है। ये अफ़वाहें तो तब से सुनने में आ रही हैं, जब से लॉर्ड कैनिंग वायसराय बने। जब वे अपने पद की शपथ लेने जा रहे थे तो क़ालीन में पैर फँस जाने से वे लड़खड़ाकर गिर पड़े थे। बस तभी से यहाँ के स्थानीय लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि अल्लाह को लॉर्ड कैनिंग की सरकार मंज़ूर नहीं। अब यह जल्द ही लड़खड़ाकर गिर पड़ेगी। एलेक ने बताया कि हिन्दुस्तान के ज़्यादातर लोगों का यही मानना है कि पलासी के युद्ध की सौवीं जयन्ती होते-होते भारत से अंग्रेज़ों का राज्य ख़त्म हो जाएगा। तो पलासी की लड़ाई की सौवीं जयन्ती तो आने ही वाली थी इस जून में। मेरे शौहर ने मुझे तसल्ली दी, "ये कमबख़्त कलूटे तो सिर्फ़ बक-बक ही कर सकते हैं। करते रहें कोशिशें! हम भी इन्हें 'टो' पर रखे रहेंगे।"

एलेक मिस्टर मेटकॉफ़ से मिलने गए और जो-जो ख़बरें मुझे लालक़िले के 'ज़नाना' से मिली थीं और जो कुछ उन्होंने खुद बाज़ार में सुनी थीं, सब मेटकॉफ़ साहब को बता आए। मिस्टर मेटकॉफ़ ने एलेक को धन्यवाद दिया और कहा कि मुझसे सिफ़ारिश करें कि मैं बादशाह के पोते मिर्ज़ा अब्दुल्ला के हरम की औरतों से मेल-जोल बढ़ाऊँ।

मिर्ज़ा अब्दुल्ला दरियागंज में ही रहता था। वह हमारे घर के पीछे रहनेवाले हसन अस्करी नामक आदमी का शागिर्द था। सुना था कि यह हसन अस्करी बादशाह का बहुत विश्वासपात्र था और उनकी उस बेटी का प्रेमी था, जो दो साल हुआ गुज़र गई थी। मिर्ज़ा अब्दुल्ला की बहन मेरे पास कई बार आ चुकी थी। मेरी कोई इच्छा नहीं थी कि उसको मिलने जाऊँ, पर मिस्टर मेटकॉफ़ के कहने पर मेरे पति मुझ पर ज़ोर देने लगे थे कि मुझे अपने मुल्क के वास्ते इतना मामूली-सा काम करने में नहीं हिचकिचाना चाहिए।

एक दिन दोपहर को मैं मिर्ज़ा अब्दुल्ला के घर मिलने गई। ओह जीसस! क्या बताऊँ कि ये हिन्दुस्तानी लोग किसी अंग्रेज़ के अपने घर आने पर कैसे खुश होते हैं! औरतें तो इतनी खुश हो रही थीं कि उनसे बात ही नहीं बन पा रही थी। वे सब मुझे बड़े कौतूहल से हिन्दुस्तान पर होनेवाले हमले के बारे में फैली अफ़वाहों की बाबत बता रहे थे। मिर्ज़ा की बड़ी बेगम ने कहा, "भई, आप किसी की ज़ुबान तो बन्द नहीं कर सकते। जितने मुँह उतनी बातें!" मैंने उनसे हसन अस्करी के बारे में पूछा। "वह अल्लाह का बंदा है," बेगम बोली, "लेकिन वह हमारे मज़हब का नहीं है। वह शिया है और हम सुन्नी हैं। हमारा उससे कोई लेना-देना नहीं।"

मैं जानती थी कि यह सरासर झूठ बात है। मेरा दर्ज़ी मिर्ज़ा अब्दुल्ला के यहाँ भी कपड़े सिलता था। उसी ने मुझे बताया था कि वह हसन अस्करी को अक्सर मिर्ज़ा साहब के घर देखा करता है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि आप हिन्दुस्तानियों की बात पर यक़ीन तो कर ही नहीं सकते, ये लोग तो जन्म से ही झूठ बोलना सीख लेते हैं। इन्हें सच के बजाय झूठ बोलने में ज़्यादा चतुराई भी नज़र आती है।

मिर्ज़ा अब्दुल्ला के घर के बारे में प्राप्त मेरी जानकारी की ख़बर करने एलेक मेटकॉफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहिब के घर गए। लौटने पर उन्होंने मुझे बताया कि कैन्टोनमेंट में आग लगी हुई है। कौन जाने कैसे लगी, कुछ पता नहीं। अजीबोग़रीब लोग हाथों में रोटियाँ लिये इधर-उधर भाग रहे थे। ये दुष्ट काले लोग हमारे ख़िलाफ़ साज़िश रच रहे थे, यह तो पक्का था, लेकिन यह पता नहीं था कि ये दोगली मानसिकतावाले लोग कब हमारी पीठ में छुरा भोंकनेवाले हैं।

और जिस दिन यह हुआ, वह दिन कितना साफ़-साफ़ मेरी स्मृति में दर्ज है। सोने के पहले हमारा यह नियम था कि हम शाम को छत पर जाकर 'ड्रिंक' करते और वहीं खाना खाते। हाँ, अगर आँधी-वाँधी चल रही हो तो और बात थी। और तब जैसा कि मैंने कहा, भिश्ती पानी का छिड़काव करता था और नौकर हमारा बिस्तर लगा देता था। पहले तो मैं अपना बिस्तर एलेक के साथ ही लगाती थी, पर जब वह गर्मागर्म तरीवाली चीज़ें खाकर सोता तो पाद-पाद कर नाम में दम कर देता। ऐसे में मैं अपना बिस्तर तनिक दूर लगवाया करती। छत पर रात को नींद अच्छी आती थी। रातें ठंडी होतीं और सुबह को बड़ी प्यारी, ख़ुशनुमा हवाएँ बहतीं।

बग़ावत की शुरुआत रमज़ान के महीने में एक दिन सुबह-सुबह ही हुई। उन दिनों मुसलमान सुबह से लेकर शाम तक रोज़े रखा करते हैं। मुझे याद है कि मुल्ला की अज़ान से मेरी नींद खुली थी। अभी अँधेरा था, पर फिर दोबारा नींद ही नहीं आई। दरियागंज में इतनी मस्जिदें हैं कि मुल्लों की अज़ानें एक के बाद एक जारी रहती हैं। हमारे मुसलमान नौकर मुँह-अँधेरे ही खाना पकाकर निगलने में लगे हुए थे। जमना-पार जंगल के ऊपर से पौ फटी ही थी कि जामा मस्जिद की तरफ़ से छूटा एक गोला हमारे घर की तरफ़ आया। विस्फोट से एलेक और बच्चों की नींद खुल गई। ख़ानसामा हमारी छोटी हाज़िरी (चाय) लेकर हाज़िर हुआ।

मेरी बेटियाँ दूध के गिलास पकड़े अब छत पर उछल-कूद मचा रही थीं। एलेक और मैं चाय पी रहे थे, तभी हमने एक मोटे-से बनिए को पीतल का लोटा लेकर आते हुए देखा। वह सामने की दीवार के पास ही बैठ गया। ये हिन्दुस्तानी लोग ज़रा-सी आड़ पाते ही बैठ जाते हैं। एलेक हमेशा एक गुलेल और कुछ कंकड़ सवेरे की चाय के साथ मँगवाकर रखते थे। बनिए के बैठने के पहले ही उन्होंने एक कंकड़ उसकी तरफ़ निशाना बाँधकर फेंका जो उसके पीतल के लोटे में जा लगा। बनिया लपककर उठा और अपनी धोती सँभालने लगा। "चल फूट, हरामी कलूटे !" एलेक ने चिल्लाकर कहा और वह बेचारा सचमुच ही फूट लिया। इस पर हम लोग खूब हँसे। उसके बाद देखा कि एक आदमी लकड़ी की खपच्चियों से बने पिंजड़े में तीतर लिये चला आ रहा है। उसके पीछे एक और तीतर 'टीटर-टीटर' करता उड़ा आ रहा था। एलेक ने अपनी बंदूक उठा ली। वह हमेशा अपनी बंदूक बग़ल में ही रखते और नदी की ओर से आते तीतरों-बटेरों को देखते ही बंदूक उठा लेते। एलेक ने सामने उड़ते तीतर की ओर निशाना साधा और 'ठायँ' की आवाज़ के साथ ही कहा, "इस मोटे काले तीतर की अब बढ़िया पार्ट्रिज-पाई बनाना। क्यों ?" उनका तो जैसे यह तकिया कलाम ही बन गया था।

आज का दिन भी रोज़ की तरह ही सामान्य रूप से शुरू हुआ था। धूप अब काफ़ी तेज़ हो गई थी। धूप चढ़ते ही मक्खियाँ भिनभिनाने लगी थीं। एलेक और बच्चे नीचे जा चुके थे। मैंने सीढ़ियों के पास पहुँचते ही लक्ष्य किया कि अरे, ये नदी के पार उड़ते गुबार के बादल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे ? उत्सुकतावश मैं वहीं रुकी रही। देखा कि पुलिया पर कुछ घुड़सवार घोड़े दौड़ाये चले आ रहे हैं और बीच-बीच में गोलियाँ दाग़ते जा रहे हैं। "एलेक," मैंने चिल्लाकर एलेक को बुलाया, "आओ, देखो !" एलेक के छत पर पहुँचने से पहले ही वे घुड़सवार क़िले की दीवार के पीछे आँखों से ओझल हो गए। लेकिन उनके बाद ही एक और जत्था वैसे ही आगे बढ़ता नज़र आया। यह जत्था दीवार के साथ-साथ दरियागंज की तरफ़ बढ़ा आ रहा था। हमें छत पर खड़ा देखकर वे चिल्लाने लगे, "मार डालो साले फ़िरंगी को !" इन घुड़सवारों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की वर्दियाँ पहन रखी थीं।

हम लोग नीचे भागे और हमने अपने बँगले के फाटक बंद करवा दिए।

अंतिम बादशाह

कहावत है कि जब कोई गुनहगार रोज़ा रखता है तो अल्लाह दिन को और लम्बा कर देता है। 1273 हिज्री, यानी रमज़ान के मई, सन् 1857 में कुछ ऐसा ही लग रहा था कि अल्लाह का रहम हम पर नहीं है। हम इस्लाम के हुक्म के मुताबिक़ चलने की भरपूर कोशिश कर रहे थे, पर इन्सान तो आख़िर इन्सान ही है। कभी-कभी वह अपने फ़र्ज़ को भुलाकर अपनी मर्ज़ी करने को ही ज़्यादा अह मियत दे बैठता है। उस साल रमज़ान का पाक महीना आमों के मौसम के साथ हमसार हो रहा था। आमों का मज़ा लेने का सबसे बढ़िया वक़्त तो सुबह और दोपहर के बीच का ही होता है। लेकिन इन दिनों इस वक़्त खाना-पीना हमें मना होता है। अगर अल्लाह की ऐसी ही मर्ज़ी हो तो कोई क्या करे ! बादशाह बेचारा भी अपने मुल्क के फलों के बादशाह का लुत्फ़ नहीं उठा सकता।

पिछले कुछ दिनों से हमें सुबह होने से पहले ही उठने की आदत पड़ गई थी। उठकर हम चौबारे में बैठ जाते और जमना की ओर ताकते रहते। हमने सबको ताकीद कर रखी थी कि हमारे फ़जर की नमाज़ पढ़ने तक कोई हमें परेशान न करे। इस तरह हमें तीन-चार घंटे अकेले में बिताने का मौक़ा मिल जाता। इस दौरान हम गहरी सोच में खोये रहते। हमें अँधेरे में चुपचाप बैठना अच्छा लगता। डूबते चाँद की फीकी-सी छाया को नदी में झिलमिलाते हुए देखना हमारा शौक़ बन चुका था। बेचाँदा रातों में अनगिनत तारों से भरे आसमान की स्याह चमक को ही हम देखते रहते। धीरे-धीरे साफ़ होते आसमान पर भोर के तारे की चाँदी-सी चमक को देखना भी हमारे लिए एक अलग तरह का अहसास था। कोयलों की कूकों के साथ दिन चढ़ने लगता। सुबह की ठंडी हवाएँ हमारे सीने में खुद-ब-खुद दर्द-भरी शायरी की तान छेड़ जातीं। जी होता तो हम शमा जलाकर एकाध शे'र लिख लिया करते या फिर किसी ग़ज़ल का कोई मिसरा हमारे मन में उमड़-घुमड़ करने लगता और काग़ज़ पर उतर आता। किसी-किसी सुबह हम जौक़ या मिर्ज़ा ग़ालिब के भेजे कलाम को पढ़ते और उस पर ग़ौर करते।

सुकून से भरा सुबह का आलम हमें बेहद पसंद था, क्योंकि इसी वक़्त हमें यह लगता था कि हम अपने खुदा के सबसे क़रीब होते हैं। दिन-भर तो हमें ज़िंदगी की अनचाही ज़रूरतों को पूरा करते रहना पड़ता है, जो हमारे ऊपर बादशाह होने के नाते थोपी हुई हैं। दुनिया जब नींद के आग़ोश में सो रही होती है, तब हमारे मन के आसमान पर ख़याल तारों की तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिमटिमाने लगते हैं। शायद यही एक वक़्त होता है, जब हम अपने मन की दुनिया से पूरी एकता का अहसास कर पाते हैं और हमें लगता है कि हम भले ही हिन्दुस्तान के बादशाह हों, लेकिन असल में कितने नाचीज़-से इन्सान हैं।

तन्हाई के ये पल बिताने के बाद हम अपने महान पुरखे औरंगज़ेब द्वारा बनवाई गई मोती मस्जिद के पुरसुकून माहौल में बैठकर अपने बनानेवाले अल्लाह और पैग़म्बर मुहम्मद को याद करते।

रमज़ान के पाक महीने में मेरा यह सिलसिला बदल जाता। शाही रसोई में ख़ूब तड़के ही खाना पकाने का काम शुरू हो जाता, ताकि लोगों को पौ फटने के पहले ही खिलाया-पिलाया जा सके। रमज़ान के दिनों में हम सुबह की ये घड़ियाँ दीवाने-ख़ास के दीवान पर बैठकर तसबीह करते हुए और अल्लाह के नव्वे नामों को याद करते हुए गुज़ारते। हमारा तड़के का खाना वहीं लगाया जाता। हम अकेले ही बैठकर नाश्ता करते और हमारी प्यारी मलिका ज़ीनत महल अपने हाथों पान का बीड़ा लगाकर हमें भिजवाती। हम पान चबाते और हुक़्क़ा गुड़गुड़ाते हुए जमना की लहरों का रंग बदलना देखते रहते।

जहाँ तक हमें याद पड़ता है, यह बात 11 मई, 1857, रमज़ान की सोलहवीं सुबह की है; दिन था सोमवार। उसकी पहली रात हम और बेगम ज़ीनत महल दोनों चौबारे में टहल रहे थे। नदी में पड़ते चाँद की परछाईं को देखकर उन्होंने कुछ कहा, क्योंकि उस दिन पूनम थी और आसमान एकदम साफ़ था। हमने मौसम के इतना ज़्यादा गर्म होने की शिकायत की तो वे बोलीं कि ऐसी गर्मियाँ और ये रेगिस्तानी गर्म हवाएँ ही तो आमों में स्वाद और महक तथा मौलसिरी और बेला के फूलों में सुगन्ध भरती हैं। उन्होंने अपने बालों से बेला की कलियों से बनी माला उतारकर हमें सूँघने के लिए थमा दी। उसकी खुशबू सूँघकर जब हम उसे वापस लौटा रहे थे तो वे बोलीं, "अपने तकिए के नीचे रख लीजिएगा। जहाँपनाह को अपनी इस बाँदी ज़ीनत की याद तो आती रहेगी।" रमज़ान में औरत के साथ हमबिस्तर होना मना है, इसलिए हमने उनकी बात मंज़ूर कर ली। उसकी खुशबू हमारी रात को सपनों से सराबोर करती रही। उठे तो भोर के तारे और मंद-मंद हवा—दोनों ने ही हमें अपनी प्यारी बेगम की फिर से याद दिला दी।

11 मई के दिन हमें उठने, फ़ारिग़ होने में तनिक देर हो गई। फिर भी सवेरा होते तो हमने देखा ही। इन दिनों नदी के किनारे पर ख़रबूज़े उगानेवाले बसेरा किए रहते हैं। देखा कि उनके जलाए टिमटिमाते दीयों की लौ को सुबह की लाली फीका कर रही है। पुलिया पर तैनात हमारे सिपाही बदले जा रहे थे। हमने तीतर-पुलाव का हल्का नाश्ता किया। उसके साथ कुछ समर-बहिश्त आम भी खाए, जिनका आजकल मौसम चल रहा था। उसके बाद केसर-डले ठंडे दूध का गिलास पिया और पान चबाया। ज़रा-सा हुक़्क़ा भी गुड़गुड़ा लिया और फ़जर की नमाज़ के बाद हम दीवाने-ख़ास में लौट आए। शाही हकीम एहसानुल्ला ख़ाँ को हमारे कमरे में लाया गया और हमारी नाड़ी देखने को कहा गया। अल्लाह के करम से हकीम ने फ़रमाया कि हम बिल्कुल ठीक-ठाक हैं। उसके बाद हमारे गुलामों—हिंजड़े बसन्त अली ख़ान और वकील गुलाम अब्बास ने हमें शाही घरेलू ख़र्चे का ब्यौरा दिखाया। हमेशा की तरह हमारे ख़र्च हमारी आमदनी से ज़्यादा थे। हमने उन्हें देखने से इनकार कर दिया और उन दोनों को जाने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा। फ़रियाद के लिए इकट्ठा हुए लोगों की तरफ़ पीठ मोड़ते हुए हम जमुना की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे।

धूप चढ़ने लगी थी। धोबी अपनी सिल्लियों पर धमाधम कपड़ों को पछाड़ रहे थे और उनकी औरतें धुले हुए कपड़ों को नदी-किनारों पर फैला रही थीं। उनके बच्चे रेत में खेल रहे थे। कई सारे मज़दूर सिरों पर ख़रबूज़ों की टोकरियाँ उठाए पुल को पार कर रहे थे। यह सुबह भी हर रोज़ की ही तरह सामान्य लग रही थी।

तभी देखा, कुछ हलचल-सी हुई। कुछ घुड़सवार हवा में अपनी बंदूकें दाग़ते हुए पुल को पार कर इधर ही आ रहे थे। क़िले की दीवार के पास आकर उन्होंने अपने घोड़ों की लगामें थामीं। "दुहाई, दुहाई" चिल्लाते हुए वे कहने लगे, "हमारी फ़रियाद सुन ली जाय!" कुछ चिल्लाने लगे, "बादशाह सलामत ज़िंदाबाद!" हमने दीवार से झुककर देखा। घुड़सवारों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की वर्दियाँ पहन रखी थीं। एक घुड़सवार ने ख़ूब ऊँचे चिल्लाकर कहा, "हम मेरठ में फ़िरंगियों का क़त्ल करके आए हैं। ये क्रिस्तान हमारा धरम बिगाड़ना चाहते हैं। हम इन म्लेच्छों से अपने मुल्क को आज़ाद कराएँगे। हम आपको हिन्दुस्तान का बादशाह बनाएँगे।" और फिर सबने एक-साथ मिलकर चिल्लाना शुरू किया, "मुग़लिया सल्तनत जिंदाबाद!"

"लाहौल वला कूवत इल्लाह-बी-इल्लाह हिल अली-युल-अलीम" (कोई डर नहीं, अल्लाह को छोड़ उस-जैसी सर्वशक्तिमान कोई ताक़त नहीं)। हमने पूछा, "कौन हैं ये लोग?" फूले-फूले काले चेहरे पर मुस्कान बिखेरते हुए बसंत अली ख़ान ने कोई जवाब नहीं दिया। हमने उसे हुक्म दिया, "कैप्टन डग्लस को ख़बर कर दो और देखो कि ये लोग शहर में न घुसने पाएँ।"

बसंत अली ख़ान ने झुककर कोर्निश की और चल दिया। उसकी भाव-भंगिमा से लग रहा था कि उसे हमारे हुक्म की तामील करने की क़तई जल्दी नहीं है। हमने कैप्टन के पास अपना दूसरा दूत भेजा। मेरठ से आए सैनिकों को हमने हरम की दीवार की तरफ़ बढ़ते देखा। वे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे, "मलिका-ए-आज़म ज़िंदाबाद!" पुल के ऊपर से और भी घुड़सवार आते दिखे।

कैप्टन डग्लस ने आकर सलाम ठोंका। वह नीचे जाकर उन घुड़सवारों से बात करना चाहता था। हमने उसे अपनी जान जोखिम में न डालने के लिए आगाह किया। हम दोबारा छज्जे तक गए और उसके साथ खड़े हो गए, ताकि कोई उस पर हमला न कर सके।

"आप लोग क्या चाहते हैं?" कैप्टन ने उनसे पूछा, "आपको क्या हक़ है कि आलमपनाह को इस तरह परेशान करें? आप लोग तुरत अपनी-अपनी रेजीमेंटों में लौट जाइए, नहीं तो कड़ी-से-कड़ी सज़ा दी जाएगी।" नीचे खड़े घुड़सवारों का चिल्लाना रुक गया और अपने घोड़ों को दौड़ाते हुए वो हमारे महल की खिड़कियों के नीचे खड़े अपने साथियों से जा मिले। कैप्टन डग्लस हमसे विदा लेकर उन बाग़ी फ़ौजियों को गिरफ़्तार करने चल पड़े। तभी हमने ईस्ट इंडिया कंपनी की वर्दियों में फ़ौजियों की कई टुकड़ियों को अपनी तरफ़ बढ़ते देखा। क़िले के भीतर रहनेवाले मिस्टर साइमन फ्रेज़र ने अपनी महिलाओं को हिफ़ाज़त के लिए हमारे महल में भिजवाने के लिए डोलियाँ मँगवायीं और क़िले के फाटक पर तोपें चढ़वाने की इजाज़त माँगी। हमने तुरत हामी भर दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने कुछ और इंतज़ार किया कि शहर के बाक़ी हिस्सों का हाल मालूम हो। हमारे दूत शहर के दूसरे हिस्सों में भी खलबली मचने के संदेशे लेकर आए। हम चिंता में डूब गए। अभी आग उतनी नहीं भड़की थी कि बुझाई न जा सके। हमने हुक्म दिया कि बाग़ियों को शहर के भीतर न घुसने दिया जाय और साहबों को भी सलाह दी कि वे शहर से बाहर न निकलें। लेकिन किसी ने भी हमारी बात पर ध्यान नहीं दिया।

घंटे-भर बाद हमें ख़बर मिली कि बाग़ी शहर के भीतर तक बेरोक-टोक घुस आए हैं और उन्होंने दरियागंज में कुछ अंग्रेज़ों को क़त्ल कर दिया है। हमें क़िले के अंग्रेज़ों की हिफ़ाज़त की चिंता होने लगी। हमने पता करवाया कि उनकी औरतें सही-सलामत डोलियों में हमारे महल में पहुँच चुकी थीं। उसी वक़्त हमें यह भी पता चला कि बेचारे कैप्टन डग्लस और मिस्टर फ्रेज़र को उनके घरों में ही उनकी औरतों समेत क़त्ल कर दिया गया था।

किसी ने बाग़ियों को भीतर घुसाने के लिए फाटक खोल दिया था। हमने पाया कि हम चारों तरफ़ बाग़ियों से घिरे हुए हैं। इन्हीं में हमारे महल के पहरेदार भी हैं। वे हमें हिन्दुस्तान के असली बादशाह और शहंशाह कह-कहकर हमारा स्वागत और जयकार करने लगे।

"हमें बादशाह कौन कहता है?" हमने उन्हें टोका, "हम तो इस कमबख़्त दुनिया में अपने दिन बिताने आए एक फ़क़ीर हैं। हमारे बाज़ुओं में अब कोई ताक़त नहीं है, हमारी आवाज़ इस क़िले की चहारदीवारी के बाहर तक नहीं सुनी जा सकती।" लेकिन उन्होंने तो जैसे कुछ भी न सुनने की ठान रखी थी।

उस दिन सुबह से लेकर दोपहर तक फ़ौजियों के जत्थे-के-जत्थे बिना बुलाए और बिना किसी ख़बर के हमसे मुलाक़ात करने आते-जाते रहे। दरबार के क़ायदे-क़ानून सब उन्होंने ताक पर धर दिए थे। हमारे ख़िदमतगारों को धकियाते हुए वे दीवाने-ख़ास तक आ पहुँचते, जबकि दीवाने-ख़ास में सिर्फ़ ख़ास-ख़ास लोगों की ही पहुँच हुआ करती थी। वे हमारे हाथों को थामकर चूम लेते। हमें उन्हें दुआ देनी ही पड़ती। कइयों ने हमें चाँदी के सिक्के भेंट किए, जबकि बाग़ियों ने अपने चुंबनों से हमारे हाथों को तर कर दिया।

लगता था हम कोई सपना देख रहे हैं, जिसमें अच्छे और बुरे—दोनों तरह के नज़ारे हों। तभी एक भारी धमाके से हम चौंक उठे। धमाका भी ऐसा कि हमारे महल की दीवारें थरथराने लगीं, मानो ज़लज़ला आ गया हो। कुछ ही देर बाद हमें ख़बर मिली कि अंग्रेज़ी सिपाहियों ने कश्मीरी गेटवाली तोपों के बारूद में आग लगा दी है और उसी से यह ज़बरदस्त धमाका हुआ है। हमारी कई हज़ार रियाया हताहत हो गई थी और सारे शहर में खलबली मच गई थी।

एलिस ऑल्डवेल उर्फ़ आयशा बानो बेगम

मैंने कभी किसी हिन्दुस्तानी की बात का यक़ीन नहीं किया, क्योंकि मैं उन्हें कितनी ही बार परखकर देख चुकी थी। पर जैसा कि मैंने बताया, उस दोपहर हमारे पास और कोई चारा ही नहीं बचा था। मैंने अपने मियाँ से कहा, "एलेक, हमें सबके साथ ख़तरा मोल नहीं लेना चाहिए। आप बाक़ी लोगों के साथ चले जाओ। मैं लड़कियों को मिर्ज़ा अब्दुल्ला के घर ले जाती हूँ।"

मैंने अपनी बेटियों को हिन्दुस्तानी पोशाकें पहनाकर तैयार कर लिया। ये कपड़े उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेगम ज़ीनत महल ने दिए थे। अपने लिए भी मैंने आया से सलवार-कुर्ते का एक धुला हुआ जोड़ा माँग लिया और उसी का मैला बुर्क़ा ओढ़ा। दोनों बड़ी बेटियों को एक पालकी में बैठाया और दूसरी में खुद बैठ गई। हमारा एक नौकर भी हमारे साथ चलने के लिए राज़ी हो गया। पालकियों के पर्दे गिरा दिए गए थे, जिस तरह यहाँ की अमीरज़ादियों को ले जाते वक्त गिराए जाते हैं।

मिर्ज़ा अब्दुल्ला बादशाह का पोता था। जैसा कि मैंने पहले ही कहा, वह जामा मस्जिद के पास उर्दू बाज़ार में रहता था। उसे मेरे पति ने बहुत-से फ़ायदे पहुँचाए थे। उसकी बीवी और बहन मुझसे मिलने कई बार आ चुकी थीं और वह कहती भी थीं, "आप तो हमारी बहन हैं।" मेरी बेटियों को भी अपनी बेटियों की तरह समझती थी वह।

हमें रास्ते में किसी ने नहीं टोका। हम उर्दू बाज़ार तक पहुँच गए। रास्ते में किसी ने कोई पूछताछ नहीं की। मिर्ज़ा के घर की औरतों ने हमारी बड़े प्यार से अगवानी की। उसकी बहन ने मेरी बेटियों के चुंबन लिए और कहा कि जब तक वह ज़िंदा है कोई हमारा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। मैंने शुक्रिया अदा करते हुए कहा कि जैसे ही यह मुसीबत टल जाएगी, मैं उनके इस अहसान का बदला ज़रूर चुका दूँगी।

उर्दू बाज़ार मुसलमानों का मुहल्ला था। वहाँ कुछ किताबों की दुकानें थीं। बाक़ी अलग-अलग चीज़ों की दुकानें थीं, जैसे—गोश्त की, रंगरेज़ों की, पतंग बनानेवालों की, मिठाई और पानवालों की वग़ैरह-वग़ैरह। इन्हीं दुकानों के पीछे बड़ी-बड़ी हवेलियाँ थीं। मिर्ज़ा अब्दुल्ला के घर का रास्ता तो एक सँकरी बदबूदार नालियोंवाली गली से होकर जाता था, पर घर के भीतर काफ़ी खुला-खुला था। बड़ा-सा आँगन था और लम्बे-लम्बे बरामदे थे। आँगन के बीचोबीच ख़ूब फैला हुआ एक पीपल का पेड़ था। पेड़ के नीचे ही मिर्ज़ा के पालतू कबूतरों के पिंजड़े रखे रहते थे। बरामदे में क़तारों से बेला और ताल के पौधों के गमले सजे थे। आँगन के एक ओर औरतों के कमरे थे, जिनमें मिर्ज़ा की बेगमें, उनकी अम्मा, बहनें और बाक़ी दूसरे रिश्तेदार और नौकरानियाँ रहती थीं।

मिर्ज़ा अब्दुल्ला को कबूतर उड़ाने का शौक़ था। अपने ख़ास-ख़ास कबूतरों को वह अपने घर की छत पर रखता था। वह उन्हें रूमाल के इशारों से, सीटियाँ बजा-बजाकर हर दोपहर उड़ाया करता था। उसने कुछ तीतर और लड़ाकू बटेर भी पाल रखे थे। बाक़ी शाही शहज़ादों की तरह मिर्ज़ा का भी वही हाल था। वह भी सही मायनों में कभी मर्द नहीं बन सका। ज़िंदगी के तीस बसंत पार कर चुका था, पर मजाल कि किसी भी काम को हाथ लगाता! उसकी गुज़र-बसर तो बादशाह से मिले भत्ते पर ही होती थी। सिर पर हमेशा बनिए का उधार चढ़ा रहता। घर की औरतों को आए दिन पैसों के वास्ते अपने गहने गिरवी रखने पड़ रहे थे। फिर यह भी नहीं था कि उसने और औरतें करनी छोड़ दी हों या रंडियों के कोठों पर जाना बंद कर दिया हो। उसकी दोपहरें पड़ोसियों से पतंगबाज़ी की शर्तें लगाते या उनके कबूतरों को अपनी टोली में करते हुए ही बीततीं। शाम को अपने तीतरों और बटेरों को निकालकर दूसरे नवाबों के तीतर-बटेरों से लड़वाता। और अगर शहर में कहीं कोई दंगा-फ़साद हुआ हो या कोई जश्न-मेला हो रहा हो तो मिर्ज़ा अब्दुल्ला का वहाँ होना भी लाज़मी था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिर्ज़ा अब्दुल्ला रात घिरे घर पहुँचा था। बड़ी ज़ोर-ज़ोर से किसी से बातें कर रहा था। शायद किसी बात पर शेख़ी बघार रहा था। लगता था किसी ने उसे घर में मेरी उपस्थिति के बारे में ख़बर कर दी थी, तभी वह अचानक चुप हो गया था। ज़नाना में आकर उसने मुझे इस तरह से सलाम किया, जैसे करने की पहले कभी उसे हिम्मत नहीं हुई थी। "गुड ईवनिंग मेम साहिब !" वह अंग्रेज़ी में कह रहा था, "पर जैसे कपड़े आप लोगों ने पहन रखे हैं, उससे तो जी चाहता है कि अस्सलाम-वालेकुम ही कहें !"

ठीक ही हिन्दुस्तान में कहावत है कि 'ग़रीब की जोरू सबकी भौजी।' भाभी के साथ हमबिस्तर होने में शायद इन्हें कोई तकल्लुफ़ नहीं होता। इस समय तो मैं भी उसे बेचारी भौजाई ही लग रही होऊँगी। मैंने उसका सलाम क़बूल करते हुए जवाब दिया, "वालेकुम अस्सलाम, नवाब साहिब ! आपकी बहुत-बहुत मेहरबानी कि आपने हमें इस आड़े वक़्त अपने घर में पनाह दी है। खुदा आपकी इस मेहरबानी के लिए आप पर अपना रहमो-करम ज़रूर बख़्शेगा।"

"यह तो हमारी खुशक़िस्मती है कि आप यहाँ आई हैं," अपने गुप्तांगों को खुजलाता हुआ वह मुझसे मज़ाक करता रहा, "लेकिन मैं आपको सलाह दूँगा कि आप यहाँ उर्दू बाज़ार के आसपास न रहें। यह सारा इलाक़ा मुसलमानों का है। यहाँ आपको ख़तरा हो सकता है। आपको तो मालूम ही है कि मुसलमान फ़िरंगियों और नासरों को लेकर क्या सोच रहे हैं।"

मुझे हैरानी हो रही थी कि वह हमारे लिए फ़िरंगी और हिन्दुस्तानी क्रिस्तानों के लिए 'नासरा' शब्दों का इस्तेमाल कर रहा था। इन लोगों के बारे में भी अब क्या कहूँ !

"पर अब तो आप पूरी मुसलमानी लग रही हैं," उसने कहा, "लेकिन आपको अपनी ही सलामती के वास्ते सलाह दूँगा कि इस्लाम के बारे में आपको थोड़ी-बहुत जानकारी कर लेनी चाहिए। मैं किसी मौलवी को आपके पास भेज दूँगा। वह आपको मेरे नई सड़कवाले घर में ले जाएगा। अपनी क़ीमती चीज़ें बेशक हिफ़ाज़त के लिए आप यहीं छोड़ दें। आपका यह गुलाम कल आपको वहीं आकर मिलेगा और आकर देखता हूँ कि वहाँ आपको कोई तकलीफ़ न हो।"

मैं हर हालत में अपने बच्चों की हिफ़ाज़त चाहती थी, इसीलिए मैंने सोचा कि अभी इसका कहा मानने में ही सलामती है। मौलवी आया तो मैंने उसे बताया कि मेरी माँ कश्मीरी मुसलमानी थी, मेरी शादी बेशक अंग्रेज़ साहब के साथ हुई थी, लेकिन दिल से तो मैं मुसलमानी ही हूँ। मौलवी ने मुझे दोहराने को कहा कि, "ला इलाह लिल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूलिल्लाह—" (दुनिया में सिर्फ़ एक ही खुदा है, मुहम्मद उसके पैग़म्बर हैं)। मौलवी ने हमारे मुसलमानी नाम भी रख दिए और एलिस से मैं आयशा बन गई, मेरी बड़ी लड़की मेरी से मरियम और छोटी फ़ायोना से फ़ातिमा। सबसे छोटी जॉर्जीना को जहाँआरा बना दिया गया। मौलवी बेहद खुश था कि उसने तीन-तीन लोगों को मुसलमान बना डाला।

मैंने चाँदी के सिक्कों की थैली मिर्ज़ा अब्दुल्ला को सौंप दी। हरम की औरतों से विदा ली और नवाब के नई सड़कवाले घर की ओर चल पड़ी। लड़कियों को भी मैंने अपनी ही पालकी में बिठा लिया। हमें कई बार रोका गया, लेकिन मौलवी उन्हें कुछ कह देता और वे हमें आगे बढ़ जाने देते।

हम लोग नई सड़क की एक हवेली में पहुँचे। मौलवी ने हवेली की देखभाल करनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी से बात की तो उसने हमें भीतर घुसने दिया।

मैंने एक ही नज़र में जान लिया था कि यह मिर्ज़ा अब्दुल्ला की ऐशगाह है। हवेली की देखरेख करनेवाला एक हिंजड़ा था। कमरों के फ़र्श क़ालीनों से ढके थे और उन पर सफ़ेद चादरें बिछी थीं। जगह-जगह गाव-तकिए लगे थे। दीवारों पर बड़े-बड़े आईने जड़े थे। छतों से झाड़-फ़ानूस लटक रहे थे। बाहर की तरफ़ एक छोटा-सा कमरा था, जिसमें चारपाइयाँ लगी थीं। यही कमरा हमें मिला था। लड़कियाँ इतनी थक गई थीं कि बिस्तर पर पड़ते ही सो गईं। मैंने सारी रात उनके पास बैठ चौकसी करते ही गुज़ारी।

अगले दिन सुबह मैंने नौकर को अपने चाँदी के सिक्कों की थैली लाने मिर्ज़ा के यहाँ भेजा। घंटे-भर बाद वह ख़ाली हाथ लौट आया और बोला कि मिर्ज़ा अब्दुल्ला कह रहे हैं कि उनके पास किसी के सिक्के-विक्के नहीं, और ऊपर से वह चाहते हैं कि हम दोपहर तक उनका घर ख़ाली कर दें। वहाँ तैनात हिंजड़ा कहने लगा कि मैं अगर बात मानने को तैयार हो जाऊँ तो वह उन्हें मनाने की कोशिश करेगा। मैंने उसकी बात मान ली। मुझे अब अपनी परवाह नहीं थी। इस वक़्त तो किसी भी क़ीमत पर मुझे अपनी बच्चियों के बारे में सोचना था।

दोपहर को हिंजड़ा फिर मेरे पास आया और कहने लगा कि मुझे नवाब साहब के लिए तैयार करने आया है। उसने मेरी हथेलियों और पैरों के तलवों में मेंहदी रचाई। मेंहदी के सूखने में अभी देर थी। इस बीच उसने भिश्ती से ग़ुसलखाने में पानी भरवाकर चिलमचियों में गुलाब जल डलवाया। ग़ुसलखाने में उसने मुझे नंगा किया और अपने खुरदरे हाथों से मेरे बदन को घिसने लगा। मुझे लिटाकर उसने मेरे गुप्तांगों के बाल हटाए और नहलाने के बाद एक गंदे-से तौलिए से पोंछकर उन पर माजूफल का बुरादा छिड़का। फिर वह मुझे तरह-तरह छेड़ख़ानी करते हुए तंग करने लगा। अब तक सब-कुछ मेरी बर्दाश्त के बाहर होने लगा था। मैंने उसे धकियाकर अलग किया तो वह घबड़ाते हुए बोला, "अगर एक भी लफ़्ज़ तुमने मिर्ज़ा साहब के कानों में डाला तो तुम्हारी बेटियों की गर्दनें धड़ों से अलग कर दूँगा, समझी ?"

उसने मुझे कशीदाकारीवाले रेशमी कपड़े पहनाए। मेरी आँखों में सुरमा लगाया और मेरे मुँह में ख़ुशबूदार पान ठूँसा। मैं शर्म और बदहवासी से मरी जा रही थी, लेकिन फिर भी सब-कुछ इसलिए बताना चाहती हूँ कि लोग यह जानें कि ये हिन्दुस्तानी कितने कमीने, बदमाश, धोखेबाज़ और गए-बीते लोग थे। इन सबको तो दीवार के साथ खड़ा कर शूट कर दिया जाना चाहिए और इनकी लाशों को ख़ूँख़ार कुत्तों के आगे फेंक दिया जाना चाहिए।

मिर्ज़ा अब्दुल्ला अपने दो दोस्तों के साथ आया। उनके बालों से तेल चू रहा था, आँखों में काजल लगा था, कानों में इत्र-डूबे रुई के फाहे ठुँसे हुए थे और मुँह से पान की पीक टपक रही थी। उन तीनों ने ढीले-ढीले पाजामे और मलमल के कुर्ते पहन रखे थे।

"वाह-वाह, मेमसाहिबा, आप पर तो ये कपड़े ख़ूब फब रहे हैं !" मिर्ज़ा अब्दुल्ला ने मुझे अपने दोस्तों से मिलवाते हुए कहा, "ये मेरे भाइयों की तरह हैं, बल्कि भाइयों से भी बढ़कर।"

उनमें से एक बोला, "अमाँ तुमने तो ख़ासा बढ़िया शिकार फाँसा है। काफ़ी पकी हुई और तजुर्बेकार लगती है।"

मेरी उस मजबूर हालत में भी उनके वे फ़िकरे मुझे भीतर तक छील गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मिर्ज़ा भाई, मेरी ज़िंदगी-भर की तमन्ना थी कि किसी गोरी औरत के साथ हमबिस्तर होऊँ। उसे आज आप पूरी किए दे रहे हैं। सच, आपका बहुत-बहुत शुक्रिया !" उनमें से एक बोला।

मिर्ज़ा अब्दुल्ला ने कहा, "तो सिर्फ़ आधा ही शुक्रिया दो यार, क्योंकि तुम्हारी आधी ही ख़्वाहिश पूरी होगी। मेमसाहिबा सिर्फ़ आधी अंग्रेज़ हैं, बाक़ी आधी तो कश्मीरी हैं। ख़ैर, चलो, तुमने तो कश्मीरनें भी काफ़ी गुज़ारी हैं अपनी बाहों से।" और तीनों मर्द ठहाके मार-मारकर हँसने लगे और एक-दूसरे के हाथ ठोंकने लगे।

मिर्ज़ा अब्दुल्ला ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे तकिए के सहारे बैठाया। दूसरे दोनों हमारे सामने बैठ गए। हिंजड़ा एक सुराही लेकर आया औरर चाँदी की चार प्यालियों में शराब उँडेलने लगा। मिर्ज़ा ने एक प्याली मेरी ओर बढ़ायी तो मैंने अपना सिर हिलाकर मना कर दिया, "रमज़ान में पीने की मनाही है, मैं नहीं पीऊँगी।"

मिर्ज़ा चीखा, "वाह, वाह ! कल की मुसलमानी आज हमें इस्लाम पर नसीहत दे रही है ! आयशा बी, जेहाद में सब मुआफ़ होता है।" और अपनी प्याली की शराब गटककर वह फिर बोला, "जेहाद में सब किया जा सकता है—सब-कुछ, समझी ?" मैं सब समझ रही थी। मिर्ज़ा अब्दुल्ला ने प्याली मेरे होंठों से लगा दी और हुक्म दिया, "पियो, नहीं तो ज़बरदस्ती गले में उतार दूँगा।" मैं जानती थी कि यह कमीना मेरे साथ क्या करने जा रहा है। फिर मैंने यह भी सोचा कि पी लूँगी तो शायद आसानी से मैं अपने साथ होनेवाली ज़्यादती को सहन कर सकूँगी। मैंने पहले एक घूँट पिया और फिर पूरी की पूरी प्याली गटक ली। मसालेदार ब्रांडी थी। वह मेरा गला जलाती हुई पेट तक उतर गई।

"शाबास !" वे तीनों एक-साथ चिल्लाए, "अब तो महफ़िल में रंग आ जाएगा !"

मेरी प्याली को फिर भर दिया गया। उनकी ज़ुबानें और खुलने लगी थीं। एक तो सादी का कलाम ही गुनगुनाने लगा। मिर्ज़ा अब्दुल्ला दरबारी शायरों—ज़ौक और मिर्ज़ा ग़ालिब के कलाम से उसको जवाब भी देने लगा। तीसरे ने बूढ़े बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र का कलाम गाया। फिर ये तीनों मुग़लों के ज़माने की शानो-शौकत की बातें करने लगे और अंग्रेज़ों की बुराइयाँ बखानने लगे। मिर्ज़ा अब्दुल्ला ने कहा, "कम्पनी के कमांडर जैसे ही हथियार डालेंगे, हम लोग उन तमाम फ़िरंगियों के लिंग काटकर उनकी औरतों को अपने हरम में डाल लेंगे।" फिर वह अपने ही मज़ाक पर ज़ोरों से हँसने लगा।

मिर्ज़ा अब्दुल्ला ने मेरी जाँघ पर हाथ रखा और मेरे जिस्म से खेलने लगा। उसके दोनों दोस्त उसकी इजाज़त लेकर कमरे से बाहर चले गए। अब हम दोनों कमरे में रह गए थे। उसने एक-एक कर मेरे कपड़े उतारे। मिर्ज़ा बड़ी जल्दी में था। मैंने प्याली उठायी और फिर गले के नीचे उतार ली। अब मुझे कोई परवाह नहीं थी कि वह मेरे जिस्म के साथ क्या करता है।

मुझे जबरज़िनाह करते हुए मिर्ज़ा ने अपने दोनों दोस्तों को भी वहीं बुला लिया। उन दोनों ने भी बारी-बारी से मेरे साथ ज़बरदस्ती की। मैं गोश्त की एक लोथ की तरह पड़ी थी, जिस पर ये तीनों कुत्ते भौंकते, काटते झपट रहे थे। सारी रात उनका यही खेल चलता रहा। मैं पूरी तरह निढाल हो चुकी थी। सुबह होते ही वह और उसके दोस्त गंदी फब्तियाँ कसते, गाते-लड़खड़ाते हुए विदा हो गए। सिर्फ़ वह हिंजड़ा ही रह गया था। मैं एक ज़िंदा लाश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह पड़ी थी और अब वह मुझे कुत्ते की तरह नोंचने लगा था। तोप की आवाज़ ने जब दिन चढ़ने का ऐलान किया, तभी उस नामुराद ने मुझे छोड़ा। कल सूरज डूबने से लेकर आज सूरज उगने के बीच मुझ पर क्या-क्या नहीं गुज़री थी!

जॉर्जीना की "मम्मी, मम्मी, उठो!" की आवाज़ों ने मुझे जगाया। लड़कियाँ मुझे देखकर हैरान थीं। उन्होंने मुझे इससे पहले कभी इस हालत में नहीं देखा था—अलफ़ नंगी और जिस्म पर जगह-जगह पड़े नीलों और नोच-खोंच के निशानात के साथ।

सिर्फ़ दो ही लोग अब भी मेरे नमक-हलाल बने रहे—एक मेरा नौकर—अली अहमद और दूसरी उसकी बीवी। उन्होंने जान लिया था कि मेरे साथ क्या गुज़री है। अपने ख़र्चे से उन्होंने दो पालकियाँ मँगवायीं और हमें इस नरक से निकाला। तुरन्त ही एक भारी भीड़ जमा हो गई। लोग चिल्लाने लगे, "इस फ़िरंगी औरत को हमें सौंप दो!" अली अहमद की बीवी बड़ी बहादुरी से उनका सामना करती हुई बोली, "मैं कुरैशी ख़ानदान की हूँ—पैग़म्बर मुहम्मद के ख़ानदान की। कोई है यहाँ जो पैग़म्बर मुहम्मद के ख़ानदान के ख़ून से अपने हाथ रँगने को तैयार हो? आओ! यह तो रमज़ान का पाक महीना है न!" उसकी यह ललकार सुनकर भीड़ एक-एक कर खिसक गई।

मैं बेचारों की ज़िंदगी ख़तरे में नहीं डालना चाहती थी। मैंने अली अहमद के हाथ बादशाह और बेगम ज़ीनत महल के नाम एक ख़त भिजवाया कि हमारी मदद करें। मैंने लिखा कि मेरी माँ मुसलमानी थी और मैंने अपने साथ अपनी दो बेटियों को भी मुसलमान बना लिया है और अब मैं खुद को आयशा ऑल्डवेल कहती हूँ। पर उनके यहाँ से कोई जवाब नहीं आया।

मैंने कई नवाबों को ख़त लिखे कि हमारी मदद करें। पर या तो उन्होंने जवाब ही नहीं दिए, या फिर अपनी लाचारी ज़ाहिर करते हुए लिख दिया कि वे कुछ भी नहीं कर सकते। जब सभी अमीरज़ादों और असरदार लोगों ने हमारी मदद करने से इनकार कर दिया तो एक ग़रीब आदमी हमारी मदद को आगे आया। वह था हमारा दर्ज़ी, जिसका नाम भी कभी मैंने नहीं जाना था। वह मेरी बेटियों के फ्रॉक सिला करता था और उनको बहुत चाहने लगा था। वह अपने एक चचेरे भाई के साथ आया, जो फ़ौज में सिपाही था। हालाँकि उसका चचेरा भाई भी बग़ावत में शामिल था, पर उसने कुरान की क़सम खाकर कहा कि वह हमारा बाल भी बाँका नहीं होने देगा। हमने एक दिन और एक रात दर्ज़ी के परिवार के साथ ही काटी। शाम को जब मुसलमान लोग कुरान पढ़ने में लगे थे, हम लोग बाज़ार से बाहर निकल आए। दर्ज़ी और उसके सिपाही भाई ने हमारी पालकियों के साथ चलते हुए हमें क़िले तक पहुँचाया। तभी मुझे पता चला कि मिर्ज़ा ने बादशाह और बेगम ज़ीनत महल को लिखे मेरे ख़तों को उन तक पहुँचने ही नहीं दिया। उसने हुक्म दिया कि हमें भी बाक़ी अंग्रेज़ों के साथ तहख़ानेवाली काल-कोठरियों में डाल दिया जाय, लेकिन हमारे साथ बदज़ात नासरा क्रिस्तानों-जैसा नहीं, बल्कि मुसलमानों-जैसा बर्ताव किया जाय।

बुधवार, 13 मई, 1887 को हमारे परिवार का फिर मिलना हुआ। एलेक ने मुझे उन सब बातों के लिए माफ़ कर दिया, जो-जो इस बीच मेरे साथ गुज़री थीं। उसने क़सम खाई कि वह मिर्ज़ा अब्दुल्ला की ख़बर लेकर ही रहेगा। लेकिन अंग्रेज़ औरतों को जब मेरे बारे में पता चला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उन्होंने मुझसे मिलना-बोलना बंद कर दिया। पहरेदार मेरे ऊपर मुसलमानी होने के कारण जो मेहरबानी बरतते थे, उससे भी उन्हें ख़ूब चिढ़ होती थी। उनको रूखी-सूखी रोटियाँ दी जाती थीं, जबकि मुझे मांस का शोरबा भी मिल जाता था। कभी-कभी पहरेदार मुझे और मेरे बच्चों को अपने साथ खाने को भी बुला लेते।

तहख़ाने की गर्मी और बदबू सही नहीं जाती थी। वहाँ कोई शौचघर भी नहीं था। किसी अँधेरे कोने में बैठकर हमें फ़ारिग़ होना होता और फिर उसे उठाकर अपने ही हाथों दीवार में बने छेद से बाहर फेंकना होता ! कुछ मत पूछिए कि कैसे-कैसे बेइज़्ज़त होना पड़ रहा था हमें ! हर दिन लोग हमें देखने आते, जैसे हम इन्सान नहीं, चिड़ियाघर में क़ैद जानवर हों। वे हमें पता नहीं क्या-क्या गालियाँ भी दे जाते। एक दिन जवाँबख़्त आया। मुझे देखकर उसने मुझे 'भाभी' कहकर पुकारा। फिर कहने लगा, "मिर्ज़ा अब्दुल्ला मेरा भाई है, तो आप भी मेरी भाभी ही हुई न !"

16 मई का दिन भी आ पहुँचा। उस दिन शनिवार था। सुबह नाश्ते में हमें रोटियाँ भी नहीं दी गई थीं। संतरी कह रहे थे, "जहाँ आप लोग जा रहे हैं, वहाँ तो ढेर-की-ढेर मिला करेंगी !" फिर मुझे वे तसल्ली देते कि मुझे और मेरे बच्चों को कुछ नहीं किया जाएगा।

तभी दर्जन-भर सिपाही कोठरियों में घुस आए। उन्होंने बाक़ी सारे लोगों—मर्दों, औरतों और बच्चों—को बाहर निकलने को कहा। मेरी बेटियाँ एलेक के पास दौड़ गईं और उसके घुटनों से चिपक गईं। सिपाहियों ने उन्हें अपने बाप से अलग करके मेरी तरफ़ धकेल दिया। वे चीखने लगीं, "ये लोग डैडी को ले जा रहे हैं...इनको रोको !" मैंने सिपाहियों से बहुत गुज़ारिश की, पर उन्होंने मेरी एक न सुनी। बेचारे एलेक को भी बाक़ी लोगों के साथ ले जाया गया। मुझे, मेरी बेटियों और तहख़ाने की कोठरियों में अंग्रेजों की मदद करते हुए पकड़ी गई एक बूढ़ी मुसलमानी को धकियाकर बाहर निकाला गया और फिर फाटक बंद कर दिया गया।

लोगों के चीख़ने-चिल्लाने की आवाज़े आ रहीं थी। बच्चों और औरतों की चीख़-पुकार से देर तक आसमान गूँजता रहा। और फिर धीरे-धीरे ख़ामोशी-सी छाने लगी—एकदम घनी ख़ामोशी।

मुझे यह बात क़बूल करते हुए शर्म महसूस हो रही है कि सबसे पहले तो मेरे दिमाग़ में यही बात कौंधी कि चलो, बला टली। मुझे नफ़रत से देखनेवाले तो नहीं रहे। सिर्फ़ मिर्ज़ा अब्दुल्ला और उसके दोस्तों को ही तो पता रहेगा उस बात का। ये हालात रफ़ा-दफ़ा होने पर सब ठीक-ठाक हो जाएगा और एलेक की पेन्शन भी मुझे मिलने लगेगी। मैं अपनी बेटियों को इंगलैंड ले जाऊँगी और नई ज़िंदगी शुरू करूँगी। वहाँ कोई भी मेरी ओर उँगली उठानेवाला नहीं होगा। कोई यह तो नहीं पूछेगा कि तुम्हारा पीछा क्या है ? या तुमने कल क्या भुगता ?'

पर बाद में मुझे बहुत रोना आया। मैं बहुत-बहुत रोई उसके बाद।

बहादुर शाह 'ज़फ़र'

उस दिन दोपहर में तक़रीबन चालीसेक यूरोपियनों को हमारे सामने पेश किया गया। मर्दों-औरतों के साथ शायद कुछ बच्चे भी थे। उन सबके हाथ पीठ-पीछे रस्सियों से बँधे थे। उनके पीछे भारी भीड़ भी जमा हो गई थी। पहरेदारों के लिए उन्हें पीछे करना भी मुश्किल जान पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था। वे सब चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे, "दुहाई, दुहाई, हुजूर! इन लोगों ने हमारे आदमियों को मारा है। इन फ़िरंगियों को फाँसी लगाइए या फिर हमारे हवाले कर दीजिए।"

पीछे जो तोपों से बारूद बरसाया गया था, यह भीड़ उसमें हताहत लोगों का बदला लेने आई थी। वैसे तो गोरों ने हमारे पुरखों के ख़िलाफ़ बहुत-से ज़ुल्म किए थे, लेकिन हम उन लोगों से बदला लेने के ख़िलाफ़ थे, जिनका अभी हाल के क़त्लो-ग़ारत में कोई हाथ नहीं था। हमने हुक्म दिया कि गोरे क़ैदियों को महल के तहख़ाने में हिफ़ाज़त के साथ रखा जाय।

भीड़ ने शोर मचाना शुरू कर दिया। कुछ लोगों ने तो हमारी शान के ख़िलाफ़ बग़ावत-भरे नारे भी लगाए। हमने अपने सलाहकार को हुक्म दिया कि दरबार बर्ख़ास्त कर दिया जाय। उसने ज़ोर से 'तख़्लिया' कहा और लाल चिलमन गिरा दी। हलचल थोड़ी देर तक बरक़रार रही। फिर कुछ समझदार लोगों के कहने-कहाने से कि उन्हें अपने बादशाह की मर्ज़ी की इज़्ज़त करनी चाहिए, भीड़ चुप हुई। लौटते हुए यह चिल्ला रही थी, "ख़ल्क ख़ुदा का, मुल्क बादशाह का, हुक्म जहाँपनाह का।"

उनके जाने के बाद हमने हुक्म दिया कि यूपोपियन क़ैदियों को शाही रसोई से खाना पहुँचाया जाय। फिर हम दोपहर की नमाज़ पढ़ने मोती मस्जिद चले गए। नमाज़ पढ़ते हुए हमने महसूस किया कि हमारे पीछे आकर बहुत-से अजनबी क़तारें बाँधे खड़े हो गए हैं। लेकिन हमने अपने-आप को क़ाबू में रखा, क्योंकि हम ख़ुदा के घर में बैठे हुए थे। मन बड़ा परेशान था। ख़ुदा से यह इल्तिजा भी नहीं की जा रही थी कि वह हमें राह दिखाए। जब हम मस्जिद से बाहर आए तो लोग फिर से फ़िरंगियों के ख़ून के प्यासे हुए नारे लगा रहे थे। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक जुर्रत की कि हमसे कहने लगे कि हम फ़िरंगियों को उनके सुपुर्द कर दें। हमने एक बार फिर उनकी माँग को ठुकरा दिया। जिनके रिश्तेदार बारूदी धामाकों में मारे गए थे, हमने उन लोगों से अफ़सोस ज़ाहिर किया और उनको सलाह दी कि ख़ुदा की मर्ज़ी को कुबूल कर वे उन्हें दफ़नाने का इन्तज़ाम करें।

शाम को हमें मालूम हुआ कि हमारे नाम पर जामिया मस्जिद में खुतबा पढ़ा गया। दरबारी हमारी वाहवाही करने और हमारे पितरों के बड़प्पन के पुल बाँध-बाँधकर हमारी चाटुकारी कर रहे थे। तो इस तरह कुदरत ने हमारी क़िस्मत की बागडोर तूफ़ानी हवाओं के हवाले कर दी थी।

पिछले तेरह सालों से चाँदी का जो तख़्त तहख़ाने में दफ़्न पड़ा था, हमने उस पर फिर से बैठना मंज़ूर कर लिया। इसी चाँदी के तख़्त पर हमारे सभी पुरखे बैठते आए थे—तैमूर, बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, आलमगीर औरंगज़ेब-एक, बहादुरशाह-एक, जहाँदारशाह फ़र्रुख़सियर, मुहम्मद शाह, आलमगीर-दो, शाह आलम और हमारे अब्बाजान अकबरशाह-दो। हमारी रियाया हमें सूरज डूबने तक अपना अक़ीदा पेश करती रही। इसके बाद तोप की आवाज़ के साथ जश्न ख़त्म होने का ऐलान कर दिया गया। लेकिन भीड़ फिर भी नहीं छितरी। बहुत-से लोगों ने तो दरबारे-आम के फ़र्श पर चादरें बिछाईं और सो गए। उनके घोड़े वहीं बाग़ में चरते रहे। हमारा हक़ सिर्फ़ नदी की तरफ़ पड़ते हमारे महलों पर ही बाक़ी था।

हमने अपनी ख़्वाहिश ज़ाहिर की कि हम अकेले में बैठना चाहते हैं। हम दीवाने-ख़ास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आकर अपने पलँग पर लेट गए और छत पर निगाह गड़ाकर न जाने क्या-क्या सोचने लगे। हमें उन दिनों की याद हो आई जब ये छतें सोने-चाँदी की पतरों से मढ़ी हुआ करती थीं। अब तो जगह-जगह से पलस्तर तक उखड़ आया था। संगमरमर के खंभों से एक-से-एक क़ीमती जवाहरात उखाड़ लिये गए थे। अब तो उनकी जगह बचे हुए थे सिर्फ़ बदशक्ल बेहूदे गड्ढे। हमारी नज़र दीवारों पर लिखी पुरखों की तारीफ़ों से भरी धुँधली सतरों पर जा टिकी थी—'गर फ़िरदौस बर रुए-ज़मीनस्त, हमीनस्तो, हमीनस्तो, हमीनस्त'—अगर दुनिया में कोई ख़ुशनुमा जगह है तो यहीं है, यही है, यही है। हमारे कलेजे से एक गहरी हूक उठी और आँखें आँसुओं से धुँधला गईं।

हम इसी तरह ख़यालों में डूबे पड़े थे कि किसी ने धीमे से खाँसकर हमारा ध्यान अपनी तरफ़ खींचा। हमारी ख़ास बाँदी थी। उसने झुककर हमें कोर्निश की और इत्तिला दी कि हमारी बेगम ज़ीनत महल रोज़ा तोड़ने के लिए हमारे साथ की इजाज़त चाहती हैं। हम थके क़दमों से हरम की ओर चल पड़े। एक कमरे से दूसरे कमरे को लाँघते हुए हम बढ़े जा रहे थे। बाँदियाँ हमारे हर कमरे में घुसने के पहले हमारी आमद का ऐलान करती जातीं। पिछले बाइस सालों से जिन लफ़्ज़ों को लगातार सुनते चले आने के हम आदी हो चुके थे, आज न जाने क्यों हमें उनके नए मायनों का अहसास हो रहा था—'सिराजुद्दीन ख़ान, मुहम्मद अबू ज़फ़र बहादुर शाह ग़ाज़ी, आलमपनाह, शहंशाह।'

हम बेगम ज़ीनत महल की आरामगाह में पहुँचे। खाने के लिए दस्तरख़ान बिछा हुआ था। झाड़-फ़ानूसों से मौलसिरी और बेला की लड़ियाँ लटक रही थीं। हमारे घुसते ही बाँदियों ने झुककर सलाम किया और बाहर निकल गईं। हम मसनद पर गाव-तकियों का सहारा लेकर बैठ गए।

बेगम ज़ीनत महल अंदर आईं। उन्होंने ऐसा साज-सिंगार कर रखा था, जैसा आज से सत्रह साल पहले तब किया हुआ था, जब हम उन्हें दुल्हन बनाकर लाए थे। सुनहरी ज़री के लिबास पर सफ़ेद जाली का दुपट्टा उनकी काली लटों पर लहरा रहा था। बालों में उन्होंने हमारा भेंट किया हुआ पन्ने और मोतियों का सिंगारफूल लगा रखा था। उन्होंने अपनी लम्बी-लम्बी हिरनी-जैसी प्यासी आँखों से हमारी ओर देखा। हमारी तरफ़ धीरे-धीरे बड़ी नाज़ो-अदा से बढ़ते हुए उनके क़दमों ने हमारे कानों में मीठी झंकार भर दी। लगा, जैसे किन्हीं अदिख हाथों ने चिराग़ों की लौ को एकदम ही तेज़ कर दिया हो। जैसा कि सादी ने कहा है, 'रात में एक तस्वीर उभरी और उसके होने ने सारे आलम को जगमगा दिया।' असल में मेरे लफ़्ज़ उनकी ख़ूबसूरती का बखान करने में कभी पूरे नहीं पड़ सकते।

"हिन्दुस्तान के बादशाह को यह बाँदी सलाम अर्ज़ करती है।" उन्होंने हमें झुककर तीन बार सलाम करते हुए कहा।

"सुभान अल्लाह!" उनके शबाब को नज़रों से पीते हुए हम बोले। जब हमने पहले-पहल उन्हें देखा था, तब भी तो हमारे मुँह से यही निकला था, "सुभान अल्लाह!" वे तब सोलह साल की थीं और हम पैंसठ के। पिछले सत्रह साल में उनका शबाब जितना निखरा है, हमारी प्यास भी उतनी ही बढ़ती गई है। खाने की भूख किसे थी! हमारी तो तबीयत हो रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी कि उनकी गोद में अपना सिर रखकर लेट जाएँ और वे हमारे सफ़ेद बालों में अपनी उँगलियाँ फिराती रहें। लगता था उन्होंने हमारे दिल की समझ ली है। हमसे पूछने लगीं कि हमें उनका बंदोबस्त अच्छा लगा कि नहीं? हमने शेख़ सादी को याद करते हुए कहा, "हमें भूख है भी, और नहीं भी। खाने की मेज़ के सामने बैठे हुए भी हमें चाह है तो सिर्फ़ उनकी, जैसे कोई नौ-उम्र लड़का औरतों से भरे हमाम के दरवाज़े पर बैठा हो!" सुनकर उनके गाल अनारों जैसे सुर्ख़ हो उठे।

ज़ीनत महल ने सभी पकवान हमारी पसन्द के बनाए थे—नौरतन चटनी के साथ हिरन के मांस का कबाब, मोर की भुनी टाँगें, आम की फाँकोंवाली सोने के वर्क़ लगी कुलफ़ी। उन्होंने हमारे हाथ धुलवाए और अपने हाथों से हमें निवाले खिलाए। हमें याद नहीं आ रहा कि वे इतने प्यार से इससे पहले कब हमारे साथ पेश आई थीं। खाने के बाद उन्होंने अपने हाथों चूना-कत्था लगाकर ख़ुशबूदार ज़र्देवाला पान बनाकर हमें खिलाया। हम पान चबा रहे थे कि बेगम ने रात हमारे पलँग पर गुज़ारने की इजाज़त माँगी। हम सुनकर ज़रा हड़बड़ाए। वैसे कोई ऐसी परेशनी की बात नहीं थी। हमारे पुरखे तो इस बात के लिए मशहूर रहे थे कि अपनी आख़िरी साँस तक उन्होंने औरत के आग़ोश में बिताई। हालाँकि उनकी विरासत का अब कुछ ख़ास हमारे पास नहीं बचा था, लेकिन उनका ख़ून तो अब भी हमारी रगों में दौड़ ही रहा था। सत्तर साल की उम्र तक तो हम जंगली जानवरों का शिकार करते हुए बीहड़ जंगलों में दौड़ा-फिरा करते रहे थे।

अल्लाह ने हमारे बाजुओं को जो ताक़त बख़्शी थी, वही हमारे पुट्ठों में भी भरी हुई थी। दरअसल यह उम्र की ताकीद नहीं थी कि हम बेगम के दिल में उठते मुहब्बत के जज़्बों को समझ नहीं पा रहे हैं, बल्कि यह तो शरीयत के क़ानून का ख़ौफ़ था। उन्होंने हमारे मन की उलझन को पढ़ लिया था और हमें भरोसा दिलाया कि शरीयत में ऐसे मौक़ों के लिए माफ़ी की जगह है। अपनी सुरीली शोख़ आवाज़ में उन्होंने हमें हफ़ीज़ का कलाम सुनाना शुरू किया—

पल-भर भी तसल्ली नहीं, मय और माशूक़ा बिना,
ये ही तो दिन हैं, गुलिस्ताँ में खिलते फूलों के।

उनके मुँह से उड़ती ख़ुशबू इतनी मनभावन लग रही थी और उनकी जिस्मानी ख़ूबसूरती इतनी पुरकशिश थी कि बयासी साल की अपनी उम्र और दिन-भर की परेशानी के बावजूद हमें लग रहा था कि जैसे तन-मन की सारी थकान काफ़ूर हो गई हो। हमने भी हफ़ीज़ के ही कलाम से उनको जवाब दिया—

नज़र आते ही ज़ुल्फ़ें हसीनों की और प्याले मय के,
तौबा करके भी कितनी बार मुकरते रहे हम औ' आप।

हमने हकीम अहसानुल्लाह की बनाई ताक़त बढ़ानेवाली दवाई की एक चम्मच मुँह में डाली और बेगम के साथ लेटे। आज भी हमने ज़ीनत महल को उसी जोशो-ख़रोश के साथ हमबिस्तर किया जैसे आज से बरसों पहले किया था। फिर हमने उन्हें हफ़ीज़ का एक और कलाम पढ़कर सुनाया, ताकि वे यह न समझती रहें कि हमें किसी भी तरह अपने किए का पछतावा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़्वाहिश को दबाते नहीं, जब तक
अपने दिल को न दें भरपूर सुकूँ
देह अपनी कि उनकी देह तक पहुँचे,
साँस अपनी कि उनकी साँस में घुल ले।
होंगे रुख़सत जब हम इस जहाँ से,
और खोलेंगे वो आकर क़ब्र हमारी,
तो देखेंगे वो दिल हमारा सुलगता,
और हमारे कफ़न से धुएँ को निकलता।

हम दोनों देर तक जवाँ आशिक़ों की तरह एक-दूसरे के आग़ोश में पड़े रहे। जिस्म के रोओं के सिवा हमारे बीच और कोई भी पर्दा या दीवार नहीं थी।

तोपों के चलने की आवाज़ के साथ हमारी मदहोशी टूटी। ज़ीनत महल ने अपनी लम्बी पलकें खोलीं और शर्मसार होते हुए जल्दी-जल्दी कपड़े पहने। "इस वक़्त भला क्यों ये लोग तोपें चला रहे हैं?" फिर धमाकों की आवाज़ों को इक्कीस तक गिनते हुए वे समझ गईं। बोलीं, "अच्छा, यह हिन्दुस्तान के बादशाह को इक्कीस तोपों की सलामी दी जा रही है! अपनी इस बाँदी को हुक्म दीजिए आलीजाह, कि यह नाचीज़ आपकी बंदगी करनेवाली पहली शख़्सियत होने का फ़ख्र हासिल करे।" उन्होंने झुककर हमें तीन बार कोर्निश की और हौले-हौले कमरे से बाहर निकल गईं।

हमने अपनी क़लम हाथों में थामी और पिछले कई हफ़्तों से लिखी जा रही अपनी नज़्म को आख़िरी तौर पर सँवारना शुरू किया—

नहीं इश्क़ जो उसका, तो रंज हमें,
कि क़रारो-शकेब[1] .जरा न रहा।

ग़मे-इश्क़ तो अपना रफ़ीक़[2] रहा
कोई और बला से रहा न रहा।

दिया अपनी ख़ुदी को जो हमने उठा,
जो वो पर्दा-सा बीच में था न रहा।
रहा पर्दे में अब न वो पर्दानशीं,
कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।

न थी हाल की जब हमें अपने ख़बर,
रहे देखते औरों के ऐब-ो-हुनर।
पड़ी अपनी बुराइयों पर जो नज़र,
तो निगाह में कोई बुरा न रहा।

1. धीरज, 2. साथी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई रोज़ में आज वो माहे-लक़ा[1],
हुआ मेरे जो सामने जल्वा नुमा[2]।
मुझे सब्रो - क़रार ज़रा न रहा,
उसे पासे-हिजाब - ो - हया[3] न रहा।

हमें साग़रे - बादा[4] के देने में अब,
करे देर जो साक़ी तो हाए ग़ज़ब।
कि ये अहदे - निशात[5] ये दौरे-तरब[6]
न रहेगा जहाँ में सदा, न रहा।

तेरे रुख़[7] के ख़याल में कौन - से दिन,
उठे मुझ पे न फ़ित्ना - ए - रोज़े - जज़ा[8]।
तेरी ज़ुल्फ़ के ध्यान में कौन - सी शब,
मिरे सर पे हुजूमे - बला[9] न रहा।

उसे चाहा था मैंने कि रोक रखूँ,
मेरी जान भी जाए तो जाने न दूँ।
किए लाख फ़रेब, हज़ार फ़ुसूँ[10],
न रहा, न रहा, न रहा, न रहा।

लगे यूँ तो हज़ारों ही तीरे-सितम[11],
कि तड़पते रहे पड़े ख़ाक पे हम।
वले[12] नाज़ो - करिश्मा कीतेग़े-दुदम[13]
लगी ऐसी कि तस्मा लगा न रहा।

'ज़फर' आदमी उसको न जानिएगा,
वो हो कैसा ही साहिबे-फ़हमो-ज़का[14]।
जिसे ऐश में यादे - ख़ुदा न रहा,
जिसे तैश में ख़ौफ़े - ख़ुदा[15] न रहा।

और इस तरह क़िस्मत के तूफ़ान में हमने अपनी उम्मीद की शमा जला ली। हमने अपनी बूढ़ी और नाज़ुक नाव हिन्दुस्तान के तूफ़ानी समुंदरों के हवाले कर दी।

---

1. चाँद-सी सूरतवाली, 2. प्रकट, 3. लज्जा और मर्यादा का विचार, 4. शराब का प्याला, 5-6. मस्ती का दौर 7. मुखड़ा, 8. क़यामत के दिन की विपत्तियाँ 9. मुसीबतें, 10. जादू, 11. अत्याचार के तीर, 12. लेकिन, 13. दोधारी तलवार, 14. समझ-बूझवाला, 15. ख़ुदा का डर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवानी में प्यार के पागलपन की बात और थी। उन दिनों तो इश्क़-मुहब्बत का जोश दीवाना बनानेवाला हुआ करता था। पर अब उन बीते दिनों की सोचकर भी क्या हासिल!

आधी रात के घंटे की आवाज़ से हमारी नींद टूट गई। हम अपनी महबूबा के पलँग से उठे तो अपनी हड्डियों पर उम्र के बोझ का अहसास हुआ। हाथ-पानी से फ़ारिग होकर हम मस्जिद में गए और ईशा की नमाज़ पढ़ते हुए हमने अल्लाह से रमज़ान के क़ायदे की ख़िलाफ़वर्ज़ी करने की गुस्ताख़ी के वास्ते माफ़ी माँगी।

कुछ देर हम वैसे ही मस्जिद में बैठे रहे। चाँद ठीक हमारी सीध में चमक रहा था। मस्जिद का संगमरमरी फ़र्श बर्फ़-जैसा ठंडा लग रहा था। हम सोच रहे थे अल्लाह और अपने पैग़म्बर मुहम्मद के बारे में। अल्लाह ने रमज़ान के तीसरे हफ़्ते में हमारे पैग़म्बर को बुलाया था और मुक़द्दस जेहाद का ज़िम्मा उन्हें सौंपा था। हमने सूरा-96 को पढ़ना शुरू किया। अल्लाह ने पहले-पहल इसे ही दुनिया को दिया था—

गाओ—उस खुदा के नाम पर जिसने तुम्हें पैदा किया,
जिसने इन्सान को एक थक्के से जन्म दिया,
गाओ—और तुम्हारा खुदा तो बहुत रहमदिल है,
जिसने तुम्हें सब-कुछ सिखाया,
पर इन्सान ने सीखा,
हमेशा बग़ावत ही करना,
क्योंकि वह सोचता है कि उसने,
खुद ही सब कमाया है,
पर, ऐ बंदे, सब-कुछ तो
उस खुदा का ही है।

हमें न जाने क्यों यह अजीब-सा अहसास हो रहा था कि खुदा ने हमारी कही सब बातें सुन ली हैं और हमें माफ़ कर दिया है। हल्के दिल से हम मस्जिद से उठकर बाहर आ गए। उसके बाद तो हमें कुछ घंटे बड़ी ही अच्छी नींद आई।

अपने नौकरों के उठने से पहले ही हम उठ गए और अपने अठकोनी बुर्ज पर कुछ पल बिताने चल दिए। अकेले बैठकर सोचने पर ही हमें हालात की असलियत का अहसास हुआ। जो हो रहा था, वह एक-एक कर हमारे दिलो-दिमाग़ पर तैरने लगा। क्या हमने अपना फ़र्ज़ वाजिब तौर पर निभाया है? क्या अपनी क़िस्मत की बागडोर हमारे अपने हाथों में है या फिर हम किसी ज़िद्दी कठपुतलीबाज़ के हाथ की कठपुतली बने हुए उसके इशारों पर नाच रहे हैं? तब हमने लिखा—

कब हुजूमे-ग़म से मेरी जान घबराती नहीं,
मैं तो मर जाऊँ, करूँ पर क्या कि मौत आती नहीं।

उस वक़्त मन पर ऐसी उदासी छाने लगी कि लगा जैसे हमारे दिलो-दिमाग़ का दरपन धुँधलाने लगा है। हम बादशाह ही क्या हैं! नाम के ही तो! जिस महल में हम रहते हैं, वह कभी दुनिया के सबसे ख़ूबसूरत महल के तौर पर जाना जाता था। वह महल भी अब कहने को ही महल कहलाता है। महल के नाम पर उसमें रह ही क्या गया है! कम्पनी की ओर से हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी बता दिया गया था कि हमारी मौत के बाद हमारे ख़ानदान को यह लालक़िला ख़ाली करना पड़ेगा। फ़िरंगियों ने हमें हमारी ख़ानदानी दौलत के समुंदर की एक बूँद ही मुहैया की थी। हमने तो उस एक बूँद को भी खुदा की नेमत मानकर मंज़ूर किया था। फ़िरंगी इसे पेंशन कहते थे। सुना आपने? एक बादशाह अपनी ही रियाया से पेंशन पा रहा था!

एक के बाद एक हिन्दुस्तान की सभी रियासतें फ़िरंगियों के क़ब्ज़े में जाती गईं। उन्होंने न दोस्तों को बख़्शा, न दुश्मनों को। कुछ ही महीने पहले की तो बात है, अवध की रियासत ने फ़िरंगियों से कैसा दोस्ताना जताया था! उन्होंने उसको भी हड़प लिया। अवध के पहले वे नागपुर, झाँसी, सतारा, तंजौर, मुर्शिदाबाद और कर्नाटक को तो कब्ज़े में ले ही चुके थे।

कुरान पाक में लिखा है कि "खुदा ज़ालिमों को नहीं चाहता।" ग़रीबों पर किसी ने कभी क्या ऐसा क़हर बरपाया था जैसा इन फ़िरंगियों ने बरपाया? इन्होंने तो हमारे मज़हबी मामलों में भी दख़लंदाज़ी शुरू कर दी थी। इनके लिए पाक और नापाक में भी कोई फ़र्क़ नहीं था। ये गायों को भी खाते थे और सूअरों को भी। लेकिन इनका यह क्या हक़ बनता था कि ये हिन्दू और मुसलमान फ़ौजियों को हुक्म दें कि वे अपने मुँह में गाय और सूअर के चर्बीवाली कारतूसें भरें? साफ़ ज़ाहिर था कि ये हमें बेधरम करके क्रिस्तान बनाना चाहते थे। उनके पादरी हमारी पाक कुरान और हमारे पैग़म्बर के नाम की निंदा करते थे। अपने धर्म और अपनी आबरू के सिवा आदमी आख़िर और किस चीज़ के लिए जीता है? मरने के बाद इन्सान का उसके नाम के सिवा और बाक़ी ही क्या बचा रहता है? हमें तो अब सिर्फ़ अपने खुदा का ही आसरा रह गया है। लोग ठीक ही कहते हैं कि—'उसे समुंदर की लहरों का क्या ख़ौफ़, जिसका खेवनहार खुद खुदा ही बना बैठा हो!'

परेशानी का एक मसला और भी था—हमारे शाही वारिस का। हमारी प्यारी बेगम ज़ीनत महल चाहती थीं कि हमारे बड़े बेटे मिर्ज़ा दारा बख़्त के बजाय उनसे हुए हमारे बेटे मिर्ज़ा जवाँ बख़्त को शाही वारिस बनाया जाय। गवर्नर जनरल ने सुना तो हमारी सलाह मानने से साफ़ इनकार कर दिया। और कुदरत की करनी तो देखिए कि यह झगड़ा ही ख़त्म कर दिया—पहले हमारा बेटा शाहरुख़ इस जहाँ को अलविदा कह गया और उसके बाद मिर्ज़ा दारा बख़्त भी जाता रहा। इन दोनों बेटों के गुज़रने के बाद हमने ज़ीनत महल की बात मान ली और मिर्ज़ा जवाँ बख्त को अपना वारिस बना दिया। हमने फिर गवर्नर जनरल से सिफ़ारिश की, लेकिन पहले की तरह इस बार भी उसने इसे नामंज़ूर कर दिया और हमारे अनगिनत बेटों में से मिर्ज़ा फ़ख़रू को हमारा वारिस चुना।

फ़ख़रू को कुछ दे-दिलाकर उन्होंने उससे लालक़िले को छोड़ने के क़रारनामे पर दस्तख़त करवा लिये और बदले में उसके वास्ते थोड़ी-सी पेंशन का इंतज़ाम कर दिया। मिर्ज़ा फ़ख़रू भी ज़्यादा दिन नहीं जिया। इस बन्दोबस्त के कुछ ही दिनों बाद खुदा को प्यारा हो गया। अल्लाह ने हमारे तीन बेटे हमसे छीन लिये थे और उधर अंग्रेज़ी हुकूमत ने लालक़िले और महल से हमें पूरी तरह बेदख़ल करने का इरादा ज़ाहिर कर दिया था। उन्होंने यह भी ऐलान कर दिया कि जो कोई भी हमारा वारिस होगा, उसे 'आलीजाह' तक कहलाने का हक़ नहीं रहेगा।

'ऐ ज़फ़र, यह हुकूमत बस तुम्हारे जीते-जी ही बनी रहेगी। तुम्हारे बाद तुम्हारे ख़ानदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कोई भी वारिस हिन्दुस्तान का हुक्मरान कहलाने का हक़दार नहीं रहेगा।' हम मन-ही-मन बड़बड़ाए।

फ़िरंगी ताक़त को इस दुनिया में अब और बने रहना गवारा नहीं था। एक बार हमारे बीमार होने की ख़बर क्या फैली कि उन्होंने अपने पहरेदार हमारे महल के दरवाज़ों पर तैनात कर दिए। तब मजबूर होकर हमने उनके प्रेसीडेंट को लिखा, "जनाब, क्या हमें चैन से मरने की भी इजाज़त नहीं दी जायेगी? क्या आपको इतना डर है कि हमारा मुर्दा भी आपकी मुख़ालिफ़त में उठ खड़ा होगा?"

सादी ने ठीक ही कहा था कि 'बेशक दस दरवेश एक छोटे-से कम्बल में सिमटकर सारी रात गुज़ार दें, लेकिन दो बादशाह एक बड़े-से मुल्क में भी नहीं समा सकते।' हमारे हिन्दुस्तान में भी तो कहावत है कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। तो मामला साफ़ था कि या तो हम यहाँ के बादशाह होंगे या फिर फ़िरंगी।

हमने शहज़ादों, अमीरों और सिपाहियों के नुमाइंदों की एक सभा बुलवायी और उनसे मुल्क के निज़ाम को तरतीब देने की ताकीद की और कहा कि ऐसी तदबीर की जाए कि फ़िरंगियों को अपनी ज़मीन से खदेड़ने का बन्दोबस्त हो सके।

सभा ने हमारे बड़े बेटे मिर्ज़ा मुग़ल को अपना आला 'कमांडर' चुना। मिर्ज़ा अबू बक़र की बाजुएँ अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ तलवार उठाने को फड़क रही थीं; उसे 'कर्नल' की हैसियत सौंपी गई।

इसके बाद हमने जाने-माने नजूमी हसन अस्करी को बुलवाया। हसन अस्करी ने अपनी इबादत के बल पर कुदरती ताक़त बटोर रखी थी। वह दरियागंज में हमारी बेटी नवाब बेगम के घर रहा करता था। दरवेश का इंतज़ार करते-करते हमने अख़बार पढ़वाकर सुना। दिल्ली के तीनों अखबारों—दिल्ली उर्दू न्यूज़, सिराज-उल-अख़बार और सादिक़-उल-अख़बार ने कश्मीरी फाटक के बारूदख़ाने को उड़ाने का आँखों-देखा हाल बयान किया था। इस पर क़ब्ज़ा करने को बढ़े और मारे गए सैकड़ों लोगों के नाम-पते सब दिए हुए थे। हमने अख़बार पढ़नेवालों से पूछा कि क्या अंग्रेज़ी के अख़बार 'दिल्ली गज़ट' में भी इस मामले की बाबत कुछ लिखा गया है कि नहीं? उसने बताया कि आज अंग्रेजी 'गज़ट' तो छपा ही नहीं, क्योंकि उनका सारा अंग्रेज़ स्टाफ़ तो कत्ल कर दिया गया है। उनमें से बस एक अमरीकन ही बचा है जिसने इस्लाम क़बूल कर लिया था। हमने बिना किसी तब्सरे के सब-कुछ चुपचाप सुना और अख़बार पढ़नेवाले को रुख़्सत होने का इशारा किया।

हसन अस्करी को भीतर लाया गया। हमने अदब के साथ उसकी अगवानी की। वह सचमुच ही कोई पहुँची हुई शख़्सियत मालूम हो रहा था। उसने अल्लाह से दरख़्वास्त की कि उसकी उम्र के बीस साल हमें बख़्श दिए जायँ। हमने उसे अपने क़रीब दीवान पर बैठाते हुए पूछा कि शहर पर घिरे इस तूफ़ानी आलम पर उनका क्या रुख़ है? दरवेश तो अपने मुँह से निकले हरूफ़ पर ऐसे क़ैफियत बरत रहा था, जैसे उसकी बोली न हुई, कोई सोना-चाँदी हो गया। आँखें बंद कर वह अपनी तस्बीह के मनके फेरने लगा। कुछ देर बाद उसने अपना चेहरा ऊपर उठाया और दोनों हाथों को दाढ़ी पर फेरते हुए कहा, "शुक्र अल्लाह, शुक्र अल्लाह!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें बेचैनी-सी होने लगी कि आख़िर क्या बात हो सकती है? हमने अपनी बेताबी जताते हुए पूछा, "दरवेश साहिब, आप तो क़िस्मत की किताब में लिखी कल की हर बात बता सकते हैं। बताइए न कि हमारी क़िस्मत में क्या बदा है?"

दरवेश ने आसमान की ओर इशारा करते हुए कहा, "उसे तो अल्लाह ही बता सकता है। मैं तो उस परवरदिगार के सामने एकदम अदना हस्ती हूँ। कभी-कभी वक़्त के आईने में कुछ झलकियाँ दिख जायँ तो दिख जायँ, वरना मैं क्या बता सकता हूँ आनेवाले दिनों के बारे में?"

इतना कहकर वह चुप हो गया और फिर से अपने मनके फेरने लगा। हमने उससे फिर इल्तिजा की, "अल्लाह के नाम पर आप वक़्त के आईने में देखिए तो सही, और कुछ बताइए हमें। इस नाचीज़ को अब और मत तड़पाइए।"

दरवेश ने आख़िरकार अपना मुँह खोल ही दिया, "आलीजाह, आपको मेरे उस ख़्वाब की तो याद होगी ही जो मैंने देखा था कि एक ऐसी बाढ़ आएगी, जिसमें मुग़लों के तख़्त के सिवाय कुछ भी बाक़ी नहीं बचेगा, सब-कुछ बह जाएगा।"

"हाँ-हाँ, याद है।"

"उस वक़्त हमने आपको बताया था कि मुमकिन है कि यह हिन्दुस्तान पर ईरानियों या रूसियों के हमले का इलहाम हो। अब समझ में आया कि यह बाढ़ तो हिन्दुस्तान के भीतर से उफनी है। यह बाढ़ हुजूर के दुश्मनों के सारे ख़ानदान का सफ़ाया कर डालेगी और सिर्फ़ तख़्तेताऊस ही बाढ़ से सही-सलामत बचा रहेगा।" (हालाँकि नादिरशाह को असली तख़्तेताऊस को ईरान ले जाए सौ से भी ज्यादा बरस बीत चुके थे, पर हमारे लोग चाँदी के पत्तर से मढ़े उस काठ के तख्त को अब भी तख़्ते-ताऊस ही कहते जा रहे थे, जिस पर अब हम बैठा करते थे)।

"आमीन, आमीन!" हमने आह भरते हुए कहा, "अल्लाह अपने बंदों की तरफ़दारी करनेवाली बात को तो ज़रूर ही पूरा करेगा।"

हमने उससे पूछा कि क्या इस बात का कोई अंदेशा है कि फ़िरंगियों के ख़िलाफ़ जेहाद छेड़ने में ईरानी फ़ौजें हमारी मदद को आगे आएँगी? उसने हमें भरोसा दिलाया कि इस्लामी फ़ौजें तो इन गोरों के साथ तलवारें टकराने को हर वक़्त तैयार बैठी हैं, भले ही वो हिन्दुस्तान की हों या ईरान की। फिर वह बताने लगा कि हौज़ काज़ी की एक हिन्दू औरत ने एक-साथ तीन लड़कियों को जन्म दिया है और वो लड़कियाँ पैदा होते ही बोलने लगी हैं। पहली ने कहा कि, "आनेवाला साल हादसों से भरा होगा।" दूसरी बोली, "जो लोग ज़िंदा बचे रहेंगे, वे ही उस साल की मुसीबतों को देख सकेंगे।" तीसरी लड़की ने कहा, "अगर हिन्दू इसी मौसम में होली जलाएँ तो उनके सारे बुरे ग्रह टल जाएँगे। भगवान तो त्रिकालदर्शी है, वह सब-कुछ देख सकता है।"

दरवेश ने कहा कि हिन्दू लोग सर्दियों में होली मनाने के बजाय इसी वक़्त होली जला रहे हैं। हमने हसन अस्करी का शुक्रिया अदा कर उसे रुख़्सत करते हुए कहा कि हमारे वास्ते वह खुदा से दुआ माँगता रहे और उसके हाथों में सोने की एक गिन्नी रखकर, उसके कुछ कहने से पहले ही, हरम की ओर बढ़ गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम बड़ी बेताबी से दरवेश का बताया सब-कुछ ज़ीनत को बताना चाहते थे। उन्होंने अपनी सभी बाँदियों और मिलनेवालों को रुख़्सत कर दिया। हमने उन्हें बताया कि हसन अस्करी अभी-अभी यहाँ आया था। उनकी उत्सुकता बढ़ाने के लिए हम थोड़ी देर चुप रहे। हमारी चुप्पी देखकर बेगम ने ही बात पूरी करने की ठान ली, "और उन्होंने आलीजाह को अपने बाढ़वाले सपने की बाबत बताया होगा और बताया होगा कि हिन्दू लोग कैसे होली जला रहे हैं। और यह भी बताया होगा कि कैसे तीन लड़कियों ने जन्म लेते ही बोलना शुरू कर दिया था। तब तो फिर आपको अपनी इस कनीज़ को भी एक सोने की मोहर देनी होगी—यह बताने के लिए कि अब बस फ़िरंगियों के दिन लदने ही वाले हैं और मुग़ल ख़ानदान का झंडा फिर से बुलंद होने वाला है।"

यह ख़बर पल-भर में ही कुछ इस तरह महल में फैल गई थी, मानो दीवारों के सचमुच ही कान उग आए हों। हमारी आँखों में हैरानी के नक़्श देखकर ज़ीनत अपने माथे को ठोंककर बोली, "आलीजाह, क़िस्मत की किताब में लिखे को पढ़ने का मेरा अपना ही तरीक़ा है।" और फिर मुस्कुराते हुए हाफ़िज़ का एक दीवान पढ़कर सुनाने लगी—

जन्नत के खेतों में चाँद की फाँक की हँसिया
याद आती है, फ़सलों को काटते और बोते वक़्त
ऐ क़िस्मत, सूरज के उगने के बाद भी
तू अब तक क्यों सोती ही रही?
जवाब इसका है कि—हमेशा दिन एक-से रहते नहीं,
बीते दिनों का सोचकर, दिल अपना छोटा करते नहीं।

उन्होंने आख़िरी सतरों को दोहराते हुए फिर कहा, "अपना दिल छोटा न कीजिए, हुजूर!"

उन्हें ख़ुश देखकर हमारा प्यार बरबस ही उमड़ पड़ा। हमने बढ़कर उनके रुख़सारों को चूम लिया। वे शरमाकर बोलीं, "यह क्या हुजूर! दिन दहाड़े ही यह… ? क्या आपको तनिक भी शरमो-हया नहीं?"

"तुम शरमो-हया की बात करती हो? मैं तो अपनी शरमो-हया के लिए मशहूर हूँ।" हमने भी हाफ़िज़ के ही कलाम में उन्हें जवाब दिया।

विद्रोह के बाद के दो दिनों में तो हमने अपने-आप को सचमुच ही हिन्दुस्तान का बादशाह समझा, क्योंकि इन दिनों फ़िरंगी अपना कारवाँ हमारी सल्तनत के बाहर ले गए थे। लेकिन तीसरे दिन हमारी नज़र पर पड़ा पर्दा उठ गया। हमारे बेटे मिर्ज़ा मुग़ल ने हमसे बादशाहत के सारे हक़ छीनकर अपने हाथों में ले लिये थे। लोग अब हुक्म लेने के लिए उसी के पास जाते थे। यहाँ तक कि बसंत अली ख़ान वग़ैरह जो हमारे खास ख़िदमतगार थे, वे सब भी उसी को सिज्दा करने लगे थे।

शहज़ादा मिर्ज़ा मुग़ल ने हमारी पनाह में आए अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ लोगों को भड़काना शुरू कर दिया। हमने उन्हें चेतावनी भी दी कि बसंत अली ख़ान जैसे लोगों की बातों में नहीं आना चाहिए, लेकिन लोगों पर कोई असर ही नहीं हुआ। तीन दिन बाद—शायद यह 16 मई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी और दिन शनिवार—उन लोगों ने तहख़ाने से क़ैदियों को खींच-खींचकर बाहर निकाला और उन सबकी गर्दनें बक़रीद में बलि चढ़ाए जाते बकरों की तरह चाक कर डालीं। कोई उनतालीस यूरोपियन होंगे—मर्द, औरतें और बच्चे। उन्होंने औरतों और बच्चों पर भी रहम नहीं किया। हमारे महल के सामनेवाला शाही फुहारा उन बेक़सूरों के ख़ून से भरा हुआ था। हम अपने हरम में चले गए। ज़ीनत हमारी गोद में बच्चों की तरह सिर छिपाकर फफक पड़ी। क़त्ल होते लोगों की चीख़-पुकार हमारी बर्दाश्त के बाहर थी।

रात को नदी-किनारे पड़ी उन लाशों पर टूटता सियारों का हुजूम ऐसी हूकें लगा रहा था, जैसे औरतें स्यापा कर रही हों।

हमने जब मिर्ज़ा मुग़ल और उन बदमाश हिंजड़े बसंत अली ख़ान को फटकारा तो उनकी ढिठाई की हद यह थी कि उलटे उन्होंने हमसे ही तलब किया कि हम जेहादियों की तरफ़ हैं या क़ाफ़िरों की तरफ़? उन्होंने हम पर यह इलज़ाम भी लगाया कि बेगम ज़ीनत महल के अब्बाजान और हमारे हकीम अहसानुल्लाह ख़ान फ़िरंगियों को मदद पहुँचाने की एवज़ में चोरी-छिपे उनसे तनख़्वाह लेते हैं।

हम इन सब तोहमतों को एक कान से सुनकर दूसरे से निकालते रहे। कभी-कभी जी में आता कि शायद आख़िरी जीत हमारी ही हो और खोया हुआ अपना राज वापस मिल जाय। पर कभी यह भी लगता कि क्यों न अंग्रेज़ों से हमारा समझौता हो जाय और वे हमें और हमारी आनेवाली पीढ़ी को हिन्दुस्तान का बादशाह मंज़ूर करते हुए हमारे नाम पर राज करते रहें। हम हर हालत में अम्न चाहते थे, ताकि ज़िंदगी के बाक़ी दिन किसी दरगाह में बैठकर ख़ुदा की इबादत करते गुज़ार दें।

24 मई को, इतवार की उस शाम, नया चाँद दिखाई पड़ा था। आसमान पर गर्दो-गुबार का पर्दा पड़ा होने से हमारी आँखों को चाँद ठीक से नहीं दिख पा रहा था, पर ज़ीनत महल ने डूबते सूरज की ओर इशारा करते हुए हमें भरोसा दिलाया कि वह चाँद ही है, चाँदी की कटार-जैसा चमकता हुआ।

अगले दिन हम अपने चहेते हाथी मौला बख़्श पर सवार होकर बाज़ारों से गुज़रते हुए जामा मस्जिद पहुँचे। वहाँ हमने अपनी रियाया के साथ बैठकर दोपहर की नमाज़ पढ़ी। लौटते हुए भिखारियों की भीड़ ने हमारे हाथी के पैरों को घेर लिया। हमने उनकी तरफ़ मुट्ठियाँ भर-भरकर सिक्कों की बौछारें कीं। जब हम लाहौरी फाटक तक वापस आए तो सूरज ढल चुका था। हमारे महल की दीवारों पर तेल के दीए जलाए जा रहे थे। हमने देखा कि जामा मस्जिद समेत सारा शहर चिराग़ों से जगमगा रहा है। आसमान पर रंग-बिरंगी आतिशबाज़ियाँ छोड़ी जा रही थीं। हमारी शान में इक्कीस तोपों की सलामी दी जा रही थी।

ईद-उल-फ़ित्र पर हर साल ऐसे ही मौज-मेला मनाया जाता है। रमज़ान के महीने में अक़ीदा-पसंद मुसलमान जिन-जिन पाबंदियों को निभाते हैं, आज उन सबसे बरी होकर ख़ूब ख़ुशी मनाई जाती हैं। हमारी तरफ़ से लोगों को मौज-मस्ती मनाने की खुली छूट दे दी जाती है। लेकिन छूट का यह मतलब नहीं कि कोई क़ायदा ही न रहे। और ऐसे कारनामे ख़ुद हमारे अपने लड़कों के हाथों हों—इससे बड़ी शर्म की बात और क्या हो सकती है! हमारे बेटे तो दूसरों को ठेस पहुँचाए बग़ैर ख़ुशी मनाना जानते ही नहीं। आधी रात गए दरोग़ा ने हमें नींद से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगाया कि हमारा एक बेटा दरीबा के किसी हिन्दू व्यापारी के घर में घुसकर हुल्लड़ मचाते हुए पाया गया है और वह उस पर क़ाबू पाने में हमारी मदद चाहता है। हमारा एक और बेटा लालकुआँ के हिंजड़ों के यहाँ नंग-धड़ंग शराब में धुत्त मिला और एक तीसरा बेटा दरियागंज में शाही ख़ूनवाली किसी बदचलन शहज़ादी के घर मारपीट में शामिल पाया गया।

तो, तैमूर और बाबर का ख़ानदान यहाँ तक गिर चुका है अब !

अगले दिन सुबह हमने अपने इन तीनों लड़कों को बुलाया और खूब लताड़ा। सिर झुकाए खड़े वे तीनों चुपचाप हमारी बातें सुनते रहे, लेकिन उनकी आँखों में टपकता ख़ून और चेहरों की तमतमाहट बता रही थी कि उनकी चुप्पी किसी पछतावे का इज़हार नहीं, बल्कि उनके गुस्से का सबूत है।

हुकूमत की बागडोर जिन हाथों में जा पहुँची थी, वे थके हुए घोड़ों पर सवार नौसिखिए सिपाही थे। उन्हें लुटाने का अदब तो आता था, पर कमाने का शऊर नहीं था। हिसाब-किताब की उन्हें कोई फ़िक्र नहीं थी और नतीजा यह हुआ कि ख़ज़ाना कुछ ही दिनों में ख़ाली हो गया। जेहाद में शामिल होकर लड़ने को तो सब तैयार थे, पर उन्हें लड़ने का शऊर देने की बाबत किसी ने नहीं सोचा। बंदूकों से लैस बा-हुनर फ़िरंगी फौजों से लड़ने के लिए उन्हें भाले, कुल्हाड़े और कटारें देकर भेज दिया गया। ईद-उल-फ़ित्र के पाँच दिन बाद हिंडन नदी के पार ग़ाज़ियाबाद में उनकी आपस में मुठभेड़ हुई। फ़िरंगियों की जीत हुई और हमारे ग़ाज़ियों को शहादत मिली। इस हादसे के कुछ दिनों बात 'ग्रांड ट्रंक रोड' पर 'बादली की सराय' के पास भी यही हुआ।

दरवेश हसन अस्करी ने हमें बताया कि ये हादसे इसलिए हो रहे हैं कि हमें आनेवाली वारदातों के लिए ख़बरदार किया जाय और हम अपने-आपको इसी के मुताबिक़ तैयार कर सकें। हमारे नजूमियों ने भी बताया था कि फ़िरंगियों की हुकूमत 23 जून को ख़त्म हो जाएगी। इसी दिन पलासी की लड़ाई को पूरे सौ साल हो चुके होंगे।

दुश्मन ने शहर की दीवार के बाहर सब्ज़ी मंडी में अपनी फ़ौजें तैनात कर दी थीं। हमारे ग़ाज़ी हज़ारों की तादाद में उन पर टूट पड़े, पर क़िस्मत की मार कि एक बार फिर हमारे ग़ाज़ियों को शहादत ही नसीब हुई, जबकि फ़िरंगी और उनके सिख तथा गोरखा फ़ौजियों को जीत की नेमत मिली।

सब्ज़ी मंडी की हार ने सारे शहर में मातमी का आलम तारी कर दिया था। लोगों का अपने सिपहसालारों पर से भरोसा जाता रहा था। हर कोई एक-दूसरे पर ग़द्दारी का इल्ज़ाम लगा रहा था और कह रहा था कि वे फ़िरंगियों से मिले हुए हैं।

गर्म रेगिस्तानी हवाएँ अब लोगों के धीरज को तोड़ने लगी थीं। मौसम बेहद तपिश-भरा हो चला था। अचानक सुनने में आया कि व्यापारी लोग अपनी चीज़ों को छुपाने में लगे हुए हैं। बाज़ार में न तो डंगरों के लिए चारा मिल रहा था और न इन्सानों के लिए अनाज। ग़रीब की तो हालत ही ख़राब थी। कई लोगों को तो पेट भरने के लिए चोरी-चकारी तक करनी पड़ रही थी। हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि आख़िर होने क्या जा रहा है !

तभी एक दिन एक अजीब-सा आदमी दिल्ली में आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निहाल सिंह

मैं जब से पैदा हुआ, दिल्ली के बारे में न जाने क्या-क्या सुनता आ रहा हूँ। जब छोटा था तो माँ मुझे दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब के बारे में बताया करती थी, जिसने हमारे गुरु का शीश कटवाया था। माँ उसे औरंगा कहती थी और जब भी उसका ज़िक्र करती, ज़मीन पर 'थू' से थूक देती। मैंने भी औरंगा के नाम पर 'थू' करना सीख लिया था। मैं जब बड़ा हुआ तो बापू ने मुझे अपने पूर्वजों के पराक्रम के बारे में बताया कि कैसे उन्होंने दिल्ली को लूटा और कैसे वे घोड़ों पर लाद-लादकर वहाँ से सोना-चाँदी लाए। माँ ने ही मुझे सरदार बघेल सिंह के बारे में भी बताया, जिसने ठीक उसी जगह एक गुरुद्वारा बनवा दिया था, जहाँ पर गुरु को शहादत मिली थी। जब मैंने पंजाब-पुलिस की नौकरी पकड़ी तो मुझे मेरे दोस्त ने कहा कि "यार, तूने आगर दिल्ली नहीं देखी, तो कुछ भी नहीं देखा। दिल्ली में तुझे हर चीज़ मिल सकती है। कच्ची उम्र की आम-जैसी छातियोंवाली रंडियाँ, कद्दू से बड़े-बड़े कूल्हों वाले छोकरे। लेकिन अगर छोकरे और औरत के वास्ते पैसे कम पड़ते हों तो एकाध धेले में हिंजड़े मिल जाएँगे, और ये औरत या छोकरे दोनों से बढ़कर अधिक मज़ा देने के क़ाबिल होते हैं।" बस, तब से मन-ही-मन मैं यह मना रहा था कि किसी तरह दिल्ली के दर्शन हो जायँ।

गुरु तो अन्तर्यामी हैं। वे मेरे मन की बात जान गए और उन्होंने पूरी भी कर दी। मैं छुट्टी पर घर आया हुआ था कि तभी कहीं से दो आदमी हमारे गाँव में आए। एक आदमी ढोल पीट-पीटकर मुनादी कर रहा था कि सब लोग पीपल के पेड़ के नीचे जमा हो जायँ। दूसरे ने हमें बताया कि मुसलमानों ने कंपनी के ख़िलाफ़ जेहाद छेड़ दिया है और दिल्ली की गद्दी फिर से मुग़लों के हाथ में चली गई है। यह मुग़ल उसी औरंगे के पोते का पोता था, जिसने हमारे गुरु का क़त्ल किया था। उसने कहा कि अगर हम कंपनी की फ़ौजों में भरती हो जायँ और दिल्ली पर धावा बोलने में अंग्रेजों की मदद करें तो लूट का सारा सोना-चाँदी हमारा होगा। मैंने उस आदमी से कहकर पुलिस-स्टेशन को अपनी छुट्टी बढ़ाने की बाबत अर्ज़ी लिखवायी और अपने माई-बापू के पाँवों को छूकर दिल्ली के लिए चल पड़ा।

मेरे साथ गाँव के दो और लड़के भी थे—लहना और नत्था। गर्मी इतनी ज़्यादा पड़ रही थी कि लगता था सारी दुनिया 'तंदूर' की भट्टी बन गई है। धूल-धक्कड़ आँखों और नथुनों में घुसता जा रहा था और दाढ़ियों का रंग काले से ख़ाकी हो गया था। हमने फिर भी अपने-आपसे कहा कि अमाँ यार, निकल पड़ो, सिख किसी चीज़ का ख़ौफ नहीं करते। और बस हम निकल पड़े उसी तपती दुपहरी में। रास्ते में कुँओं से पानी निकाल मुँह पर छिड़कते और नीम के पेड़ों की छाया में थोड़ी देर सुस्ताकर फिर आगे बढ़ जाते। दो दिनों में हम अम्बाला पहुँच गए।

ललगँडिया बंदर के चूतड़ की तरह लाल मुँहवाले एक गंजे साहब ने हमसे कुछ पूछताछ की। जींद के राजा ने उसे पहले ही सौ सिख दे दिए थे। सौ के क़रीब उसने लौटते हुए रास्ते में पड़नेवाले गाँवों से इकट्ठे कर लिये थे। लहना और नत्था को भी उसने अपने साथ कर लिया था। वह हम लोगों से पुरबिया भाषा में बोल रहा था, जिसका सब-कुछ तो हमारे पल्ले नहीं पड़ रहा था, पर इतना समझ में ज़रूर आ रहा था कि हमें मुसलमानों के ख़िलाफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ना है। उसने हमें यह भी बताया कि हमारे गुरु ने औरंगे को चेतावनी दी थी कि पूरब दिशा से साहब लोग आएँगे और सिखों की मदद से उसके पूरे ख़ानदान को उखाड़ फेंकेंगे। साहिब की बात पर मुझे कुछ हैरानी हुई, क्योंकि न तो मेरी माई न और न ही मेरे बापू ने कभी इस भविष्यवाणी के बारे में मुझे बताया था। फिर भी मैंने अपने-आपसे कहा कि चलो, जो साहिब लोग कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे, क्योंकि बुद्धि और समझदारी में तो ये लोग हमसे ऊपर हैं ही न।

एक दिन सुबह की परेड के वक़्त यही साहिब लड़कों की क़तार के पास आए और एक-एक कर उनकी छातियों और पेट में उँगलियाँ ठोंक-ठोंक आगे बढ़ते गए। बाद में मुझे इस साहब का नाम मालूम हुआ—हडसन। हडसन साहिब ने मुझे पगड़ी से लेकर पाँव तक निरखा-परखा। दरअसल मैं उस क़तार में खड़े सभी लड़कों से ज़्यादा लम्बा-चौड़ा और तंदुरुस्त था।

उन्होंने पूछा, "तुम्हारा नाम?"

मैंने जवाब दिया, "निहाल सिंह।"

"निहाल सिंहा!" उन्होंने पक्के पंजाबियों की तरह पूछा, "निहाल सिंहा, तू मेरा अर्दली बनेगा?"

हडसन साहब ऐसे ही इन्सान थे। वह कभी किसी से कुछ तलब नहीं करते थे, बस सिर्फ़ हुक्म देते थे। सभी लड़के उनको मुझसे इस तरह बात करते देखकर जल-भुनकर ख़ाक हो गए। मेरी पीठ थपथपाते हुए वे कहने लगे, "शाबास, बधाई हो बधाई!" लेकिन जैसे ही मैंने पीठ मोड़ी, उन्हें कहते हुए सुना कि "साहिब का चमचा है, चमचा!" पर मुझे उनकी बातों से क्या फ़र्क़ पड़ता था! मुझे उनकी बातों की कोई परवाह नहीं थी। और फिर मुझे हडसन साहिब वैसे भी अच्छे लगते हैं। अब कोई कुछ कहता हो तो कहता रहे। हालाँकि मेरी तनख़्वाह बाकी अर्दलियों के ही जितनी थी पर हमारे सूबेदार सरदार मानसिंह तक मुझसे अदब के साथ पेश आते थे और मुझे "भाई निहाल सिंह" कहकर बुलाते थे।

हम लोगों को नई वर्दियाँ और लाल रंग की पगड़ियाँ दी गईं। हमारी वर्दी में ख़ाकी कमीज़ें, लाल कमरबंद और ख़ाकी बिरजिसें थीं, यानी ख़ाकी-लाल, ख़ाकी, लाल। बाक़ी के साहिब लोग हमें 'फ़्लैमिंगो' चिड़िया कहकर बुलाते थे। हमें बहुत तेज़ दाग़नेवाली तोड़ेदार बंदूकें दी गई थीं। उनकी नोक पर एक लम्बा छुरा लगा होता था। बंदूकों के साथ-साथ हम भाले भी रखा करते थे।

कुछ दिनों की ड्रिल के बाद हमें दिल्ली की तरफ़ ले जाया रहा था। करनाल में पहाड़ों से आई कुछ गोरों की पलटनें भी हमारे साथ हो लीं। गोरे लोग तेज़ धूप और गर्म लू बर्दाश्त नहीं कर पाते थे, इसलिए हम सब रात को सफ़र किया करते थे और दिन में पेड़ों के नीचे आराम किया करते। हमने रास्ते में झड़ौंदा, समाल्का और राई आदि जगहों को पार किया। ये सभी शहर कम्पनी के ख़िलाफ़ बग़ावत में खड़े हुए थे। अब तो ये हमारे आगे 'चूँ' भी नहीं कर सकते थे।

हम दिल्ली शहर में पहुँचे तो आधी रात हो चुकी थी। घुप अँधेरी रात में हमने तीस मील का सफ़र पूरा किया था। दिल्ली पहुँचते ही हमें तंबुओं में भेज दिया गया। साहिब का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्दोबस्त सचमुच बहुत बढ़िया था। हम लोग इतना थक गए थे कि कुछ तो अपने कमरबंद और बूट उतारे बग़ैर ही सो गए। लेकिन मैं दिल्ली पहुँचने पर इतना उत्तेजित था कि मेरी तो आँखें ही नहीं झँप रही थीं। उस तंबू में हम पूरे बारह लोग थे। सोए हुए लड़के ज़ोर-ज़ोर से खर्राटे मार रहे थे। मैं तंबू से बाहर निकल आया। हाथ-मुँह धोकर मैंने एक समतल चट्टान तलाशी और उस पर लेट गया। मैंने अपने लम्बे बालों को खोल लिया। हवा मेरे तपते बदन को राहत पहुँचा रही थी। मैंने तारों से भरे आसमान पर अपनी आँखें गड़ा दीं।

लगता था मुझे तभी नींद आ गई होगी, क्योंकि जब मैंने आँखें खोलीं तो तारे धुँधला चुके थे और आसमान धूसर होने लगा था। कुदरत का वह आलम मेरे भीतर न जाने कैसे भाव भर रहा था! मुझे लगा कि मेरा दिल इतना विशाल हो आया है कि इसमें सारी दुनिया ही समा जाएगी। मुझे गुरुनानक के वे शब्द याद हो आए जो, उन्होंने अपने शिष्य मर्दाने को कहे थे, "भाई मर्दाना, देख परमपिता का चमत्कार!"

मैंने अपने-आप से कहा, "वाह भई वाह! सतगुरु ने सचमुच बहुत खूब बनाया है यह शहर दिल्ली भी!"

मेरे बाईं तरफ नदी थी, जिधर से सूरज उग रहा था। नदी का पाट इतना चौड़ा था कि लगता था, जैसे सतलज ही हो। भँवर बनाती जमुना शहर की दीवार के साथ-साथ चलती लग रही थी। शहर की दीवार काफ़ी ऊँची और मज़बूत थी। न जाने कितने बुर्ज और फाटक इसमें जगह-जगह बने हुए थे। दीवार के पीछे क़िले की लाल दीवारें भी दिख रही थीं और साथ ही घरों की छतें, ऊँची-नीची मीनारें और गुम्बद भी। मुझे तो उस वक्त कहीं भी लड़ाई की कोई संभावना नहीं दिख रही थी और न ही जीवन का कहीं कोई चिह्न नज़र आ रहा था

लाल गोले-से सूरज की आभा नदी पर छा रही थी कि तभी तोप छूटने की आवाज़ आई—'भड़ाम'। नदी-किनारे से हज़ारों कबूतर पंख फड़फड़ाते उड़ने लगे। कौओं की काँव-काँव से वातावरण भर गया। देखता हूँ कि पेड़ों की चोटियों पर पता नहीं कितनी चीलें बैठी हैं और पता नहीं कितनी नीचे मांस के लोथड़ों पर मधुमक्खियों की तरह एक-दूसरे के ऊपर उलट-पुलट हो रही हैं। तनिक नज़दीक पहुँचता हूँ, तो देखता हूँ कि मांस के चीथड़े पेड़ों की टहनियों से भी लटक रहे हैं। इस वीभत्स दृश्य को देखकर मेरे गले तक मतली भर आई। मैं भागकर अपने तंबू के भीतर चला गया और अपने साथियों के साथ लेट गया। न जाने कैसी अजीब-सा थकान से मेरा तन-बदन टूटने लगा।

घंटे की आवाज़ सुनते ही हम सब उठ जाते हैं। मैं अपना चाय का मग लेकर तंबू के भीतर चीज़ों का मुआयना करने लगता हूँ। हमारे तंबू लाल चट्टानों वाली एक पहाड़ी पर लगे हुए हैं। इस पहाड़ी की चोटी पर एक बड़ा-सा घर है। हमारे ख़ानसामे ने बताया कि यह किसी हिन्दू राव नामक मराठे का घर है। दुश्मनों की तोपों की पहुँच से दूर होने के कारण इसे अंग्रेज़ अफ़सरों ने अपनी रिहायश के लिए ले रखा है। गोरी पलटनों के तंबू भी ऊँची पहाड़ी पर लगाए गए हैं, ताकि दुश्मनों की तोपों से बचे रहें। ये तो हम काले फ़ौजी ही हैं, जिन्हें शहर की दीवार के इतने क़रीब रखा गया है। हमारे तंबुओं में गोरे नहीं हैं, सिर्फ़ बलूची, पंजाबी, मुसलमान और पठान ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपने ख़ानसामे से पूछता हूँ, "यार, ये मुसलमान यहाँ क्या कर रहे हैं ?"

वह बताता है, "ये लोग विद्रोही खेमे के हिन्दुओं से लड़ेंगे।"

"और ये गोरखे ?"

"साहिब लोग जिनसे लड़ने को कहेंगे, ये लोग उन्हीं से लड़ेंगे। इन गोरखों की खोपड़ियाँ लोहे की बनी होती हैं और उनके भीतर भरा होता है गोबर। अगर साहिब लोग कहें कि अपने बाप को मार डालो तो ये अपने माँ-बाप को भी मार डालेंगे।"

यह भी ख़ूब रही ! ये साहिब लोग जानते हैं कि कैसे हम लोगों को एक-दूसरे के बरख़िलाफ़ बनाए रखा जाना चाहिए। गुरु ने इन्हें दिमाग़ भी ख़ूब दिया है और हिम्मत भी। हडसन साहिब तो कहते ही रहते हैं कि "एक गोरा दस कालों के बराबर है।"

ठेठ दोपहर का वक़्त है। सूरज सीधा सिर पर चमक रहा है। मैं नीम के पेड़ की छाया में बड़े प्रेम से सो रहा था कि किसी ने मुझे झकझोरकर जगाया, "ओए, निहल्लया !ओए तूँ बिगुल नहीं सुनया ? की सुत्ते-सुत्ते (सोए-सोए ही) ही क़तल होण दा इरादा है ?" मैं हकबकाकर उठता हूँ और अपनी पगड़ी लपेटने लगता हूँ।

देखता क्या हूँ कि साहिब लोग अपनी दूरबीनों से कहीं देख रहे हैं। मैं भी उसी दिशा में देखने लगता हूँ। देखता हूँ कि शहर के धुर दाहिनी तरफ़ सब्ज़ी मंडी की ओर से दुश्मनों के घुड़सवार हमारी तरफ़ बढ़े आ रहे हैं। घुड़सवारों के पीछे पैदल फ़ौजें हैं। सबने कंपनी की वर्दियाँ पहन रखी हैं। मैं अभी उधर देख ही रहा था कि उन्होंने शहर की दीवार की तरफ़ से गोलियों की आतिशबाज़ी करनी शुरू कर दी, मानो किसी की शादी हो रही हो। 'ठें-ठें' करके गोलियाँ छूट रही थीं और बारूद के गोले फूट रहे थे, जो सीधे हमारे तंबुओं को आकर लग रहे थे। हमारे कितने ही घोड़े मारे गए। मानना पड़ेगा कि इन कमबख़्तों के निशाने एकदम ठीक थे। इनको चालाकियाँ भी बहुत आती थीं। अभी हम अपने घोड़ों की काठियों पर चढ़े ही थे कि उन्होंने ढोल पीटने शुरू कर दिए और हमारी बग़ल में आकर 'हर हर महादेव' और 'अली-अली' के नारे लगाने लगे।

हडसन साहिब ने अपनी तलवार निकाली और हमें हुक्म दिया, "हल्ला !" हम लोग घोड़े दौड़ाते हुए उनका मुक़ाबला करने को आगे बढ़े। जैसे ही हम उनके निशाने के घेरे में पहुँचे कि उन्होंने हमारे ऊपर बंदूकें दाग़-दाग़ कर भागना शुरू किया। हम अपने मुर्दों की गिनती भी नहीं कर पाए थे कि वे हमारे साहिब लोगों पर भी गोलियाँ दाग़ने लगे। उनमें से एक मेरी ओर देखकर चिल्लाता हुआ बोला, "ओए, सरदारजी, आप क्यों इन फ़िरंगियों के वास्ते अपनी जान बेच रहे हैं ? हमारी तरफ़ आओ। यहाँ उनसे ज़्यादा पैसा मिलेगा।"

उन्होंने हमारे कितने ही आदमी मार डाले। हमने भी उनके कुछ लोग मारे। पर वे हममें से किसी को भी ज़िंदा नहीं पकड़ सके, जबकि हमने उनके तीस आदमी क़ैदी बना लिये। उनके मुर्दों की तलाशी ली तो कइयों की पेटियों में सोने-चाँदी के सिक्के मिले। जिनके कानों में बालियाँ और उँगलियों में अँगूठियाँ थीं, हमने उन्हें काटकर निकाल लिया।

हडसन साहिब ने क़ैदियों को पेड़ के नीचे क़तार से खड़ा कर दिया और उन्हें घुटनों के बल झुककर खड़े होने को कहा। अपनी छोटी बंदूक में गोलियाँ भरकर सफ़ेद दाढ़ीवाले एक विद्रोही की ओर निशाना लगाते हुए वह पूछने लगे, "तुमने कम्पनी का नमक कितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरस खाया ?"

सफ़ेद दाढ़ीवाला हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता हुआ विनती करने लगा, "कसूर हुआ साहिब, माफ़ कर दें !"

बाकी क़ैदी भी गिड़गिड़ाते हुए कहने लगे, "हुजूर, सब ले लीजिए, पर हमें मारिए मत !" वे अपनी-अपनी पेटियाँ खोलकर ढेरी कर देते हैं—सोने-चाँदी के सिक्के, अँगूठियाँ आदि —सभी कुछ। लेकिन हडसन साहिब ने उन चीज़ों की तरफ़ देखा तक नहीं। वह फिर सफ़ेद दाढ़ीवाले से पूछने लगे, "किस रेजीमेंट से हो ?"

"26वीं रेजीमेंट से। हम तो कई लड़ाइयों में साहिबों की तरफ़ से लड़े हैं। आप हमें जहाँ भी भेजेंगे, हम आपके लिए लड़ेंगे।" वह गिड़गिड़ाते हुए हडसन साहिब का पैर पकड़ लेता है। हडसन साहिब दूसरे पैर से उसे ठोकर मारते हुए पूछते हैं, "तुम्हारा कमांडर कौन है ?"

"साहिब, मिर्ज़ा मुग़ल।" वह कहता है, "साहिब, हम आपको सब-कुछ बता देंगे, जो भी हमें मालूम होगा—सब-कुछ।"

"तुम लोग कितनी तादाद में हो ?"

वे सब बढ़-बढ़कर अपनी रेजीमेंटों के बारे में बताने लगे। उन्होंने बताया कि उनकी तादाद तक़रीबन दस हज़ार के क़रीब है। हडसन साहिब को मालूम है कि उन्हें कितनी जानकारी की ज़रूरत है। अपनी बंदूक को उस बूढ़े आदमी की छाती पर टिकाते हुए उन्होंने गोली दाग़ दी, "ये ले नमकहराम !" और सफ़ेद दाढ़ीवाला आदमी 'या अल्लाह' की चीख़ के साथ लुढ़क गया।

साहब हुक्म देते हैं, "इन नमकहरामों की गर्दनें उड़ा दी जायँ और इनकी लाशों को सियारों को डाल दिया जाय !"

सुनते ही क़ैदियों में सिहरन दौड़ गई। वे ज़िंदा लाशों की तरह लगने लगे। हम लोगों ने उनकी पेटियाँ उतार लीं। हमारे जमादारों ने उनकी वर्दियाँ और बूट खींच लिये। फिर उनको नंगे ही परेड कराते हुए हम पहाड़ी से नीचे ले गए। एक क़तार में खड़ा कर हमने उनको घुटनों पर झुकने का हुक्म दिया। उनमें से कइयों का वहीं टट्टी-पेशाब निकल गया और वे रिरियाकर रहम की भीख माँगने लगे। हम अपनी कृपाणों से एक-एक कर उनकी गर्दनें चाक करते गए, मानो गुरु के लंगर के लिए बकरे काट रहे हों। फ़र्क सिर्फ इतना था कि आदमी की गर्दन बकरे की गर्दन से कुछ ज़्यादा मज़बूत लग रही थी और कभी-कभी एक ही झटके में नहीं कट रही थी।

हमारे दो फ़ौजी बुरी तरह घायल हुए पड़े थे। मैं उनको देखने कैम्प अस्पताल गया। उनको कीकर के पेड़ के नीचे लिटाया हुआ था। अस्पताल की इमारत के भीतर हिन्दुस्तानी फ़ौजियों के वास्ते जगह नहीं थी। डॉक्टर लोग तो गोरों का इलाज करने में व्यस्त थे। कई गोरे फ़ौजी हैज़ा, पेचिश और मलेरिया बुख़ार की लपेट में आए हुए थे। कुछ को लू लगी हुई थी। मैं अपने जवानों के पास बैठा उनके पाँव दबा रहा था। हडसन साहब एक डॉक्टर को लेकर आए। डॉक्टर ने मरहम की एक पुड़िया-सी जवानों की ओर फेंकी और कहा, "इसको घावों पर लगा लो और दो दिनों बाद काम पर आ जाना।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोपहर में मैं हडसन साहिब के पास गया। वह अपने तंबू में बैठे कुछ लिख रहे थे। मैंने कहा, "साहिब, बहुत थके होंगे। आपके बूट उतार दूँ?" उन्होंने मुँह से कुछ नहीं कहा, पर अपनी कुर्सी मेरी तरफ घुमा दी। मैं फ़र्श पर बैठकर उनके जूते उतार, टाँगों की मालिश करने लगा। लिखना बंद कर उन्होंने मेरी तरफ देखा।

"आज की लड़ाई कैसी रही?"

"साहिब, उन लोगों ने हमारे बहुत-से जवानों को मार दिया है।"

साहिब ने अपने काग़ज़ों की तरफ देखा, "सत्रह आदमी मरे, चालीस घायल हुए और तीस घोड़े मरे या बेकार हुए, बस।"

मैंने तो ख़ुद देखा था कि सत्रह से कहीं अधिक लोग मरे थे। फिर मेरी समझ में आ गया कि साहिब ने किसलिए ऐसा कहा था। तो, साहिब सिर्फ़ गोरों की ही गिनती कर रहे थे!

साहिब फिर बोले, "अंग्रेज़ी फ़ौजों से लड़ने के लिए गीदड़ों की फ़ौज से काम नहीं चलेगा। अपनी तरफ़ से यह भारी हमला करने आए थे। हमने उनकी कमर तोड़कर रख दी।" वे फिर समझाने लगे, "आज 23 जून का दिन है। पलासी की लड़ाई को आज पूरे सौ साल हो जाएँगे, जब अंग्रेज़ों ने मुसलमानों को हराया था। वे सोच रहे होंगे कि शायद सौ साल बाद अब उनकी पारी है जीतने की। हाँ तो, साहिब लोगों से जीतने के लिए गीदड़ों की फ़ौज से काम नहीं चलता।"

मैंने उनके बूट उतारे और टाँगें दबाते-दबाते बोला, "इंगलिश लोग बहुत बहादुर!"

"दुनिया में सबसे अच्छा 'फ़ाइटर' भी है हम लोग।"

मैंने सिर हिलाया, "सिख भी बहुत बहादुर हैं, साहिब! एक सिख सवा-लाख के बराबर होता है।"

हडसन साहिब को मेरी बात अच्छी नहीं लगी। अपने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए वह पूछने लगे, "मुड़की, फेरूशहर, सबराँव, मुल्तान और चिलियाँवाला में क्या हुआ था उनको?"

"साहिब, सिख फ़ौजों को बाग़ियों ने धोखा दिया था।"

"हारा हुआ आदमी हमेशा यही कहता है कि हमारे कमांडरों ने धोखा दिया।"

हडसन साहिब का गुस्सा बड़ा तेज़ था। मैं नहीं चाहता था कि उनसे बहस बढ़ाकर उन्हें गुस्सा दिलाऊँ। पर मैंने मन-ही-मन कहा, 'अगर सिखों को उन धोखेबाज़ों के बजाय अच्छे जनरल मिले होते तो हमने तुम्हें लंदन तक रगेदकर दिखा दिया होता और तुम लोगों की माँओं की मार दी होती।'

मैंने उनके मोज़े उतारे और पाँवों के तलवों की मालिश करने लगा। आँखें बंद कर साहिब बिल्ली की तरह 'घुड़-घुड़' खर्राटे भरने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने आँखें खोलीं और कहा, "ठीक है, तुम जाओ।" मैंने सैलूट मारा और चला गया।

अगले दिन मैं उन घायल जवानों को देखने अस्पताल गया तो वे कीकर के पेड़ के नीचे नहीं दिखे। मैंने उन्हें अस्पताल के भीतर भी ढूँढा। वे वहाँ भी नहीं थे। फिर एक जमादार ने पूछने पर बताया कि वे दोनों तो रात को ही मर गए थे और उनकी लाशें अंत्येष्टि के लिए जा चुकी थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये दिल्लीवाले हमें चैन से थोड़े ही जीने दे सकते थे। आधी रात के वक़्त जब हम गहरी नींद में सो रहे होते, तो ये हमें अपनी तोपों का निशाना बनाने लगते।

वह बड़ी ही गर्म दोपहर थी। हम लोग पेड़ों की छाया में सुस्ता रहे थे कि देखा—वे चोरों की तरह चुपके-चुपके हमारे खेमे में घुस आए हैं और अपनी छोटी बंदूकों से ठायँ-ठायँ करने लगे हैं। उन्होंने हमारे तंबुओं में जासूस छोड़ रखे थे। मुसलमानों के पास वे कुरान की प्रतियों के साथ मुसलमान जासूसों को भेजते थे और कहलवाते थे कि सूअर का मांस खानेवाले फ़िरंगियों के ख़िलाफ जेहाद छेड़ दें। हम सिखों के पास वे तांबे के लोटे में गंगाजल भरकर भिजवाते और कहलवाते कि हम गाय का मांस खानेवाले म्लेच्छों का नाश करें। हर गोरे के सिर के लिए हमें सौ रुपये देने की पेशकश की गई। लेकिन हमने गोरों के साथ नमकहरामी नहीं की। जो पैसे उन्होंने हमें भेजे वह भी हमने रख लिये और फिर उन कमबख़्तों को नीम के पेड़ों से लटकाकर फाँसी दे दी।

जासूस तो साहिब लोगों ने भी लगाए हुए थे और उन जासूसों का मुखिया था एक काना—रजब अली। वह अपनी मनमर्ज़ी से हमारे कैम्प में आया-जाया करता था और जब जी चाहे शहर में घूम आता था। कहते हैं उसकी पहुँच बादशाह तक थी। हडसन साहिब के कानों में दुनिया-भर के भेद उगलने के एवज़ में वह उनसे पैसे उगाहता रहता था।

काले लोग हडसन साहिब को बहुत पसन्द करते थे, पर गोरों को वे अच्छे नहीं लगते थे। यह बात मुझे उस वक़्त पता चली जब पेशावर से 'गाइड' नामक पलटन यहाँ आई। हडसन साहिब हमेशा कहते रहते थे—जब हम गाइड में था तो... जिस फ़ख्र के साथ वे गाइड में अपने होने का ज़िक्र करते थे उससे लगता था कि 'गाइड' ज़रूर दुनिया की सबसे बहादुर और नामी पलटनों में होगी। लेकिन फिर उसे छोड़ क्यों आए हडसन साहिब ? हाँ, एक बार वे ऐसा कुछ कह भी रहे थे कि वहाँ उनके साथ कुछ 'हैंकी-पैंकी' (धोखाधड़ी) हुई थी। ख़ैर, जैसे ही 'गाइड' के फ़ौज़ी यहाँ पहुँचे, उन्होंने हडसन साहिब को देखते ही घेर लिया। क्या ही नज़ारा था! जितने काले फ़ौजी थे, पठान, बलूची और सिख—सब दौड़-दौड़कर उन्हें गले मिलने लगे, लेकिन अंग्रेज़ फ़ौजियों ने उनकी तरफ़ देखा तक नहीं। ऐसे नज़रअंदाज़ कर रहे थे वे सब हडसन साहिब को, जैसे उन्हें जानते ही न हों!

एक दिन एक अंग्रेज़ ने मुझसे पूछा कि मैं कौन हूँ ? मैंने सावधान होते हुए जवाब दिया, "हडसन का घोड़ा।" अंग्रेज़ हँसने लगा और बाक़ी गोरों की तरफ़ मुड़कर बोला, "हडसन की दुम !" और फिर सभी-के-सभी ठहाके लगाकर हँसने लगे।

हडसन को कोई भी अंग्रेज़ पसन्द नहीं करता था, यहाँ तक कि जंगी लाट विल्सन साहिब भी। उन्होंने हडसन को दिल्ली पर तब तक हमला करने की इजाज़त नहीं दी जब तक कि वह (हडसन) और ज़्यादा फ़ौजी इकट्ठे नहीं कर लेता। हडसन को इस बात पर बहुत गुस्सा आ रहा था।

इधर रोज़ ही दोपहर को धूल-भरी तूफ़ानी हवाएँ चलने लगी थीं। जुलाई का महीना था। एक दिन ऐसी भयंकर आँधी आई, जैसी ज़िंदगी में मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। तपती हुई धूल उड़कर आँखों और नथुनों में भर रही थी। घंटे-भर में ही ऐसा लगने लगा मानो रात घिर आई हो। ख़ूब ज़ोरों की बिजलियाँ कड़कने लगीं और घनघोर बारिश शुरू हो गई। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौड़ता हुआ अपने तंबू में गया और चिल्लाने लगा, "ओए लहना, ओए नत्थया, ओए अफ़ीमचियो ! आओ देखो बाहर आकर ! पानी बरस रहा है ।"

हम लोगों ने अपनी पगड़ियाँ और वर्दियाँ उतारीं और कच्छों में ही बाहर निकल आए। अपने लम्बे केश खोले हम बारिश में नाचने-झूमने लगे। मैंने कहा, "ओए, अगर कोई माशूक़ा होती अपनी इस वक़्त, तो हम उसको अभी…"

गोरे पूछने लगे कि हमें यह क्या हो गया है ? पठान सिर हिला-हिलाकर हँसने लगे। डोगरे फ़ौजी ठिठियाकर हँसते हुए बोले, "साहिब, इन सिखों के लम्बे केश होते हैं न, तो इनको गर्मी बहुत लगती है। इसलिए ये पगला जाते हैं।"

हम लोगों ने सुना तो हम ग़ुस्से से भर उठे। हमने चिल्लाकर कहा, "ओए, तुम्हारी माँ-बहनों के भी लम्बे केश होते हैं। उनको भी गर्मी ख़ूब लगती होगी। भेजो उनको हमारे पास ! हम अभी ठंडी करते हैं उनके जिस्म की आग।" इतना कहने की देर थी कि वे चुप हो गए।

रात घिर आई थी। पेड़ों पर जुगनू मँडराने लगे थे। हम लोग उनको पकड़-पकड़कर अपनी दाढ़ियों पर छोड़ने लगे। हमारी दाढ़ियाँ लालटेनों-सी टिमटिमाने लगीं। फिर तो हमने ख़ूब भँगड़ा किया।

उस पूरी रात पानी बरसता रहा। हमारे तंबुओं पर पानी तड़ातड़ ऐसे बरस रहा था, जैसे कोई तबले पर थाप दे रहा हो। उस रात कोई भी पूरी तरह नहीं सो पाया।

सुबह नींद खुली तो आसमान भूरे-काले बादलों से भरा हुआ था। सारा आलम साफ़-सुथरा लग रहा था, एकदम धुला-धुला-सा। क़रीब ही कहीं मोरों की पाऊँ-पाऊँ सुनाई दे रही थी। बाहर निकलकर देखा तो हिन्दू राव की हवेली के छज्जे पर तीन मोर बैठे हैं—एक नर और दो मादा। मोर ने अचानक अपने पंख फैला दिए। देखने लायक दृश्य था। मैंने तंबू में झाँककर लहना और नत्था को पुकारा, "ओए, अफ़ीमचियो, बाहर निकलो, देखो मोर नाच रहा है !"

"मोर दी ऐसी-तैसी," कहते हुए लहना ने करवट बदल ली। पर तम्बू में से दो फ़ौजी मोर को देखने बाहर निकल आए। पीछे घुमड़ते हुए काले बादलों की पृष्ठभूमि में घर के छज्जे पर नाचते हुए मोर को देखने का सुख अनमोल होता है। इस पक्षी को भी गुरु ने क्या ख़ूबसूरती सौंपी है !

मोर ने अपनी गर्दन एसे अंदाज़ में पीछे घुमाई जैसे कोई शहज़ादा अपने पौरुष का प्रदर्शन कर रहा हो। फिर उसने दो कदम आगे बढ़ाए और दो कदम पीछे। उसके पंख ऐसे फड़फड़ा रहे थे, जैसे कोई प्रेमी उत्तेजना में काँप रहा हो। मोर खुशी में ऐसे झूम रहा था, जिसे बताया नहीं जा सकता।

'ठाह !' दीवार से लुढ़ककर मोर नीचे आ गिरा।

'ठाह, ठाह !' दोनों मोरनियाँ भी नीचे आ गिरीं।

गोरे फ़ौजी उन्हें देखकर चिल्लाने लगे, "हॉय, ये तो तीनों ही नीचे आ गए !"

मैं गीली ज़मीन पर ही बैठ गया और बरबस ही रो उठा, "ये मादरचोद गोरे इन मोरों को नहीं छोड़ेंगे, मार डालेंगे इन्हें, शिकारी जो ठहरे ! इन्हीं कमीनों के लिए लड़ रहे हैं हम ! ये गोरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंदर क्या जानें कि बारिश क्या होती है ! इनकी औरतों के केश भी तो काले नहीं होते, जो इन्हें सावन की काली घटाओं की याद दिलाएँ ! और न ही इनकी औरतों की वैसी भरी-भरी गदराई छातियाँ होती हैं, जो इन्हें तैरते हुए जल-भरे बादलों की कीमत का पता चले ! इनकी लड़कियों को क्या ख़बर कि कैसे आम को टहनियों पर झूले डाले जाते हैं और सावन के गीत गाए जाते हैं ! कभी किसी ने गोरों को गाते हुए सुना है ? मेमें ही-ही, हू-हू करती हैं तो मर्द गधों की तरह भॉ-भॉ ! इनको सावन के रागों की मिठास का क्या पता ? और मोर के नाच की कीमत की क्या फ़िक्र ? सारा आलम जब हरियाली से भरपूर मतवाला बना हुआ है, तो ये लोगों पर हमला कर उनको मारने की सोच रहे हैं !

मैं सुबह उठकर जब हडसन साहिब को चाय देने गया तो उन्होंने कहा, "बस, यही वक़्त है दुश्मन पर हमला बोलने का। जवानों को बोलो कि उठकर तैयार हो जाएँ !"

बड़ी-बड़ी तोपें हाथी खींच रहे थे, छोटी तोपों और गनों से ऊँट और बैल जुते हुए थे। ज़मीन फिसलन-भरी थी, इसलिए हम लोग नंगे पैर ही चल रहे थे। सिर्फ़ हडसन साहिब घोड़े पर सवार थे। बारिश धीमी होकर बूँदाबाँदी में बदल गई थी। चट्टानी पहाड़ी पर तो ख़ैर ठीक था, पर सब्ज़ी मंडी के क़रीब आने पर हम घुटने-घुटने कीचड़ में चल रहे थे। इतने में ही एक हाथी बड़े ज़ोर के 'धड़ाम' के साथ फिसलकर गिर पड़ा। महावत तो कूदकर अलग हो गया, पर तोप की नाल सीधी ज़मीन में जाकर धँस गई। तोप को वापस अपने पहियों पर खड़ा करने में बीस आदमियों को लगना पड़ा। हाथी को गिरते हुए देखने का मज़ा भी निराला है। ऊँट को गिरते देखकर तो और भी ज़्यादा मज़ा आता है। उससे तो जल्दी उठते भी नहीं बनता। उठने की कोशिश में वह अपने पुट्ठों के बल बैठ जाता है, फिर आगे के दोनों पैरों को आपस में फँसा लेता है। और अगर कोई उसे उस हालत में देखकर हँसने लगे तो उसकी शामत आ सकती है। ऊँट अपने ऊपर लोगों को हँसता देख बहुत नाराज़ हो जाता है।

हम लोग गिरते-फिसलते बूँदाबाँदी के बावजूद आगे बढ़ रहे थे। सब्ज़ीमंडी की डेढ़-दो मील की दूरी तय करते हुए हमें दो घंटे लग गए। फिर भी हमारे वहाँ पहुँचने की दुश्मन को ख़बर तक नहीं लगी। वह तो पहली बारिश का जश्न मनाता अपनी माशूका के साथ बैठा भाँग घोट रहा होगा।

बारिश थम गई है। आसमान नीले-नीले चकत्तों से भर गया है। दिल्ली शहर के आसमान पर न जाने कितनी रंग-बिरंगी पतंगें अचानक ही उड़ती नज़र आने लगीं। पतंगें हवा में लड़ रही हैं। उनमें से कोई कट जाती है, तो बड़े शाही अंदाज़ में नीचे उतरने लगता है। बीच-बीच में लड़कों का चिल्लाना सुनाई देता रहता है—'वो काटा !' मर्द लोग कबूतर उड़ाने में लगे हैं। रूमालों को हवा में फहराते वे काले, सफ़ेद और भूरे कबूतरों को सीटियाँ बजा-बजाकर आसमान में उड़ा रहे हैं। सब्ज़ीमंडी के कुछ घरों से घुँघरुओं और तबले के स्वर भी आ रहे हैं। लगता है जैसे दिल्ली में सभी लोग पहली बारिश का जश्न मनाने में मशगूल हैं।

हमारी तोपों की 'भूम-भूम' कश्मीरी गेट तक पहुँच रही होगी। गाने-नाचने की आवाज़ें एकदम रुक जाती हैं। कश्मीरी और मोरी गेट से विद्रोहियों की तोपों की जवाबी आवाज़ें आने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगीं। तो हमारी तरकीब सफल हो गई थी। कश्मीरी और मोरी गेट की तोपें हमारी तोपों पर गरजती रहीं और इधर हमने सब्ज़ीमंडी के बाज़ार और बाग़ को घेर लिया। बाग़ के भीतर बड़ा-सा एक घर था।

हमारे कमांडर के हुक्म से बिगुल बजा—'हमला!' और हमारी तोपों ने बाज़ार पर गोले बरसाने शुरू कर दिए। हम लोग हर एक को गोलियों से भून रहे थे, जो भी हमारे सामने आता—भले वह मर्द हो, औरत हो अथवा बच्चा। जो भी चेहरा खिड़कियों से झाँकता दिखता, हम उसे निशाना बना देते।

हमारे निशाने का जवाब सिर्फ़ बाग़ के बीचवाले उस बड़े-से घर से चलती गोलियाँ ही दे रही थीं। पेड़ों के पीछे छिपते हुए हम अपने-आपको बचाते आगे बढ़ रहे थे। लेकिन जैसे ही कोई फ़ौजी उस घर के करीब पहुँचता, उसे मार गिराया जाता। हम लोग अब अपनी तोपें ले आए और तोपों के गोलों से हमने उस घर को छलनी-छलनी कर दिया। छत का एक हिस्सा धड़धड़ाता हुआ नीचे आ गिरा। बस, तभी हमने घर की ओर गोलों की बौछार कर दी। देखा, अब कोई भी हमारे मुक़ाबले को आगे नहीं आ रहा था। फिर भी हमने किसी का ख़तरा उठाना वाजिब नहीं समझा। चोरों की तरह पंजों के बल चलते हुए हमने घर को चारों ओर से घेर लिया। एक जत्थे को साथ लेकर मैं भीतर पहुँचा। बड़े-से कमरे से होकर सीढ़ियाँ ऊपर को जाती थीं। मैं उन चौड़ी-चौड़ी सीढ़ियों पर ऊपर चढ़ने लगा। तभी, जानते हैं मैंने क्या देखा? आपको हज़ार मौके भी दूँ, तो भी आप अंदाज़ा नहीं लगा पाएँगे। मैंने देखा किसी की एक औरत, जी हाँ, एक औरत सीढ़ियों के आख़िरी हिस्से पर खड़ी थी, आँखों से अंगारे बरसाती हुई। आप क्या सोचते हैं? क्या कर रही थी वह वहाँ खड़ी-खड़ी ? मुझ पर नंगी तलवार ताने हुए वह डटकर सामने खड़ी हुई थी।

"ओए नत्थया!" मैंने अपने पीछे आते नत्था सिंह को चिल्लाकर कहा, "ओए देख, मैंने क्या खोजया!"

नत्था सिंह भी पास आकर खड़ा हो गया और औरत को घूरने लगा। उसने चिल्ला-चिल्लाकर औरों को भी बुला लिया। सारी सीढ़ियाँ बंदूकें उठाए सिख फ़ौजियों से भर गईं। और वह अकेली औरत हम पर अपनी पुरानी-सी तलवार ताने वैसे ही बेख़ौफ़ डटी खड़ी रही।

वह कोई कल की छोकरी नहीं थी। अधेड़ उम्र की लगती थी। शायद चालीस-एक की होगी—गोरी और गदरायी, जैसी शहरों की औरतें होती हैं। उसके बाल मेंहदी से रँगे थे, दाँत पान से बदरंग थे। उसका भारी सीना पतले मलमल के कुर्ते ने ढाँप रखा था।

नत्थे ने उसकी तलवार की ओर इशारा करते हुए पूछा, "बीबी, इससे क्या दाँत कुरेदती हो?" और हिम्मत करता हुआ ऊपर चढ़ गया। औरत के हाथ से तलवार खींचकर कहने लगा, "बीबी, इस तलवार से हमें क्यों मारती हो? उसके लिए तो तेरी आँखें ही बहुत हैं।"

मैं नत्थे को कहता हूँ कि इसके साथ दिल्लगी ना कर, यार! तेरी माँ की उम्र की है!

"कोई बात नहीं भाई! मैं तो वैसे भी जाना-माना मादरचोद हूँ।"

हम सब ठट्ठा मारकर हँस पड़ते हैं।

तभी हडसन साहिब के घोड़े की टाप सुनकर हम सब एकाएक चुप हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने औरत को देखते ही अंदाज़ा लगा लिया था कि उसका पेशा क्या है। पूछने लगे, "तुम रंडी हो? इस घर में क्या कर रही हो?"

"मैं जेहादिन हूँ और यहाँ बदज़ात नासरों के ख़िलाफ़ लड़ने में अपने भाई की मदद कर रही हूँ।"

हडसन साहिब को इतनी हिन्दुस्तानी तो आती थी कि वे 'बदज़ात नासरों' (क्रिस्तानों) का मतलब समझ सकें। साहिब को ख़ुश करने के लिए मैंने अपनी बंदूक की नली औरत की पीठ में गाड़ दी और उसे चेतावनी देने लगा, "अपनी ज़ुबान पर काबू रख, नहीं तो गोली तेरे पेट के आर-पार हो जाएगी, समझी?"

लेकिन वह बेहया टस से मस नहीं हुई।

"निहाल सिंह, इसको पूछताछ के वास्ते अपने कैंप में ले चलो। उसके बाद भेज देना इसे जन्नत में, जहाँ जाने के लिए इतनी बेताब हो रही है यह।" साहिब ने हुक्म दिया।

हम लोग औरत को आगे रख, कैम्प की ओर लौट पड़े। रास्ते में वह रुकती या लड़खड़ाती तो हम पीछे से उसे बंदूक की नली से ठेलते।

रास्ते-भर हम उससे हँसी-मखौल करते रहे।

औरत एक शब्द भी नहीं बोली। उसने हमारी तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा।

मैंने उसे साहिब के तंबू में पहुँचाया। उन्होंने अपना टोप उतारा और तलवार निकालकर अलग रखी। फिर बिना कुछ बोले हडसन साहिब मुड़े और चट से एक झापड़ उस औरत को दे मारा। हडसन साहिब कोई ज़्यादा लम्बे-चौड़े तो नहीं थे, पर तगड़े ख़ूब थे। औरत लड़खड़ाती हुई ज़मीन पर जा गिरी और रोने लगी, "आप लोग मुझे मारना चाहें तो मार दीजिए, पर ऐसे तंग मत कीजिए।"

हडसन साहिब अपनी कुर्सी पर बैठ गए और पेंसिल, नोटबुक लेकर कुछ लिखने लगे—

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"अनवर बाई।"

"रहती कहाँ हो?"

"चावड़ी बाज़ार।"

"तुम्हारी टुकड़ी का कमांडर कौन है?"

"बख़्त ख़ान! बरेली का जनरल। अभी दो दिन पहले ही उसने टुकड़ी की कमान सँभाली है।"

"उस नमकहराम सूबेदार को किसने जनरल बना दिया?" साहिब गुस्से में भरकर आगे तलब करने लगे, "सब्ज़ीमंडी में कितने फ़ौजी हैं?"

"मुझे नहीं मालूम। मुझे तो तीन दिन पहले ही वहाँ चौकसी के लिए भेजा गया था। वैसे तो मैं औरतों की बैरकों में रहती हूँ।"

"औरतों की बैरकें?"

"जी, हुजूर! औरतें भी जेहादिन हैं। मेरे-जैसी कुछ तो फ़ौजियों के साथ रहती हैं। बाक़ी बहुत-सी फ़ौजियों के वास्ते खाना पकाती हैं या अस्पतालों में काम करती हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तू क्या कह रही थी उस घर में ?"

"मैंने तो आपको पहले ही बताया कि चौकसी कर रही थी। मैंने दो महीने हुए अपना पेशा छोड़ दिया और जेहादिन बन गई। उम्मीद है कि अल्लाह मेरे गुनाहों को माफ़ कर देगा।"

हडसन साहेब का मुँह गुस्से से तमतमा उठा, "तू बेगुनाह औरतों और बच्चों के क़त्ल को जेहाद कहती है ?"

यह औरत सिर्फ़ बेहया ही नहीं, बेख़ौफ़ भी है। जानते हैं जवाब में उसने क्या कहा? बोली, "साहिब, मैंने आपके लोगों को औरतों के पेट में तलवारें घोंपते देखा है। और अपनी इन आँखों से बंदूकों की नोकों पर टाँगकर बच्चों को हवा में उछालते देखा है।"

हडसन साहिब का चेहरा फक्क। मैंने उनको इतने गुस्से में पहले कभी नहीं देखा था। बौखलाहट में उनके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे। औरत अब भी बोले चली जा रही थी, जैसे उसे तनिक भी यह परवाह न हो कि कोई उसका कुछ बिगाड़ लेगा। वह कह रही थी, "और अब तो आप अपने हाथों से मुझ औरत का भी ख़ून बहाने जा ही रहे हैं न!"

वेश्या थी बड़ी चलाक। जानना चाह रही थी कि साहिब अब उसके साथ क्या करनेवाले हैं। साहिब कुछ देर एकदम चुप रहे। लगता था वे ठंडे हो गए हैं। मुझसे बोले, "औरत जब हथियार उठा ले, तो यह क़तई ज़रूरी नहीं कि उसके साथ बाक़ी फ़ौजियों से अलग बर्ताव किया जाय। ले जाओ इसको ! मैं इसके बारे में और कुछ नहीं सुनना चाहता।"

मैं औरत की बाँह पकड़कर बाहर ले आता हूँ।

सूरज डूबने ही वाला है। अभी कुछ ही देर में अँधेरा घिर आएगा। इस पर मेरा पहला हक़ बनता है, क्योंकि मैं साहिब का अर्दली हूँ। उसके बाद मैं थोड़ी देर सोऊँगा। तब तक दूसरों को मौका दूँगा। उसके बाद मैं फिर इसे…

और फिर इसे नदी के खदान में ले जाकर गोली से उड़ा दूँगा। हमारे यहाँ कहावत है न कि 'पहले कुएँ से पानी निकालकर अपनी प्यास बुझाओ और फिर उसी में थूककर चलते बनो।'

मैं औरत को अपने तम्बू में ले आया। जवान रोटियाँ निगल रहे थे। मुझे देखते ही उन्होंने मख़ौल करना शुरू किया, "ओए मक्खन…फेर, अबे हमें भी मौका देगा कि नहीं ?" "ओए-ओए, छोड़ इसे, बुड्ढी है, यार!" "ओए नहीं, इसका तंदूर अब भी गर्म होगा, ओए उसे बुझाने से पहले हम भी तो अपनी रोटियाँ सेंक लें।"

औरत ऐसे दिख रही थी, जैसे उसे हमारी बातों से कोई मतलब ही न हो। मेरी तरफ़ मुड़कर कहने लगी, "सरदार जी, अगर आपकी इजाज़त हो तो मैं अपनी शाम को नमाज़ पढ़ लूँ ? उसके बाद आपकी जो मर्ज़ी, कर लेना।"

सब-के-सब फ़ौजी हामी भरते हुए बोले, "निहाल्लया ! इसे अपने अल्लाह से प्रार्थना कर लेने दे। अगर इसका जी इससे हल्का होता है, तो कर लेने दे। तभी तो यह हमारे दिलों को भी अच्छी तरह हल्का कर पाएगी।"

"चंगा, ठीक है," मैंने उसे इजाज़त देते हुए कहा, "पर फटाफट करना !"

रंडी ने गीली ज़मीन पर अपना दुपट्टा बिछाया और डूबते सूरज की तरफ़ मुँह करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घुटनों के बल बैठ गई। उसके मलमल के कुर्ते से झाँकती झूलती हुई छातियों पर मेरी नज़रें लगी थीं।

वह नमाज़ पढ़ते हुए कई बार घुटनों पर झुककर ज़मीन पर अपना मत्था नवाती है। फिर अपनी एड़ियों पर सीधी होकर बैठ जाती है और अपनी हथेलियों को सामने की ओर ऐसे फैला लेती है जैसे कोई किताब पढ़ रही हो। उसके चेहरे पर न जाने कैसी चमक उभर रही है। अचानक उसकी आँखों में आँसू छलछलाने लगते हैं। उसके गालों से होते हुए आँसू उसके कुर्ते पर टपकने लगते हैं। आँसुओं से भरे चेहरे पर वह अपनी हथेलियाँ फेरती है।

हम लोग एकदम गुमसुम-से हो जाते हैं। उसके भी होंठ हिलने बंद हो गए। वह अपना चेहरा पहले दायीं तरफ़ मोड़ती है, फिर बायीं तरफ़। मैं जानता हूँ कि मुसलमान नमाज़ पढ़ने के बाद इसी तरह अपने दोनों तरफ़ के लोगों के लिए दुआ करते हैं। हम उसके दायीं तरफ़ बैठे हैं। वह अपने कुर्ते की जेब से सुमिरनी निकालती है और मनके फेरने लगती है।

अब अँधेरा घिरने लगा है। सुमिरनी को गले में डालकर वह उठ खड़ी होती है, "सरदार साहिब, मैं तैयार हूँ।"

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। कोई उसकी तरफ़ देख भी नहीं पा रहा है। मैं ही कुछ देर बाद कहता हूँ, "अंदर चलो!"

वह तम्बू के भीतर चली आती है। मैं तंबू का परदा गिरा देता हूँ। उसे बैठने को कहता हूँ और दाल के साथ तीन रोटियाँ उसके हाथों में पकड़ाते हुए कहता हूँ, "खाओ!"

"सरदार जी! आप क्यों तकलीफ़ करते हैं? आख़िर तो आप मुझे मारने ही जा रहे हैं!"

"पहले खा लो। फिर बात करेंगे।"

वह कुछ कौर तोड़ती है। उसे पानी की अपनी बोतल थमा देता हूँ। वह काफ़ी सारा पानी पी जाती है। काफ़ी अँधेरा हो आया है अब। मैं अपनी बंदूक उठा लेता हूँ और उसको तंबू के दूसरे छोर से बाहर निकलने को कहता हूँ। मेरी बंदूक की नाल उसकी पीठ पर टिकी है।

संतरी मुझे रोकते हैं। मैं उन्हें कहता हूँ कि यह कैदी है और इसे मारने के वास्ते ले जा रहा हूँ।

हम क़त्लगाह के कूड़े के ढेर को पार करते हुए गुज़रते हैं तो वह अपनी नाक को दुपट्टे से ढँक लेती है। चलते-चलते हम सब्ज़ीमंडी के करीब पहुँच जाते हैं, जहाँ से हमने उसे बंदी बनाया था। मैं पूछता हूँ, "यहाँ से तुम्हें अपने ठिकाने का रास्ता आता है न?"

वह पीछे मुड़कर मेरी ओर देखती है, "अल्लाह तुम्हारा भला करे···अल्लाह तुम्हें और तुम्हारे बाल-बच्चों को सलामत रखे···अल्लाह ····"

मैं अपनी बंदूक ज़मीन पर रखकर उसके पैर छूने लगता हूँ, "हमें माफ़ कर देना। हमने तुम्हारे साथ बुरा सलूक किया। हमने तुम्हें बुरी-बुरी बातें कहीं···हमें माफ़ कर देना···तुम तो हमारी माँ की तरह हो···"

"अल्लाह सबके गुनाहों को माफ़ करता है। अगर अल्लाह मेरे गुनाह माफ़ करता है, तो वह तुम्हारे गुनाह भी ज़रूर माफ़ कर देगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह अँधेरे में खो जाती है। कीचड़-भरी राह पर उसकी चप्पलों की शप-शप मुझे सुनाई पड़ रही है। उसके बाद एकदम सब शांत। ख़ामोशी को चीरती किसी संतरी की आवाज़ सुनाई देती है। वह शायद किसी विद्रोही को ललकार रहा है।

मैं अपनी बंदूक ऊपर उठाकर हवा में एक गोली दाग़ देता हूँ।

बहादुर शाह ज़फ़र

बख़्त ख़ान शक्लो-सूरत से ऐसा था कि देखते ही लोग डर जायँ—भारी-भरकम जिस्म और रंग एकदम काला। आवाज़ भी गरजते बादलों की-सी धमाकेदार। जब वह दिल्ली आया, तो दिल्लीवाले गर्मी से बेज़ार हुए बारिश का इंतज़ार कर रहे थे।

बख़्त ख़ान को दरबारी अदब-क़ायदों का कोई सलीक़ा नहीं था, लेकिन जैसे ही वह हमारे सामने हाज़िर हुआ और उसने हमें आदाब-अर्ज़ किया, हम झट समझ गए कि यह शख़्स ख़ुदा का भेजा बंदा है, जो सचमुच हमारी मदद कर सकता है। हमने उसको ख़िलअत भेंट की।

जब वह हमें दूसरी बार मिलने आया तो हमने उसे जनरल बख़्त ख़ांन कहकर पुकारा।

"बादशाह सलामत," उसने ठेठ हिन्दी में बोलते हुए जवाब दिया, "हम कोई जरनैल-वरनैल नहीं हैं, हुजूर! हम तो आपके सिर्फ़ एक सूबेदार हैं। लेकिन हमारे पास कोई दस हज़ार ग़ाज़ियों की फ़ौज है और हुजूर के वास्ते अपना ख़ून बहाने के सिवा हमारी और कुछ अर्ज़ करने की मंशा नहीं है।"

हमें ख़बर मिली थी कि बख़्त ख़ान को हमारी फ़ौजों के साथ-साथ रियाया के हिन्दू और मुसलमान—दोनों ने एक-जैसा पसंद किया था। हमने कहा, "बख़्त ख़ान, हम तुमसे बहुत खुश हैं। हम तुम्हें अपनी फ़ौजों का सिपहसालार बनाते हैं। खुदा तुम्हारी तलवार को फ़तह बख़्शे।"

उसने बड़ी बेतकल्लुफ़ी से जवाब दिया, "अरे भाई बादशाह, आपका नाम है ज़फ़र। ज़फ़र का मतलब होता फ़तह। तो फ़तह आपकी तय ही है। चाहे कोई शर्त लगाकर देख ले हमसे।"

बख़्त ख़ान के आने के साथ ही बारिश का मौसम भी आ गया। हमारे बग़ीचे के पतझड़ पर भी थोड़ी देर की बहार आ गई। मोती मस्जिद के पिछवाड़े हयातबख़्श बाग़ में हमारे सावन-भादों नाम के दो महल थे। हम अपने बारिश के दिन वहीं गुज़ारा करते थे। इन दोनों महलों के बीच पानी का एक तालाब-सा था और उसके बीच पत्थर से बना एक मंडप, जो पानी पर तैरता हुआ-सा लगता था। अपने मेहमानों को वहाँ ले जाने के लिए हमने एक नाव भी रखी हुई थी। हमारी रियाया ने हमारे नाम पर इसे 'ज़फ़र महल' नाम दे रखा था। हम यहीं पर अपने मुशायरों और नाच-गानों का इंतज़ाम किया करते थे। उस साल हमने अपनी बेगम ज़ीनत महल की छोटी बहन ताजमहल बेगम की शान में एक छोटा-सा मुशायरा रखा था। बेगम अपनी बहन को हमारे हरम का हिस्सा बनाना चाहती थीं। उनकी रज़ामंदी से ही हमने ताजमहल को अपना हमबिस्तर बनाया।

कुछ दिनों तक बड़ी पुरसुकूँ ज़िंदगी बिताई हमने वहाँ। न तोपों की आवाज़ें, न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सियासती परेशानियाँ। बस सिर्फ़ दिन-भर काले गड़गड़ाते बादलों की आवाज़ें और बारिश की बूँदों की रिमझिम झड़ियाँ। बैठे-बैठे तबले की थाप पर घुँघरुओं की रुन-झुन सुनते रहो और बाक़ी वक़्त कबूतर उड़ाओ।

उसके बाद मौसम आया फूलवालों की सैर का। अपनी बेगम ज़ीनत महल और बेटे मिर्ज़ा जवाँबख़्त को साथ लेकर हम कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी की मज़ार पर सज़्दा करने महरौली गए। हम अपने चहेते हाथी मौलाबख़्श पर सवार थे। लाहौरी फाटक पार करते हुए हम लोग चाँदनी चौक पहुँचे। बल्लीमाराँ में अपने रूहानी उस्ताद काले ख़ाँ साहिब को आदाब पेश करने के लिए हम हाथी से नीचे उतरे। फिर बेगम फतेहपुरी के मक़बरे से होते हुए हम लाल कुएँ की तरफ ज़ीनत महल के वालिद असद कुली ख़ान की हवेली की तरफ़ मुड़े। उन्होंने हमें आमों की टोकरी नज़र की। आगे बढ़ते हुए जब हम 'काज़ी के हौज़' की चकलामंडी से गुज़रे तो उन औरतों ने अपने चौबारों से हमारे ऊपर फूलों की बारिश की।

अजमेरी फाटक से होते हुए पहाड़गंज और रायसीना के गाँवों को पार कर हम राजा मानसिंह के जंतर-मंतर पहुँचे और वहाँ तालकटोरा वाले आमों के बाग़ में। यह बाग़ हमने ज़ीनत महल की नज़र किया हुआ था। वहाँ मालियों ने हमें आमों की एक और टोकरी दी।

सफ़दरजंग के मक़बरे पर उतरकर हमने मस्जिद और मदरसे का चक्कर लगाया। हमारा अगला पड़ाव यूसुफ़ सराय में हुआ, जहाँ हमने भेंट में मिले आमों का स्वाद चखा और थोड़ी-सी नींद ली। नींद टूटी तो दोपहर ढलनेवाली थी और दक्खिन की ओर से आसमान पर छाए बादल बारिश के आसार दे रहे थे। हमारे महावत ने मौलाबख़्श की चाल तेज़ की, ताकि बारिश शुरू होने के पहले हम ठिकाने पर पहुँच जायँ।

महरौली पहुँचते-पहुँचते पानी बरसने लगा था। पता नहीं कितने घंटों से हमारी रियाया वहाँ हमारे इंतज़ार में खड़ी थी। लोगों ने नाच-गानों और फूल बरसाकर हमारी अगवानी की, तो कुदरत ने बारिश से। हम महरौली की सँकरी गलियों से गुज़रते हुए अपने डेरे जहाज़महल पहुँचे। हमारी शान में आतिशबाज़ियाँ छोड़ी जा रही थीं। आतिशबाज़ियों से रंग-बिरंगे हुए शम्सी तालाब के पानी पर बारिश की टपाटप गिरती बूँदें ग़ज़ब कशीदाकारी का नज़ारा पेश कर रही थीं। उस वक़्त दुनिया कितनी हसीन लग रही थी, कहा नहीं जा सकता। छत पर पड़ती बूँदों की टपाटप और बहते पानी की कलकल-तले हमें ख़ूब प्यारी नींद आई।

अगले दिन उठे तो आसमान साफ़ लग रहा था। हमने औलिया मस्जिद में फ़जर की नमाज़ अदा की। इस छोटी-सी मस्जिद को अजमेर के ख़्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती और गंजे-शकर के अलावा भी अनगिनत संतों और पीरों ने अपने क़दमों से पाक किया था।

फ़जर की नमाज़ के बाद हम कुतुबुद्दीन साहिब बख़्तियार काकी की मज़ार पर गए और वहाँ दफ़्न अपने अनगिनत पुरखों के लिए हमने फ़ातेहा पढ़ा। बेगम ज़ीनत हमारे साथ थीं, लेकिन उनको मज़ार पर जाने की इजाज़त नहीं दी गई। उन्होंने मज़ार पर चढ़ाने के लिए गुलाब और बेला के फूलों का छतर भेंट किया। हमने वहाँ दालान में बने कुएँ में अस्सी फुट की ऊँचाई से छलाँग लगाते ग़ोताखोरों के करतब देखे। बाक़ी दिन महरौली के बेशुमार खँडहरों में घूमते-फिरते बीता। हम कुतुबमीनार के अलावा कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। अलाउद्दीन ख़िलजी, इल्तुतमिश और इमाम ज़ामिन की मज़ारों पर भी हमने फ़ातेहा पढ़ा। फिर मेटकॉफ़ साहिब के घर को पार कर हम शायर कमाली की मस्जिद में गए और वहाँ से लौटते हुए हमने लावारिस-सी दिखती बादशाह बलबन की मज़ार पर सज्दा किया और उसकी मरम्मत का हुक्म दिया।

शाम हमने जहाज़महल में ही बिताई। शम्सी तालाब के दूसरी तरफ़ छतरियों की शक्ल के मंडप बने हुए थे। वहीं हमने शहनाई-वादकों की महफ़िल सजवाई। शहनाई की मीठी आवाज़ पानी में लहरें पैदा करती हुई हमारी तरफ़ आ रही थी। आलाप की लय से आसपास में बादलों के घेरे बन रहे थे। संगीत-लहरियों के 'गत' तक पहुँचते-पहुँचते तो ठंडी हवाएँ बहने लगी थीं। तबले की थापों का साथ देते हुए बादल अब तेज़ी से उमड़ने-घुमड़ने लगे थे। पल-भर में ही बिजली कड़कने के साथ हवा सर्र-सर्र बहने लगी थी और चारों ओर घुप अँधेरा छाने लगा था। महल में चिराग़ जला दिए गए थे। शहनाई की तान तेज़ होकर अपने उरूज तक पहुँच गई थी और रिमझिम-रिमझिम फुहारें पड़ने लगी थीं। सच ही कहा है पहुँचा हुआ संगीतकार पत्थर में भी आग लगा सकता है। राग मेघ-मल्हार और राग दीपक को सुनना भी अपने-आप में एक नायाब अहसास है। हम सुनते-सुनते ऐसे खोये जा रहे थे कि कहा नहीं जा सकता।

ऐसे ही तीन दिन तो हमने मौज-मस्ती करते हुए गुज़ार दिए। कभी मक़बरों और खँडहरों को देखने जाते, कभी संगीत का लुत्फ़ उठाते और कभी कत्थक करनेवालों के पाँवों की थापों पर झूमते हुए अपने-आपको भुला देते। कभी ऐसे ही गाव-तकिए पर सिर रखकर सिर्फ़ बादलों को निहारते रहते।

दिल्ली लौटकर आए तो फिर से सियासत की परेशानियाँ उलझे हुए बालों की तरह मुसीबतें पैदा करने लगीं। दुश्मन के लिए रसद और गोला-बारूद की और आमद हो गई थी। हमारी फ़ौजों के पास न गोला-बारूद था, न हथियार थे और न पूरी रसद ही। मिर्ज़ा मुग़ल और बख़्त ख़ान की आपस में ज़रा भी नहीं बनती थी। दोनों एक-दूसरे पर ज़हर-बुझे तीर छोड़ते रहते थे। आम जनता और फ़ौज के बीच झड़पों की ख़बरें भी सुनने में आती रहतीं। रियाया फ़ौजियों को उनकी कायरता के लिए कोस रही थी और फ़ौजी व्यापारियों को कोस रहे थे कि उन लोगों ने दुश्मनों के साथ साँठ-गाँठ कर रखी है। हमारे ज़्यादातर फ़ौजी मुसलमान थे और ज़्यादातर व्यापारी हिन्दू।

बकरीद का त्यौहार नज़दीक आ रहा था। मिर्ज़ा मुग़ल और कुछ अमीर-उमराव चाहते थे कि हिंदुओं की धन-दौलत ज़ब्त कर ली जाय, क्योंकि हिन्दू लोग तहे-दिल से फ़िरंगियों की मुख़ालिफ़त नहीं कर रहे थे।

बख़्त ख़ान इस बात को नहीं मान रहा था। हमारी भी राय उससे मिलती थी। हमने गौ-कशी की मनाही का ऐलान करवाया और बकरीद पर गाय की बजाय ऊँट की कुर्बानी देकर खुद इसका उदाहरण रखा।

पर हमारी परेशानियाँ ख़त्म होनेवाली थोड़े ही थीं। बकरीद के दो दिन बाद ही बारूदख़ाने में भारी धमाका हो गया। इस धमाके से भारी मात्रा में गोला-बारूद तो बरबाद हुआ ही, अनगिनत लोगों की जानें भी गईं और कई घर बर्बाद हो गए। फ़िरंगियों ने इस हादसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पूरा फ़ायदा उठाया। उन्होंने जगह-जगह जाली चिट्ठियाँ भिजवा दीं कि इसमें हमारे बेहद भरोसेमंद हकीम अहसानुल्लाह और हमारी बेगम ज़ीनत महल का हाथ है। भीड़ बावली हुई अहसानुल्लाह के घर की तरफ़ दौड़ी और लोगों ने उसके घर को आग लगा दी। हमने फ़ौरन अपने ख़ास आदमियों को उनकी और उनके ख़ानदान की हिफ़ाज़त के लिए दौड़ाया। लेकिन भीड़ उल्टे सारी बंदिशें तोड़कर हमारे दीवाने-ख़ास के भीतर घुस आयी और हम पर ग़द्दारी का इल्ज़ाम लगाने लगी। हमने उस वक़्त बेहद कड़ाई से काम लिया और हमारा कड़ाई से पेश आना काम भी आया। हमने सख़्त हिदायत दी कि अगर कोई भी हकीम साहेब की माल-मिल्कियत को लूटता पाया गया तो उसका पेट चीरकर रख दिया जाएगा।

दिल्ली के चारों ओर शक के घेरे फैलते जा रहे थे। हम समझ गए थे कि क़िस्मत ने हमारा पासा उलट दिया है और हमारी जीत के कोई आसार बाक़ी नहीं हैं। दिल्ली की तबाही अब एकदम तय थी। अक़्लमंदी तो अब इसी में थी कि जो कुछ भी बचाया जा सके, उसी को बचाने की कोशिश की जाय। दुश्मन की फ़ौजों के कमांडर विल्सन साहिब के पास हमने अपना एक खुफ़िया भेजा और कहलवाया कि अगर बेगम ज़ीनत महल, हमारे बच्चों और हमारी अपनी ज़िंदगी पर कोई आँच न आती हो, और अगर हमें पेंशन देने का बन्दोबस्त कर दिया जाय तो हम उनकी फ़ौजों के वास्ते शहर के फाटक खोलने को तैयार हैं। लेकिन उसने तो इतनी भी तमीज़ नहीं दिखाई कि हमारे संदेसे का जवाब ही दे देता। हम बेबात ही उसका इंतज़ार करते रहे। 14 सितम्बर को फ़िरंगियों ने अपने पठान, पंजाबी मुसलमान, सिख, डोगरों और गोरखा साथियों के साथ मिलकर दिल्ली पर धावा बोल दिया। उत्तर के तरफ़ की पूरी-की-पूरी दीवार दुश्मन की गोलाबारी से छलनी हो गई। तोपों के गोले लालक़िले के ऊपर भी बरसे। इस बमबारी में हमारे कुछ सलातीनों के मकान भी तबाह हो गए।

हमारे सिपहसालार बख़्त ख़ान ने बड़ी बहादुरी से हर तरफ़ उनका मुक़ाबला किया—क्या सब्ज़ीमंडी, क्या मोरी गेट और क्या कश्मीरी गेट। शाम को वह हमारे पास आता और दिन-भर की लड़ाई का ब्यौरा देता। उसने बताया कि दुश्मन शहर के भीतर घुस आया है। लोग हर कूचे, हर गली में उसका मुक़ाबला कर रहे हैं। औरतें और बच्चे तक पत्थर फेंक-फेंककर उनको रोकने की कोशिश कर रहे हैं।

उम्र ने हमारी हड्डियों को कमज़ोर बना दिया था, फिर भी हम अपने चहेते घोड़े हमदम पर सवार होकर अपनी फ़ौजों को जोश दिलाने निकल पड़े। पर अल्लाह को यही मंज़ूर था कि हमारा सिर शर्म से नीचा हो।

21 सितम्बर को बख़्त ख़ान ने हमें बताया कि दिल्ली हमारे हाथ से चली गई है। उसने हमसे गुज़ारिश की कि हम उसके साथ अवध की ओर निकल लें, ताकि वहाँ से लड़ाई को जारी रखा जा सके। हमने किसी तरह उसको समझाया कि बयासी साल की इस उम्र में हमारे जिस्म में वह ताक़त और फुर्ती नहीं बची कि इधर-उधर भाग-दौड़ कर सकें। सादी की हमें फिर याद हो आई। उसने लिखा था कि हम तो अब अपना सारा तामझाम समेटकर, फुर्सत से अपने घरौंदे में ही चैन से बैठे रहना ज़्यादा सही समझते हैं।

लोग शहर को छोड़-छोड़कर भाग रहे थे। पहले तो हमने सोचा कि हम भी महरौली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चले जायँ। वहाँ ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी की मज़ार के पास अपना डेरा होगा, चित्त में चैन रहेगा। लेकिन हमारे मरहूम बेटे मिर्ज़ा फ़ख़रू के ससुर मिर्ज़ा इलाही बख़्श ने हमें सुझाया कि इससे बेहतर यह रहेगा कि हम अपने पूर्वज बादशाह हुमायूँ के मक़बरे में जाकर पनाह लें। उसने कहा कि महरौली में हमारी हिफ़ाज़त का कोई इंतज़ाम नहीं हो सकेगा, जबकि बादशाह हुमायूँ का मक़बरा क़िले की तरह महफ़ूज़ है और फिर वहाँ ठहरकर फ़िरंगियों के साथ बातचीत करना भी मुमकिन होगा। बस, हमने उसकी सलाह मान ली।

क़िस्मत ने अपनी चाल चलनी शुरू कर दी थी। हमारा दिल बेहद भारी हो रहा था। हमें अपने चहेते हाथी मौलाबख़्श और घोड़े हमदम से विदा लेनी पड़ रही थी, जो जवानी के दिनों से ही हमारे साथी रहे थे। हमने अपने दड़बे के कबूतरों को भी आज़ाद कर दिया और उनसे कहा कि हमारी बदक़िस्मती की दास्तानें वे जगह-जगह फैला दें।

कहार हमारी पालकी को आगरा के रास्ते की तरफ़ लिये जा रहे थे। हमारे हरम की बेगमों, सलातीनों और नौकरों का क़ाफ़िला भी साथ-साथ चल रहा था। बैलगाड़ियों, इक्कों और ख़च्चरों पर सवार, दिल्ली छोड़कर जाते हुए लोगों के जत्थे के जत्थे हमारे अगल-बग़ल से गुज़रते रहे। कितने ही लोग अपना सामान-असबाब उठाए पैदल ही चले जा रहे थे। 'अरब की सराय' तक पहुँचे तो देखा कि सराय के बग़ीचे लोगों से पटे पड़े हैं। हमारे सारे बेटे, पोते, भतीजे-भतीजियाँ अपने-अपने कुनबों समेत वहीं डेरा डाले मिले। वह रात हमने अपने पुरखे बादशाह हुमायूँ की क़ब्र के पायँताने बैठे-बैठे ही गुज़ारी।

हम मुँह-अँधेरे ही जग गए थे। लोग हल्की-हल्की सर्दी में अपनी चादरों में सिकुड़े-सिमटे सो रहे थे। हमारा दिल बेहद बेचैन हुआ जा रहा था। हम उठे और निज़ामुद्दीन औलिया के मक़बरे की ओर चल पड़े। यह पहली बार था कि बादशाह ग़ाज़ी के आने का ऐलान करने के लिए वहाँ कोई भी नहीं था। नमाज़ अदा करने के बाद हम औलिया की मज़ार के पास बैठ गए और अपनी तस्वीह के मनके फेरने लगे। अपने वालिद अकबर शाह, अपने भाई मिर्ज़ा जहाँगीर, बेगम जहाँआरा और अमीर ख़ुसरो की मज़ारों पर भी हमने फ़ातेहा पढ़ा। वहाँ से उठे तो हमारे मुँह से दरवेशों की प्रार्थना निकल पड़ी, "ऐ अल्लाह, बुरे लोगों पर भी रहम करो, क्योंकि भले लोगों को तो भला बनाकर तुमने पहले ही रहम किया हुआ है।"

अल्लाह की मंशा के मुताबिक़ बनाई गई अपनी क़िस्मत को मंज़ूर करने के लिए तैयार होकर ही हम मक़बरे से वापस लौटे।

निहाल सिंह

उसके बाद तो हर दिन ही बारिश की झड़ी लगती रही। जमुना नदी का पानी ऊपर तक चढ़ आया था। बाढ़ का पानी नावों के पुल को बहाकर ले गया था। हमारे लिए तो यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि नदी-पार से विद्रोहियों को अब उनकी रसद नहीं मिल पा रही था और न ही उधर से नए रंगरूटों का आना संभव हो रहा था। बारिश के कारण लड़ाई कुछ दिनों के लिए थम गई थी। कभी-कभी कुदसिया बाग़ में एकाध झड़प हो जाती या तोपें एक-दूसरे को ललकारती 'भड़ाम-भड़ाम' करने लगतीं, पर भारी लड़ाई इस बीच नहीं हुई।

बारिश जितनी तेज़ी से शुरू हुई थी, उतनी ही जल्दी रुक भी गई। हमारे कैम्प में कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गोरे भी आ गए थे। वे अपने साथ और बारूद भी लाए थे। दिल्ली पर हमला करने का ज़िम्मा सँभालने के लिए निकल्सन और टेलर नामक दो जाने-माने बहादुर फ़ौजी साहिब भी हमारे कैम्प में आए हुए थे। हमको रसद बेचनेवाले बनियों से पता चला कि दिल्ली में दिनों-दिन लाल मिर्च का भाव बढ़ रहा है और काली मिर्च का गिर रहा है। खुफ़ियागिरी करनेवाला काना रजब अली अब तो रोज़ ही आने लगा था। देर-देर तक हडसन साहिब के कानों में न जाने कहाँ-कहाँ की बातें भरता रहता। एक दिन शाम के वक़्त मैंने साहिब के पाँव दबाते-दबाते पूछा, "साहिब, यह काना आपके कानों में क्या फुसफुसाता रहता है?" हडसन साहिब सुनते ही ग़ुस्से में भर उठे और गुर्राये, "तो तुम हमारी बातें सुनता?" मैंने कहा, "नहीं साहिब, अगर मैं आपकी बातें सुनता होता, तो पूछता ही क्यों?" हडसन साहिब तब ज़रा नरम पड़े और कहने लगे, "बुड्ढा बादशाह कहता है कि अगर हम उसकी ज़िंदगी बख़्श दें और उसको पेंशन का वास्ते बंदोबस्त कर दें तो वह दिल्ली का गेट हमारा वास्ते खोल देगा।"

"और आपने क्या जवाब दिया?" मैंने पूछा।

"हमने बोला कि पहले तुम फाटक तो खोलो, फिर बात करेंगे!"

साहिब के मुँह से ऐसी बातें सुनकर मुझे अंदाज़ा हो गया था कि अब किसी भी दिन हमला हो सकता है। मैं इंतज़ार करता रहा, लेकिन हुआ कुछ भी नहीं। दो हज़ार से भी ज़्यादा गोरे अस्पतालों में पड़े थे। हर दिन उनमें से कुछेक स्वर्ग सिधार रहे थे; कुछ उल्टियाँ करते, तो कुछ ख़ून की टट्टियाँ कर रहे थे। कुछ गोरों को यह शिकायत हो रही थी कि उनको पीने के लिए रम का पूरा कोटा नहीं मिल रहा। ऐसे लोग भला क्या जाएँगे लड़ाई के मैदान में! विल्सन साहिब बहादुर तो बस 'कल, कल' करते टालते ही जा रहे थे और उधर विद्रोहियों का सूबेदार बख़्त ख़ान हमारे कैम्प पर हमले पर हमला बोलकर न जाने हमारे कितने फ़ौजियों और घोड़ों को मौत के घाट उतार चुका था।

गोरों के बारे में आप चाहे जो कह लें, पर एक बात पक्की है कि इनके जैसी लड़ाका क़ौम दुनिया में और दूसरी नहीं है। निकल्सन साहिब को ही ले लीजिए—ऐसा भारी-भरकम जिस्म है कि निरे रावण ही लगते हैं और दाढ़ी इतनी लम्बी जितनी कि हमारे गुरुओं की हुआ करती थी। कुछ बेवकूफ़ लोग अपने-आपको उन्हीं के नाम पर निकल्सैनी भी कहने लगे थे। कहते थे कि वह किसी गुरु का ही अवतार हैं। निकल्सन साहिब, वैसे सचमुच, इतने ताक़तवर थे कि एक धौल दें तो साँड तक लोटनी खा जाय। और अपने हडसन साहिब भी तो कोई कम नहीं। शेर की तरह हिम्मतवाले हैं। भले ही उनका सिर एकदम गंजा है, दाढ़ी भी सफ़ाचट है और न ही कोई ख़ास डील-डौल है, पर बहादुरी में उनका भी कोई जवाब नहीं।

निकल्सन और हडसन साहिब को बड़ी बेचैनी हो रही है कि यह विल्सन साहिब बहादुर भी कैसा जंगी लाट है कि हमले को 'कल-कल' पर ही टालता जा रहा है। दोनों जने विल्सन साहिब के पास जाते हैं और कहते हैं, "अब हमको लड़ाई शुरू कर देनी चाहिए।"

ठीक तभी काना रजब अली ख़बर लेकर आता है कि बख़्त खान बड़ी भारी फ़ौज लेकर नजफगढ़ और रोहतक में पंजाब से आ रही गोरी पलटनों को रोकने पहुँच गया है।

सुनते ही विल्सन साहिब बहादुर ने निकल्सन से कहा कि "अगर तुमको लड़ने की इतनी ही जल्दी मच रही है, तो नजफगढ़ जाओ।" और फिर हडसन साहिब की ओर मुड़कर कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अगर तुमको भी लड़ने की बहुत बेताबी है, तो तुम रोहतक जाओ।"

अगले दिन शाम को हम लोग रोहतक के लिए रवाना हो रहे हैं। हम लोग पाँच सौ घुड़सवार हैं। हमारे साथ दस गोरे अफ़सर भी हैं। हम रात-भर चलते रहे हैं और मुँह-अँधेरे ही रोहतक से एकाध मील दूर आ पहुँचे हैं। हमने चाय पी और अपने घोड़ों को चारा खिलाया। धूप चढ़ते ही हम लड़ाई के लिए तैयार हो गए। आधे घंटे बाद ही शहर के फाटक खुल जाते हैं और बंदूकें-तलवारें थामे घुड़सवार हमारे ऊपर धावा बोल देते हैं।

हडसन साहब ने हमें वापस लौट आने का इशारा किया। हम क़रीब आधा मील वापस भाग आए। वे लोग 'अली-अली' करते हुए हमारा पीछा करते रहे। जब वे हमारे एकदम क़रीब पहुँच गए तो हडसन साहिब ने हमें हुक्म दिया कि अब हम पलटकर उन पर धावा बोलें। हमने वैसा ही किया और पीछे लौट पड़े। हमने उन पर गोलियों की बौछारें कर दीं। उनमें से क़रीब पंद्रह घुड़सवार वहीं गिरकर ढेर हो गए। तभी हमने उन पर भालों से वार किया। उनमें हड़बड़ी-सी मची और वे भाग खड़े हुए। उनमें से सिर्फ़ मुट्ठी-भर लोग ही हमारा मुक़ाबला करने को वहाँ डटे रहे। मैंने तब अपनी आँखों से देखा कि हडसन साहिब को लड़ाई का कितना शौक़ था। वे घोड़ा दौड़ाते हुए अपनी तलवार खींचकर दुश्मन के एक फ़ौजी के पास जा पहुँचते हैं और उसे लड़ने के लिए ललकारते हैं। बेचारा आदमी अपनी तलवार चमकाता उनपर झपटता है। साहिब अपने-आपको साफ़ बचा लेते हैं और कहते हैं, "फिर कोशिश करो! इतनी ही तलवारबाज़ी सीखी है क्या?" और जब वह अपना करतब दिखा चुकता है तो हमारे साहिब एक ही वार में उसका काम तमाम कर डालते हैं। वाह-वाह, हडसन साहिब! आप तो हज़ारों में एक हो।

हम लोगों ने दुश्मन के तीन और लोगों को मार गिराया, जबकि हमारे केवल दो ही लोग मरे थे।

शाम तक हम वापस अपनी छावनी में लौट आते हैं। निकल्सन साहिब भी वहीं हैं। उस बरेली के सूबेदार बख़्त ख़ान को तो नजफगढ़ में उन्होंने ऐसी मुँह की खिलायी कि वह कुत्ते की तरह पैरों के बीच दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ।

अब विल्सन साहिब बहादुर के पास लड़ाई को 'कल' पर टालने का कोई बहाना नहीं बचा है। पंजाब से बंदूकें लेकर गोरी पलटन भी आ पहुँची है। फ़ौजियों के दस्तों ने अपनी-अपनी कमान सँभालकर गोलाबारी शुरू कर दी है। कुछ ही घंटों में शहर की दीवार की यह हालत हो गई कि लगता है जैसे उस पर शीतला माई निकल आई हो। बड़ा हमला बोलने से पहले हमारे लिए इस दीवार को तोड़ गिराना ज़रूरी है। सतगुरु ने इन ग़रीब मज़हबियों को हिम्मत भी ख़ूब दी है। रात घिरते ही ये अपने मक़सद पर निकल पड़े हैं। जैसे ही ये लोग दीवार के क़रीब पहुँचते हैं, विद्रोहियों के पहरेदार इनको देख लेते हैं। वापस मुड़ने का तो कोई मतलब ही नहीं है, इसलिए उनमें से एक सिख जवान बारूद का बोरा लेकर आगे को दौड़ पड़ता है। दूसरी ओर से किसी ने गोली दाग़ी 'ठाह' और वह वहीं ढेर हो गया। उसके गिरते ही एक और जवान बारूद का बोरा उठाकर थोड़ा और आगे दौड़ लेता है। 'ठाह, ठाह' की दो और आवाज़ें! और वह दूसरा भी ख़त्म। पर मज़हबियों की हिम्मत की दाद देनी होगी कि उन्होंने अब भी बाज़ी नहीं हारी। अब एक तीसरा जवान बारूद का बोरा उठाकर दीवार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और क़रीब जा पहुँचता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि उसका भी वही हश्र होता है। इसी तरह एक-एक करके चालीस बहादुर गुरु-सिखों ने अपनी जानें बारूद को दीवार तक पहुँचाने की कोशिश में कुर्बान कर दीं। आख़िर भोर होते-होते उनको कामयाबी मिल ही गई, यानी वे बारूद के बोरे को दीवार तक ले जाने में कामयाब हो ही गए।

भड़ाम!

ऐसा ज़ोर का धमाका होता है कि ज़िंदगी में पहले कभी नहीं सुना था। सारी धरती ही काँपती-सी लगती है। दीवार का एक हिस्सा धमाके के साथ भरभराता हुआ धराशायी हो गया है और इतनी चौड़ी जगह बन गई है कि पाँच जोड़ी बैल एक-साथ वहाँ से पार हो जायँ।

साहिब लोगों ने हमको नहीं बताया कि बड़ा हमला कब होनेवाला है! वे लोग आपस में ही गिट-पिट करते रहते हैं। अगर हममें से कोई काला फ़ौजी पास पहुँच जाए तो कमबख़्त 'डैम' या 'फ़किंग' या 'ब्लडी' कहते हुए बीच में ही बात करना बंद कर देते हैं। इन साहिब लोगों को भी थोड़ी-थोड़ी देर में मामूली-सी बातों पर गुस्सा आने लगता है।

असूज (सितम्बर) महीने का यह पहला हफ़्ता है। एक दिन तड़के ही हमारी तोपें चलने लगीं—पटाक-पटाक, जैसे कोई धुनिया रुई धुन रहा हो। तोपें दिन से ही लेकर आधी रात तक चलती रहती हैं। हमें आधी रात को ही नींद से जगाकर बताया गया कि सुबह होने से पहले ही बड़ा हमला बोलना है।

हमारी फ़ौजों को तीन टुकड़ियों में बाँट दिया गया है। शहर की दीवार के हर हिस्से में हमला एक-साथ बोलना है। हमको रम की डबल खुराक दी गई है और कहा गया है कि नदी से लेकर सब्ज़ीमंडी तक अगर हमने क़ब्ज़ा कर लिया तो समझो दिल्ली को फ़तह कर लिया। जीत के बाद वे हमें छह महीनों का अतिरिक्त वेतन भी देंगे।

यह रात घुप्प अँधेरी है। हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा। किसी को बात तक करने की इजाज़त नहीं है। हमने अपने जूते खोल लिये हैं और पंजों के बल चलते हुए अपनी-अपनी जगह ले रहे हैं। हम लोग कश्मीरी गेट की सीध में खड़े हैं। सुबह का धुँधलका अभी छँटा भी नहीं है कि तोपों की आवाज़ों से दिशाएँ गूँजने लगी हैं। लगता है कि विद्रोहियों को हमारी चाल की ख़बर लग गई है। वे हमारे ऊपर घातक हमले कर रहे हैं। लग रहा है कि अब तमाशे का अंत क़रीब है, क्योंकि दोनों पक्ष अपनी-अपनी पूरी ताक़त के साथ एक-दूसरे पर गोलाबारी कर रहे हैं। गोलाबारी तक़रीबन घंटा-भर चलती रही है। उसके बाद अचानक ही तोपें चुप हो गईं।

यह ख़ामोशी भी कितनी डरावनी लग रही है! मेरे माथे से पसीने की बूँदें चू रही हैं। रम का गिलास भरकर गटक लेता हूँ। तभी एक भारी धमाका सुनाई देता है और थोड़ी दूर पर हवा में पत्थर उड़ते दिखाई दे रहे हैं। कश्मीरी गेट धूल और धुएँ के ग़ुबार से ढक गया है। हमारे सूबेदार मानसिंह ने अपनी कृपाण निकालते हुए हुंकार भरी—'बोले सो निहाल!' हम सबने भी अपनी-अपनी तलवारें निकाल लीं और 'सत श्री अकाल' का नारा लगाते हुए दिल्ली शहर की ओर दौड़ पड़े।

विद्रोहियों के नगाड़ों की डम-डम कानों को फाड़े दे रही है। वे 'अली-अली' और 'हर-हर महादेव' करते और गोलियाँ बरसाते हुए हम पर टूट पड़े हैं। कौन कहता है कि उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़ने की हिम्मत नहीं बची है ? लेकिन हमारा सामना कर पाना उनके लिए उतना आसान नहीं होगा। हमारे पास उनके मुक़ाबले हर तरह ज़्यादा ताक़त है, हमारे पास ज़्यादा बंदूकें हैं, ज़्यादा तोपें हैं और ज़्यादा फ़ौजी हैं।

हम लोग मरे और मरते हुए फ़ौजियों को रौंदते-कुचलते आगे बढ़े जा रहे हैं। उस काने रजब अली ने झूठ कहा था कि विद्रोहियों में हमसे टक्कर लेने की जुर्रत नहीं बची है और वे तुरत हथियार डाल देंगे। वे तो अपनी जान को हथेली पर रखकर हम लोगों से जूझ रहे हैं और मधुमक्खियों के झुंडों की तरह हमारे ऊपर टूट रहे हैं। उनकी औरतें और बच्चे हम पर भद्दी-से-भद्दी गालियों की बौछारें कर रहे हैं। वे हमें फ़िरंगियों के तलवे चाटनेवाले कहते हुए हम पर पत्थर फेंक रहे हैं। और अगर कहीं वह वेश्या—क्या नाम था उसका··· ? कहीं वह भी इन लोगों में दिख गई, तब तो मेरी शामत ही आई समझो। हडसन साहिब मेरी जान ही ले लेंगे उसे ज़िंदा देखकर।

लड़ाई दोपहर तक जारी रही। शाम होते-होते हम लोगों ने कश्मीरी गेट से लेकर मोरी गेट तक के बाज़ारों पर कब्ज़ा कर लिया। कश्मीरी गेट पर शराब की बहुत-सी दुकानें भी हैं। भीतर घुसकर जो भी हाथ लगा, हमने चढ़ा लिया। गोरों ने भी बहुत पी और रात-भर नाचते-झूमते रहे। हम लोगों ने घरों में घुस-घुसकर ख़ूब सोना-चाँदी लूटा। लाशों को भी छान-फरोलकर उनकी जेबों से सोने के सिक्के बटोरे। लोगों के घरों में बँधे डंगर भी हमने खोलकर अपने आगे कर लिये हैं। विल्सन साहिब बहादुर यह सब सुन-देखकर ख़ूब नाराज़ हुए। उन्होंने हुक्म दिया कि अगर किसी को इसके बाद लूट-पाट करते पाया गया तो देखते ही गोली मार दी जाएगी। लेकिन मारेगा कौन किसको ? सभी तो लगे हैं लूट-पाट में ! साहिब लोग कह रहे हैं कि लूट का माल सबको बाँटकर दिया जाएगा। हमने कहा, 'अच्छा।'

अगले दिन सुबह फिर लड़ाई चालू। हम लोग हर गली और हर सड़क पर विद्रोहियों के साथ जूझ रहे हैं। घूँघट निकाले उनकी औरतें और छोटे-छोटे बच्चे तक उनकी मदद कर रहे हैं। गोरे लोग कह रहे हैं कि विद्रोहियों ने उनके बच्चों और उनकी मेमों को मारा है तो वे भी सामने आनेवाली हर औरत और हर बच्चे को मारेंगे।

बाज़ार में चार दिनों तक लड़ाई चलती रही। आख़िरकार हम लालक़िले के फाटक पर आ पहुँचे। अपने बैंड के साथ मार्च करते हुए हम लाहौरी फाटक के रास्ते लालक़िले के भीतर घुसते हैं। भीतर एक अंधी औरत और एक बूढ़े अपाहिज के सिवाय और कोई भी नहीं है।

लालक़िले पर ब्रिटेन का झंडा फहरा दिया गया है। गोरे साहिब अपनी महारानी की लम्बी ज़िंदगी के लिए गाने गा रहे हैं। रानी के सम्मान में इक्कीस तोपों की सलामी दी जा रही है।

गोरों के रहने का इंतज़ाम महल में किया जा रहा है। हम लोगों को खाई के दूसरी तरफ़ खुले में ख़ेमा डालने का हुक्म हुआ है।

अगले दिन हमने विद्रोहियों को चाँदनी चौक और जामा मस्जिद के इर्द-गिर्द बने बाज़ारों से भी खदेड़ दिया। चावड़ी बाज़ार में अब कोई तवायफ़ नहीं दिख रही और न ही काज़ी का हौज़ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई रंडी बची है। लाल कुएँ से सब हिंजड़े भी भाग गए हैं। हमें लूट में ख़ूब सोना-चाँदी मिला है। हमने पता नहीं कितनी गलियों में आग लगाई, कितनी हवेलियों को नेस्तनाबूद किया। गोरे तो जामा मस्जिद को भी उड़ाना चाहते थे, पर विल्सन साहिब बहादुर का कहना था कि ऐसा नहीं किया जाएगा, क्योंकि ऐसा करने से 'हमारी पलटनों के पठान, बलूच और पंजाबी मुसलमान फ़ौजी बिगड़ जाएँगे।' साहिब लोग सचमुच कितने अक़्लमंद और समझदार होते हैं!

मस्जिद सिख रिसालों को सौप दी गई है। गुम्बदों के नीचेवाली जगह जवानों ने ले ली है और लम्बे-लम्बे गलियारों में घोड़े बाँधे गए हैं। बड़े-से अहाते के बीच दो बड़े-बड़े हौज़ हैं। एक से हम सब नहाते हैं और दूसरे से अपने घोड़ों को नहलाते हैं।

मैं एक मीनार के ऊपर चढ़कर दिल्ली शहर का नज़ारा ले रहा हूँ। मुझे ऐसा महसूस हो रहा है जैसे मैं दिल्ली का बादशाह होऊँ और अपनी सल्तनत का मुआयना कर रहा होऊँ। महल, घर, बाज़ार, मस्जिदें—सब कहीं से धुएँ के बेशुमार बादल ऊपर उठ रहे हैं। सभी जगह हमने लूटपाट करने के बाद आग लगा दी थी। मेरी नज़र दक्खिन की तरफ़ जाती है। देख रहा हूँ कि शहर छोड़कर जाते लोगों का ताँता लगा हुआ है। अभी मैं सोच ही रहा था कि ये सारे लोग जा कहाँ रहे हैं कि 'ठाह' की एक ज़ोरदार आवाज़ सुनाई दी। मुँडेर का एक टुकड़ा टूटकर उड़ता हुआ मेरी दाढ़ी को छू गया। तो कोई हरामज़ादा मेरी जान लेना चाहता है। गोली चावड़ी बाज़ार की तरफ़ से आयी लगती है। रंडियाँ तो सब भाग गई हैं। फिर यह कौन हो सकता है, जो वहाँ से वार कर रहा है? मुझे फिर भी, तनिक भी डर नहीं लग रहा। मैं वहीं डटकर खड़ा रहा।

उस शाम मैं हडसन साहिब से कहता हूँ, "साहिब, ये लोग तो सब-कुछ लेकर भाग रहे हैं। हमें तो ठेंगा भी नहीं मिलनेवाला!" साहिब अपने गंजे सिर पर हाथ फेरकर कुछ सोचते हैं और फिर उठकर विल्सन साहिब बहादुर के पास चले जाते हैं। वे उनसे दक्षिण की तरफ़ से शहर पर हमला बोलने की इजाज़त ले आते हैं।

दो दिन बाद की बात है। हडसन साहिब का घोड़ा शहर की दीवार के गिर्द घूम रहा है। हम लोग अपने तंबू गाड़ने में लगे हैं और साथ ही भागकर जाते लोगों को अपने भालों और बंदूकों का शिकार भी बना रहे हैं। दिल्ली गेट की ओर से हम फिर शहर में घुसते हैं और दरियागंज से होते हुए जामिया मस्जिद की सीढ़ियों तक पहुँचते हैं। इन्सानों के शानदार शिकार के बाद हम अपने-अपने भालों को मस्जिद के चहबच्चों में धोते हैं। चहबच्चों का पानी इतना लाल हो उठा है कि घोड़े तक इसके पास पहुँचते ही कतराते नज़र आ रहे हैं।

बहादुर शाह 'ज़फ़र'

हमने दो दिन इंतज़ार किया। तीसरे दिन पचास सिख घुड़सवारों का दस्ता लेकर एक गोरा हमारे फाटक पर आया। उनका काना जासूस रजब अली आकर हमें बताता है कि मिर्ज़ा इलाही बख़्श ने अंग्रेज़ी फ़ौजों के कमांडर विल्सन साहिब बहादुर से वादा किया है कि वह हमें गिरफ़्तार कराएगा। कमबख़्त की यह हिम्मत कि हमारे सामने ही इस तरह बातें कर रहा है! यही रजब अली था जो कभी हमारे पाँव चूमने की भीख माँगा करता था और आज यह हमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरफ़्तारी का पैग़ाम लेकर आया है। किसी मेजर हडसन को हमारी गिरफ़्तारी का ज़िम्मा सौंपा गया था। हमारे कानों को यह सुनकर भी विश्वास नहीं हो रहा था कि हकीम अहसानुल्लाह भी दुश्मन से जा मिला है और हमारी माल-मिल्कियत की फ़र्द (सूची) बना रहा है। शायद ठीक ही कहा गया है कि साँप की केंचुल जितनी चिकनी होती है, उसमें उतना ही ज़्यादा ज़हर भी होता है।

हमें अब किसी से कुछ भी नहीं कहना था। वह कमीना काना रजब अली कह रहा था कि अगर हम उसके साथ चले चलें तो कम-से-कम हमारी जान बच सकती है। अब इस बयासी साल की उम्र में हमारी जान की भी आख़िर क्या क़ीमत है? पर अपने साथ हमें ज़ीनत महल और बेटे जवाँ बख़्त की जान की भी तो सोचनी थी। और फिर हमारा बड़ा बेटा मिर्ज़ा मुग़ल भी तो था। वह तो हमसे रजब अली के मुँह पर थूक देने को कह रहा था। लेकिन कहने से क्या होता है? कहने को तो वह यह भी कहता रहे कि हम इन गोरों और इनके सिखड़े बुर्छों का कबाब बनाकर रख देंगे, लेकिन होगा क्या?

हम घंटा-भर लोगों के सलाह-मशविरे और बातें सुनते रहे। बोले कुछ नहीं। हमने बेगम ज़ीनत महल और बेटे जवाँ बख़्त को बुलवा भेजा। उनके आते ही उन दोनों को साथ लेकर हम मक़बरे की सीढ़ियाँ उतरने लगे। मिर्ज़ा मुग़ल और उसके फ़ौजी पीछे से चिल्लाते रहे। उनको नज़रअंदाज़ कर हम अल्लाह के भरोसे आगे बढ़ते गए। मिर्ज़ा मुग़ल और अपने बाक़ी बेटों के लिए हमने यही कहा कि वे इंतज़ार करें और देखें कि गोरे साहिब हमारे साथ कैसा सलूक करते हैं और उसके बाद ही कोई ऐसा-वैसा क़दम उठाएँ।

हमने अपने बेटों को गले लगाकर उनसे रुख़सत ली। तब कहाँ पता था कि वही हमारी आख़िरी मुलाक़ात है! हमने अपने सभी रिश्तेदारों और नौकर-चाकरों को भी अलविदा कहा। हमारे हाथों को चूमते हुए उनकी आँखों से आँसुओं की धारें बहने लगीं।

हमारी पालकियाँ मक़बरे के फाटक से निकालकर उस जगह ले जाई गईं, जहाँ फ़िरंगी हमारा इंतज़ार कर रहे थे। मक़बरे से बाहर निकलने से पहले हमने हर तरह की इबादत की और आसमान की तरफ़ हाथ उठाकर अल्लाह से दरख़्वास्त की कि ऐ अल्लाह, हम तुम्हारे ख़िदमतगार बहादुर शाह 'ज़फ़र' को अब तुम्हीं को सौंपते हैं। अब इसकी निगरानी करना तुम्हारा ही काम है।

हम सिख घुड़सवारों के कमांडर हडसन साहिब के सामने गए और हमने उससे पूछा कि क्या अपने वादे के मुताबिक़ वे लोग हमारी, हमारे बेटे और हमारी बेगम की जान बख़्शेंगे? उसने सिर हिलाकर हमें भरोसा दिलाया। हमने ईरानी बहादुर नादिरशाह के हाथों अपने पूर्वजों को भेंट की गई मशहूर तलवार 'ज़ुल्फ़िकार' हडसन साहब को नज़्र कर दी। हमारे बेटे ने भी अपनी तलवार उन्हें सौंप दी। हमें फिर से अपनी पालकियों में बैठने को कहा गया।

हम लोग अब फ़िरंगियों के क़ैदी बन चुके थे।

दिल्ली वापस लौटने में पूरा दिन लग गया। लोगों की चीख़ें-चिल्लाहटें हमारे कानों में पड़ रही थीं। दोपहर बाद शोरो-गुल ज़रा कम हुआ। रास्ते में हमारी पालकियों को कई जगह रोका गया और आख़िरकार जब हम दिल्ली दरवाज़े तक पहुँचे तो सारा दिल्ली शहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शहरे-ख़ामोशाँ' बना हुआ था। साथ चलते घुड़सवारों के घोड़ों की टापों के सिवा और कोई भी आवाज़ कानों में नहीं पड़ रही थी। लाहौरी फाटक पर पहुँचकर हडसन साहिब ने हमें गोरों के एक दस्ते के हवाले कर दिया।

पहले तो क़िले में घुसते ही हमारे आने की ख़बर देने के लिए तोपें छोड़ी जाती थीं और नक़्क़ारख़ाने में बाजे बजाए जाते थे। और अब! एक के बाद एक गोरे फ़ौजी हमारा नाम पुकारते जा रहे थे—बादुर शा! हर गोरा फ़ौजी हमारा नाम पुकारते हुए हमें अगले से अगले गोरे के हवाले करता जा रहा था। मीना बाज़ार से गुज़ारते हुए हमारी पालकियों को तहख़ाने की उन्हीं कोठरियों में ले जाया गया, जहाँ कुछ महीने पहले गोरों और उनके बीवी-बच्चों को क़त्ल करने से पहले रखा गया था। तहख़ाने के फाटक बाहर से बंद कर दिए गए और फाटक पर हथियारयाफ़्ता पहरेदार तैनात कर दिए गए। हमें दुनिया-जहान से पूरी तरह काट दिया गया था।

क़िस्मत पता नहीं कैसा मज़ाब कर रही थी हमारे साथ! रगों में ख़ून ही न हो तो काँटों की चुभन भी कहाँ महसूस होती है! हमारा दिलो-दिमाग़ भी अब दर्द की चुभन से बेपरवाह हो चुका था।

निहाल सिंह

दिल्ली को विद्रोहियों से पूरी तरह ख़ाली कराने में पूरा हफ़्ता लग गया। उसके बाद ही दिल्ली कम्पनी की मिल्कियत बन सकी। मिल्कियत भी क्या! अब दिल्ली में बचा ही क्या था—ख़ाली घर, स्याह दीवारें और लाशों से पटी सड़कें!

कुछ दिनों के बाद हिन्दुओं को वापस लौटकर अपनी दुकानें खोलने की इजाज़त मिल गई। जिन थोड़े-बहुत मुसलमानों ने हिन्दुओं के वेश में लौटने की कोशिश की, उन्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। हम लोग उनके कपड़े उतरवाकर देखते तो उनका पेशाब निकल जाता। हमें पता था कि वे लोग अपने मकानों-दुकानों के नीचे गड़ा हुआ सोना लेने ही लौटे थे, इसलिए हम उनको उनके घरों तक ले जाते। जो कुछ मिलता छीन-छानकर उनको साहिब जजों के हवाले करते। कुछेक बातें पूछकर जज उनको फाँसी का हुक्म दे देते और उनको चाँदनी चौक की कोतवाली में ले जाया जाता, जहाँ कभी औरंगे ने हमारे गुरु को फाँसी दी थी। वहाँ दर्जन-भर फाँसी के तख़्ते खड़े किए गये थे। अपना शाम का खाना खाकर साहिब लोग अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर वहाँ आ पहुँचते। ख़िदमतगार उनके बैठने के लिए कुर्सियाँ और सोफ़े लगा देते और आबदार ब्रैंडी और शराब के गिलास भर-भरकर उन्हें थमाते जाते। नौकर ही उनके चुरुट भी सुलगा देते। उसके बाद असली तमाशा शुरू होता। क़ैदियों को छह-छह के दस्तों में पेश किया जाता। उनके हाथ पीठ-पीछे बँधे होते। उनके गलों में फाँसी के फंदे डाल दिए जाते। साहिब लोग मुट्ठी बाँधकर अँगूठा नीचा कर इशारा करते और तख़्ते खींच लिये जाते। साहिब लोग आपस में शर्तें लगाते कि कौन देर तक ज़िंदा बचा रह सकता है। यह बताना कोई मुश्किल भी नहीं था। जो सबसे ज्यादा छटपटाता था, वही सबसे पहले मरता था। फंदा गले में कसते ही उनकी आँखें बाहर को निकल आतीं और नथुनों से ख़ून गिरने लगता! कुछ तो तुरन्त ही ख़त्म हो जाते, कुछ को ख़त्म करने के लिए उनकी टाँगें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खींचनी पड़तीं। साहिब लोग हँसते, मज़ाक उड़ाते, शराब पीते और शर्तें लगाते इस तमाशे का पूरा लुत्फ़ उठाते थे।

हडसन साहिब थोड़े अलग क़िस्म के आदमी थे। वे ऐसे तमाशों पर अपना वक़्त बर्बाद नहीं करते थे। उनका दिमाग़ बड़े खेलों में लगता था। एक दिन वे विल्सन साहिब बहादुर के पास गए और बोले, "मुझे दिल्ली के बादशाह को पकड़ने की इजाज़त दीजिए।" जंगी लाट साहब ने कहा, "ठीक है, लेकिन मैं अब और गोरे फ़ौजियों को खोना नहीं चाहता।" हडसन साहिब उन्हें तसल्ली देते हुए बोले, "अच्छी बात है, मैं अपने सिख जवानों को लेकर जाऊँगा।" और हडसन साहिब मेरी ओर मुख़ातिब होकर कहने लगे, "निहाल सिंह, अपने पचास बहादुर जवानों को इकट्ठा करो और बड़े शिकार के वास्ते सवेरे तड़के ही तैयार हो जाना।"

सितम्बर की 21 तारीख़ है। मौसम बदल चुका है। रातें ठंडी होने लगी हैं और कोहरा ऐसे पड़ने लगा है, जैसे बारिश की बूँदें। मैं नत्था और लहना समेत अपने पचास सिख जवानों को तैयार कर लेता हूँ और उनको मस्जिद के चबूतरे पर सोने को कहता हूँ।

दिन चढ़ने के पहले ही सबको जगा देता हूँ। हम लोग कुछ रोटियाँ निगलकर चाय की चुस्कियाँ चढ़ाते हैं और अपनी वर्दियाँ पहनकर मस्जिद की सीढ़ियाँ उतरते हैं। हडसन साहिब अपने साथ दो मुसलमानों को लेकर पहुँचे हुए हैं। एक तो वही है—काना रजब अली। दूसरा वाला लगता है कोई नवाब होगा—सिर पर बड़ी-सी रोएँदार टोपी और सुनहरी किमख़ाब की अचकन। हडसन साहिब उसको आदर के साथ 'मिर्ज़ा साहिब' कहकर बुला रहे हैं। बाद में मुझे पता चलता है कि वह इलाही बख़्श है—बादशाह के सबसे बड़े लड़के (जो पिछले साल गुज़र चुका) का ससुर।

मिर्ज़ा ने हडसन के कानों में कुछ कहा और उनकी इजाज़त लेकर चला गया। हम लोग फ़ैज़ बाज़ार से होते हुए दिल्ली फाटक को पार करते हैं। हडसन साहिब अपनी नंगी तलवार ताने सबसे आगे चल रहे हैं। काना रजब अली उनके पीछे है और मैं रजब अली के पीछे अपनी टुकड़ी की अगुवाई करता चल रहा हूँ। हमारे हाथों में भाले हैं और कन्धों पर भरी हुई बंदूकें लटक रही हैं। हममें से हरेक के पास दो-दो कृपाणें हैं—एक हमारी कमर से लटकती हुई और दूसरी घोड़े की काठी से।

सूरज उगने तक हम लोग आगरा जानेवाली सड़क पर आ पहुँचे हैं। सड़क के दोनों तरफ़ कई पुराने खँडहर हैं। सब-के-सब लोगों के हुजूम से पटे पड़े हैं। मर्दों के पास तलवारें और बंदूकें हैं, लेकिन किसी की भी हिम्मत नहीं होती कि हमारी तरफ़ बढ़े। कोई हमें एक शब्द तक नहीं कहता।

काना रजब अली साहिब के साथ-साथ चल रहा है। वह साहिब को इन खँडहरों के बारे में बताता चल रहा है। हडसन साहब उसकी बातों में ख़ास दिलचस्पी नहीं ले रहे, पर वह बोलता ही जा रहा है, "साहिब, वह देखिए फ़िरोज़शाह के महल के ऊपर बुद्ध का खम्भा लगा है।" कमबख़्त, साहिब को कैसी ग़लत-सलत बातें बता रहा है! मुसलमान बादशाह के महल के ऊपर बुद्ध का खम्भा भला क्या कर रहा है?

उसके बाद हम पुराने क़िले के पास से गुज़रते हैं। काना फिर बोलने लगता है, "साहिब,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुराना क़िला है। कभी इसको इंद्रप्रस्थ कहा जाता था। कहते हैं इसको आर्यों ने बनवाया था। इसके अन्दर शेरशाह सूरी की मस्जिद और बादशाह हुमायूँ की लाइब्रेरी है।''

कमीना काना ! यह अपने झूठों से बाज़ नहीं आएगा। अब साहिब को कौन बताएगा कि अगर यह हिन्दुओं का क़िला है तो इसमें मस्जिद का भला क्या काम ? लेकिन मैं चुप ही रहता हूँ। वैसे भी क्या फ़र्क़ पड़ता है इसकी बातों से ! हडसन साहिब कौन-सा इसकी बातों को सुन रहे हैं !

सूरज के सिर पर आने तक हम एक और ऊँची-सी इमारत के पास आ पहुँचते हैं। इसके भीतर मुझे सिर्फ़ एक ही चीज़ दिख रही है, उसका बड़ा-सा संगमरमरी गुम्बद। काने ने बताया कि यह बादशाह हुमायूँ का मक़बरा है। बुड्ढा बादशाह और उसका ख़ानदान यहीं छुपा बैठा है।

काना कुछ-न-कुछ बोलता ही जा रहा है, "और साहिब बहादुर, यह देखिए ईसा ख़ान की मज़ार ! और उधर, जहाँ ज़्यादा भीड़ है, वह जगह कभी 'अरब की सराय' कहलाती थी। और उसके उस तरफ़ देखिए—वह लाल गुंबद शहंशाह अकबर के वज़ीर अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना की मज़ार का है। अपने पीछे की तरफ़ देखिए हुज़ूर, शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का मक़बरा है। इस पीर की मज़ार के पास कई बादशाहों, बेगमों और शहज़ादों की मज़ारें हैं।"

हडसन साहिब उसकी बातों से ऊब गए लगते हैं। वे उसे टालने की कोशिश कर रहे हैं, "हाँ-हाँ, रजब अली, इन लाल मक़बरों के बारे में फिर कभी बताना। अभी कुछ और काम की बातें करनी हैं। चलो, जल्दी करो। मेरे पास ज़्यादा वक़्त नहीं है।"

हडसन साहिब और काना अपने-अपने घोड़ों से नीचे उतरते हैं। इनके घोड़ों की लगामें थामने के लिए मैं भी नीचे उतर जाता हूँ। काना हाथ से मक़बरे के फाटक पर दस्तक देता है। "कौन है ?" उधर से कोई पूछता है। "मौलवी रजब अली—कम्पनी बहादुर का दूत। मुझे बादशाह को एक ख़ास पैग़ाम देना है।"

कुछ देर बाद फाटक के कोने में बने छोटे-से दरवाज़े का पल्ला खुलता है और एक संतरी लय में बोलता है—"आलीजाह बहादुरशाह ग़ाज़ी, हिन्दुस्तान के बादशाह, शहंशाह की इजाज़त है कि कम्पनी बहादुर के वकील मौलवी रजब अली भीतर हाज़िर हों !"

वाह भई वाह ! चूहे की तरह बिल में छुपे हुए हैं और अपने-आपको अभी भी शहंशाह कहलवाते हैं !

रजब अली के भीतर क़दम रखते ही छोटा दरवाज़ा बंद हो जाता है। हडसन साहिब ज़मीन पर थूक देते हैं। वे फाटक के बाहर इधर से उधर गश्त लगाने लगते हैं। मुँह से एक शब्द भी नहीं बोलते और न ही दीवार से अपनी तरफ़ झाँकती लोगों की भीड़ की ओर आँख उठाकर देखते हैं। इतने सारे लोगों का ख़ामोश होकर खड़े-खड़े हमें ताकते रहना मुझे भीतर-ही-भीतर कँपा डालता है। सन्नाटे को तोड़ती हैं तो सिर्फ़ घोड़ों की हिनहिनाने की आवाज़ें और कौओं की काँव-काँव।

तभी अचानक लोगों के आपस में लड़ने-झगड़ने की आवाज़ें कानों में पड़ती हैं। कुछ लोग बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगते हैं, "नारा-ए-तकबीर…" और हज़ारों लोग एक-साथ जवाब देते हैं, "अल्लाहो-अकबर !" कुछ और लोगों की आवाज़ें भी उभरती हैं, "मार डालो फ़िरंगी को !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हज़ारों लोगों की उस उत्तेजित भीड़ के सामने पचास सिखों का दस्ता और एक गोरा साहिब कर ही क्या सकते हैं! ये लोग चाहें तो हमारा भुर्ता बनाकर रख दें। लेकिन वाहवाही हडसन साहिब की—वे ऐसे ही इधर से उधर गश्त लगा रहे हैं, जैसे कुछ सुना ही न हो।

एक घंटा यों ही बीत गया। मेरा मुँह सूखने लगा और वर्दी पसीने से तर-ब-तर हो गई। फाटक के पीछे से आवाज़ें क़रीब से क़रीबतर होती गईं। हडसन साहिब फिर अपने घोड़े पर चढ़ गए। मैंने भी काने का घोड़ा एक पेड़ से बाँधा और अपने घोड़े पर सवार हो गया। हडसन साहिब ने अपनी पिस्तौल ख़ोल से निकालकर तान ली। मैंने भी अपना भाला सँभाल लिया। बड़े फाटक के कपाट धीरे-धीरे खुले और एक के पीछे एक आती तीन पालकियाँ दिखाई देने लगीं। भयंकर-से दीखते आदमी बंदूकें थामे या तलवारें चमकाते उनके साथ-साथ आ रहे हैं। कुछ औरतें भी रोती-चिल्लाती पालकियों के साथ चली आ रही हैं। जैसे ही उन लोगों ने हडसन साहिब और उनके सिख घुड़सवारों को देखा, सब-के-सब वहीं जड़ हो गए। काना रजब अली साहिब के पास आकर अपना सिर हिलाने लगता है। दूसरे नम्बर की पालकी के पास लौटकर उसने कुछ कहा तो भीतर से एक बूढ़ा आदमी बाहर निकलता है। आदमी लम्बा और दुबला है और उम्र के चलते उसकी कमर झुकी हुई है। सफ़ेद छँटी हुई दाढ़ी, पैरों तक आती लम्बी अचकन और सिर पर रोएँदार टोपी। बूढ़ा लँगड़ाता हुआ-सा साहिब के पास पहुँचा और पूछने लगा, "आप ही हडसन साहिब बहादुर हैं?"

"जी, मैं ही मेजर हडसन हूँ! और आप बहादुर शाह?"

"हाँ, इस बदनसीब को इसी नाम से जाना जाता है, हडसन साहिब बहादुर! कया आप हमें वादा देंगे कि हमारी, हमारी बेगम ज़ीनत महल और हमारे बेटे शहज़ादा जवाँ बख़्त की ज़िंदगियाँ बख़्शी जाएँगी?"

"हाँ, विल्सन साहिब बहादुर जंगी लाट ने वादा दिया है कि आप लोगों की जानें बख़्श दी जाएँगी।"

भीड़ में फुसफुसाहटें होनी शुरू हो जाती हैं।

हडसन साहिब तभी अपनी पिस्तौल तानकर ज़ोर से चिल्लाते हैं, "तुम लोग सुनो! अगर तुम लोगों ने कोई भी दख़ल देने की कोशिश की तो मैं इन पालकियों में बैठे तीनों लोगों को कुत्ते की मौत मार डालूँगा। समझे?"

क्या ही जुर्रत की थी हडसन साहिब ने!

भीड़ पीछे हटने लगी। बूढ़े बादशाह ने अपनी तलवार म्यान से निकाली और काँपते हाथों से उसे सीधे ताना। हडसन साहब घोड़े से नीचे उतरे और तलवार को थामकर मेरी ओर बढ़ा दिया। क्या लाजवाब तलवार है! हीरों, हरे पत्थरों और सोने से मढ़ा हत्था!

उसके बाद पीछेवाली पालकी से बादशाह का लड़का जवाँ बख़्त भी उतरकर आगे बढ़ता है और वह भी अपनी तलवार साहिब के हवाले कर देता है। यह तलवार भी हीरों, जवाहरात और सोने से मढ़ी हुई है।

हडसन साहिब तीनों पालकियों को तयशुदा जगह पर ले जाने का हुक्म देते हैं। आगे-आगे पचास सवार चल रहे हैं और पीछे पालकियाँ, उसके पीछे हमारे साहिब और आख़िर में मैं। हमारे पीछे-पीछे भारी भीड़ चली आ रही है। हम लोग पीछे मुड़कर नहीं देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे कि कहीं वे यह न समझें कि हम डर रहे हैं और पीछे से ही वे हमें मार डालें। मेरी रीढ़ की हड्डी में सुरसुरी-सी दौड़ जाती है, शरीर फिर पसीने से तर-ब-तर होने लगता है। लेकिन हडसन! उनके लाल सुर्ख़ चेहरे पर डर का नामोनिशान तक नहीं है।

हम लोग पुराने क़िले की चहारदीवारी को पार करते लौट रहे हैं। भीड़ अब भी हमारे पीछे-पीछे चली आ रही है। हज़ारों विद्रोही सिपाही पुराने क़िले से बाहर निकलते दिखाई दे रहे हैं। हम लोग उनको नज़रअंदाज़ करते हुए पालकियों की चाल से क़दम मिलाते बढ़े जा रहे हैं। अगले आधे मील के बाद भीड़ ने हमारे पीछे आना छोड़ दिया है। अब सिर्फ़ हम लोग ही चल रहे हैं—पचास सिख सवार, हमारे हडसन साहिब तथा अपनी बेगम और बेटे समेत हिन्दुस्तान के बादशाह बहादुर शाह 'ज़फ़र'।

दिल्ली गेट से जाने के बजाय हम दायीं ओर मुड़ जाते हैं। सूरज ढल रहा होता है। तुर्कमान और अजमेरी फाटकों को पार करके हम क़ाबुली फाटक की तरफ़ से शहर में घुसते हैं। हडसन साहिब दिल्ली के बंदे-बंदे को बता देना चाहते हैं कि उनका बादशाह, बेगम और शहज़ादा अब अंग्रेज़ों के कब्ज़े में हैं। लेकिन बताना किसको? गलियाँ, कूचे—सब तो वीरान पड़े हैं। सड़कों पर सिर्फ़ कुत्ते ही घूमते दिखाई दे रहे हैं— लाशों को नोचते-खसोटते। हमारे जाने से चीलें उड़कर थोड़ी दूर चली जाती हैं। कोतवाली के सामने छह लाशें अब भी फाँसी के तख़्तों से लटकती दिखाई दे रही हैं और कौए उन पर चोंचे मार रहे हैं। हम लोग उस गुरुद्वारे के पास से गुज़र रहे हैं, जहाँ कभी औरंगे ने हमारे नवें गुरु को फाँसी दी थी। हम अपनी कृपाणें बाहर निकालकर सलामी देते हैं। मैं ज़ोर से नारा लगाता हूँ, "बोले सो निहाल..." सभी सवार चिल्लाकर जवाब देते हैं, "सत श्री अकाल!"

अभी दिन डूबा नहीं है कि हम लालक़िला पहुँच जाते हैं। गोरा संतरी पूछता है, "कौन हैं आप लोग?"

"मैं—मेजर हडसन, अपने क़ैदियों—दिल्ली के पूर्व बादशाह बहादुर शाह, उनकी बेगम ज़ीनत महल और बेटे जवाँ बख़्त को यहाँ छोड़ने आया हूँ।"

फाटक खुल जाते हैं। हडसन साहिब और काना रजब अली पालकियों के साथ भीतर चले जाते हैं।

हम लोगों ने उस दिन बीस बकरे काटे। जब तक उन्हें भूना गया, हम जमकर शराब पीते रहे। हम लोगों पर सुरूर छाने लगा और हमने नाचना-गाना शुरू किया। लहना को बुड्ढे बाबे के बहुत-से गाने आते हैं। पर वाह रे मेरी क़िस्मत! सुनने का मेरा नसीब कहाँ! साहिब का साईस आकर कहता है कि मुझे लालक़िले से बुलावा आया है, चलना होगा। मुझे रम का नशा चढ़ा हुआ है, पर जाना तो होगा ही।

मैं साहिब के कमरे में पहुँचता हूँ। साहिब सुबह मिली दोनों तलवारों को निरख-परख रहे हैं। लालटेनों की रोशनी में मूठों के नगीने सितारों की तरह चमक रहे हैं। क्या ही कारीगरी है! साहिब ने बताया कि एक तलवार पर बादशाह जहाँगीर का नाम खुदा है, दूसरी पर ईरानी हमलावर नादिरशाह का।

साहिब ज़्यादा ख़ुश नहीं लग रहे, "विल्सन साहिब बहादुर ने मुझे बस यही दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शाबास' तक नहीं कहा। इससे तो अच्छा होता कि मैं बुड्ढे बादशाह और उसकी कुतिया को मार ही देता।"

"साहिब, अगर आपने मुझे ज़रा-सा भी इशारा किया होता तो मैं उनके सिर धड़ से अलग कर देता।"

"मुझे मालूम है, मुझे मालूम है," वे बेचैनी से कहते हैं, "मैं ख़ुद ही कर देता। लेकिन हमें अपनी बात भी तो रखनी थी, आख़िर वादा किया था हम लोगों ने उनकी जानें बख़्शने का। लेकिन अब बात और है। मैंने बादशाह के बाक़ी बेटों और भतीजों को पकड़ने की इजाज़त ले ली है। उन्हीं बदमाशों ने मेमसाहिबों और उनके बच्चों को क़त्ल किया था। विल्सन साहब ने तो कह दिया है कि चाहे जो कुछ भी करो, सिर्फ़ मुझे परेशान मत करो।"

वे फिर बोले, "अच्छा, तुम सूबेदार मानसिंह से कहो कि कल इसी वक़्त सौ सवारों के साथ तैयार हो जाय। हो सकता है यह काम थोड़ा जोखिम-भरा हो। पर यह ठीक-ठाक पूरा हो गया तो तुम लोग ख़ूब जमकर रम पीना।"

अगले दिन सुबह मुझे जवानों को तैयार करने में काफ़ी परेशानी हुई। सूबेदार मानसिंह को उन पर कई बार चीख़ना-चिल्लाना पड़ा। लेकिन हडसन साहिब ऐन वक़्त पर आ गए। उनके साथ एक और गोरे साहिब मैकडाविल और वही काना रजब अली भी था। हम लोग मस्जिद के क़रीब अपने-अपने घोड़ों पर तैयार खड़े थे। दोनों साहिब आपस में बातें कर रहे थे। रजब अली उनके पीछे था, और उसके पीछे मैं था। हमारे पीछे हमारे दो सूबेदार चल रहे थे और उनके पीछे सारे सिख घुड़सवार। घुड़सवारों की पगड़ियों के कुल्ले सुबह की हवा में फड़फड़ा रहे थे और भाले धूप में चमक रहे थे। रजब अली ने दिल्ली के खँडहरों के बारे में मुझसे बखान करना शुरू नहों किया।

हम लोग हुमायूँ के मक़बरे के उत्तरी फाटक पर पहुँच गए। हमारे पहुँचते ही भीड़ ने हमें घेर लिया। क़रीबवाली 'अरब की सराय' से भी लोगों ने आना शुरू किया, कुछ निज़ामुद्दीन की तरफ़ से भी आ रहे थे। आसपास की इमारतों की दीवारें और छतें लोगों से पटी पड़ी थीं और उनमें से बहुतों के पास बंदूकें भी थीं।

एक बार फिर रजब अली भीतर गया। एक बार फिर हमें 'अल्लाहो-अकबर' के नारे सुनाई दिए। नारों की आवाज़ें फाटक के क़रीब आती जा रही थीं। धीरे-धीरे फाटक के किवाड़ खुले। एक बैलगाड़ी बाहर निकली। उसमें तीन आदमी दुबके हुए-से बैठे थे और काना रजब अली पहिए के साथ-साथ चल रहा था। बैलगाड़ी के पीछे हाथों में तलवारें और बंदूकें थामे नाराज़-से दिख रहे लोगों का समूह था। साहिब लोग अपने घोड़ों पर चढ़कर बैलगाड़ी के पास जा रुके। हडसन साहिब ने रजब अली से कहा, "क़ैदियों का परिचय दो!"

रजब अली बैलगाड़ी में बैठे आदमियों में से एक को छूकर बोला, "मिर्ज़ा मुग़ल बहादुर।"

वह आदमी बैलगाड़ी से उतर काँपते हाथों से अपनी तलवार साहिब लोगों को भेंट करने लगा। मैकडाविल साहिब ने उससे तलवार ले ली। रजब अली अब दूसरे आदमी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छूकर कहने लगा, "मिर्ज़ा अबू बक़र !"

वह भी बैलगाड़ी से उतारा और उसने भी अपनी तलवार मैकडाविल साहब को सौंप दी।

"मिर्ज़ा ख़िज्र सुल्तान !"

तीसरे ने भी पहले दोनों का अनुसरण करते हुए अपनी तलवार दे दी। तीनों क़ैदी बैलगाड़ी में वापस लौट आए। नज़ारा देखती भीड़ में से कुछ लोग उत्तेजित हो रहे थे। उनका ग़ुस्सा शोर-शराबे में बदलने लगा था। बैलगाड़ी के आगे बढ़ने के साथ-साथ भीड़ भी आगे बढ़ने लगी।

हडसन साहिब ने अपने घोड़े का रुख़ मोड़कर तलवार निकाल ली और ज़ोर से चिल्लाए, "ठहरो !" एकाएक सारे आलम पर सन्नाटा-सा छा गया। भीड़ जहाँ की तहाँ थमी-की-थमी रह गई। हडसन साहिब ने पचास घुड़सवारों को आदेश दिया कि वे बैलगाड़ी के साथ-साथ जायँ और ख़ुद मैकडाविल साहिब के साथ भीड़ के क़रीब पहुँच गए। भीड़ धीरे-धीरे पीछे खिसकते-खिसकते मक़बरे के फाटक तक जा पहुँची। हडसन साहिब ने ज़ोर से चीख़ते हुए कहा, "अपने हथियार डाल दो !"

गुरु का ही यह एक और चमत्कार था। लोगों ने अपनी-अपनी तलवारें-बंदूकें ज़मीन पर डाल दीं। हमें उन शस्त्रों को इकट्ठा कर बैलगाड़ियों में लादने में ही पूरे दो घंटे लग गए। मैंने अपनी पूरी ज़िंदगी में पहले कभी ऐसा दृश्य नहीं देखा था और न ही मैंने पहले कभी हडसन साहिब जैसा आदमी देखा था। वे तो सचमुच हज़ारों में एक थे।

हम लोग तेज़ी से घोड़े दौड़ाते हुए अपने दस्ते के साथ जा मिले। रास्ते-भर हथियारों से लैस लोगों के जत्थे हमें घूरते रहे। शहर तक पहुँचते-पहुँचते जनसमूह लगातार बढ़ता नज़र आ रहा था। लोगों के बीच से गुज़रते हुए हमने क़ैदियों के साथ चल रहे अपने साथियों के पास पहुँचकर ही साँस ली। अपने चारों ओर से लेकर शहर की दीवार तक—जहाँ भी नज़र जाती, हथियारबंद लोगों को हम 'अल्लाहो-अकबर' के नारे लगाते पा रहे थे। मैंने सतगुरु से माँगा कि अगर आज मेरी जान बच रही तो चाँदनी चौक के गुरुद्वारे में सवा रुपए का प्रसाद चढ़ाऊँगा। गुरु ने शायद मेरी विनती सुन ली। हडसन साहिब क़ैदियोंवाली बैलगाड़ी के पास आए और सबको वहीं रुक जाने का हुक्म देने लगे। लोगों की बड़बड़ाहटें एकदम शांत हो गईं।

हम लोग शहर से कोई आधा मील दूर एक फाटक में घुसे। हमारे दाहिनी ओर मटमैला काला-सा मुसलमानी महल था, जिसके बारे में रजब अली ने बताया कि उसके ऊपर बुद्ध का खम्भा लगा है। यहाँ भी वही अनगिनत लोगों की भीड़—किसी के हाथ में तलवार थी तो किसी के बंदूक। सूरज डूबने ही वाला था। हडसन साहिब ने अपने घोड़े की लगाम खींची और रुक गए। अपनी दबंग आवाज़ में वे ज़ोर से चिंघाड़े, "दिल्लीवालो ! आप सब सुन लो, और हमारे क़ैदी इन तीनों आदमियों को देख लो। ये तीनों क़ातिल हैं। इन लोगों के हाथों पर अनगिनत औरतों, मर्दों और बच्चों का ख़ून लगा हुआ है। तो देख लिया न आप लोगों ने इन्हें ? अब आप कम्पनी बहादुर का न्याय भी देखिएगा। आप लोग खड़े रहिए और देखते जाइए। और जो देखो, उसे याद रखना !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीड़ पीछे सिसकने लगी। हमारे सवारों ने बैलगाड़ी को घेर लिया। हडसन साहिब ने बैलगाड़ी में बैठे लोगों की ओर देखते हुए हुक्म दिया, "तुम तीनों नीचे उतरो और अपने कपड़े उतारो!"

तीनों के चेहरे डर से नीले पड़ने लगे। अपनी क़मीज़ें उतारते हुए उनके हाथ काँप रहे थे।

हडसन साहिब फिर चिल्लाए, "सारे कपड़े उतारो!"

पाजामे उतारते हुए उन तीनों के घुटने थरथराने लगे। हडसन साहिब फिर चीख़े, "अबू बक़र, आगे बढ़ो!"

अबू बक़र की उम्र क़रीब पैंतीस साल होगी। वह अपने नंगेपन को दोनों हाथों से ढाँपने की कोशिश करता हुआ आगे बढ़ने लगा।

"निहाल सिंह, इसकी बाँह से वह चीज़ उतार लो!"

मैंने उसका तावीज़ उतारकर जेब में रख लिया।

"मुझे अपनी बंदूक दो!"

मैंने अपनी बंदूक उतारकर साहिब को थमा दी।

"साहिब, मत मारिए!" अबू बक़र विनती करता, हाथ जोड़ता, गिड़गिड़ाता हुआ रोने लगा।

हडसन साहिब ने उसकी छाती पर निशाना लगाया और गोली दाग़ दी, "ठाह!" अबू बक़र 'हाय अल्लाह' कहता हुआ अपने ही ख़ून के तालाब में लुढ़क गया।

भीड़ में आतंक की सरसराहट दौड़ने लगी। एक आदमी भी अपनी जगह से हिल-डुल नहीं रहा था। बाक़ी दो क़ैदी पहले ही डर से अधमरे हो रहे थे। हडसन साहिब ने उनके माथों पर निशाना साधा और 'ठाह-ठाह' के साथ उनका भी काम तमाम कर दिया।

तीन नंगी लाशें अब ज़मीन पर लुढ़की पड़ी थीं। उनके ख़ून से मिट्टी लाल हो गई थी। उनके खुले हुए मुँहों से लार बह निकली थी। आँखें कंचों की तरह बाहर निकली पड़ रही थीं। इस हत्याकांड को ताकती हज़ारों हथियाबंद लोगों की भीड़ भी नीचे पड़ी लाशों की तरह ही मुर्दा लग रही थी।

सूबेदार मानसिंह ने अपनी कृपाण ऊँची कर हुंकार दी, "जो बोले सो निहाल···" हम सबने भी अपनी कृपाणें निकालकर आवाज़ दी, "सत श्री अकाल!"

लाशों को बैलगाड़ी में डाल दिया गया और हम शहर की ओर मुड़े। भीड़ एकाएक छँटने लगी। दरियागंज से गुज़रकर हम चाँदनी चौक के गुरुद्वारे के पास रुक गए। तीनों लाशों को हमने गुरुद्वारे की सीढ़ियों पर डाला और जामिया मस्जिद पहुँचे। मस्जिद में पहुँचकर हमने ख़ूब रम पी और जी भरकर बकरे का मांस खाया। लहना सिंह ने फिर वही अपना बुड्ढे बाबावाला गीत गाना शुरू कर दिया।

अगले दिन सुबह मैं अपने साहिब को उनकी बहादुरी की दाद देते हुए बधाई देने गया। वे कोई चिट्ठी लिख रहे थे। साहिब अपनी मेमसाहिब को रोज़ ही एक ख़त लिखते थे।

"हाँ तो निहाल सिंह!" साहिब तो ऐसे बोल रहे थे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। मैंने जवाब नहीं दिया तो वे फिर बोले, "क्या चाहिए?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"साहिब, मैं आपको आपकी बहादुरी के वास्ते बधाई देने आया हूँ।"

वे अपना सिर हिलाकर फिर से लिखने में मशग़ूल हो गए, जैसे कि मेरा वहाँ होना न होना एक बराबर था। मैं सोच में पड़ गया कि अब क्या करना चाहिए? मैंने यों ही पूछा, "साहिब को मेरी ज़रूरत है?"

उन्होंने अपनी चिट्ठी को लिफ़ाफ़े में डालकर मुझे थमाया और कहा, "डाक!"

मैंने चिट्ठी उनके हाथ से ले ली। मुझे महसूस हुआ कि साहिब थोड़े खुश नज़र आ रहे हैं। कहने लगे, "निहाल सिह, सूबेदार से कहो कि सभी सवारों को बता दे कि हम बहुत खुश हैं। उनको जितनी रम वे माँगें, दे दो और कह दो कि कुछ दिनों के वास्ते कोई काम नहीं।"

मैंने हिम्मत कर उनसे जामा मस्जिद में फैली अफ़वाहों की बाबत पूछ ही लिया, "साहिब, क्या यह सच है उन तीनों के कटे सिर बादशाह को भेंट किए गए? बादशाह की क्या हालत हुई उन्हें देखकर?"

सुनते ही हडसन साहिब के चेहरे का रंग बदल गया। वे मेरी आँखों में आँखें डालकर बोले, "निहाल सिंह, यह तुमने कहाँ से सुना?"

"साहिब, लोग यही बातें कर रहे हैं!"

"सुनो," वे मुझे चुप कराते हुए कहने लगे, "साहिब लोग सभ्य इन्सान हैं। हम लोगों के सिर काटकर और थालियों में सजाकर उनके अपनों को नहीं भेजते। कम्पनी बहादुर इन्साफ़पसंद आदमी हैं। वे ताक़तवर ज़रूर हैं, पर इन्साफ़पसन्द भी हैं। समझे?"

"जी हुजूर!" और उनको सलाम बजाकर मैं वापस जामिया मस्जिद लौट आया।

बहादुर शाह 'ज़फ़र'

हमारी कालकोठरी में एक दूत को भेजा गया कि वह हमें हमारे बेटों, पोतों और दूसरे रिश्तेदारों की मौत की ख़बर दे दे। हमारे दो बेटों मिर्ज़ा मुग़ल और मिर्ज़ा ख़िज्र और हमारे पोते मिर्ज़ा अबू बक्र को गोली मार दी गई थी। हमने कोई विरोध ज़ाहिर नहीं किया, बस यही दरख़्वास्त की कि हमारे माल-असबाब की बिक्री से जो पैसा आया हो, उसे हमारे रिश्तेदारों को दफ़नाने पर लगा दिया जाय। मिर्ज़ा मुग़ल, अबू बक्र और ख़िज्र सुल्तान की लाशों को बादशाह हुमायूँ के मक़बरे में दफ़्ना दिया जाय। झज्जर और फर्रुख़ नगर के नवाबों को फाँसी देने के बाद महरौली में हज़रत बख़्तियार काकी की मज़ार के पास दफ़्ना दिया गया। बल्लभगढ़ के राजा बहादुर को भी फाँसी दी गई थी। वह हिन्दू था, इसलिए उसको जमुना के किनारे निगमबोध घाट पर जलाया गया। हमारे बाक़ी के बेटों, नातियों, पोतों और भतीजों को भी मार डाला गया। पर उनके बारे में हमें कोई ब्यौरा नहीं दिया गया, सिवाय इसके कि उनकी लाशों को महरौली या निज़ामुद्दीन में दफ़्ना दिया गया है। क़त्ल होनेवालों में हमारे दोस्त शेख़ इमामबख़्श 'सभाई' और उनके दो बेटे भी थे। उनकी लाशों का क्या हुआ, किसी ने हमें नहीं बताया।

हमारी सारी सल्तनत पर पतझड़ की ऐसी आँधी आ चुकी थी, जिसने एक-एक बूटे को जड़ से उखाड़ फेंका था। दिल में चैन का नामो-निशान नहीं था। जीने की तनिक भी चाह नहीं रही थी। पिंजड़े में क़ैद पंछी जैसे आज़ाद होने के लिए तड़पता है, फड़फड़ाता है और अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंखों को पिंजड़े की सलाख़ों के साथ टकरा-टकराकर तोड़ डालता है, वैसे ही हम भी अपनी कालकोठरी की दीवारों से सर टकराते हुए अपनी क़िस्मत को कोसा करते। कभी जो दुनिया फूलों का गुलिस्ताँ नज़र आया करती थी, आज वही काटने को दौड़ रही थी। यही वह शहर था जो सूरज की रौशनी में सोने की तरह चमकता था और रातों को चाँदनी में नहाता था, यही वह शहर था जहाँ हूरों-जैसी ख़ूबसूरत औरतें हुआ करती थीं और शबाब की मस्ती से भरा आलम हुआ करता था। आज वही शहर क़ब्रिस्तान-सा वीरान हुआ पड़ा है। किसने लूटा इसको? और इसकी लूट को लोग कहाँ ले गए? क्या दिल्ली इसी को कहते थे? दुनिया-भर की नगरियों की रानी! यह कैसी बिपत आन पड़ी थी दिल्ली पर?

हमारे साथ ये लोग कैसा सलूक कर रहे थे—यह बयाँ करते-करते तो शायद स्याही के तालाब भी सूख जायँ। लोग खिड़कियों से झाँक-झाँककर हमें ऐसे देखते, जैसे हम पिंजरे में बंद कोई जानवर हों। हमारी कोठरी के दरवाज़े कभी-कभी एकदम खोल दिए जाते। साहिबों के जत्थे के जत्थे आते और खड़े-खड़े हमें देखते रहते। हमारी औरतें अपने चेहरे दीवारों की ओर मोड़कर छिपा लेतीं। कोई भी गोरा मर्द या औरत हमारी कोठरी में आता तो हमें उनको सलाम करना पड़ता। वे हमारे ऊपर फब्तियाँ कसते, "तुम हिन्दुस्तान के बादशाह बनना चाहते थे? तुम ही?" कभी-कभी गोरा छोकरा हमारी हँसी उड़ाते हुए कहता, "बुड्ढा मैन, तुम्हारी औरतें कहाँ हैं?" और वे सब एक-साथ हँसने लगते।

ख़ुदा की मार समझकर हम अपनी सारी बेक़द्री बर्दाश्त करते रहे।

माँगने पर हमें काग़ज़ और क़लम भी मुहैया नहीं कराया गया। हम अपने हुक़्क़े से कोयले के टुकड़े बचाते और उन्हीं से अपनी कालकोठरी की दीवारों पर अपना कलाम लिखते रहते। वक़्त गुज़ारने का एक ही तो तरीक़ा था—नमाज़ पढ़ना या फिर शायरी में लगे रहना।

जवानी के दिनों की बात है। किसी आशिक़ ने शिकायत की कि उसकी माशूक़ा उसे क़ैद में रखकर सता रही है। हमने इसी पर एक शे'र लिख डाला जिसे लोगों ने ख़ूब पसन्द किया। शे'र यों है कि—

'बेतरह दामे-ज़ुल्फ़े-बुताँ[1] में हुआ असीर[2]
छूटे ये इस बला से ख़ुदाया किसी तरह।'

लेकिन जब क़ैद करनेवाला महबूब नहीं, बल्कि दुश्मन हो, उस हालत में भला यह शे'र कैसे जायज़ हो!

जंगी लाट के वादे की भी क्या कहें! कहते थे कि हमारी जानें बख़्श दी जाएँगी। पर जल्द ही हमें यह पता चल गया कि उनका मतलब क्या है। वह हमें बर्बर कहता था, क्योंकि हमारी फ़ौजों ने उनके बीवी-बच्चों का क़त्ल किया था। जो लोग असलियत जानते थे, वे क़सम खाकर कह सकते थे कि गोरों के उस क़त्लेआम में हमारा कोई हाथ नहीं था। पर साहिब लोगों ने हमारी बात मानने से साफ़ इनकार कार दिया। वे यह मानने को तैयार ही नहीं थे कि हमने क़त्लेआम को रोकने की पूरी कोशिश की थी। अपने तीन दर्जन लोगों के बदले उन्होंने हमारे हज़ार गुना ज़्यादा लोगों को मार डाला। उस कमीने, चापलूस, काने रजब

1. माशूक़ा की ज़ुल्फ़ों के जाल में, 2. क़ैद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अली ने तो हमें पूरा भरोसा दिलवाया था कि हमारी जान बख़्श दी जाएगी। लेकिन बावजूद उसके, हमारे ऊपर मुक़द्दमा चलाया गया। साहिबों ने ही हमारे ऊपर इल्ज़ाम लगाए, वही हमारे वकील बने हुए थे और उन्हें ही मुक़द्दमे का फ़ैसला करना था। उन्होंने हमारा नमक खाए लोगों से क़तारें लगा-लगाकर हमारे ख़िलाफ़ गवाहियाँ दिलवायीं। हमारे ख़िलाफ़ गवाहियाँ देनेवालों में हकीम अहसानुल्लाह, दरवेश हसन अस्करी, रजब अली, गुलाम अब्बास और मुकुन्द लाल जैसे लोग थे, जो कभी हमारे एकदम क़रीबी हुआ करते थे।

हमें यह कहते हुए अफ़सोस होता है कि हमारे ख़िलाफ़ गवाहियाँ देनेवालों में वह कुजात आयशा ऑल्डवेल भी थी, जिसकी लड़कियों और खुद की जान बचाने के लिए हमने अपनी ज़िंदगी का जोखिम तक उठाया था। इस आयशा की माँ ने एक गोरे से ब्याह किया था। आयशा की माँ मुसलमानी थी, लेकिन रंग-रूप में वह अपने बाप पर गई थी और उनसे अंग्रेज़ी बोलनी भी सीख ली थी। और फिर उसने एक बुड्ढे अंग्रेज़ से शादी की। हम उसके शौहर को तो नहीं बचा पाए, लेकिन जब वह पाक कुरान की आयतें पढ़ने लगी और उसकी लड़कियाँ कलीमा पढ़कर सुनाने लगीं, तो हम उसको बचाने में कामयाब हो गए। हमें भरोसा था कि कम-से-कम वह तो असलियत बयान करेगी ही और साहिब लोगों को बता देगी कि हम क़तई नहीं चाहते थे कि गोरों और उनके बीवी-बच्चों को उस तरह क़त्ल किया जाय। लेकिन उस आयशा ऑल्डवेल ने अपने दोनों मज़हबों के साथ दग़ा की—इस्लाम के साथ भी और ईसाइयत के साथ भी। अल्लाह उसको कभी माफ़ नहीं करेगा।

हमारा गवाह तो सिर्फ़ अल्लाह ही है। कोई भी इन्सान हमारी तरफ़दारी में मुँह खोलने की हिम्मत नहीं रखता। फ़िरंगियों ने हमें सभी इल्ज़ामों का गुनहगार साबित किया और हमें उस सरज़मीं से दूर जाने का फ़ैसला सुनाया जिसको हमारे पुरखों ने फ़तह किया था और जिस पर हमारा ख़ानदान तीन सौ सालों तक राज करता रहा था। इससे तो अच्छा था कि वे हमें फाँसी की सज़ा सुनाते। कम-से-कम हमारी हड्डियाँ दिल्ली की मिट्टी में तो मिलतीं!

हमारी चौदह बेगमों और बेटे जवाँ बख़्त ने देश-निकाले की सज़ा भुगतने के लिए हमारे साथ जाना मंज़ूर कर लिया। लेकिन बाद में उनका दिल बदल गया और किसी-न-किसी बहाने हिन्दुस्तान की सरहद पार करने से पहले ही उन्होंने एक-एक कर हमारा साथ छोड़ दिया। सिर्फ़ हमारी प्यारी बेगम ज़ीनत महल ही हमारे साथ बनी रही। वह सुख-दुख में आख़िरी दम तक हमारा साथ देती रही। उसे देखकर हमें हर बार अपने पाक पैग़म्बर का वो कहा याद आता जो उन्होंने अपनी बीवी ख़दीजा के लिए कहे थे, "मेरी ग़रीबी में उसने मुझे दौलतमंद किया; सारी दुनिया ने जब मुझे छोड़ दिया, तब उसने मुझे सहारा दिया; जब लोगों ने मुझे झूठा कहा, तो उसने मुझ पर भरोसा किया!"

अपने देश-निकाले के सफ़र के दौरान हमने लिखा—

लगता नहीं है जी मेरा उजड़े दयार[1] में,
किसकी बनी है आलमे - नापाएदार[2] में।
बुलबुल को पासबाँ से न सैयाद[3] से गिला,
क़िस्मत में क़ैद थी लिखी फ़स्ले-बहार[4] में।

---

1. नगर, 2. नश्वर संसार, 3. शिकारी, 4. वसंत ऋतु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह दो इन हसरतों से कहीं और जा बसें,
इतनी जगह कहाँ है दिले - दाग़दार में।
इक शाख़े-गुल[1] पे बैठ के बुलबुल है शादमाँ[2],
काँटे बिछा दिए हैं दिले - लालाज़ार[3] में।
उम्रे - दराज़ माँगकर लाए थे चार दिन,
दो आरज़ू में कट गए, दो इंतज़ार में।
है कितना बदनसीब 'ज़फ़र' दफ़्न के लिए,
दो गज़ ज़मीं भी मिल न सकी कूए-यार[4] में।

17

भागमती

भागमती मुझसे एकदम निराश हुई पड़ी है। कहने लगी, "ये सारे के सारे पंजाबी ख़ाली-जेब आए थे इस दिल्ली में। और अब देखो इनको! सारा शहर इन्होंने अपनी ही मिल्कियत बना लिया है। अपने लिए महल-दोमहले खड़े कर लिये हैं सबों ने! दबाकर तंदूरी-चिकन खाएँगे, व्हिस्की चढ़ाएँगे और अपनी मोटी-ताज़ी औरतों को दिल्ली की हवाख़ोरी के लिए बड़ी-बड़ी विदेशी कारों में घुमाने ले जाएँगे। और तनिक अपनी ओर तो देखो! वही छोटा-सा फ़्लैट और वही खटारा-सी गाड़ी जिसका पुर्ज़ा-पुर्ज़ा शोर करता है, सिवा उसके हॉर्न के। अजी, दूर क्या जाना! अपने ही गाँव के उन लोगों को देख लो, जो कुछ साल पहले ही यहाँ आए थे और आज आधी नई दिल्ली के मालिक बने बैठे हैं। करोड़पतियों-जैसा रहन-सहन है उनका। पता नहीं तुमको क्या मिलता है दिन-भर काग़ज़ों पर मक्खियाँ मार-मार कर? सालों हो गए तुमने मुझे एक साड़ी तो क्या, कलाई-भर चूड़ियाँ तक लेकर नहीं दीं!"

भागमती जब ऐसे जली-कटी सुनाने के मूड में होती है, तो बेहतर यही रहता है कि चुप ही रहा जाय। लेकिन कभी-कभी मेरा चुप रहना भी उसके लिए दुश्वार हो जाता है और वह बोलती ही जाती है—"अजी, कुछ बोलते क्यों नहीं? कुछ नहीं होता तुमसे क्या? बुढ़ा जो रहे हो! दिन-भर इसी आरामकुर्सी में घुसे पादते रहो! बस्स!"

आख़िर सहने की भी कोई हद होती है। मैं भी भड़क उठता हूँ, "चुप करो! तुमको अपने काम के पैसे मिलते हैं। और क्या चाहिए तुम्हें?"

वह मेरी आँखों में ताकते हुए व्यंग्य-भरे स्वर में कहती है, "अजी छोड़ो! तुम दे ही क्या सकते हो! और रही पैसों की बात! मैं जब यहाँ से निकलती हूँ न, तो बाहर बैठा वह बुद्धू सिंह भी पूछता है कि 'पान-बीड़ी के लिए तुमको कितना मिला?' तो पान-बीड़ी लायक ही होता है, वह जो तुम मुझे देते हो! मुझ पर गुस्सा करने की ज़रूरत नहीं। सच्ची बात तो बुरी लगती ही

1. फूलों की डाली, 2. ख़ुश, 3. दिल का बग़ीचा, 4. यार की गली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। पर मैं तो तुम्हारे भले के लिए ही कह रही हूँ। सच कहती हूँ—कोई काम का काम शुरू करो। ठेकेदारी का धंधा कर लो, नहीं तो बने-बनाए कपड़ों के एक्सपोर्ट का बिज़निस कर लो। दिन-रात अखबारों के लिए कलम घिसने से तो अच्छा ही होगा, और उस गाइड के काम से भी कि मेम साहिबों को कुतुबमीनारें ही दिखाते रहो !"

भागमती की बातों में कुछ सचाई तो ज़रूर है। लेकिन अब इस उम्र में एकदम नया धंधा भी भला मैं कैसे शुरू कर लूँ? कुछ जानकारी तो होनी चाहिए उस काम की, जो किया जाय ! और फिर नया धंधा शुरू करने के लिए कुछ पूँजी भी चाहिए। वह कहाँ से आएगी? मैं फिर से चुप्पी धारण कर लेता हूँ। दरअसल चुप्पी ही इस तरह के हमलों से बचने का सबसे अच्छा उपाय है।

मैं कोई किताब उठाकर पढ़ने में मशग़ूल होने का अभिनय करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि वह दफ़ा हो और मुझे अकेला छोड़े। दिल्ली की तरह भागमती से भी मैं ऊबता जा रहा हूँ। अगर मेरे पास थोड़ा-बहुत रुपया जमा हो गया तो लंदन या न्यूयॉर्क का हवाई-टिकट ख़रीदूँगा और भागमती को बताए बिना ही किसी दिन रात के समय दिल्ली से खिसक लूँगा।

वह भी कोई कम नहीं है। मेरे हाथ से किताब छीन, फ़र्श पर मेरे आगे बैठ जाती है। मेरे घुटनों पर हाथ रखकर कहने लगती है, "आजकल तुम बहुत चिड़चिड़े होते जा रहे हो। कुछ भी कह दो तो झट गुस्सा हो जाते हो। पहले तो तुम ऐसे नाराज़ नहीं हुआ करते थे मुझसे ! आजकल पता नहीं क्या होता जा रहा है तुमको ?"

मैं उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। चुप्पी ही साधे रहता हूँ, क्योंकि जानता हूँ, वह जो-जो कह रही है, ठीक ही कह रही है। वह अपने दोनों हाथों से मेरे पाँव दबाने लगती है। बड़ा मज़ा आ रहा है, और आराम मिल रहा है। जानता हूँ कि मैं बाज़ी हार गया हूँ। भागमती जैसी औरत मुझे और कहाँ मिलेगी, जो मेरे सुख के लिए अपने-आपको नीचे गिरा दे। मेरे पैर अपनी गोद में रखकर वह मेरे तलवे सहलाने लगती है। मालिश करने में भी उसका जवाब नहीं। वह जानती है कि सेक्स से ज़्यादा मज़ा मुझे अब हाथ-पैरों की मालिश करवाने में आने लगा है। कभी-कभी तो सेक्स के लिए तब तक मेरी उत्तेजना ही नहीं जगती, जब तक भागमती मेरे सिर की अच्छी तरह मालिश नहीं कर देती। अपनी गठीली मज़बूत उँगलियों से जब वह मेरी खोपड़ी में तेल मलती है, तो खुश्की से पैदा हुई खुजली मिट जाती है। पैरों की मालिश से भी बहुत आराम मिलता है। नींद न आती हो, तो मालिश कराते ही आँखें झपने लगती हैं। मालिश से मेरा गुस्सा भी काफ़ूर हो जाता है। तब हवाई टिकट कटाकर भागमती और दिल्ली को छोड़कर लंदन भागने की बेचैनी भी नहीं रहती।

मैंने आपको बताया न कि एक बार अगर आप दिल्ली और भागमती—इन दोनों के चंगुल में फंस गए, तो समझिए फिर कभी इनसे आपका छुटकारा सम्भव नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

18

भवन-निर्माता

हमारी ड्योढ़ी की दीवारों पर दो तस्वीरें लटकी रहती थीं। ड्योढ़ी घर में जाने के रास्ते के अलावा मिलने आनेवालों के लिए बैठने की जगह भी थी। वहाँ लकड़ी का एक दीवान बिछा हुआ था, जिस पर गाव-तकिए के सहारे बैठकर मेरे पिता लोगों से बातें करते थे। दीवान के साथवाली दीवार पर इंगलैंड की महारानी विक्टोरिया की तस्वीर लगी हुई थी और उसके ठीक सामनेवाली दीवार पर गुरु नानक की। मेरी माँ हर सुबह दही बिलोते वक़्त जपुजी-पाठ किया करती थी। और उसके बाद दो अगरबत्तियाँ जला देती थी। फिर इन दोनों तस्वीरों के फ्रेमों में एक-एक अगरबत्ती खोंसकर वह उन्हें प्रणाम किया करती थी—पहले गुरु नानक को हाथ जोड़ती और फिर महारानी विक्टोरिया को। इसी तरह मेरे पिता भी शाम को पाठ करने के बाद रानी की तस्वीर के सामने खड़े हो जाते और हाथ जोड़कर ज़ोर-ज़ोर से कहते, "रब्ब हमारी मलिका को लम्बी उम्र दे! उसका राज-पाट बना रहे! उसकी प्रजा पर भी रब्ब का आशीर्वाद रहे, ताकि वह वफ़ादार और संतोषी बनी रहे।"

जब मलिका विक्टोरिया 1901 में स्वर्ग सिधारी, तो हमारे यहाँ दो दिन और दो रात गुरु ग्रंथ साहिब का अखंड पाठ चलता रहा। हम लोगों ने प्रार्थना की कि मलिका की आत्मा को शांति मिले और गुरु के चरणों में जगह मिले। रानी के बेटे एडवर्ड की ताजपोशी पर भी हमने अपने भाईचारेवाले घरों में मिठाइयाँ भेजीं और नौ साल बाद जब किंग एडवर्ड मरा तो भी हमारे घर अखंड पाठ रखा गया।

उसी के कुछ दिनों बाद जॉर्ज षष्टम को हिन्दुस्तान का सम्राट घोषित किया गया। तब भी हम लोगों ने पड़ोसियों में मिठाइयाँ भेजीं। हमारे घरवालों का जितना विश्वास गुरु में था, उतनी ही श्रद्धा-भक्ति अपने अंग्रेज़ी शासकों के प्रति भी थी, जिनका हम नमक खाते थे।

जब हमने यह ख़बर सुनी कि किंग जॉर्ज और मलिका मेरी का जहाज़ 2 दिसम्बर, 1911 को बंबई पहुँच रहा है, तो मैं अपने पिता के साथ रेलगाड़ी से दिल्ली आया। उद्देश्य यह था कि राजा-रानी के दिल्ली-आगमन पर दर्शन हो जायँ। साथ ही दिल्ली में सड़कें और इमारतें बनने के ठेके मिलने की संभावना पर भी थोड़ी-बहुत खोजबीन कर लेंगे। मेरे पिता पिछले कुछ सालों से इसी धंधे में ठेकेदारी कर रहे थे। उन्होंने शिमला-कालका रेल-लाइन बिछाई थी और रास्ते में पड़नेवाली सभी सुरंगें बनाई थीं। पर आजकल वह यह सोचने लगे थे कि पहाड़ों में सुरंगें खोदने के बजाय दिल्ली में इमारतें खड़ी करने में ज़्यादा पैसा मिलेगा। उन्होंने मुझे दसवीं भी पास नहीं करने दी और मेरी पढ़ाई-लिखाई छुड़वा दी—"पढ़ाई-लिखाई तो पैसा कमाने के वास्ते सिर्फ़ जोड़-घटाना, गुणा-भाग आना चाहिए। तुमने तो वह सब कर ही लिया है। बाक़ी तो आलतू-फ़ालतू ही होता है।" मैं पढ़ाई नहीं छोड़ना चाहता था। विरोध करते हुए बोला कि मैं अंग्रेज़ों की तरह अंग्रेज़ी लिखना-बोलना सीखना चाहता हूँ। सुनते ही पिताजी का पारा चढ़ गया और मुझे गालियाँ देने लगे, "भडुआ कहीं का!" थोड़ी देर में गुस्सा शांत हुआ तो समझाने लगे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पुत्तर, अंग्रेज़ लोग नहीं चाहते कि हिन्दुस्तानी भी उनके-जैसी अंग्रेज़ी लिखना-बोलना सीख जायँ। वे तो उन्हीं लोगों को ज़्यादा पसंद करते हैं, जो टुट्टी-फुट्टी अंग्रेज़ी बोलें।"

मेरे पिता को गुस्सा बहुत जल्दी आता था। कभी-कभार वे अपनी छड़ी से एकाध ठोंक भी दिया करते थे। जब मैं चौदह साल का हुआ तो मेरा स्कूल यह सोचकर छुड़ा दिया गया कि काम के लायक अब मैं काफ़ी-कुछ सीख गया हूँ। तभी से उन्होंने मुझे अपने साथ ठेकेदारी के धंधे में लगा लिया। सत्रह साल का हुआ तो पड़ोसी गाँव की एक तेरह साला लड़की से मेरी शादी कर दी। वह अभी अठारह की भी नहीं हुई थी और मैं इक्कीस का कि हमारे दो बेटे भी हो गए थे। तभी मेरे पिता को न जाने कैसे यह सूझा कि मैं अपने बीवी-बच्चों को गाँव में ही छोड़कर उनके साथ दिल्ली चला चलूँ।

तो हम दोनों दिल्ली में अपनी क़िस्मत आज़माने आए थे। मैंने दिल्ली-जैसा शानदार शहर पहले कभी नहीं देखा था। दरअसल जब हम दिल्ली पहुँचे, तो पाँच सौ से भी ज़्यादा राजा-रानियाँ अपने सारे ताम-झाम के साथ दिल्ली में डेरा डाले हुए थे। सिर्फ़ राजा-रानियाँ ही नहीं, आस-पास के इलाक़ों के जाने-माने नागरिक भी हज़ारों की तादाद में दिल्ली आए हुए थे, ताकि इंग्लैंड के राजा-रानी को देख सकें। हम लोगों को तीन दिन तो ठिकाना तलाशने में ही लग गए। तब कहीं डफ़रिन पुल के पास एक बायस्कोप के पीछे किसी पुरानी इमारत के पहले तल्ले पर दो कमरे किराए पर मिले। इसी डफ़रिन पुल के नीचे से होकर दिल्ली से पंजाब, राजपूताना और हिन्दुस्तान के मध्यवर्ती राज्यों के लिए गाड़ियाँ गुज़रा करती थीं।

शाही दरबार की तैयारियों को देखने जाने से पहले हमने अपने कमरों के लिए चारपाइयाँ, मेज़ और कुर्सियाँ वग़ैरह ख़रीद ली थीं। शहर की उत्तर दिशा में, जमुना नदी के पूर्वी किनारे से लेकर शालीमार बाग़ के पच्छिमी किनारे तक फैले क़रीब पच्चीस वर्गमील के इलाक़े में चालीस हज़ार तम्बू लगाकर किंग्सवे-कैम्प नाम का एक शहर ही बसा दिया गया था। दिन-भर फ़ौजी दस्तों की रिहर्सलें होती रहतीं। सजे-धजे हाथियों को सिखाया जाता कि कैसे झुककर सलामी देनी थी। महाराजाओं और उनके शहज़ादों को भी क़तारों में खड़ा करके अभ्यास कराया जाता कि राजा और रानी को किस तरह अदब पेश करना है। सारे कार्यक्रम के एक-एक पल की कई-कई बार रिहर्सल होती और वायसराय लॉर्ड हार्डिंग, उनकी वायसराइन तथा मुख्य सलाहकार मेल्कॉम हेली अपने घोड़ों पर उसका मुआयना करने आते। कहते हैं कि समारोह के पहले महीने-भर में क़रीब 10,000 चूहों को मारा गया, ताकि दरबार की कार्यवाही में कोई बाधा न आए।

2 दिसम्बर, 1911 की सुबह हमारी घड़ी का अलार्म ठीक चार बजे ही बज उठा। मेरे पिता की ज़िंदगी इसी अलार्म-घड़ी से निर्देशित होती थी। उस वक्त इतनी सर्दी थी कि बर्फ़-जैसे ठंडे पानी से मुँह धोते हुए मेरे दाँत किटकिटाने लगे थे। रात की बची बासी रोटियों को गरमागरम चाय की चुस्कियों के साथ निगलकर हम मुँह-अँधेरे ही घर से निकल पड़े। डफ़रिन पुल को हमें समय रहते ही पार कर लेना था, वरना थोड़ी देर बाद पुलिस इसकी नाकेबंदी कर देती, क्योंकि शाही जोड़े की रेलगाड़ी इसी पुल के नीचे से गुज़रनेवाली थी।

अनगिनत लोगों की भीड़ का पूरा-का-पूरा रेला हमारे साथ-साथ चल रहा था। हमें अपने गंतव्य तक पहुँचने के लिए तीन मील का रास्ता तय करना था। किंग्सवे कैंप जगमगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था। जब तक सड़कों की बत्तियाँ बुझीं और पौ फटी, हम लोग अपने-अपने ठिकाने पर जा पहुँचे थे। ख़ूब बड़ा चौकोर-सा अहाता था, जो लाल क़ालीनों से ढँका हुआ था। एक कोने में बड़ा-सा मंच बना था, जिस पर छतरियोंवाले दो सिंहासन सजे हुए थे। सूरज निखरकर चमकने लगा था। अहाते में लगभग तीन लाख लोग जमा होंगे। मैंने हैरान होकर अपने-आप से पूछा कि दिल्ली को छोड़ हिन्दुस्तान के किस कोने में ऐसा सभ्य और सुसंस्कृत जनसमूह देखने को मिलेगा? गोरे सिपाही लोगों को अपनी-अपनी जगह बैठा रहे थे। मजाल कि उनसे कोई किसी भी तरह का सवाल करता! कहीं कोई शोर-शराबा या उथल-पुथल नहीं थी। अलग-अलग फ़ौजी बैंड लगातार बजते जा रहे थे, एक के बाद एक।

तभी अचानक बैंड बजने बंद हो गए। दूर से ही हमने एक-एक कर छूटी इक्कीस तोपों की आवाज़ें सुनीं। तो दिल्ली रेलवे-स्टेशन पर राजा-रानी की सवारी आ पहुँची है!

क़रीब एक घंटे बाद शहर की ओर से लोगों के इस ओर बढ़ने के लक्षण दिखाई देने लगे। हम समझ गए कि शाही सवारी अब यहाँ पहुँचने ही वाली है। गले में बँधी घंटियों को खनकाती हाथियों की क़तारें सामने से गुज़रने लगीं। उसके बाद फ़ौजी बैंडों के दस्ते गुज़रे, फिर पैदल सेना और फिर घुड़सवारों की क़तारें। उसके बाद और बैंड तथा और हाथियों की टुकड़ियाँ। मैं हर हाथी को देखता जाता कि कहीं उन्हीं पर राजा-रानी न सवार हों। उनकी तस्वीरें तो मैंने देख ही रखी थीं। ख़ैर, जब सारे हाथी उधर से पार हो गए तो मैंने अपने पिता से पूछा, "राजा-रानी कहाँ हैं?" पिताजी को भी कुछ पता नहीं था। उन्होंने तुक्का भिड़ाते हुए, घोड़े पर सवार एक लम्बे-से आदमी की ओर इशारा करते हुए कहा—"वह देखो, वह लाट साहिब है।" तभी मेरे पिता की बग़ल में बैठा कोई आदमी कहने लगा, "और लॉर्ड हार्डिंग के पास सफ़ेद घोड़े पर सवार वह नाटा-सा आदमी राजा है।" मुझे बड़ी निराशा हुई। राजा को तो हाथी पर होना चाहिए था। और दूसरी बात यह कि वायसराय तो इतना लम्बा और राजा पिद्दी-जैसा! यह नहीं हो सकता। दरअसल लोगों को पता ही नहीं चला कि राजा-रानी उनके सामने से गुज़रते हुए मंच की ओर बढ़ गए हैं और अब अपने सिंहासनों पर बैठनेवाले हैं। जब लोगों ने उन्हें सिंहासनों के पास पहुँचते देखा और 'गॉड सेव द किंग' का राष्ट्रगान शुरू हुआ, तभी उन्हें एकाएक उनकी उपस्थिति का भान हुआ और वे उठकर खड़े हो गए।

हम जहाँ बैठे थे, वहाँ से हमें किसी का भी भाषण अच्छी तरह सुनाई नहीं दे रहा था। गोरे फ़ौजी हमें अपनी जगह पर बैठे रहने के लिए तो डरा-धमका सकते थे, लेकिन बतियाने से तो वे भी नहीं रोक सकते थे। हरेक अपने अगल-बग़ल बैठे लोगों से कह रहा था, "यह देख, वह देख!"

तभी अचानक वहाँ बैठे लोगों में भगदड़-सी मच गई। किसी शामियाने में आग लग गई थी। लोगों ने देखा तो घबराकर पागलों-जैसे इधर-उधर भागने लगे। गोरे सिपाही 'बैठ जाओ, बैठ जाओ' करते लोगों को अपना जगह पर बैठे रहने के लिए कह रहे थे, पर कोई भी उनकी बात सुनने को तैयार नहीं था, क्योंकि सबको अपनी जान प्यारी थी। आग में फँसने को कौन वहाँ बैठा रहता! मेरे पिताजी और मैं भी बाक़ी लोगों के साथ भागे जा रहे थे। कुछ ही मिनट में हम कैम्प से बाहर निकल आए और डेरे की ओर बढ़ने लगे और वहाँ पहुँचकर ही हमने चैन की साँस ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने बंगाल और महाराष्ट्र के शरारती तत्त्वों के बारे में पढ़ रखा था। हो सकता है इस आगज़नी के पीछे उन्हीं का हाथ हो। शहर में तो अफ़वाहों का बाज़ार गर्म था। कोई कह रहा था कि कैसे मामला शुरू हुआ, कोई यह बता रहा था कि कितनों की जानें गईं और कोई इस बात का बखान कर रहा था कि कैसे राजा और रानी—दोनों बच निकले। वे यह अनुमान भी लगा रहे थे कि इस बंटाढार के कारण किस-किस पर गाज गिरनेवाली है। यह तो तय था कि सरकार का गुस्सा शहर पर उतरेगा और शायद उसे तहस-नहस ही कर दिया जाय। लेकिन शाम के अख़बारों से पता चला कि आग शॉर्ट-सर्किट से लगी थी और उसी समय उस पर क़ाबू भी पा लिया गया था। उस दुर्घटना में कोई भी व्यक्ति हताहत नहीं हुआ था। अख़बारों के विशेष संस्करणों में यह भी लिखा गया था कि सरकार ने दो बड़े निर्णय लिये हैं—पहला यह कि छह साल पहले किया गया बंगाल का बँटवारा रद्द कर दिया जाएगा और दूसरा यह कि भारत की राजधानी कलकत्ता के बजाय दिल्ली बना दी जाएगी।

सन् 1905 में लॉर्ड कर्ज़न द्वारा किए गए बंगाल के विभाजन ने हिन्दुओं को काफ़ी नाराज़ कर दिया था, क्योंकि वे समझने लगे थे कि सरकार ने पूर्वी बंगाल में मुसलमानों को सत्ता देकर हिन्दुओं और मुसलमानों को बाँटने की कोशिश की है। युवा बंगाली हिन्दू, मराठे और कुछ बहका दिए गए सिख इस बँटवारे को बेकार करने और अंग्रेज़ी सत्ता का सफ़ाया करने की क़समें खाने लगे थे। बंगाल में अंग्रेज़ अफ़सरों के ऊपर बम फेंके गए और कुछ की हत्याएँ भी की गईं। लॉर्ड कर्ज़न के बाद वायसराय बने लॉर्ड मिंटो पर गुजरात में जानलेवा हमला हुआ। लंदन में पढ़ रहे एक पंजाबी युवक ने वहाँ वाइली की गोली मारकर हत्या कर दी। अंग्रेज़ों में इतनी तो समझ थी ही कि वे हिन्दुस्तान के गरमाते माहौल की नब्ज़ पहचानकर उसी के मुताबिक़ क़दम उठाते। इसीलिए उन्होंने लोगों में फैले आक्रोश को कम करने और उग्रवाद को दबाने के लिए बंग-भंग को रद्द कर दिया। कुछ समय के लिए ऐसा लगा कि सब ठीक हो गया है, लेकिन इसका उलटा असर भी हुआ। हिन्दुस्तानियों में यह नई चेतना भी जागी कि बमों और पिस्तौलों से अंग्रेज़ों को डराया जा सकता है। राष्ट्रवादियों ने लोगों में यह भावना भरनी शुरू कर दी कि गोरे लोग हिन्दुस्तानियों से किसी भी तरह श्रेष्ठ नहीं हैं। उन्होंने लोगों को भड़काया कि अगर जापानियों की पीली और बौनी जाति रूस के गोरे ज़ार-साम्राज्य को नाकों चने चबवा सकती है, तो पंद्रह करोड़ हिन्दुस्तानियों का यह राष्ट्र तो इन मुट्ठी-भर गोरों का क़ीमा बना सकता है।

भारत की राजधानी को दिल्ली में स्थानांतरित करने के निर्णय का भरपूर स्वागत हुआ। सिर्फ़ कलकत्ता के अंग्रेज व्यवसायियों को ही यह बात नहीं जँच रही थी और उन्हें शक था कि इस चाल के पीछे लॉर्ड हार्डिंग का हाथ है। उन्होंने 'एच० एम० जी०' (हिज़ मैजिस्टीज़ गवर्नमेंट) के बदले कहना शुरू किया—'हार्डिंग मस्ट गो' और हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गए। लेकिन उनके प्रयास विफल ही रहे। दिल्ली तो हमेशा से ही हिन्दुस्तान की राजधानी रही है। यह तो देश का दिल है। हार्डिंग के पूर्ववर्ती वायसराय का भी यही कहना था कि 'दिल्ली एक बेहद महत्त्वपूर्ण शहर है।' सन् 1877 में लॉर्ड लिट्टन ने दिल्ली में ही रानी विक्टोरिया के हिन्दुस्तान की महारानी होने की घोषणा की थी। इसी तरह सन् 1903 में दिल्ली में लॉर्ड कर्ज़न ने किंग एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के सम्मान में दरबार लगाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार घोषणा करने के बाद राजा द्वारा इसे वापस लेने का कोई सवाल ही नहीं था। दरबार के उद्‌घाटन के तीन दिन बाद राजा-रानी ने किंग्सवे कैंप में नयी राजधानी की आधारशिला रखी। अगले दिन वे लोग शेरों के शिकार के लिए नेपाल रवाना हो गए। वहीं से उन्हें इंग्लैंड वापस जाना था।

मेरे पिता बड़े दूरदर्शी थे और उनको रुपया कमाने के तरीक़े आते थे। वे बेहद कंजूस भी थे और मूँगफली तथा आलू-प्याज़ जैसी चीज़ों तक का मोलभाव करने लगते थे। वे अक्सर कहा करते कि रुपया बचाया या रुपया कमाया—एक ही चीज़ है। एक रुपया बैंक में रखो और सूद-दर-सूद उसे बढ़ने दो। बैंक में पड़ा-पड़ा ही एक का सौ हो जाएगा। अंग्रेज़ी बोलनी उन्हें नहीं आती थी, लेकिन फिर भी अंग्रेज़ अफ़सरों के साथ उनकी पट जाती थी और वे उनसे कोई भी काम निकलवा सकते थे। उनसे मिलने जाते समय वे अपनी बड़ी-सी सफ़ेद पगड़ी बाँध लेते और काले कोट के ऊपर कंधे से लेकर कमर तक लटकता सुनहरी साफ़ा डाल लेते। बाज़ार से बढ़िया से बढ़िया फल ख़रीदकर साहिब लोगों को यह कहकर भेंट करते कि अपने बग़ीचे के हैं। हमारे कोई बग़ीचे-बगूचे नहीं थे। हमारे गाँव हडाली में तो सिर्फ़ एक ही फल पैदा होता था और वह था खजूर। उन्होंने मुझे भी नसीहत दी कि साहिब लोगों को कभी नगदी या ज़ेवरात वग़ैरह भेंट नहीं करने चाहिएँ। क्या पता फटकारकर बाहर निकाल दें! लेकिन फलों की बात और है। फल तो 'डाली' है। इस भेंट से कोई इन्कार नहीं कर सकता। साहिबों के चपरासियों और बाबुओं को भी वे खुले हाथों बख़्शीश दिया करते थे। बाद में मुझे बताते कि यह सब कभी बेकार नहीं जाएगा। यह बख़्शीश नहीं है, यह तो जमा है जमा। यही तो बाद में काम आएगी। और उनकी बातें सच भी निकलती थीं। साहिब लोगों की कृपा से उनकी फ़ाइलों पर तुरत-फुरत कार्रवाई हो जाती।

दरबार के लिए लगाए गए तंबुओं के हटाए जाते ही नई राजधानी के निर्माण की शुरुआत हो गई। मैल्कॉम हेली को कमिश्नर नियुक्त किया गया और राजधानी के 'प्रोजेक्ट' को उन्हें सौंप दिया गया। मेरे पिता हेली से तभी मिल चुके थे, जब वे हमारे ज़िला शाहपुर के दौरे पर आए थे। कमिश्नर को अपना अदब पेश करने जाते हुए वे मुझे भी साथ लेते गए। हमने फ़तेहपुरी बाज़ार से सेब, संतरे और कंधारी अनारों के टोकरे ख़रीदे और उन पर चाँदी के वर्क़ लगाए। फिर उन्हें गुलाबी काग़ज से सजा-वजाकर 'डाली' के रूप में तैयार किया। एक टोकरा साहिब के निजी सहायक को पहुँचाया और बाकी को अर्दलियों में बँटवा दिया। हेली साहिब के उसी निजी सहायक ने उन्हें याद दिलाया कि मेरे पिता पहले भी उनसे मिल चुके हैं और अब वे अपने बग़ीचे के फल उन्हें भेंट करने आए हैं। हेली को शायद मालूम ही होगा कि वे फल शाहपुर में तो क्या, उसके आसपास भी नहीं होते, फिर भी उन्होंने बड़ी शिष्टता से उन्हें स्वीकार कर लिया। उन्होंने मेरे पिता से पंजाबी में पूछा कि उनके लायक कोई सेवा हो तो बताएँ। मेरे पिता ने उन्हें मेरा परिचय देते हुए कहा, "यह आपका ही बच्चा है, इसका ज़रा ध्यान रखिएगा।" फिर बातों-बातों में उन्होंने हेली साहिब को जताया कि हमें सड़कें बनाने का अनुभव है और हम इसी तरह का काम पाने के इच्छुक हैं। हेली साहिब ने हमारा नाम-पता काग़ज़ की एक पुर्ज़ी पर लिख लिया और कहा कि जैसे कोई काम आएगा वे हमें ख़बर करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें अब हेली साहिब के बुलावे का इंतज़ार था। इस बीच मेरे पिताजी दूसरे अफ़सरों, बैंक-मैनेजरों, और दिल्ली के पैसेवाले ख़ानदानी लोगों से मेल-जोल बढ़ाने में लगे रहे। "पता नहीं कब कौन काम आ जाय! इसलिए सभी लोगों से मेल-जोल बनाकर रखना चाहिए।" वे बड़ी संजीदगी से मुझे समझाते। इसी बीच हम लोग लालक़िला और जामा मस्जिद देखने भी गए। हमने सभी गुरुद्वारे भी देखे। गुरुद्वारों की हालत कोई ख़ास अच्छी नहीं दिख रही थी, क्योंकि दिल्ली में सिखों की तादाद कम ही थी। और जो थोड़े-बहुत थे भी, वे पैसेवाले नहीं थे। इतवार के दिन भी सीसगंज गुरुद्वारे में सौ से ज़्यादा लोगों को इकट्ठा होते कभी नहीं देखा। हम जिसे भी नए आए लोगों की तरह अपना परिचय देते, वह हमसे यह ज़रूर पूछता कि हमने कुतुबमीनार देखी या नहीं? वह हमें बताता कि यह दुनिया की सबसे ऊँची मीनार है और इसकी सबसे ऊपरली मंज़िल से मीलों दूर तक फैले खँडहर दिखाई देते हैं। मेरे पिता ने मुझसे कहा कि एक दिन हम लोग ताँगा लेकर वहाँ जाएँगे। उन दिनों मैंने भी अपने भविष्य को लेकर सपने देखने शुरू कर दिए थे। मैंने कहा, "मैं तो कुतुब मीनार देखने अपनी खुद की मोटर कार में जाऊँगा।" उस वक़्त दिल्ली के सिर्फ़ दर्जन-भर धनी-मानी परिवारों के पास ही मोटरगाड़ियाँ थीं। मैंने लक्ष्य किया कि मेरे पिता मेरी इस महत्त्वाकांक्षा और आत्मविश्वास को देखकर काफ़ी प्रसन्न लग रहे हैं। फिर भी उन्होंने मुझे हँसकर फटकारा, "भडुआ, मोटरकारों की बात करने के पहले कमाई करना तो सीख! पता है—एक मोटरगाड़ी का दाम कितना होता है?" ख़ैर, उन्होंने मुझे एक साइकिल ज़रूर ख़रीद दी। बड़ी ही ख़ूबसूरत साइकिल थी—रॉली की—इंग्लैंड में बनी। रंग था गहरा हरा। मुझे साइकिल चलाना सीखने में देर नहीं लगी, झट सीख ली। यही रॉली साइकिल अगले पंद्रह सालों तक मेरी रोल्स रॉयस और डेमलेर बनी रही।

इस बात के लिए अंग्रेज़ों को दाद देनी होगी कि जब वे आपसे कहते हैं कि आपका काम कर देंगे तो आपका काम वे ज़रूर करेंगे। हेली साहिब से मिलने के महीने-भर बाद ही हमें यह नोट मिला कि हम उनसे दफ़्तर में आकर मिलें।

दफ़्तर में वे बहुत-से अंग्रेज़ अफ़सरों से घिरे बैठे थे। उन्होंने हमें सेंट्रल पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के चीफ़ इंजीनियर से मिलवा दिया। हमारे अभिवादन का जवाब दिए बिना ही चीफ़ इंजीनियर बोले, "आप सड़कें और क्लर्कों के लिए मकान बनाने शुरू कर सकते हैं। मैं पहले आपका काम देखूँगा, फिर बाक़ी चीज़ों की सोचूँगा। कल सवेरे आकर आप सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर से मिल लीजिए।"

मेरे पिता सीधे सी० पी० डब्ल्यू० डी० के दफ़्तर में पहुँच गए और वह पता लगाने लगे कि कौन व्यक्ति किस ओहदे पर है। वहाँ किसी क्लर्क से उन्होंने सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर से लेकर चपरासी तक का नाम-पता पूछ लिया। घर लौटते हुए हम तारघर में गए और मैंने गाँव का काम-धंधा देख रहे अपने छोटे भाई को तार दिया कि वह कुछ मज़दूरों और हिसाब-किताब रखनेवाले एक मुनीम को तुरंत हमारे पास दिल्ली भेज दे।

अगले दिन सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर के दफ़्तर जाने के पहले हम लोग (वही अपने बाग़ के) फलों के टोकरे लेकर उनके घर जा पहुँचे। हमने उनके चपरासियों को बख़्शीशें दीं तो उन्होंने बताया कि इंजीनियर साहिब हिन्दुस्तानियों से कभी घर पर नहीं मिलते। आज तक मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जान पाया कि वे फल उन तक पहुँचे या उनके चपरासियों ने रास्ते में ही हज़म कर लिये।

हम लोग वहाँ से सीधे सी॰पी॰डब्ल्यू॰डी॰ के दफ़्तर में गए। कुछ ही मिनटों बाद अपनी गाड़ी में सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर साहिब भी आ पहुँचे। उन्होंने हमें बुलवाया और अलीपुर रोड वाले अस्थायी सचिवालय भवन के इर्द-गिर्द बनाई जानेवाली सड़कों का नक़्शा हमारे हाथ में थमा दिया। हमने तो सोचा था कि साहिब से मिलना पता नहीं कितना मुश्किल होगा, पर यहाँ तो यह एकदम आसान हो गया था। सड़कें बनाने के ठेके के लिए टेंडर तक नहीं भरवाए गए और काम हमें दे दिया गया। कहा गया कि दो दिनों के भीतर हम लागत और काम पूरा करने के समय का 'एस्टीमेट' उन्हें दे दें।

मज़दूरों के मेहनताने, पत्थर, सीमेंट, बालू और उन्हें यथास्थान पहुँचाने की लागत आदि का ब्यौरा बनाते-बनाते सारी दोपहर लग गई। कुछेक लाख का 'एस्टीमेट' बना था। अगले दिन मेरे पिताजी ने हज़ार के एक नोट के साथ एस्टीमेट ओवरसियर को थमा दिया। अगले दिन ओवरसियर हमसे मिलने आया। उसने हमारे एस्टीमेट में थोड़ी-सी कटौती की थी, लेकिन अब भी हमें काफ़ी मुनाफ़ा हो रहा था। मेरे पिता ने उसे हज़ार का एक नोट और थमाया और एक बोतल स्कॉच व्हिस्की भी। इस नए व्यावसायिक रिश्ते की नींव को मज़बूत बनाते हुए वे दोनों आपस में गले मिलने लगे। यही अब हमारी कामकाजी ज़िंदगी का 'पैटर्न' बन गया। हमारा जिस-जिस हिन्दुस्तानी से अपने काम के सिलसिले में वास्ता पड़ता, हम उसे उसका हिस्सा देते। ज़्यादातर ऐंग्लो-इंडियन अफ़सर भी नगदी और व्हिस्की की अपेक्षा रखते थे। अंग्रेज़ अफ़सर जानते थे कि उनकी नाक के नीचे क्या हो रहा है, लेकिन वे लोग इससे दूर ही रहते थे। अंग्रेज़ अफ़सर बड़े दिन पर एकाध व्हिस्की की बोतल या फलों के टोकरों के सिवाय कभी कुछ नहीं लेते थे।

मुझे इस धंधे की नब्ज़ पकड़ने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगा। हमने अपने कारिंदे भेजकर राजपूताने से बागड़ी मज़दूर बुलाए। उनको यहाँ लाना कोई ख़ास मुश्किल काम नहीं था, क्योंकि वह रेगिस्तानी इलाक़ा हमेशा सूखे और अकाल की चपेट में रहता था। इसलिए वे खुशी-खुशी दिल्ली आ गए और दिन-भर की मज़दूरी के बदले अठन्नी पाकर भी संतुष्ट थे। औरतों को तो मज़दूरी और भी कम मिलती थी। इतनी मज़दूरी में भी वे लोग सुबह से शाम तक पत्थर तोड़ते, खुदाइयाँ करते, रोड़ी-सीमेंट मिलाते और शाम को अपनी औरतों समेत झुग्गियों में लौटते हुए गीत गाते। हम लोग ख़ूब पैसे बना रहे थे। हमें चिंता थी तो सिर्फ़ यही कि बाक़ी ठेकेदार कहीं हमसे ज़्यादा न बना लें।

अप्रैल 1912 में इंग्लैंड के राजा की सहमति से एडविन लटयंस नाम के एक वास्तुशिल्पी को उसकी टीम के साथ दिल्ली भेजा गया, ताकि वह नई दिल्ली बनाने के लिए सही जगह का चुनाव करे। वे लोग घोड़ों पर सवार होकर किंग्सवे कैंप, पहाड़ी और जमुना के साथ-साथ मजनूँ टीले से लेकर ओखला तक घूम आए। कई बार उन्होंने हाथियों पर भी घूम-घूमकर अलग-अलग स्थानों का निरीक्षण किया। आख़िरकार वे इस निश्चय पर पहुँचे कि किंग्सवे कैंप राजधानी बनाए जाने के लायक स्थान नहीं है, क्योंकि यह नदी से बहुत क़रीब है और इसकी सतह काफ़ी नीची है। अगले पंद्रह दिन वे महरौली और पहाड़गंज के आस-पास के गाँवों और पुराने क़िले से लेकर रायसीना पहाड़ी के इलाक़े का मुआयना करते रहे। सारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगहों को अच्छी तरह देख-परखकर ही उन लोगों ने फ़ैसला किया कि नया शहर बनाने के लिए सबसे सही जगह मालचा गाँव के पास है। वायसराय भवन और सचिवालयों के लिए उन्होंने रायसीना की पहाड़ी को चुना। यद्यपि लॉर्ड हार्डिंग पहले किंग्सवे कैंप को नई दिल्ली बनाने के लिए चुन चुके थे, लेकिन उन्होंने भी लटयंस के फ़ैसले से अपनी सहमति प्रकट की। उन्होंने इस तथ्य को भी दरकिनार कर दिया कि राजा-रानी के हाथों किंग्सवे कैंप में नई राजधानी की आधारशिला रखी जा चुकी है। उन्होंने उसका उपाय भी सोच रखा था कि आधारशिला को वहाँ से उखाड़कर नई जगह पर लगा दिया जाएगा।

और ऐसा ही किया भी। हेली ने मेरे पिता को बुलाया (क्योंकि मेरे पिता अब तक उसके सबसे अधिक विश्वासपात्र बन चुके थे) और कहा कि आधारशिला को किंग्सवे से उखाड़कर मालचा में लगाना है और इस बारे में एक भी शब्द बाहर नहीं जाना चाहिए। वे अपनी मोटरगाड़ी में हमें सफ़दरजंग के मक़बरे तक लेकर गए और फिर वहाँ से पैदल ही मालचा के पास वह जगह दिखाने ले गए जहाँ आधारशिला को फिर से रखना था। वहाँ कँटीले तारों की बाड़ लगाकर सशस्त्र पुलिस का पहरा बैठा दिया गया।

आधारशिला को उखाड़कर नई जगह लगाने का काम ही वह पहला काम था, जिसकी ज़िम्मेदारी मेरे पिता ने अकेले मुझपर डाली थी। ख़ुशी और रोमांच से मेरा तन-मन भर उठा था। मैंने पहले पत्थर के लिए गड्ढा खुदवाया, फिर बैलगाड़ी का इंतज़ाम किया और आधा दर्जन मज़दूरों को काम पर लगाया। सुरक्षा के लिए हमें चार पुलिसकर्मी भी दिए गए थे। वह मई का महीना था और शाम का वक़्त। मज़दूरों और पुलिसवालों को मैंने बैलगाड़ी में बैठाया और खुद साइकिल पर साथ-साथ चलता हुआ किंग्सवे कैंप जा पहुँचा। शिला को खुदवाकर मैंने बाहर निकलवाया और फिर बैलगाड़ी में बिछे पुआल पर धीरे से रखवा दिया और ऊपर से तिरपाल डाल दी। अब हम मालचा गाँव की ओर चल पड़े। एक आदमी पेट्रोमेक्स लेकर बैलगाड़ी के आगे चल रहा था और बाक़ी लोगों के साथ मैं भी बैलगाड़ी के पीछे था। ऐसा लग रहा था जैसे हम किसी लाश को लिये जा रहे हों। शहर का पूरा चक्कर काटते हुए हमें काफ़ी लम्बा सफ़र तय करना था। मालचा तक पहुँचते-पहुँचते तो आधी रात हो गई। आधारशिला को सीमेंट से गड्ढे में पुनः स्थापित करते हुए एक घंटा और लग गया। मैंने मज़दूरों को एक-एक रुपया इनाम के तौर पर दिया। घर पहुँचा तो दिन निकलनेवाला था। पिताजी जपुजी का पाठ कर रहे थे। पाठ करते-करते ही पूछने लगे कि सब ठीक-ठाक तो निबट गया न? मैंने उन्हें सब-कुछ विस्तार से बताया। पर जब उन्हें यह पता चला कि मैंने मज़दूरों को एक-एक रुपया बख़्शीश दी है, तब वे नाराज़ हो गए और मुझे 'भडुआ' कहकर गरियाने लगे।

हम लोग इतना पैसा बना रहे थे कि अब रहने के लिए किसी बेहतर जगह का इंतज़ाम किया जा सकता था; सो हमने कर लिया। लेकिन हमें खुले में शौच जाने की जो आदत पड़ी हुई थी, उसके चलते बदबूदार संडास में जाते थोड़ी कोफ़्त ज़रूर होती थी।

हमें अस्थायी सचिवालय बनाने का ठेका नहीं मिला। वह काम सी॰ पी॰ डब्ल्यू॰ डी॰ के ज़िम्मे आया। हम लोगों ने तय किया कि जहाँ नई दिल्ली बननेवाली है, उसके क़रीब ही हमें अपना घर बना लेना चाहिए। हमारे पास भवन-निर्माण-सामग्री और मज़दूरों की व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो थी ही, अतः कुछेक कमरों, रसोई और आँगनवाला एक बड़ा-सा घर बनाने में हमें कोई ख़ास दिक़्क़त नहीं आई। हमारा यह घर एक पुरानी आटा-चक्की के पास था। हमारी देखादेखी बाकी सिख ठेकेदारों ने भी हमारे अगल-बग़ल ऐसे ही मकान बना लिये। बाद में उस जगह को 'ओल्ड मिल रोड' के नाम से जाना जाने लगा। हालाँकि हम सभी पंजाब के अलग-अलग हिस्सों से आए थे और सबकी जात-पाँत भी अलग थी, लेकिन हम कुछ ही दिनों में एक परिवार जैसे बन गए।

लटयंस ने नए शहर की रूपरेखा तैयार कर ली थी और तय कर लिया था कि वायसराय-भवन और सचिवालय कहाँ बनाए जाने हैं। मैंने सुना था कि अपनी मूल योजना के मुताबिक़ लटयंस चाहता था कि हुमायूँ के मक़बरे के पीछे की तरफ़ जमुना पर बाँध बनाकर एक बड़ी-सी कृत्रिम झील बनाई जाय, जो लालक़िले और पुराने क़िले तक फैली हो। इस झील से जगह-जगह नहरें निकालकर इसे आवागमन का-साधन भी बनाया जाय। लेकिन लटयंस की यह योजना बेहद ख़र्चीली होने के कारण नामंज़ूर कर दी गई। वह तो वायसराय भवन से लेकर जामिया मस्जिद तक एक सीधी सड़क भी निकालना चाहता था, जो पुरानी दिल्ली की दीवार और बाज़ारों से होती हुई गुज़रती। उसकी इस योजना को भी स्वींकृति नहीं मिली। इनके अलावा उसकी तमाम सिफ़ारिशें वायसराय तथा किंग जॉर्ज द्वारा मंज़ूर कर ली गईं। इंग्लैंड वापस लौटकर उसने किंग जॉर्ज से मुलाक़ात भी की। लटयंस अपने एक पुराने साथी हर्बर्ट बेकर को भी अपने साथ काम करने के लिए हिन्दुस्तान ले आया।

लटयंस ने शहर की सामान्य रूपरेखा के अतिरिक्त वायसराय भवन और 'वॉर मेमोरियल आर्च' (इंडिया गेट) का नक़्शा बनाया। बेकर ने सचिवालयों और संसद भवन का डिज़ाइन किया। बाक़ी काम उन लोगों ने आपस में बाँट लिया। वे दोनों एक-दूसरे को वर्षों से जानते थे। बेकर ने साउथ अफ्रीका में अनेक इमारतों के निर्माण में लटयंस को अपना भागीदार बनाया था। और लटयंस अब बेकर को नई दिल्ली की निर्माण-योजना में भागीदार बनाए हुए था। सब लोग यही सोचते थे कि वे दोनों अच्छे मित्र होंगे, लेकिन लटयंस की प्रतिभा, शाही क्षेत्र में उसकी लोकप्रियता और वायसराय से उसके गहरे संबंध के चलते बेकर उससे कुढ़ता था।

लटयंस बेहद दूरदर्शी व्यक्ति था। यद्यपि न तो लटयंस और न ही बेकर हमारे महलों, मंदिरों और मस्जिदों को लेकर बहुत प्रसन्न थे, लेकिन फिर भी उन्होंने नई बनाई जानेवाली इमारतों को भारतीय छवि देने की कोशिश की। लटयंस को लेकर जिस बात से मैं सर्वाधिक प्रभावित हुआ, वह था उसका योजनाबद्ध तरीक़े से काम करना—अभी सड़कें भी नहीं बनी थीं कि उसने रास्तों के दोनों तरफ़ पेड़ लगवाने शुरू कर दिए। सही तरह के पौधों के लिए एक बड़ी नर्सरी तैयार की गई। लटयंस ऐसे पेड़ लगाना चाहता था जो धीरे-धीरे बढ़कर विशाल और दीर्घजीवी होनेवाले हों, जैसे बरगद, नीम, इमली आदि। राजकीय उद्यान-विशेषज्ञ ने पूर्वी अफ्रीका से सॉसेज वृक्ष तथा अफ्रीकन ट्यूलिप-जैसे वृक्षों की पौध मँगाई। लटयंस ऐसा शहर बनाने की बातें करता था, जो तब से दो सौ साल बाद भी नागरिकों की ज़रूरतें पूरी कर सके। उसने पहले ही यह भविष्यवाणी कर दी कि अंग्रेज़ एक दिन हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाएँगे और हिन्दुस्तानियों को अपना मुल्क आप चलाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज़ाद कर देंगे। शायद वह भी उन झक्की अंग्रेज़ों में से ही एक था जो भारतीय राष्ट्रवादियों से सहमत थे। ख़ैर, लटयंस हो न हो, उसकी बीवी ज़रूर ऐसी ही थी । अफ़वाह थी कि उसका मसीहा कहे जानेवाले किसी हिन्दू लड़के से प्रेम हो गया था और वह उसके साथ मद्रास भाग गई थी। ख़ैर, मैंने अपनी आँखों से तो कुछ नहीं देखा, लेकिन इतना कह सकता हूँ कि मैं जितनी भी बार उसके बँगले और दफ़्तर में गया, उसकी बीवी के दर्शन कभी नहीं हुए। वैसे भी अंग्रेज़ लोग मिसेज़ लटयंस के बारे में अधिक कुछ कहना-सुनना भी नहीं चाहते थे।

दिल्ली में हमारी ये पहली गर्मियाँ थीं। हमने तय कर लिया था कि हम दिल्ली को ही अपना स्थायी बसेरा बनाएँगे। यहाँ हमारे रेगिस्तानी गाँव के मुक़ाबले कम गर्मी थी। बरसात का मौसम तो ख़ैर, खुशनुमा था ही। सबसे बढ़कर बात यह थी कि यहाँ हम जितना पैसा बना रहे थे, उसकी तो हमने सपने में भी कल्पना भी नहीं की थी। पतझड़ आने तक हमने घर में कुछ और कमरे बना लिये और एक माली तथा कुछेक नौकर भी रख लिये। गाँव से मेरी माँ, और बीवी-बच्चे भी आ गए। हमारे गाँव के जो लोग हमारे यहाँ क्लर्क, स्टोरकीपर और मज़दूरों के मैनेजर आदि का काम कर रहे थे, उन्होंने भी अपने परिवारों को दिल्ली बुला लिया। इसके बाद तो हम लोग अपने गाँव केवल तभी जाते, जब किसी रिश्तेदार की शादी होती या किसी की ग़मी।

पहले शाही दरबार के ठीक एक साल बाद एक और दरबार लगा। इस दरबार का कारण वायसराय और वायसराइन का अपने नई दिल्ली के घर में औपचारिक प्रवेश था। दिल्ली रेलवे स्टेशन और लालक़िले में उनके स्वागत के भारी बन्दोबस्त किए गए। म्यूनिसिपल गार्डन और चाँदनी चौक होते हुए लालक़िले तक उनकी हाथी पर शाही सवारी निकलनी थी। पिछली बार की तरह इस बार भी सारें कार्यक्रम की कई-कई बार रिहर्सल हुई और पूरी एहतियात बरती गई कि कोई भी ऐसी-वैसी बात न हो, जिससे रंग में भंग पड़े। इस दरबार का सारा इंतज़ाम हेली साहिब के ज़िम्मे था और उन्हें अंदेशा था कि कोई न कोई शरारत तो ज़रूर होगी। उन्होंने पहले ही एहतियात के तौर पर सी० आई० डी० के मिस्टर क्लीवलैंड को रास्ते में पड़नेवाले हरेक घर और दुकान की तलाशी लेने का निर्देश दे दिया था, ताकि किसी उग्रवादी को बेजा हरकत करने का मौक़ा न मिले। चाँदनी चौक की सारी इमारतों की छतों पर सशस्त्र पुलिस भी तैनात कर दी गई थी। मुझे लग रहा था कि नाहक ही सरकार इतनी एहतियात बरत रही है, क्योंकि मैंने अपने अब तक के जीवन में तो ऐसा कोई भी आदमी नहीं देखा था, जो अंग्रेज़ों के इस क़दर ख़िलाफ़ हो कि उन्हें कोई ख़तरा पैदा करे।

पहले शाही दरबारवाले दिन की तरह वायसराय के दरबार के दिन भी हम लोग सुबह चार बजे ही उठ गए। वैसे हम नाहक ही इतनी जल्दी कर रहे थे, क्योंकि वायसराय और वायसराइन को वहाँ दोपहर से पहले नहीं पहुँचना था। लेकिन हम पहले ही वहाँ पहुँचकर अच्छी जगह ले लेना चाहते थे, ताकि सारे कार्यक्रम को ठीक से देख सकें।

वह 23 दिसम्बर, 1912 की एक बेहद सर्द सुबह थी। ऊपर आसमान एकदम साफ़ था, नीला। दिन चढ़ा तो ओस की बूँदों से धुले फूल-पत्ते ऐसे चमक उठे जैसे नहाकर आए हों।

हम लोग ग्यारह बजे घर से निकले। हमने अपने नौकरों, क्लर्कों, उनके परिवारों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने घर के सदस्यों के लिए कुल मिलाकर चार ताँगे बुलाए। सड़कों पर इतनी भीड़ थी कि ताँगे भी पैदल चलनेवालों की ही चाल से आगे बढ़ रहे थे। हम लोगों के साथ-साथ सैकड़ों मज़दूर और उनकी औरतें भी चल रही थीं। हमने अजमेरी गेट पर ताँगा छोड़ दिया और पैदल हो लिये। रंडियों के मुहल्ले चावड़ी बाजार और नई सड़क से होते हुए घंटाघर तक पहुँचते-पहुँचते ही हमें दोपहर हो गई। लोग तो वहाँ जमा भी हो चुके थे। हम लोग चाँदनी चौक के गुरुद्वारे सीसगंज की ओर मुड़े। उस दिन गुरुद्वारे के पहरेदारों को यह आदेश था कि सिर्फ़ सिखों को ही भीतर जाने दें। अतः गुरुद्वारे की फ़ुहारे की तरफ़ वाली सारी की सारी बाल्कनी हमारे हिस्से में आ गई थी।

तोपें छूटने की आवाज़ों से हमें मालूम हो गया था कि वायसराय की ट्रेन आ पहुँची थी। रेलवे स्टेशन पर कुछ राजा-महाराजाओं ने उनका स्वागत किया। फिर म्यूनिसिपल बिल्डिंग में उन्हें दिल्ली के नागरिकों का अभिनंदन-पत्र पढ़कर सुनाया गया। हमारी बाल्कनी के नीचे से पुलिस बैंड गुज़रा तो हम जान गए कि नगरपालिका में हो रहा स्वागत-कार्यक्रम पूरा हो चुका है और अब लॉर्ड और लेडी हार्डिंग वहाँ से चल पड़े हैं। पुलिस-बैंड के बाद स्कॉटलैंड के हाईलैंडर वादक अपने बैगपाइप बजाते हुए गुज़रने लगे। उसके बाद सिख घुड़सवारों की सवारी निकली और फिर बाक़ी फ़ौजी दस्तों की। घंटाघर तक तो नज़र नहीं जा पा रही थी, लेकिन हाथियों की क़तार धीरे-धीरे अपनी तरफ़ बढ़ती दिखाई देने लगी थी। क़रीब दर्जन-भर हाथी होंगे। वायसराय और वायसराइन आठवें नम्बर के हाथी पर सवार थे, जो उस समय हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा हाथी माना जाता था। उसका नाम था गजूमत। यह फ़रीदकोट के राजा का हाथी था और इस मौक़े के लिए ख़ासतौर पर लाया गया था।

अचानक हाथियों का काफ़िला थम गया। बहुत-से लोग ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने-चिल्लाने लगे। बड़ी ज़ोर का एक धमाका तो हुआ था, पर यह पता नहीं चल रहा था कि पटाख़ा था या बम। हमसे कुछ ही दूर पर चार हाथी रुके खड़े थे। मैंने देखा कि लोग चाँदनी चौक से गलियों में दौड़-भाग रहे थे। घरों के ऊपर खड़े तमाशा देखते हुए लोग भी अब नदारद थे। कुछ लोग घंटाघर की तरफ़ भागते हुए चिल्ला रहे थे, 'भागो, भागो!' किसी को 'बम-बम' और 'मार डाला' कहते हुए भी सुना। तो क्या किसी ने वायसराय के हाथी पर बम फेंका है? और क्या वायसराय-वायसराइन मारे गए हैं?

हम लोग हक्के-बक्के खड़े थे। समझ ही नहीं आ रहा था कि किधर भागें? यदि वायसराय मारे गए होंगे, तब तो हमें मालूम है कि आगे क्या होगा। गुरुद्वारे के बायीं तरफ़ कुछ ही दूर पर सुनहरी मस्जिद थी। बीच में बस एक पुलिस स्टेशन पड़ता था। इसी मस्जिद से कभी नादिर शाह ने दिल्ली की रियाया के क़त्लेआम का हुक्म दिया था। कारण, किसी ने उसके ऊपर गोली चला दी थी। साहिब लोगों को जल्दी गुस्सा नहीं आता, लेकिन अगर एक बार भड़क उठे तो इनका क़हर बड़ा भयावह होता है। सन् 1857 के ग़दर को दबाने के बाद इन लोगों ने इसी चाँदनी चौक में सैकड़ों लोगों को फाँसी लगाई थी और जामा मस्जिद से लगे सारे बाज़ार को फूँक दिया था।

हम लोगों ने गुरुद्वारे के फाटक बंद कर पाठ सुनना शुरू किया। शहर में पता नहीं, क्या होनेवाला था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब काफ़ी रात हो गई तो अँधेरे में हम बाहर निकले। घर जाने के लिए न कोई ताँगा, न इक्का। घुप्प अँधेरे में हम पैदल ही सुनसान गलियों से गुज़रते किसी तरह घर पहुँचे। रास्ते-भर मेरे पिता 'वाहे गुरु, वाहे गुरु' जपते रहे।

उस रात मुझे ठीक से नींद नहीं आई। अगर वायसराय मारा गया होगा, तो बनेगा क्या? तब भी क्या नई दिल्ली के निर्माण का काम जारी रहेगा? इसके बाद भी क्या कोई अंग्रेज़ किसी हिन्दुस्तानी पर भरोसा करेगा?

सवेरे अख़बार आया तो असलियत का पता चला। बम किसी बैंक की बिल्डिंग से फेंका गया था। वायसराय की छतरी उठानेवाला आदमी मारा गया था और वायसराय को भी काफ़ी चोट आई थी। उन्हें तुरंत ही गाड़ी में बैठाकर अस्पताल ले जाया गया था। वायसराय के निजी सेवक को भी चोट आई थी। वायसराइन और उनका नौकर दूसरे हाथी पर थे, इसलिए बाल-बाल बच गए।

इतना सब होने के बावजूद लालक़िले पर होनेवाला समारोह यथावत् सम्पन्न हुआ। वायसराय की तरफ़ से मिस्टर फ़्लीटवुड विल्सन ने घोषणा-पत्र पढ़ा।

लॉर्ड हार्डिंग पहले तो नई दिल्ली के निर्माण को लेकर बहुत उत्साहित थे, लेकिन इस घटना के बाद उनका सारा उत्साह जाता रहा। उनको स्वस्थ होने में काफ़ी दिन लग गए। वे लटयंस की भव्य योजनाओं से उकताने लगे और सलाह के लिए बेकर की ओर मुड़े। वायसराइन ने इस मामले में अपने पति की रुचि बनाए रखने की भरसक कोशिश की और लटयंस की तरफ़दारी करती रहीं। इसी बीच वह बीमार हो गईं और एक बड़े ऑपरेशन के लिए उन्हें इंग्लैंड ले जाना पड़ा। लेकिन ऑपरेशन के तुरन्त बाद उनका देहान्त हो गया। उन्हीं दिनों अख़बारों में यह ख़बर छपने लगी कि योरोप में लड़ाई छिड़नेवाली है। अगर लड़ाई सचमुच ही छिड़ गई, तो नया शहर बनाने की किसको सुध रहेगी! और अगर लड़ाई में इंग्लैंड की हार हुई, तब तो नई दिल्ली बनाने का सवाल ही नहीं उठता।

अगस्त, 1914 में इंग्लैंड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर अफ़वाहों को सच में बदल दिया। लॉर्ड हार्डिंग ने हिन्दुस्तान की तरफ़ से घोषणा-पत्र पढ़ा। उसके बाद ही लॉर्ड हेली ने मेरे पिता को बुला भेजा। उनके नोट में लिखा था कि मुझे साथ लेते आएँ। संदेश आत्मीयता-भरा और स्पष्ट था—"सुजान सिंह (मेरे पिता का यही नाम था), जैसा कि आपको मालूम ही होगा कि हिन्दुस्तान जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई लड़ रहा है। हम लोगों को बहुत-से लोग जंग में भेजने के लिए चाहिएँ। आपके गाँव के लोग देश के सबसे बेहतरीन फ़ौजी कहलाते हैं। इसलिए आप हडाली जाकर सेना में भर्ती के लिए जवानों का इंतज़ाम कीजिए। आपको इसका बढ़िया मुआवज़ा दिया जाएगा।"

मेरे पिता ने हेली को विश्वास दिलाया कि वे अपनी सामर्थ्य-भर मदद करने की कोशिश करेंगे और प्रार्थना करेंगे कि युद्ध में इंग्लैंड की जीत हो।

हम दोनों ने काम को आपस में बाँट लिया। मैं दिल्ली का काम देखता और पिताजी शाहपुर के गाँवों का दौरा किया करते। उनको फ़ौज के लिए जवान भरती करने में कोई ख़ास दिक़्क़त नहीं आई, क्योंकि गाँव में ऐसे छोकरे बहुत-से थे जिनको करने-धरने को कोई ख़ास काम नहीं था। इनमें ज़्यादातर तो बलूची मुसलमान ही थे, जिनके रिश्तेदार पहले ही फ़ौज में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम कर रहे थे। पिताजी ने कुछ सिख युवकों को भी फ़ौज में भरती होने के लिए राज़ी कर लिया। हमारे छोटे-से गाँव हडाली से ही उन्होंने चार सौ सैंतीस लड़के भरती किए, जबकि पूरे गाँव में कुल मिलाकर परिवार ही दो सौ थे। उन्होंने मुझे उन सभी नए रंगरूटों के नाम भेज दिए, ताकि मैं हेली साहिब को दिखाकर उन्हें आश्वस्त कर सकूँ। पिताजी के इस प्रयास का परिणाम यह हुआ कि अब हेली साहिब से हमारे ताल्लुक़ात और गहरे हो गए और मुझे नए ठेके मिल गए। हेली साहिब ने हमें नई दिल्ली में ज़मीन खरीदने में भी मदद करने का वादा किया, क्योंकि सरकार चाहती थी कि लोग व्यक्तिगत तौर पर भी दुकानें, रेस्तराँ, होटल और सिनेमाघर आदि खोलकर शहर को विकसित करने में मदद करें।

लड़ाई के जारी रहते तो किसी बड़े निर्माण-कार्य के शुरू होने की सम्भावना नहीं दिख रही थी। वायसराय का तो सारा ज़ोर लड़ाई जीतने में लगा हुआ था। उन्होंने इस बीच सारे हिन्दुस्तान और मध्य-एशिया के देशों का दौरा किया। उनका मन तो परिवार में एक के बाद एक हुई दुर्घटनाओं के कारण वैसे ही उचटा हुआ था—पहले उनकी पत्नी गुज़री और फिर बड़ा बेटा फ्रांस की लड़ाई में बुरी तरह घायल हो गया। इसके अलावा उनके तीन ए० डी० सी० भी कुछ ही महीनों के भीतर मारे गए।

अंग्रेज़ों ने तो सोचा था कि लड़ाई कुछ ही महीनों चलेगी और वे जीत जाएँगे। लेकिन जंग तो आगे ही आगे घिसटती जा रही थी। हम लोग भी कैसे नादान थे जो यह सोचते रहे कि अंग्रेज़ों को कोई हरा नहीं सकता। आख़िर जर्मनी इनको नाकों चने चबवा ही रहा था। हमारे हज़ारों जवान अंग्रेज़ों की तरफ़ से लड़ रहे थे, लेकिन अपनी आदत के मुताबिक़ हम लोग उनका नुक़सान देखकर मन-ही-मन खुश होते थे। जब भी कभी कोई लड़ाई की बात छेड़ता, तो यही फ़िकरा कसा जाता—'फ़तह भले ही अंग्रेजों की हुई हो, मैदान जर्मनों ने ही मारा।'

लॉर्ड हार्डिंग के वायसराय-पद की अवधि समाप्त हो गई थी, फिर भी वे छह महीने तक और बने रहे। नई दिल्ली के निर्माण में उनकी अब अधिक रुचि नहीं रह गई थी। उनके बाद लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड आए तो उन्होंने इस मामले में हार्डिंग से भी कम रुचि दिखाई। लटयंस और बेकर की आपसी अनबन भी आम हो चुकी थी। सुनने में आया था कि वे एक-दूसरे से बात तक नहीं करते। विश्वास नहीं होता था कि दुनिया के दो इतने जाने-माने वास्तुकारों की मामूली-सी बात पर इतनी बड़ी तकरार हो जाएगी। बात क्या थी? सिर्फ़ यही कि वायसराय-भवन और सचिवालयों को तुलनात्मक रूप से कितनी ऊँचाई पर बनाया जाय। लटयंस चाहता था कि वायसराय भवन को थोड़ी ऊँचाई पर बनाया जाय और उसके सामनेवाली सड़क की ढलान ऐसी रखी जाय कि भवन दूर से ही दिखाई दे। लेकिन इसके विपरीत बेकर का विचार था कि दोनों इमारतों की सतह एक-सी हो और सड़क धीरे-धीरे ऊपर उठे, ताकि वायसराय भवन तभी दिखाई दे जब आप आधे रास्ते पहुँच जायँ। मामला हार्डिंग के सामने लाया गया और उसने फ़ैसला बेकर के हक़ में दिया। नए वायसराय चेम्सफ़ोर्ड ने भी अपने पूर्ववर्ती की राय से सहमति प्रकट करते हुए बेकर का साथ दिया। मेरे ख़याल से तो बिला वजह ही राई का पर्वत बनाया जा रहा था। लटयंस सिर्फ़ सड़क के कोण में डेढ़ फुट का फ़र्क़ ही तो चाहता था। उनकी यह तकरार 'ढलानों की जंग' के नाम से ख़ूब मशहूर हुई।

लड़ाई जितनी लम्बी होती जा रही थी, हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ उतने ही अधीर होते जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे थे। देश के वकीलों और बनियों ने लड़ाई में जानेवालों की मदद के लिए रत्ती-भर भी सहयोग नहीं दिया, बल्कि वे तो ज़ोर-शोर से स्वराज माँगने के तक़ाज़े करने लगे, ताकि उन्हें ज़्यादा-से-ज़्यादा विशेषाधिकार मिल जाएँ। चेम्सफ़ोर्ड कमज़ोर किस्म का आदमी था और इसीलिए उसने उनके सामने घुटने टेक दिए। उसने लंदन में अपनी सरकार को लिखा कि हिन्दुस्तानियों को सरकार में ज़्यादा सत्ता देनी होगी। नवम्बर, 1917 में यहाँ की स्थिति का जायज़ा लेने के लिए एक अड़तीस वर्षीय यहूदी—एडविन मांटेगू को भारत भेजा गया। वह लगभग छह माह यहाँ रहा। चेम्सफ़ोर्ड और एडविन मांटेगू ने मिलकर एक विस्तृत योजना बनाई, जिसे 'डाएयार्की' के नाम से जाना गया। इस योजना के तहत यह निश्चित किया गया कि प्रांतों में अधिकाधिक विभाग चुने हुए सदस्यों द्वारा चलाए जाएँगे और केन्द्र में वायसराय के छह पार्षदों में से तीन पार्षद भारतीय होंगे। देश के राजाओं का भी एक सदन होगा। लेकिन इन सबको लागू करने के लिए युद्ध-विराम का इंतज़ार किया जाना ज़रूरी था।

युद्ध नवम्बर, 1918 में एकदम ही समाप्त हो गया। यही वक़्त था कि हम स्वयं से किए गए वादों का फ़ायदा उठाते। हमारा काम उम्मीद से भी अधिक अच्छा चल निकला था। पंजाब के नहर-क्षेत्रों में हमें बड़े-बड़े मुरब्बे दे दिए गए थे। नई दिल्ली में हमें मन-पसंद ज़मीनें दे दी गई थीं। मुख्य-मुख्य भवनों के टेंडर खुले तो मुझे साउथ ब्लॉक, वॉर मेमोरियल आर्च (इंडिया गेट) और क्लर्कों के क्वार्टर बनाने के ठेके मिले। मेरे पिता अब काफ़ी बूढ़े और कमज़ोर हो चले थे। उन्हें सरदार साहिब की पदवी से सम्मानित किया गया था। अभी वे जीवित ही थे कि मुझे घर का मुखिया माना जाने लगा। मेरा छोटा भाई पंजाब में हमारी ज़मीनें देखता था। मैं पूरी तरह 'भवन-निर्माण' के काम में लगा हुआ था और ख़ूब पैसा कमाने में जुटा था, ताकि कभी अपनी मोटरगाड़ी में कुतुबमीनार जाने की इच्छा को पूरा कर सकूँ, जैसा कि मैंने यहाँ अपने शुरू-शुरू के दिनों में सोचा था।

चार साल चलकर लड़ाई तो ख़त्म हो गई थी, लेकिन हिन्दुस्तान की क़िस्मत में शांति नहीं बदी थी, बल्कि लड़ाई के दिनों में फिर भी कुछ अमन-चैन था। हिन्दुस्तान की अशांति के कुछ नज़ारे तो मैंने अपनी आँखों से देखे, क्योंकि अंग्रेज़ी सरकार ने मुझे अवैतनिक मजिस्ट्रेट का पद दे दिया था और जब कभी शहर में अशांति का वातावरण होता, डिप्टी कमिश्नर मुझे बुलवा भेजते और पुलिस के साथ रहने को कहते।

हिन्दुस्तान के दृश्य-पटल पर गांधी नामक एक नया नेता पैदा हो गया था। उसने सरकार-विरोधी आंदोलनों में हिन्दुओं के साथ मुसलमानों को भी मिला लिया। इसी समय फ़्लू की महामारी भी फैल गई, जिसमें लाखों लोगों की मौतें हुईं। लगातार ख़राब पैदावार के चलते भयंकर अकाल की स्थिति पैदा हो गई थी। ऊपर से गांधी ने यह माँग करनी शुरू कर दी कि युद्ध-समाप्ति के बाद सरकार को अपने वे अधिकार त्याग देने चाहिएँ जो उसने युद्ध के चलते हासिल कर लिये थे। उससे भी ज़्यादा शरारती काम वह यह कर रहा था कि मुसलमानों की इस माँग में उनके साथ था कि ब्रिटेन ख़लीफ़ा के तुर्की-साम्राज्य से अपनी पकड़ ख़त्म कर दे। हिन्दुस्तानी आबादी के अस्सी फ़ीसदी हिन्दुओं और सिखों को क्या तुर्की से लेना था और क्या ख़लीफ़ा से! लेकिन गांधी की चाल कामयाब हो रही थी। मैंने देखा कि हिन्दू और मुसलमान एक ही सबीलों में पानी पीते, हाथों में हाथ डाले गलियों में 'हिन्दू-मुस्लिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई-भाई' के नारे लगाते घूमते रहते। मुसलमानों ने जामा मस्जिद में जमा मुस्लिम जनता को सम्बोधित करने के लिए श्रद्धानन्द नाम के एक हिन्दू को आमंत्रित किया। सरकार ने भी ठीक ही किया कि गांधी के दिल्ली में घुसने पर पाबंदी लगा दी। पर दिल्ली में नहीं घुस सके तो हज़रत पंजाब जा पहुँचे, जहाँ लाहौर और अमृतसर समेत अनेक शहरों में पहले से ही तनाव की स्थिति थी। हिन्दुस्तान में फैली गड़बड़ी देखकर अफ़ग़ानिस्तान के अमीर शाह अमानुल्लाह ने सोचा कि हिन्दुस्तान पर हमला करने का यह अच्छा मौक़ा है। लेकिन सरकार ने इस स्थिति से भी कड़ाई के साथ निबटा। पूरे तीन हफ़्तों तक मैंने रात-दिन एक कर दिया। पुलिस के साथ ड्यूटी बजाते हुए मैं उत्तेजित भीड़ को तितर-बितर करने में लगातार उनकी मदद करता रहा।

इसी समय जनरल डायर ने अमृतसर के जलियाँवाला बाग़ में ग़ैरक़ानूनी तौर पर सभा करते लोगों को गोलियों से भून डाला। तीन सौ पचास से भी ज़्यादा लोग जान से मारे गए और हज़ार के क़रीब घायल हो गए। पंजाब में 'मार्शल लॉ' लागू कर दिया गया। शरारती तत्त्वों को सरेआम कोड़े लगाए जा रहे थे, उनकी जायदाद ज़ब्त कर ली गई और उनके नेताओं को देश-निकाला दे दिया गया था। रहा अमानुल्लाह! तो हिन्दुस्तान पर हमला करने से पहले उसका अपना ही तख़्त उलट गया। सन् 1919 और 1920 हिन्दुस्तान के लिए सचमुच ही बहुत बुरे वर्ष थे। लेकिन मेरे सपनों के साकार होने की शुरुआत यहीं से हुई।

प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद सरकार को नई दिल्ली का निर्माण करने से कुछ भी नहीं रोक सका। दिल्ली से 20 मील दक्षिण में गाँव बदरपुर से लेकर आजकल कनॉट सर्कस कही जाने वाली जगह तक एक छोटी लाइन बिछाई गई, जिसे 'इम्पीरियल दिल्ली रेलवे' कहा जाता था। यह रेलवे लाइन निर्माण-स्थल तक रोड़ी, बालू, पत्थर आदि की ढुलाई के लिए बनाई गई थी। निर्माण-स्थल के पास दो बड़े-बड़े शेड लगाए गए थे, जिनमें पत्थर काटनेवाली मशीनें लगाई गईं। पत्थर और संगमरमर को तरह-तरह के अपेक्षित आकार देने के लिए हज़ारों की तादाद में संगतराशों को काम पर लगाया गया। बाँगड़देश से क़रीब 50,000 मर्द-औरतों को लाकर मज़दूरी पर लगाया गया। मेरे अपने ही स्टाफ़ में पचास से अधिक मुंशी और ख़ज़ांची थे और तीन हज़ार से ऊपर मज़दूर। उधर विधानसभाओं में बैठे राजनेता बकबक करते रहते, राजधानी की इस परियोजना को पैसे की बर्बादी कहते और इसकी आलोचना भी करते रहते। इधर हम एक ऐसा नया शहर बनाने में जुटे रहे, जिसका सानी पूरे हिन्दुस्तान में कहीं नहीं था।

सन् 1920 की सर्दियों में हालात ने बेहतरी की दिशा में पलटा खाया। मेरा परिवार दिल्ली में मेरे साथ ही रह रहा था। पिताजी ने छोटे भाई के साथ पंजाब में ही रहना तय किया। मेरे परिवार में पत्नी और चार बच्चे थे—तीन लड़के और एक लड़की। मैं अब मोटरगाड़ी ख़रीदने की स्थिति में था, लेकिन पिताजी का मन नहीं जान पा रहा था। वे इस तरह पैसा बर्बाद करने के बहुत ख़िलाफ़ थे। इसलिए मोटरकार के बजाय मैंने चार पहियोंवाली विक्टोरिया और एक घोड़ा ख़रीद लिया। विक्टोरिया पहले बच्चों को दरियागंज में उनके स्कूल छोड़ आती, फिर मुझे अपने विभिन्न निर्माण-स्थलों पर ले जाती। घर मैं दस बजे के पहले शायद ही कभी लौट पाता। कभी-कभी काम के बाद मैं अपने यारों-दोस्तों के पास चला जाता, जहाँ व्हिस्की के एकाध पेग के साथ चावड़ी बाज़ार की वेश्याओं का मुजरा भी देखने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल जाता। अगर कहीं पिताजी दिल्ली में ही मेरे साथ रह रहे होते, तब तो मैं इन सब चीज़ों के बारे में सोच भी नहीं सकता था।

मैंने जंतर-मंतर इलाक़े में अपना एक दोतल्ला मकान बना लिया। मेरे और भी साथी सिख ठेकेदारों ने यहीं अपनी कोठियाँ बना लीं। मैं उनसे ज़्यादा कमाई कर रहा था, लेकिन ख़र्च करने में वे मुझसे ज़्यादा उस्ताद थे। उनमें से एक ठेकेदार को पत्थर और संगमरमर की आपूर्ति करने का ठेका मिला था। उसने पत्थर और संगमरमर की अपनी इतनी बड़ी कोठी बनवाई कि पूरी दिल्ली में दूसरी कोई न हो। एक और ठेकेदार था, जिसका बाप कभी डाकू हुआ करता था। कमाई उसकी मुझसे आधी भी नहीं थी, पर उसने दो-दो कारें ख़रीदी हुई थीं।

गर्मियों के ही दिन थे। एक दिन छोटे भाई का तार मिला कि पिताजी सख़्त बीमार हैं और मुझे वहाँ तुरन्त पहुँचना होगा। उस समय वे मियाँ चन्नूँ में मेरे भाई के पास रहते थे, जहाँ मेरे भाई की रुई धुनने की फ़ैक्ट्री थी और कोई दो सौ मुरब्बे ज़मीनें थीं। उसने रेलवे अधिकारियों से कहकर वहाँ के स्टेशन का नाम पिता जी के नाम पर कोट सुजान सिंह रखवा लिया था। मैं ठीक समय पर मियाँ चन्नूँ पहुँच गया। लगता था, पिताजी इस दुनिया को अलविदा कहने में सिर्फ़ मेरा ही इंतज़ार कर रहे थे। मेरे सिरहाने बैठते ही उन्होंने धंधे के बारे में पूछताछ करनी शुरू कर दी। उनकी साँस फूल रही थी और डॉक्टर उन्हें बोलने के लिए मना कर रहे थे, पर वे किसी की सुन ही नहीं रहे थे। बोलते-बोलते उन्होंने अचानक रोना भी शुरू कर दिया कि वे मेरे और मेरे भाई के ऊपर एक लाख रुपए का क़र्ज़ छोड़े जा रहे हैं। हमने उन्हें बहुत समझाया कि व्यवसाय में तो लेन-देन चलता ही रहता है और फिर हम दोनों भाइयों के पास एक करोड़ रुपए की माल-मिल्कियत भी तो है। अगर यही बात आपको परेशान कर रही है तो हम दोनों में से कोई भी मिनट-भर में वह देनदारी चुकता कर सकता है। वे हिचकियाँ लेते हुए बोले, "जो भी हो, लेकिन मरने से पहले इन्सान को अपना हर कर्ज़ चुकता कर देना चाहिए।"

पिताजी शायद इसलिए रो रहे थे कि वे बहुत क्षीण हो गए थे। उनको देखकर हमारी भी रुलाई छूटने लगी। तब उन्होंने मेरी माँ और हम दोनों भाइयों के अलावा सबको बाहर जाने को कहा। फिर हमसे बोले, "मैं तुम दोनों भाइयों से तुम्हारी माँ के सामने यह वादा लेना चाहता हूँ कि तुम दोनों आपस में मिल-जुलकर रहोगे और पैसे को भी मिल-बाँटकर बरतोगे, चाहे एक ने कमाया हो और दूसरे ने गँवाया हो।"

हम दोनों भाइयों ने एक-दूसरे को गले लगाया और उनकी छाती पर झुककर उनकी बाहों में सिमट गए। वे पुनः कहने लगे, "अगर तुम लोग कभी परिवार की ज़मीन-जायदाद का बँटवारा भी करना चाहो तो प्यार से करना, ताकि बाहरवालों को सुराग़ तक न लगे। किसी बात पर कोई झगड़ा हो जाए तो तुम्हें अपनी माँ का फ़ैसला बिना किसी हीले-हवाले के मंज़ूर होना चाहिए।"

मेरी माँ जो अब तक चुपचाप उनके पाँव दबाती जा रही थी, यह सब सुनकर रोने लगी, "मुझे छोड़कर जाने की बात मत करो जी! डॉक्टर कहते हैं कि आप ठीक हो जाएँगे। सतगुरु आपको चंगा करेंगे।"

डॉक्टर उनकी दवाइयाँ बदलते रहे, पर सतगुरु ने इस दुनिया में उनका खाता बंद कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था। आधे घंटे बाद वे उठकर बैठ गए और अपने अगल-बग़ल देखने लगे, जैसे वे कुछ चाहते हों। उन्होंने अपना मुँह इस तरह खोला, जैसे जँभाई ले रहे हों और हाँफते हुए तकिए पर लुढ़क गए। उनकी साँस चलनी बंद हो गई थी। मेरी माँ ने अपने हाथों से उनकी आँखें बंद कर दीं और रोने लगीं, "मेरा दीवा एक नाम, दुख बिच पाया तेल!"

तुरंत ही सारे शहर में यह ख़बर फैल गई। घंटेभर में हमारा घर लोगों से भर गया। इलाक़े-भर के हिन्दू, सिख और मुसलमान हमारा ग़म बाँटने पहुँच गए। मानसपुर्सी करनेवाली पेशेवर औरतें भी छातियाँ पीटती आ पहुँचीं और मृतक की प्रशंसा के गीत गाते हुए रोने लगीं। उसी दिन दोपहर को गाजे-बाजे के साथ उनकी अर्थी निकली। क़रीब दो हज़ार लोग अर्थी के साथ-साथ चल रहे थे। औरतें अपने बच्चों से अर्थी के नीचे चलने को कह रही थीं, ताकि वे भी उन्हीं की तरह दीर्घायु हों। हमारे परिवार में रिवाज था कि बड़े-बूढ़ों की मृत्यु पर मातम नहीं मनाया जाता, बल्कि उसे उत्सव की तरह माना जाता था कि उन्हें दुनिया के बंधनों से छुटकारा मिल गया। मरते समय मेरे पिताजी की उम्र पैंसठ साल की थी। मातम के दस दिन माँ के पास बिताकर मैं अपनी बीवी-बच्चों के साथ दिल्ली लौट आया। कुछ महीने बाद मेरी बीवी ने हमारे आख़िरी बच्चे को जन्म दिया। इस बार भी बेटा हुआ था। उसी के कुछ माह बाद मैंने एक सेकेंड हैंड गाड़ी ख़रीदी—ओल्ड मोबाइल। यह गाड़ी मैंने कुछेक हफ़्तों में इंग्लैंड वापस लौट रहे एक अंग्रेज़ इंजीनियर से ख़रीदी थी। उसने बहुत-से ठेके दिलाने में मेरी मदद की थी, इसलिए मैंने उसकी पुरानी कार के भी नई कार जितने दाम दिए। बदले में इंजीनियर साहिब ने मेरे अनाप-शनाप बिलों को बिना किसी कटौती के पास कर दिया।

मुझे गाड़ी चलानी नहीं आती थी। इसलिए मैंने एक मुसलमान ड्राइवर रखा, जिसके पास गाड़ी चलाने और सिखाने का भी लाइसेंस था। जब वह मुझे कार पर ले जाता, तो मैं उससे गाड़ी चलाना भी सीखता। बचपन में कभी मैंने अपने पिता से कहा था कि मैं अपनी गाड़ी खुद चलाकर कुतुब मीनार देखने जाऊँगा। मैं अभी तक अपनी प्रतिज्ञा पर अटल था कि कुतुबमीनार देखने खुद अपनी कार चलाकर ही जाऊँगा।

मुझे गाड़ी चलाना सीखने में महीना-भर लग गया। अवैतनिक मजिस्ट्रेट होने के कारण लाइसेंस बनवाने के लिए मुझे ड्राइविंग टेस्ट भी पास नहीं करना पड़ा। और फिर वह महान दिन भी आ पहुँचा। मैंने अपने परिवारवालों से कहा कि आगामी रविवार को हम लोग पिकनिक मनाने कुतुबमीनार जाएँगे। मेरी पत्नी ने पिकनिक के लिए ज़ोर-शोर से तैयारियाँ कीं। उसने फलों और आलू के पराँठों से टोकरियाँ भर लीं। खाने-पीने का इतना सामान ले लिया कि बीस आदमियों के लिए भी पूरा हो जाए। गाड़ी में हम बारह लोग ठुँसे हुए थे। मैं ड्राइवर की सीट पर बैठा था और मेरा ड्राइवर हैंडल घुमाकर गाड़ी स्टार्ट करने में लगा था (उन दिनों गाड़ियों में सेल्फ़-स्टार्टर नहीं हुआ करते थे)। कुछेक बार हैंडल घुमाने से गाड़ी में जान पड़ गई। मेरी पत्नी, बच्चे और नौकरानी पिछली सीट पर बैठे थे। हेडक्लर्क और शोफ़र अगली सीट पर मेरे साथ बैठे थे। चार नौकर (दोनों ओर दो-दो) गाड़ी के फ़ुटबोर्ड पर खड़े थे। हमने ऊँची आवाज़ में 'सत श्री अकाल' कहा और चल पड़े। मेरी बग़ल में खड़ा नौकर रास्ते-भर हॉर्न बजाता रहा। हम लोग सफ़दरजंग के मक़बरे से गुज़रते हुए यूसुफ़सराय और हौज़ ख़ास के बीहड़ रास्तों में बिखरी तमाम पुरानी इमारतों को पार कर बढ़े जा रहे थे कि तभी देखा—दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही कुतुब मीनार नज़र आने लगी थी। देखते ही गाड़ी में बैठे सब के सब लोग चिल्लाने लगे, 'कुतुबमीनार, कुतुबमीनार !'

नौकर-चाकर बाग़ में दरियाँ बिछाकर खाना लगाने लगे। इसी बीच हम लोग कुतुबमीनार के ऊपर चढ़कर नीचे फैले खँडहरों को देखने लगे। नीचे उतरकर मैंने मस्जिद का एक चक्कर लगाया और फिर लोहे के खम्भे को बाहों के घेरे में लेने की कोशिश करने लगा। मुझे इतिहास का अधिक ज्ञान नहीं था, इसलिए कुतुबमीनार और इसके आस-पास की इमारतों के बारे में मैं अधिक कुछ नहीं जानता था। मेरे बड़े बेटे ने हमें बादशाह कुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश और अलाउद्दीन के ज़माने की दिल्ली के बारे में बताया। मुझे यह देखकर बहुत ख़ुशी हो रही थी कि वह इतने थोड़े ही दिन स्कूल जाकर इतना कुछ सीख गया था।

हमने आलू के पराँठे खाए। बच्चे खा-पीकर इमारतें देखने लग गए। मैं दरी पर लेटकर मीनार को निहारने लगा। कुतुबमीनार पीछे तिरते बादलों की पृष्ठभूमि में झूलती हुई-सी लग रही थी। मैं सोच रहा था कि पता नहीं कितना पैसा इसको बनानेवाले ठेकेदारों ने कमाया होगा! यह तो साफ़ ज़ाहिर है कि उन लोगों ने पत्थर और संगमरमर पुरानी इमारतों से चुरा-चुराकर लगाया था और पैसे पूरे नए माल के वसूले होंगे! उन्होंने भी क्या अपने बिल पास कराने के लिए ओवरसियरों और आर्किटेक्टों को घूस खिलाई होगी? बिना सीमेंट और रोड़ी के किन चीज़ों से उन्होंने ये इमारतें बनाई होंगी, जो हज़ारो सालों बाद आज भी खड़ी हुई हैं? मेरी बनाई बिल्डिगें क्या पाँच सौ साल तक भी बची रहेंगी? और क्या लोगों को पता चलेगा कि मैंने उन्हें बनवाया था? या फिर लोग उन्हें सिर्फ़ लटयंस और बेकर के दिमाग़ का कमाल समझते रहेंगे या उन वायसरायों के नाम से ही जोड़ते रहेंगे, जिनके शासन-काल में ये शुरू होकर पूरी हुई थीं। फिर भी, पता नहीं क्यों मुझे इन सब बातों की ज़्यादा फ़िक्र नहीं थी, क्योंकि आज मेरी एक चिरकालिक अभिलाषा पूरी हुई थी—अपनी गाड़ी ख़ुद चलाकर कुतुबमीनार तक आने की। और अब तो मैं शीघ्र ही इतनी तरक्क़ी करनेवाला था कि हर साल एक नई मोटरगाड़ी ख़रीद सकूँ। अब तो मैं जाना-माना लखपति बननेवाला हूँ। ज़िंदगी में एक इन्सान को और भला क्या चाहिए!

जनवरी, सन् 1921 में किंग के चाचा 'ड्यूक आफ कनॉट' दिल्ली घूमने आए। उस वक़्त दिल्ली ऐसी नहीं लगती थी कि यहाँ कोई आबादी भी होगी। बड़ी-बड़ी सड़कों पर कुछेक बँगले थे, बस। सड़कों के किनारे नए लगे छोटे-छोटे पेड़ थे। वायसराय भवन, दोनों सचिवालय और इंडिया गेट वग़ैरह अभी बने नहीं थे। वायसराय चाहते थे कि ड्यूक का यहाँ आना एक पक्की यादगार बन जाए। इसलिए उनसे संसद भवन की आधारशिला रखवाने की योजना बनाई गई। संसद-भवन में 'प्रिंसेस चेम्बर' भी सम्मिलित था और इसे सचिवालयों के क़रीब ही बनाया जाना था। यह भी घोषणा की गई कि सचिवालयों से आधा मील उत्तर की ओर बननेवाले मुख्य 'शॉपिंग सेंटर' का नाम ड्यूक के नाम पर 'कनॉट प्लेस' रखा जाएगा। उन दिनों वहाँ कोई भी इमारत नहीं थी, सिर्फ़ एक गोलाकार सड़क-भर थी। मैं कुछ उन थोड़े-से ठेकेदारों में से था, जिन्हें ड्यूक से मिलवाया गया था। वायसराय को बताया गया था कि इस भावी 'सिटी सेन्टर' (नगर-केन्द्र) में सबसे ज्यादा ज़मीन मेरी है, इसलिए उन्होंने मेरे सामने ही ड्यूक से कहा, "यह शख़्स आपके नाम पर बननेवाले इस शॉपिंग सेन्टर में पहला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शॉपिंग आर्केड, सिनेमाघर और रेस्तराँ बनानेवाला है।" तब तक मैंने यह सोचा भी नहीं था कि मैं उस ज़मीन पर क्या करनेवाला हूँ। नई दिल्ली में बसे लोगों की तादाद ही तब कितनी थी कि उनके लिए दुकानें और रेस्तराँ खोले जाते! लेकिन मैं जानता था कि वायसराय जैसे बड़े आदमी का दिया गया संकेत भी आदेश से कम नहीं है, जिसका लाज़मी तौर पर पालन करना होगा। ऊपर से मुझे प्रोत्साहित करने के लिए ड्यूक के अगले जन्म-दिन पर 'सरदार साहिब' का ख़िताब भी दे दिया गया।

अब कुछ बातें ठेकेदार-परिवारों के बारे में भी बता दूँ। हम लोग पंजाब के अलग-अलग हिस्सों से आए थे और दिल्ली आने से पहले एक-दूसरे को जानते तक नहीं थे। उनमें से एक मैं ही था जो स्कूल गया था और अंग्रेज़ी लिखना-पढ़ना सीख गया था। मैंने बाद में ट्यूशन लगाकर भी अंग्रेज़ी का ज्ञान प्राप्त किया। बाक़ी ठेकेदार देहाती थे और कुछेक तो शायद किसी भी भाषा में अपने दस्तख़त तक नहीं करना जानते थे। लेकिन इससे कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ता था। हम सभी सिख थे और एक-दूसरे को एक ही परिवार का अंग समझते थे। कुछ सिख इंजीनियर और ओवरसियर भी थे। वे लोग हमसे थोड़ी दूरी बनाए रखते थे। लेकिन जब वे हमारे बिल पास करते हुए अपना कमीशन लेते थे, तब वे भी स्वयं को हमारा ही हिस्सा समझते थे। तनाव के क्षणों में (जब शहर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे भड़कते थे) हम लोग एक-दूसरे के घरों की रक्षा करते। हममें से किसी का भी लड़का पुलिस के किसी फंदे में फँस जाता तो हम लोग अपने सम्मिलित प्रयासों से उसे छुड़ा लाते। एक दिन किसी सिख इंजीनियर की अठारह वर्षीय लड़की अपने मुसलमान संगीत-टीचर के साथ भाग गई। उसके पिता ने सारे कुनबे को ख़बर कर दी। हम लोगों ने तुरंत ही दिल्ली को आती-जाती हर सड़क और हर रेलवे-प्लेटफ़ॉर्म पर अपने लोगों को तैनात कर दिया और रात होने से पहले ही लड़के-लड़की को मोटरगाड़ी से जमुना पुल की तरफ़ जाते हुए पकड़ लिया। लड़की को तो उसके बाप के हवाले कर दिया गया कि वह चाहे जो करे उसका, और मुसलमान लड़के को ऐसी मार लगाई गई कि वह उसे ज़िंदगी-भर नहीं भुला पाया होगा। इससे पहले कि वह पुलिस तक पहुँचे और उसे बताए कि लड़की को मुसलमान बना दिया गया था, या उनकी शादी हो गई है, या अपने मुसलमान साथियों तक पहुँचकर मामले को तूल दे, हमने उसे डराया कि लड़की को भगाने और उससे बलात्कार करने के जुर्म में उसके ख़िलाफ़ पुलिस में रपट दर्ज करा दी गई है। फिर उस शख़्स ने दिल्ली से भागने में देरी नहीं की।

अचानक पैसा आए तो उसके साथ उसकी मुसीबतें भी आती हैं। हम लोग पैसा कमाने में बुरी तरह मशग़ूल थे। हमारे पास इतना भी वक़्त नहीं था कि हम अपने बच्चों पर नज़र रख पाते या यह देख पाते कि वे उस पैसे को कैसे ख़र्च रहे हैं। अपने लड़कों को बिगाड़ने में हमें आनंद भी आता था। मैं जब 'हम' कह रहा होता हूँ तो मेरा मतलब सिर्फ़ बाक़ियों से होता है। अपने बच्चों के साथ तो मैं बड़ी सख़्ती से पेश आता था। दूसरे लोगों ने अपने बेटों को मोटरगाड़ियाँ दे रखी थीं, जबकि मैंने अपने दो बड़े बेटों को सिर्फ़ साइकिलें ख़रीदकर दी हुई थीं। नतीजतन मेरे बेटे स्कूलों और कॉलेजों में जाते थे और उनके बोतलों में डूबे चावड़ी बाज़ार की रंडियों के पास। एक बेहद कट्टर सिख ठेकेदार के सबसे बड़े बेटे ने हिन्दुस्तान के अलग-अलग प्रांतों से औरतें ला-लाकर पूरा हरम बसाया हुआ था और ढेरों बच्चे पैदा कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये थे। इसी तरह एक और ठेकेदार था, जिसके पाँच बेटे थे, पर उनमें से सिर्फ़ एक ही भला निकला जो उसके साथ ठेकेदारी में हाथ बँटाता था, बाक़ी सब-के-सब शराब, मुजरों और शिकार में अपने दिन बिताया करते। उनमें से एक तो दिल्ली का छँटा हुआ रंडीबाज़ निकला। ऐसी-ऐसी शेख़ियाँ बघारता और कहता कि वह एक ही दिन में तीन-तीन रंडियों के पास जाता है। एक दिन किसी रंडी के कोठे से उतरकर वह गली की एक पान की दुकान पर कुछ मुसलमानों के साथ पंगा ले बैठा। उनमें से एक आदमी ने उसे बर्फ़ उठानेवाला चिमटा दे मारा। उसने भी हमलावर का गिरेबाँ पकड़ा और उसे पुलिस-स्टेशन ले गया। फिर खुद अस्पताल जाकर अपने घाव में टाँके लगवाए और घर लौटा। सोने से पहले उसे लगा कि घाव रिस रहा है, सो रिसते हुए ख़ून को धोने के लिए वह ग़ुसलखाने में गया और जैसे ही पानी से भरे टब पर झुका कि उसके भीतर जा गिरा। सुबह उसके नौकर ने उसे ख़ूनोख़ून टब में मरा पाया। उसके बाप ने बेटों के मरने पर बूँद-भर भी आँसू नहीं बहाया। मैं जब मातमपुर्सी के लिए गया, तो उसके बाप का चेहरा एकदम भावहीन बना रहा। बोला, "कुत्ते की मौत मरा! ऐसी ही करनी की थी उसने।"

काम बढ़ने के साथ-साथ मेरे रहन-सहन का स्तर भी बदलने लगा था। मैंने अब यूरोपियन कपड़े पहनने शुरू कर दिए थे। औपचारिक मौक़ों पर मैं काला फ्रॉक कोट और धारीदार पतलून पहनता। मैं कुछ उन गिने-चुने हिन्दुस्तानियों में से था, जिनको जिमख़ाना क्लब की सदस्यता मिली हुई थी। मैंने 'डाँस' करना नहीं सीखा था, क्योंकि मैं जानता था कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तानियों का नाचना तब तक पसंद नहीं करते, जब तक कि वे अपनी औरतों को भी साथ लेकर न आएँ। मैंने एक एंग्लो-इंडियन औरत को अपनी बीवी को अंग्रेज़ी सिखाने के लिए रखा था, लेकिन उसने चंद शब्दों के सिवा और कुछ नहीं सीखा। यहाँ तक कि कभी-कभी 'गुड-मॉर्निंग' और 'गुडबाय' के प्रयोग में भी गड़बड़ी कर देती, नाचने की तो बात ही छोड़िए। दबाव दो तो बॉलरूम के फ़र्श पर बैठ जाती थी। मैं दिखावे के लिए हफ़्ते में एक बार जिमख़ाना क्लब ज़रूर जाता था। मैं अपनी जान-पहचान के अंग्रेज़ों को अक्सर शराब पेश किया करता। पर उन्होंने बदले में मुझे कभी नहीं पिलाई। अंग्रेज़ों के साथ चाहे जितना उठना-बैठना होता रहे, आराम और सुकून मुझे हिन्दुस्तानियों के संसर्ग में ही मिलता था। सिखों के बजाय मैं अपने हिन्दू और मुसलमान दोस्तों के ज़्यादा क़रीब था। एक मुसलमान इंजीनियर ने दिल्ली की एक मशहूर गायिका को रखैल बना रखा थ।। उसके लिए फ़्लैट का बन्दोबस्त मैंने ही करवाया था, इसलिए उसका गाना होता तो अक्सर मुझे बुलाया जाता। एक हिन्दू दोस्त भी था, जिसने एक बेहद ख़ूबसूरत मुसलमानी को रखैल बना रखा था। हम लोग अक्सर इसी औरत के यहाँ 'ड्रिंक्स' वग़ैरह के लिए मिला करते। लेकिन जहाँ तक संभव होता, मैं वेश्याओं के घरों में आयोजित दावतों में जाने से बचा करता था।

लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड के बाद साठ साल का एक बूढ़ा लॉर्ड रीडिंग वायसराय बनकर आया। वह ख़ानदानी आदमी नहीं था। उसकी माँ सब्ज़ी बेचती थी और बाप जहाज़ों पर मज़दूरी करता था। जाति से यहूदी होने के कारण उसका दिमाग़ बड़ा तेज़ था। सन् 1921 में जब वह हिन्दुस्तान आया, तो सिखों ने अपने गुरुद्वारों को ख़ानदान-दर-ख़ानदान चले आ रहे महन्तों के चंगुल से मुक्त कराने का संघर्ष छेड़ रखा था। उधर गांधी और उसके कांग्रेसियों ने स्वराज की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रट लगाई हुई थी। मालाबार के मोपला मुसलमानों ने भी हिन्दू बनियों के ख़िलाफ़ जेहाद छेड़ा हुआ था। रीडिंग ने गांधी का मन भाँपने के लिए पहले उसे चाय पर बुलाया, फिर कुछ महीनों बाद उसने गांधी और दोनों नेहरूओं—मोतीलाल और जवाहरलाल—को जेलों में ठूँस दिया। इन सबने प्रिंस ऑफ वेल्ज़ के भारत-आगमन पर बहिष्कार करने का आह्वान किया था। (संयोगवश प्रिंस के साथ ही भारत के अंतिम वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन भी आए और रीडिंग द्वारा दी गई एक पार्टी में ही एडविना आश्ले के साथ उनकी शादी पक्की हुई।) रीडिंग ने मोपलाओं को दबाने के लिए मालाबार में फ़ौजें भेजीं। रीडिंग इसी तरह का चालाक आदमी था—हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञों से वह घनिष्ठता केवल उनका मन जानने के लिए ही बढ़ाता था। बहरहाल, कांग्रेस के ज्वार को दबाने में वह कामयाब नहीं हो सका। सन् 1923 में कांग्रेस की चुनावों में भारी जीत हुई और मोतीलाल नेहरू केन्द्र विधान सभा (सेंट्रल असेंबली) के मुख्य प्रवक्ता बने।

रीडिंग को नई दिल्ली के निर्माण में उतनी रुचि नहीं थी, जितनी कि राजनीति में। लेकिन फिर भी, उसी के शासनकाल में नई दिल्ली ने आकार लेना शुरू किया। उसी के रहते वायसराय भवन बनकर तैयार हुआ। अब उसमें केवल फ़र्नीचर और साज-सज्जा ही बाक़ी रह गई थी। दोनों सचिवालय अपनी तैयारी के अंतिम चरण में थे। लेजिस्लेटिव असेंबली (संसद) की इमारत, बहुत-से बँगले और क्लर्कों के मकान भी तैयार हो चुके थे। मैंने कनॉट प्लेस में दुकानों का एक ब्लॉक भी बना लिया था। उनके ऊपर रिहायशी फ़्लैट भी बनाए थे। अब मैं नई दिल्ली के पहले सिनेमाघर, रेस्तराँ और डिपार्टमेंट स्टोर बनवाने में जुटा हुआ था।

पैंतालीस वर्षीय नए वायसराय लॉर्ड इर्विन के आने के साथ ही नई दिल्ली के निर्माण में तेज़ी आनी शुरू हुई, क्योंकि वे सब-कुछ जल्दी बना देखना चाहते थे। उनकी एक बाँह नहीं थी, इसलिए हिन्दुस्तानी उसे 'टुंडा लाट' कहा करते थे। वे बहुत धार्मिक प्रवृत्ति के थे, इसलिए उन्हें पादरी भी कहा जाता था। हम लोगों को बताया गया कि वायसराय भवन और दोनों सचिवालयों को एक निश्चित तारीख़ तक बनाकर तैयार कर देना था, क्योंकि वायसराय नए शहर का उद्घाटन-समारोह करना चाहते हैं। उन दिनों रात-दिन तीन-तीन शिफ़्टों में काम चलने लगा था।

वायसराय की राष्ट्रवादी नेताओं से गहरी छनती थी, अतः हम लोग समझने लगे थे कि अब अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी हाथ में हाथ डाले साथियों की तरह काम करेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि असली दिक़्क़त तो यह थी कि ये राष्ट्रवादी लोग कई धड़ों में बँटे हुए थे—कुछ तो अंग्रेज़ों का साथ देने को तैयार थे और कुछ उन्हें देश से निकालने को दृढ़प्रतिज्ञ थे, सम्भव हुआ तो बलप्रयोग करके भी। ऐसी ही एक वारदात को मैंने अपनी आँखों देखा।

अप्रैल 1929 की एक सुबह थी। मैं अपना पास लेकर सेंट्रल असेंबली की 'विज़िटर्स गैलरी' में बैठा था। सुनने में आया था कि बहुत ही रोचक वाद-विवाद होनेवाला है। उग्रवाद का मुक़ाबला करने के लिए प्रस्तावित पब्लिक सेफ़्टी बिल को पास न होने देने के लिए कांग्रेस इसकी धज्जियाँ उड़ानेवाली थी। मैं हॉल में झाँककर यह देख रहा था कि ऐसे कौन-कौन-से प्रसिद्ध नेता हैं, जिनकी तस्वीरें अख़बारों में आती रहती हैं। अपने साथ गैलरी में बैठे लोगों पर मैंने ज़्यादा ध्यान नहीं दिया, सिवाय दो नवयुवकों के जो मेरी दायीं ओर बैठे थे। उन लड़कों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोट और टाई वग़ैरह नहीं पहन रखे थे। कॉलेज के निरे छोकरे लग रहे थे। बहस उतनी दिलचस्प नहीं हो रही थी, जितना मैंने सोचा था। लम्बे-लम्बे लच्छेदार भाषण हो रहे थे जो उतनी दूर से मुझे ठीक से सुनाई भी नहीं दे रहे थे। इसलिए अपने साथ लाए अख़बार की सुर्ख़ियों पर ही नज़र दौड़ाने लगा। अचानक ही एक ज़ोर का धमाका हुआ। मैंने देखा कि मेरी बग़ल में बैठे वे दोनों युवक सदस्यों पर गोलियाँ बरसा रहे थे। सदन से धुआँ उठ रहा था और लोग दरवाज़ों की तरफ़ दौड़ रहे थे या बेंचों के नीचे छिप गए थे। 'विज़िटर्स गैलरी' ख़ाली हो चुकी थी। सिर्फ़ मैं ही अपनी सीट पर जहाँ का तहाँ बैठा था और युवक गोलियाँ चलाते जा रहे थे। मैंने देखा कि उनमें से एक लड़का अपनी पिस्तौल को थपथपा रहा था। शायद उसमें गोलियाँ ख़त्म हो चुकी थीं। तभी पिस्तौलें लिये पुलिसवालों ने हमें घेर लिया। एक एंग्लो-इंडियन सार्जेंट ने चिल्लाकर कहा, "हैंड्स अप!" हमने अपने हाथ ऊपर उठा दिए। लडकों ने अपनी पिस्तौलें पुलिस को सौंपने से पहले मेरी ओर देखा और मुस्कराया। मैं अवैतनिक मजिस्ट्रेट था। पुलिसवालों ने मुझे पहचान लिया और मुझे सदन के बाहर निकाल ले गए।

उन लड़कों को विधायकों को मारकर क्या मिलनेवाला था, यह बात मेरी समझ के बाहर की चीज़ थी। यह मैं जानता था कि इसके लिए अब उन्हें फाँसी दे दी जाएगी और यही हुआ भी। (इससे पहले उन्होंने एक एंग्लो-इंडियन सार्जेंट का क़त्ल किया था और उसी के लिए उन्हें फाँसी दी गई। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च 1931 को फाँसी लगी थी)।

ख़ैर! हैरानी तो मुझे इस बात की थी कि ये कांग्रेसी एक ओर तो अहिंसा की बातें करते थे, और दूसरी ओर ऐसी राजनैतिक हत्याओं की अनदेखी करते थे। यहाँ तक कि लॉर्ड इर्विन भी इनकी इस प्रतिक्रिया से क्षुब्ध थे, 'एक ओर तो अपराध की निंदा की जाय और दूसरी ओर यह कहकर इसकी अनदेखी की जाय कि इसके ज़िम्मेदार खुद इसके शिकार हैं। यह कोई बात नहीं हुई।'

मुझे लगता था कि मैं समय के साथ नहीं हूँ, क्योंकि मेरे विचार से अंग्रेज़ों का राज हिन्दुस्तान के लिए अच्छा ही था। हम हिन्दुस्तानियों ने ऐसी हुकूमत न कभी की और न कभी कर सकेंगे जो कि हर समुदाय के लिए निष्पक्ष हो। लेकिन कोई भी ऐसा शख़्स नहीं था जो मेरी राय से सहमत होता। मेरी बूढ़ी माँ जो कभी रानी विक्टोरिया की तस्वीर के आगे धूपबत्ती किया करती थी, अब चरख़े पर सूत कातने लगी थी। उसने एक दिन सूत की एक लच्छी मेरे हाथों में थमाते हुए कहा कि उसे गांधी को दे आऊँ। मेरे बड़े दो बेटे अपने स्कूल की वर्दी ख़रीदने गए तो हाथों में खाद्दी के कपड़े लेकर लौटे, क्योंकि गांधी ने विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का आह्वान जो किया था। मैं जानता था कि मेरी पीठ-पीछे मेरे सिख मातहत मुझे 'झोली-चुक' (भीख की झोली फैलानेवाला) कहते हैं, और जब मैं दंगे रोकने के लिए पुलिस के साथ खड़ा होता हूँ तो लोग 'हाय, हाय' करते हुए अपनी छाती पीटने लगते हैं और 'टोडी बच्चा' कहकर मेरी हँसी उड़ाते हैं। मैं फिर भी यही सोचता रहा कि मेरे जीते-जी तो अंग्रेज़ हिन्दुस्तान पर राज करते ही रहेंगे। मैंने उनका नमक खाया था; मैं किसी भी क़ीमत पर उन्हें दग़ा नहीं दे सकता।

लॉर्ड इर्विन ने राष्ट्रवादियों का साथ देने की भरसक कोशिश की। उनके कहने पर ही सन् 1923 में एटली-समेत साइमन कमीशन भारत आया। लेकिन कमीशन जहाँ-जहाँ गया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रवादियों ने उसके विरोध में भारी प्रदर्शन किया। इर्विन ने भारत को 'डॉमीनियन स्टेटस' दिलाने के लिए लंदन में 'गोलमेज़ कांफ्रेंस' आयोजित की। लेकिन राष्ट्रवादियों ने पहली 'गोलमेज़ कांफ्रेंस' का बहिष्कार किया और दूसरी में सिर्फ़ गांधी को भेजा। एक के बाद एक असहयोग आंदोलन चलाकर उन्होंने मुल्क को अराजकता की स्थिति में ला खड़ा किया। वे 'सत्याग्रह' और 'अहिंसा' की बातें करते थे, लेकिन राजनैतिक हत्याओं और बम-विस्फोटों पर खुश होते थे। उनके दोहरे आचरण का सबसे बड़ा उदाहरण तो लॉर्ड इर्विन जैसे धर्मभीरु व्यक्ति से उनका इतनी बुरी तरह पेश आना था।

नई दिल्ली के उद्घाटन की तिथि निश्चित हो गई थी। वायसराइन लेडी डॉरोथी ने वायसराय भवन में पर्दों और साज-सज्जा आदि के सही चुनाव और मुग़ल गार्डेन में लगाए जानेवाले फूलों के पौधों की क़िस्मों वग़ैरह पर सलाह के लिए लटयंस को बुलवाया। अगस्त, 1931 के अन्त तक सारी तैयारी पूरी हो गई थी। 23 दिसम्बर, 1931 को लॉर्ड और लेडी इर्विन उद्घाटन समारोह के लिए ट्रेन द्वारा दिल्ली आए। मैं कुछेक उन गिने-चुने पदाधिकारियों में से था, जिन्हें नई दिल्ली स्टेशन पर उनका स्वागत करना था। ट्रेन जैसे ही प्लेटफ़ॉर्म पर आते-आते धीमी हुई, रेल लाइन पर रखा बम फट गया। सौभाग्य से वायसरायवाला डिब्बा बच गया, जबकि उसके ठीक पीछेवाला डिब्बा उड़ गया था। वायसराय और वायसराइन एकदम सहज दिख रहे थे। पूरे समारोह में वे ऐसे दिखते रहे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। विडंबना तो यह थी कि यही एक वायसराय थे, जिन्होंने भारत को अपना दिल दिया था। इन्होंने ही अपने आवास के सामनेवाले जयपुर-स्तम्भ पर ये चुनिंदा शब्द लिखवाए थे—

आस्थामय विचार
विवेकपूर्ण वाणी
साहसपूर्ण कर्म
सेवारत जीवन
अथ भारत बने महान !

मुझे अपनी वफ़ादारी का इनाम तरह-तरह की उपाधियों के रूप में प्राप्त हुआ। पहले मुझे 'सरदार बहादुर' की उपाधि मिली, फिर सी० बी० ई० की, फिर 'नाइटहुड' की पदवी दी गई और उसके बाद मुझे राज्य-परिषद के लिए मनोनीत कर लिया गया। मुझ नहीं मालूम कि भारत के वे राष्ट्रवादी पीठ-पीछे मुझे क्या-क्या कहते थे, लेकिन हर उपाधि के बाद वे फूलमालाएँ लेकर बधाइयाँ देने ज़रूर आते। मैं नई दिल्ली का प्रमुख भवन-निर्माता कहा जाने लगा था, जबकि यह सच नहीं था। बहरहाल, मैं अब क्वीन्स-वे पर एक दोतल्ली कोठी में रहने लगा था, जिसका नाम मैंने 'वैकुंठ' रखा था। मेरे जंतर-मंतरवाले घर का नाम भी 'वैकुंठ' ही था। बड़े-बड़े राष्ट्रवादी नेता मेरी मेज़बानी खुशी से स्वीकार करते थे । यों ऐसा भी हुआ कि सप्रू, जयकर और सी० राजगोपालाचारी जैसे राष्ट्रवादी नेता मेरे घर आकर ठहरे। मेरे नए घर से सड़क के उस पार एक ओर जिन्ना रहते थे, दूसरी ओर बिड़ला हाउस में गांधी आकर ठहरते। सैर करते हुए दोनों मेरे घर के 'रोज़ गार्डन' में आ जाते और राजनैतिक मुद्दों पर विचार-विमर्श करते।

मैं अब बूढ़ा हो चुका हूँ। मैंने अपनी ज़िंदगी में हर देखने लायक चीज़ देख ली है। मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेज़ों का राज देखा और अब हिन्दुस्तान पर हिन्दुस्तानियों को राज करते भी देख रहा हूँ। नई पीढ़ी व्यंग्यात्मक स्वर में मुझसे पूछती है, "ज़िंदगी-भर अंग्रेज़ों के जूते चाटकर आपको आख़िर क्या मिला ?"

मैं कोई बहुत पढ़ा-लिखा इन्सान नहीं हूँ और न ही मैंने इतिहास की बहुत सारी किताबें पढ़ रखी हैं। मैं उनको जो जवाब देता हूँ, वह सीधे मेरे दिल से निकलता है। मैं वही कहता हूँ जो मैंने अपनी आँखों देखा, और जैसा अनुभव मुझे अपने उन देशवासियों और उन थोड़े-से अंग्रेज़ों के साथ रहकर हुआ, जिन्हें मैंने व्यक्तिगत तौर पर जाना। जिस शहर को बनाने में मैंने हिस्सेदारी की और जिसे लटयंस ने आनेवाले दो सौ साल को ध्यान में रखकर डिज़ाइन किया था, उसी को मैंने सिर्फ़ बीस साल में बर्बाद होते देख लिया है। हमने ऐसे शानदार भवन बनाए जो सदियों तक बने रहेंगे, और अब ये लोग जहाँ कहीं भी ख़ाली जगह पाते हैं, बेढंगे बहुमंज़िले दफ़्तर और सस्ते, घटिया मकान बनाते जा रहे हैं। बाज़ारों और घरों की आड़ में सैकड़ों पुराने स्मारकों को ग़ायब कर दिया गया है। हमने बड़ी-बड़ी चौड़ी सड़कें बनाई थीं, ये सँकरी गलियाँ बना रहे हैं, जहाँ एक-साथ दो कारें भी नहीं गुज़र सकतीं। हमने धीरे-धीरे बढ़ने वाले, दीर्घजीवी वृक्ष लगाए जो हमारे पोतों-पड़पोतों और उनके भी पड़पोतों को छाया देते रहेंगे, जबकि ये लोग तेज़ी से बढ़नेवाले गुलमोहर और अम्लतास लगा रहे हैं, जो हफ़्ते-दो-हफ़्ते-भर के लिए फूलते हैं और न छाया के क़ाबिल हैं, न कोई फल देते हैं। ये लोग तो बस, चाहते हैं कि चुटकी बजाते ही कुछ कर दिखाएँ। इनको न अतीत का गर्व है, न भविष्य की चिंता। रही अंग्रेज़ों के जूते चाटनेवाली बात, तो मैं कहूँगा कि अगर मुझे भारतीय इतिहास के किसी भी काल में फिर से जन्म लेने का मौक़ा मिले, तो मैं न तो हिंदू काल, न मुग़ल काल और न ही सिख हुकूमत के उस थोड़े-से समय में जीना चाहूँगा, बल्कि मैं तो ब्रिटिश-कालीन अपने उन 'बिल्डर-कांट्रेक्टर' वाले दिनों को ही दोहराना चाहूँगा।

"आपको क्या हिन्दुस्तानी होने में गर्व महसूस नहीं होता ?" वे मुझसे व्यंग्य से पूछते हैं, "क्या आपको शर्म नहीं आती कि आप उन विदेशी शासकों की प्रशंसा करते हैं, जिन्होंने सदियों तक हमारा शोषण किया और हमें अपमानित किया ? क्या आप भूल गए हैं कि सन् 1857 के पहले स्वतंत्रता-संग्राम के बाद आपके पुरखों के साथ उन्होंने क्या किया ? क्या आपने अपनी उदारता में 1919 के जलियाँवाला बाग कांड के लिए भी उन्हें माफ़ कर दिया, जिसमें अनिगनत बेगुनाहों का क़त्लेआम किया गया ? और हज़ारों-हज़ार स्वतंत्रता-सेनानियों को दी गई वे यातनाएँ, फाँसियाँ और नज़रबंदियाँ—आपने क्या सब-कुछ भुला दिया ?"

मैं यथासम्भव संयत स्वर में उत्तर देता हूँ, "नहीं ! मैं इनमें से कुछ भी नहीं भूला हूँ। और न ही मैं यह भूला हूँ कि हिन्दुस्तानियों ने एक-दूसरे के साथ क्या किया। उसके कुछ नमूने मैं आपको दिल्ली में ही दिखा सकता हूँ। आपने क्या कुतुबमीनार के पास वाली कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद देखी है ? इस अकेली मस्जिद को बनाने के लिए सत्ताइस जैन और हिन्दू मंदिरों को तोड़ा गया था। देवी-देवताओं के चेहरे और हाथ-पैर क्षत-विक्षत कर दिए गए थे। पर आप मुझे हिन्दुओं और मुसलमानों या सिखों के एक भी ऐसे पूजास्थल के बारे में बता दीजिए, जिसे अंग्रेज़ों ने बर्बाद किया हो। बाबर की याद कीजिए जिसने राजपूतों की खोपड़ियों के पिरामिड खड़े कर दिए थे। तैमूर, नादिरशाह और अब्दाली की याद कीजिए, जिन्होंने आम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता के क़त्लेआम के हुक्म दिए थे और किसी को भी बख़्शा नहीं गया था—न बूढ़ों को, न बच्चों को और न उनकी माँओं को। अंग्रेज़ों ने एक बार भी क़त्लेआम का हुक्म दिया हो, तो मुझे बताएँ! आपके उस तथाकथित पहले स्वतंत्रता-संग्राम के बाद दिल्ली, लखनऊ और कानपुर में जब उनकी औरतों और बच्चों को क़त्ल कर दिया गया, उसके बाद भी उन्होंने हमारी औरतों और बच्चों को हाथ नहीं लगाया। कुछ लोगों को तहस-नहस किया, यही तो··· ?"

"सिर्फ़ यही नहीं," नई पीढ़ी मुझ पर बरसती है, "उन्होंने हमारे साथ कुत्तों-जैसा सलूक किया, बल्कि कुत्तों से भी बदतर। क्योंकि कुत्तों को तो वे प्यार करते हैं न! वे हमें हब्शी कहते थे। उन्होंने हमारे यहाँ 'यूरोपियन्स ओनली' (केवल यूरोपियन) वाले क्लब बनाए, रेलगाड़ियों में 'यूरोपियन एंड एंग्लो-इंडियन ओनली' वाले डिब्बे लगाए। गोरों के लिए अलग क़ानून रखे, हम कालों के लिए अलग।"

इस बार बरसने की बारी मेरी थी, "अंग्रेज़ों के आने के पहले हिन्दुस्तान में न्याय नाम की कोई चीज़ नहीं थी। और यह बता दूँ कि अंग्रेज़ों का असर ख़त्म हो जाने के बाद फिर वही स्थिति आ जाएगी और न्याय के नाम पर कुछ भी यहाँ नहीं बचेगा। उन्होंने आपको अपने ख़िलाफ़ 'बक-बक' करने की आज़ादी दी। आपके ख़िलाफ़ कार्रवाई उन्होंने उसी हालत में की, जब आप हिंसा पर उतर आए। क्या आप किसी और जाति के संदर्भ में यह कल्पना कर सकते हैं, जो अपने ही ख़िलाफ़ राजद्रोह करनेवाले नेहरुओं और गांधियों को बरदाश्त करती? अगर अंग्रेज़ों की जगह जर्मन, फ्रांसीसी, रूसी, इटैलियन, चीनी या जापानी होते तो वे आपके इन कांग्रेसियों को पेड़ों से लटका देते।"

"अगर वे ऐसा करते तो और जल्दी यहाँ से निकाल दिए गए होते। हमारे स्वाधीनता-सेनानियों ने तो उन्हें पहले या दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान ही जूते मारकर निकाल दिया होता, जब वे यूरोप में मुसीबतों के पहाड़ों से दबे हुए थे।"

"स्वतंत्रता-सेनानी! मेरे ठेंगे पर!" मैं फिर चीख़ा, "नारे लगानेवाले किराए के टट्टू—जो जेलों में ज़्यादा मज़े उड़ाते थे, बनिस्बत अपने झोपड़ों के। और जो अब उसी देशभक्ति के लिए आजीवन पेंशन के रूप में हरजाना चाहते हैं? मत करो मेरे सामने स्वतंत्रता-सेनानियों की बात! उनके बारे में सुनकर तो मेरा जी मितलाने लगता है।"

"आपका तो 'ब्रेन-वाश' कर दिया गया है।" वे कहते हैं। फिर मुझे बताते हैं कि अंग्रेज़ों के जाने के बाद हिन्दुस्तान ने कितनी तरक़्क़ी की है, "आज़ादी के दस बरसों में ही हमनें इतनी उन्नति कर ली, जो अंग्रेज़ी राज के सौ साल में भी नहीं कर सकते थे। हमने बाँधों और नहरों का निर्माण कर खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। दुनिया-भर में सबसे बेहतरीन कपड़े हमारे यहाँ ही बनते हैं। हम खुद अपने लिए मोटरकारें, हवाई जहाज़, टैंक और तोपें बनाते हैं, हम परमाणु बम भी बना सकते हैं, अंतरिक्ष में हम अपने उपग्रह भेजते हैं, अंटार्कटिका के वीराने में हमारा तिरंगा लहराता है। अपने देश की उपलब्धियों को लेकर आपके मन में गर्व का भाव नहीं जागता?"

"जागता है। लेकिन साथ ही अनिष्ट का पूर्वाभास भी होता है। हम दुनिया के निर्धनतम देशों में गिने जाते हैं। दुनिया-भर के अज्ञानियों के अगुआ हैं। हमारी आबादी ख़रगोशों की तरह बढ़ रही है। जल्द ही हमारी तादाद इतनी हो जाएगी कि हमें रोटी, कपड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मकान की जगह के लाले पड़ जाएँगे। और तब हम हड्डी के लिए लड़ते कुत्तों से भी बदतर होंगे। प्रधानमंत्री से लेकर छोटे-से-छोटे सिपाही तक ने अपनी क़ीमत लगा रखी है। हमारे भीतर दुनिया की सबसे ज़्यादा हिंसक जातियों से भी ज़्यादा हिंसक प्रवृत्तियाँ हैं। हमारा असली चेहरा तो सन् 1947 में बेनक़ाब हुआ, जब हमने एक-दूसरे को गाजर-मूली की तरह काटा और आनेवाले दिनों में इससे भी बुरा होगा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, बौद्ध—सब एक-दूसरे को मारे-काटेंगे। आपके गांधी और उनकी अहिंसा अब ऐसे मर चुकी है, जैसे…जैसे …क्या कहते हैं उसे…मरी हुई चिड़िया को… ?"

"डोडो ?"

"हाँ-हाँ, डोडो, जैसे डोडो…"

"आपके-जैसे लोगों का भी यहीं अंजाम होगा। आपकी पीढ़ी आपके साथ ही ख़त्म हो जाएगी। सचाई तो यह है कि हिन्दुस्तान एक महान राष्ट्र है। और पता नहीं आपको मालूम है या नहीं कि हमारा राष्ट्रीय आदर्श वाक्य है—'सत्यमेव जयते'।"

19

भागमती

मेरे अलावा (यही सोचना मुझे अच्छा लगता है) भागमती जिस दूसरी चीज़ पर जान देती है—वह है आम। आमों के लिए तो यह साल बहुत अच्छा रहा, लेकिन बारिश के मामले में एकदम ख़राब। दिल्ली के लिहाज़ से यह कोई अनोखी बात नहीं; ऐसा आमतौर पर होता रहता है। अप्रैल के महीने में तमिलनाडु से आम की पहली पैदावार आनी शुरू हो जाती है। ये मोटे-मोटे गूदेदार आम होते हैं, लेकिन बेस्वाद और सुगंधहीन। मई के महीने में महाराष्ट्र से आया मेरा चहेता आम अल्फाँसो दिल्ली के बाज़ारों में दिखने लगता है। स्वाद में अत्युत्तम, लेकिन वैसा ही महँगा। इसके महँगा होने का एक कारण यह भी है कि दिल्ली में रहनेवाले तमाम विदेशियों को भी आमों का चस्का लगा हुआ है। मुझे अल्फाँसो तभी नसीब होता है, जब कोई उद्योगपति या मंत्री मेरे यहाँ इसकी पेटी भिजवाने की कृपा करता है। भेंट में मिले आमों में से कुछ थोड़े-से मैं भी पड़ोसियों को इस आशा से भिजवा देता हूँ कि जब उत्तर-प्रदेश के आमों का मौसम आएगा, तो ये भी मुझे भेजेंगे।

इन दिनों तो मैं ज़्यादा-से-ज़्यादा आमों का जुगाड़ करने में लगा रहता हूँ, क्योंकि जिस रफ़्तार से भागमती इन्हें अपने साथ उड़ा ले जाती है, उसकी भरपाई तो होती ही रहनी चाहिए। बिना मेरी इजाज़त के ही वह तीन-चार आम हड़प जाती है। मज़े ले-लेकर गुठली को ऐसे चूसती है कि उसमें कुछ बाक़ी नहीं रहता। और जाते-जाते कुछेक को बग़ल में दबाकर कहती है, "मुझे मालूम है ये तुमने ख़रीदे नहीं हैं। लिये जा रही हूँ। बेचारे मेरे घरवाले को तो इस मौसम में एक्को आम खाना नसीब नहीं हुआ।"

फलों की दुनिया में उत्तरप्रदेश के बाग़ों के लँगड़ा, दशहरी और रतौल आमों का जवाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। आमों की तक़रीबन एक हज़ार क़िस्मों में से ये तीन ही मेरी असली पसंद हैं। लेकिन अफ़सोस, भागमती की भी यही पसन्द हैं। आमों के मौसम में उसका मेरे यहाँ आना बढ़ जाता है। आएगी तो आमों का ही कलेवा करेगी और बाक़ी बचे हुए साथ बाँध लेगी। कहती है हाज़मे के लिए ये बहुत बढ़िया होते हैं, कब्ज़ हो तो भी इससे बढ़िया और कुछ नहीं। ख़ूब खाती है दबाकर। उसे कौन-सी चिन्ता है कि शरीर का वज़न बढ़ जाएगा!

मैंने बताया न कि इस साल बारिश ठीक से नहीं हुई। मेघ-पपीहा की आवाज़ तो मैंने जून के पहले हफ़्ते में ही सुनी थी। हिसाब से एकाध दिन में पानी बरस जाना चाहिए था। देश के बाक़ी हिस्सों से भारी वर्षा की ख़बरें मिल रही हैं। बम्बई और कलकत्ता में तो गलियों और सड़कों पर पानी जमा हो गया है! असम में बाढ़ों ने तबाही मचा रखी है। लेकिन दिल्ली में जून और जुलाई सूखे ही बीत गए। एक बूँद पानी नहीं बरसा। अगस्त में एकाध हल्की बौछारें पड़ीं। पिछले तीन महीनों से तो मेघ-पपीहे की भी आवाज़ नहीं सुनाई दी।

पाँचवें लँगड़े पर हाथ साफ़ करती भागमती भविष्यवाणी करती है, "देखना, इस साल अकाल पड़ेगा। दिल्ली की गलियों में लोग भूख से तड़प-तड़पकर मरेंगे।" फिर तनिक दार्शनिक-सी होते हुए कहती है, "लेकिन क्या फ़र्क़ पड़ता है! इस कमबख़्त शहर में लोग तो वैसे भी मरते ही रहते हैं। अगर भूख से नहीं, तो हैज़े से, प्लेग से, चेचक से, या फिर क़त्ल होकर मरेंगे, नहीं तो खुदकुशी करके मरेंगे। बुढ़ापे से तो मुए मरते ही हैं!"

20

वहाँ से उखड़ने के बाद

हमारा दिल्ली आना कैसे हुआ—यह संक्षेप में बताया जा सकता है। हमारा गाँव एक बड़े भारी रेतीले इलाक़े में बसा हुआ था। हमारे पूरब में झेलम नदी बहती थी और उत्तर में उजाड़ पहाड़ियों की एक शृंखला फैली हुई थी, जहाँ सेंधा नमक के सिवा और कुछ नहीं होता था। जहाँ तक भी नज़र जाती, बालू के टीले-ही-टीले दिखाई देते। हमारे गाँव हडाली में लगभग दो सौ परिवार रहते थे, जिनमें से कम-अज़-कम एक सौ साठ घर मुसलमानों के थे और बाक़ी हिन्दू-सिखों के। मुसलमानों के पास रेगिस्तानी ज़मीनें थीं और ऊँट थे। वे अपने कुओं के आसपास थोड़ा-बहुत गेहूँ और सब्ज़ियाँ वग़ैरह उगा लेते थे और उजाड़ में लगे खजूर के पेड़ों से खजूर तोड़ लाते थे। उनमें से ज़्यादातर के लड़के पुलिस या फ़ौज में काम करते थे। वे वहाँ से माँ-बाप को पैसे भेजा करते और जब रिटायर हो जाते तो लौटकर फिर हडाली में ही रहने लगते। हम हिन्दू और सिख लोग साहूकारी और व्यापार करते थे। हम मुसलमानों को रुपया सूद पर देते थे। जब वे सूद-समेत क़र्ज़ नहीं चुका पाते, तो हमारे लिए काम किया करते थे। हम लोग पहाड़ों से नमक आदि ख़रीदकर लाते और इन लोगों को ही ऊँटों पर लदवाकर लाहौर, अमृतसर, लुधियाना और जालंधर वग़ैरह शहरों में भेज देते। वहाँ नम्क को बेचकर चाय, चीनी, मसाले और रेशम ख़रीद लेते और जाकर अपने रेगिस्तानी गाँवों में बेचते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू और सिख पक्के मकानों में रहते थे और हमारे आँगनों में भैंसें बँधी रहतीं। मुसलमान कच्ची झोंपड़ियों में रहते थे और मटकी-भर दूध के एवज़ में हमारे डंगरों की देखभाल करते। हम उन्हें इसलिए नीची नज़र से देखते थे कि वे ग़रीब थे और वे हमें इसलिए नीची नज़र से देखते कि हम उनसे कम तादाद में थे और जिस्मानी बनावट में भी उन-जैसे हट्टे-कट्टे नहीं थे। उनकी तो औरतें भी हमारे मर्दों से ज़्यादा लम्बी-तगड़ी थीं। वे कुओं से पानी से भरी बड़ी-बड़ी बाल्टियाँ ऐसे निकाल लेतीं, जैसे उँगली के छल्ले! पानी से भरे चार घड़े एकदम सहजता से एक-साथ उठा लेतीं—दो सिर पर और दो अगल-बग़ल। बटी हुई रस्सी-जैसे छरहरे-छहफुटे उनके मर्द थे। हम लोग मन-ही-मन उनसे डरते थे।

अब आपको वह घटना बताता हूँ, जिसनें हमें हडाली छोड़ने के लिए मजबूर किया। यह अगस्त, 1947 के आसपास की बात है। कुछेक महीनों से हम यह सुन रहे थे कि रावलपिंडी के मुसलमान हिन्दुओं और सिखों को मार रहे हैं। हम यह भी सुन रहे थे कि हिन्दू और सिख पूरब की ओर भाग रहे हैं, जहाँ मुसलमान कम तादाद में थे। फिर यह ख़बर भी मिली कि पाकिस्तान नाम से मुसलमानों को एक अलग मुल्क मिल गया है और हडाली पाकिस्तान में जा रहा है। हमारे कुछ बुज़ुर्गों ने सलाह दी कि हमें भी बाक़ी हिन्दुओं और सिखों की तरह हडाली छोड़कर हिन्दुस्तान चलना चाहिए। लेकिन हम सब-कुछ छोड़-छाड़कर हिन्दुस्तान कैसे चल पड़ते! हमारा तो क़र्ज़दारों के पास बेशुमार रुपया बक़ाया था, हमारे मकान पक्के थे और हमारे आँगनों में भैंसें बँधी हुई थीं। इसलिए हम लोगों ने तब तक हडाली में ही बना रहना तय किया, जब तक हमें अपना उधार वापस नहीं मिल जाता और हम अपनी ज़मीन-जायदाद बेच नहीं लेते।

मैं रामरखा—तब सोलह साल का था। मेरी एक बहन थी—लछमी, मुझसे साल-भर छोटी। उसके जन्मते ही उसकी सगाई हमारे बापू के चचेरे भाई के बेटे से कर दी गई थी (हम लोगों में यह कोई अजीब बात नहीं थी। गर्भवती औरतें अक्सर अपने अजन्मे बच्चों के शादी-ब्याह तय कर लिया करती थीं—अगर वे लड़का-लड़की होते)। मेरे माता-पिता ने सोचा कि पंद्रह साल की कुँवारी लड़की को घर में रखना ठीक नहीं है। इसलिए उसकी शादी जल्दी कर दी जाय। शादी की तारीख़ पक्की हो गई। गाँव की रीति-रिवाज के अनुसार मुसलमानों समेत गाँव के अधिकांश घरों में भाजी भेजी गई। शादी से पखवाड़े-भर पहले लड़के के बाप ने अपने एक क़र्ज़दार से कहा कि उसे अपने बेटे के शादी-ख़र्च के लिए रुपयों की ज़रूरत है, इसलिए उसका उधार चुकता कर दिया जाय। क़र्ज़दार बोला कि उसके पास तो कर्ज़ अदा करने के लिए रुपया ही नहीं है। लड़के के बाप ने गुस्से में आकर उसके ख़िलाफ़ मुक़द्दमा दायर कर दिया। इससे पहले ऐसा किसी ने नहीं किया था। मुसलमानों ने हमारे घर से गई भाजी वापस कर दी। इससे पहले ऐसा भी कभी नहीं हुआ था।

हम लोगों ने शादी की तैयारियाँ जारी रखीं। रिवाज के मुताबिक़ मेरी बहन शादी के आख़िरी हफ़्ते-भर मैले कपड़े पहने घर में ही बनी रही। सातवें दिन घर की औरतों ने उसे नहलाया और उसके हाथों में मेंहदी रचाकर हाथी-दाँत का चूड़ा पहनाया। औरतों ने ढोलक की ताल पर गीत गाए। शाम को लछमी अपनी किसी सहेली के साथ मैदान गई। वे पंजों के बल बैठी शौच कर रही थीं कि तभी कुछ मुसलमान लड़कों ने उन्हें घेर लिया। लड़कियाँ इतनी डर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके गलों से चीखें तक नहीं निकलीं। लछमी को उन बदमाशों ने आसानी से पहचान लिया और उनमें से एक उसे अपने घोड़े पर डालकर रेगिस्तान की ओर ले गया।

मेरे बापू पर तो जैसे भूत सवार हो गया हो। वह चिल्ला-चिल्लाकर अपने सिर के बाल नोचने लगा। गाँव-भर में घूम-घूमकर मुसलमानों को सूअर के बच्चे कह-कहकर गरियाने लगा। तेरह मील लम्बे बालू के टीले पार करता वह पुलिस चौकी पहुँचा और उसने मुसलमानों के ख़िलाफ़ रिपोर्ट लिखवायी। बापू ने थानेदार को रुपयों की एक गड्डी भी थमायी और अगले दिन उन लड़कों की गिरफ़्तारी के वारंट सहित पुलिस को लेकर लौटा जिन पर लछमी के अपहरण का संदेह था। दो दिन बाद हम मजिस्ट्रेट की अदालत में उपस्थित हुए। अभियुक्त को हाथों में हथकड़ी लगाकर पेश किया गया। वे लफ़ंगे हमें देखकर अपनी मूँछों पर ताव दे-देकर भद्दे इशारे करने लगे और उनमें से एक बोला, "लौटने तो दो मुझे हडाली, मेरा नाम भी तुर्राबाज़ ख़ाँ नहीं अगर इन काफ़िरों की टाँगें न चीरकर रख दीं!" उनके वकील ने कहा कि मेरे बापू की शिकायत झूठी है, क्योंकि मेरी बहन उस लड़के के साथ अपनी रज़ामंदी से गई थी। वह उससे प्यार करती थी। वकील ने तुर्राबाज़ ख़ाँ को हाज़िर होने को कहा। उसके बाद लछमी को भी बुलाया गया। लछमी ने बुर्क़ा पहना हुआ था, इसलिए हमसे आँखें नहीं मिला सकी। वकील की जिरह के जवाब में बोली, "हाँ, मैं तुर्राबाज़ ख़ाँ को चाहती हूँ और मैं अपनी मर्ज़ी से इसके साथ गई। मैं मुसलमानी बन चुकी हूँ और इससे निकाह कर चुकी हूँ। अपने माँ-बाप के पास अब मैं वापस लौटना नहीं चाहती।"

थानेदार और पुलिस—सभी मुसलमान थे। अभियुक्त और उनके वकील मुसलमान थे। हमारा अपना वकील भी मुसलमान ही था। हिन्दू वकील सभी हिन्दुस्तान भाग गए थे, मजिस्ट्रेट भी मुसलमान था। उसने मेरे बापू की शिकायत ख़ारिज करके अभियुक्तों को बरी करने का हुक्म दिया। वे ख़ुशी में उछलते-कूदते अदालत से बाहर निकले। हम लोगों ने अब पुलिस से अपनी सुरक्षा की माँग की। मजिस्ट्रेट ने मुसलमानों को बुलाकर कहा, "आप लोगों को जो चाहिए था, वह मिल गया। अब बेचारे इन काफ़िरों को बख़्शो।" थानेदार ने हम लोगों को सुरक्षित हडाली तक पहुँचाने के लिए रिश्वत ली और हमारी सुरक्षा के लिए हमारे घर के बाहर सिपाही तैनात कर दिए। फिर उन्होंने भी हमसे पैसे ऐंठे।

हमारी हालत बयान से बाहर थी। वे कुछ घर छोड़कर ही हमारे ख़ून को भोगते रहें और हम चुपचाप सब सहते हुए वहाँ पड़े रहें, यह बड़ी दुःखदायी बात थी। हमारी औरतें कहतीं कि यहाँ उनकी अस्मत ख़तरे में है। जब वे कुँओं से पानी भरकर लौटतीं तो मुसलमान लोग रास्ते में उनका इंतज़ार कर रहे होते और उनके आते ही अपने कपड़े उघाड़कर दिखाने लगते। हमने पुलिसवालों से शिकायत की, पर उन्होंने भी कुछ नहीं किया। एक दिन बड़े ज़ोर की आँधी चल रही थी। तभी हमने अपने बर्तन-भांडे और रज़ाइयाँ बाँधीं और भैंसों पर लादकर हडाली छोड़ दी। हम लोग रात-दिन सफ़र करते हुए बढ़ते रहे। रास्ते-भर उड़ती गर्म रेत हमारे जिस्मों से टकराती रही। चलते-चलते हम सरगोधा पहुँचे, हज़ारों हिन्दू और सिख हिन्दुस्तान जाने के लिए जहाँ कैंपों में इंतज़ार कर रहे थे। वहाँ हमसे हमारी भैंसें ले ली गईं। कई दिनों तक हम सिर्फ़ अचार और बासी रोटियों पर ही गुज़ारते रहे। फिर एक दिन फ़ौजियों ने हमें ट्रकों पर चढ़ाया और लाहौर ले गए। रास्ते में हमने पैदल चलते लोगों की क़तारों पर क़तारें पार कीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोग बैलगाड़ियों में बैठे जा रहे थे। हमारी दिशा में चल रहे लोग हिन्दू और सिख थे। दूसरी तरफ़ जा रहे मुसलमान थे। रास्ते में सड़कों पर कितने ही सिखों की लाशें कटी पड़ी थीं। उनके लम्बे-लम्बे बाल चेहरों पर छितरे हुए थे और मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। आख़िरकार हमने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरहद को पार किया। सड़क के साथ-साथ बिछी लाशें यहाँ भी दिख रही थीं। उनके लिंगों से पता चलता था वे मुसलमान हैं। मृतकों में औरतें और बच्चे भी थे।

हमें कुरुक्षेत्र के एक कैंप में ले जाया गया, जहाँ सत्तर हज़ार से भी ज़्यादा शरणार्थी तंबुओं में रह रहे थे। कई दिनों तक तो हमने राशन की लाइनों में खड़े होने और बातें करते रहने के सिवा और कुछ नहीं किया। मेरी माँ हर वक़्त मेरी बहन का नाम ले-लेकर रोती रहती। फिर एक दिन कुछ अफ़सरों ने आकर हमसे कहा कि अब हमें काम तलाशना होगा। मेरे बापू ने उनसे पूछा, "किस तरह का काम तलाशें? हम लोग तो साहूकार थे। रुपया ब्याज पर देते थे। अब तो रुपया-पैसा नहीं है हमारे पास सूद पर चढ़ाने के लिए!"

बहरहाल, बापू ने अपनी जान-पहचान के किसी सिख को एक पोस्टकार्ड लिखा। इस सिख को वे हडाली में अपने बचपन के दिनों से जानते थे। यह सिख बरसों से दिल्ली में रहता था और कहा जाता था—ठेकेदारी के धंधे में उसने काफ़ी पैसा बना लिया है। दो दिनों में ही उस ख़त का जवाब भी आ गया। लिखा था कि हम चले आएँ। हमने तुरंत दिल्ली की रेलगाड़ी पकड़ ली।

रेलगाड़ी में रास्ते-भर मेरा बापू यही बताता रहा कि कैसे यह सिख उनके साथ हडाली के आसपास फैले रेत के टीले पर खेला करता था। जैसे-जैसे दिल्ली क़रीब आती गई, मेरे बापू को बचपन की यादें एक-एक कर ताज़ा होती गईं। मुझे तो पक्का भरोसा हो गया था कि जैसे ही मेरा बापू और वह सिख एक-दूसरे को देखेंगे, दौड़कर गले लिपट जाएँगे।

रेलवे स्टेशन से हमें अपने बिस्तर और बर्तन-भांडे सिर पर उठाकर छह मील पैदल चलना पड़ा, तब कहीं ढूँढते-ढूँढते मुश्किल से उस सिख का घर मिला। बापू ने हमें बाहर फाटक पर ठहरने को कहा और खुद पता करने के लिए भीतर जाने लगा। पर अभी वह दस क़दम भी आगे नहीं बढ़ा होगा कि एक भारी-भरकम कुत्ता उस पर झपटा। बापू उल्टे पाँवों बाहर भागा, लेकिन हम तक आने से पहले ही कुत्ते ने उसकी क़मीज़ की एक चिंदी नोच ली थी। तभी ख़ाकी वर्दी में एक आदमी घर से निकला और ग़ुस्से में गुर्राता हुआ पूछने लगा, "क्या काम है?" बापू ने बड़ी विनम्रता से पूछा कि क्या यह फ़लाँ आदमी का घर है? "हाँ," वह आदमी फिर गुर्राया और बोला, "अपना काम बताओ!" बापू ने उसे उस सिख की लिखी चिट्ठी दिखाई। "यहीं इंतज़ार करो!" ख़ाकी वर्दीवाले ने हमें आदेश दिया और भीतर घुस गया। कुत्ता अब भी हमें दाँत दिखाता हुआ वहीं खड़ा था।

आदमी वापस लौटा। कुत्ते को अलग हटाते हुए उसने हमें अपने पीछे आने को कहा। अपनी गठरियाँ उठाए हम उस आदमी के पीछे हो लिये। यह काफ़ी बड़ी, दो-मंज़िला कोठी थी। बाहर लम्बा-चौड़ा बग़ीचा था। सिख-सिखनी बरामदे में बैठे चाय पी रहे थे।

"तो, तू आ गया साईं दत्ता!" सिख ने चाय चुस्की की लेते हुए पूछा। मेरे बापू ने अपने सिर का बोझ उतारकर नीचे रखा और उस सिख के पैर छूने लगा। माँ ने ज़मीन पर मत्था टेका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सिखनी के घुटनों पर सिर रखकर रोने लगी। सिखनी ने तसल्ली देते हुए कहा, "रोने से अब क्या मिलनेवाला है, बहन ! अब तो जो हो गया, सो हो गया।" फिर वर्दीवाले आदमी से बोली कि हमें रसोई में ले जाकर कुछ खाने-पीने को दे।

हमें कार-गैराज में आराम करने को कहा गया। गैराज के आधे हिस्से में ट्रंक और पेटियाँ भरी हुई थीं और आधा अब हमारा घर बननेवाला था। हम लोग फ़र्श पर लेटे तो लगा जैसे किसी मातमी घर में सोए हों।

ऐसे हुई थी दिल्ली में हमारी नई ज़िंदगी की शुरुआत।

मेरे माँ-बाप इस नए माहौल में मुझसे ज़्यादा आसानी से हमसार हो गए थे। बापू को रात की पहरेदारी का काम सौंपा गया था। उसे रात-भर एक हाथ में लालटेन और दूसरे में डंड लिये घर के चारों ओर घूम-घूमकर रखवाली करनी पड़ती। हर कोने पर खड़ा होकर वह चिल्लाता "ख़बरदार !" उसकी अब उस कुत्ते से दोस्ती हो गई थी। जो सिख कभी उनका दोस्त था, अब उसे 'ओए' कहकर पुकारता था और मेरा बापू उसे 'जी' कहने का अभ्यस्त हो गया था। माँ उन लोगों के घर में झाड़ू-पोंछा करती थी और सिखनी के पाँव दबाती थी।

जो बात मुझे सबसे ज़्यादा दुःखी करती थी, वह यह कि मेरे माँ-बाप का रुख़ मेरी तरफ़ से अब एकदम बदल गया था, जबकि मैं उनका इकलौता बेटा था। उनके बदले व्यवहार का कारण भी मैं जानता था। दरअसल रुपए-पैसे के नाम पर उनके पास अब कुछ भी नहीं बचा था। माँ को अपनी सोने की चूड़ियाँ और कानों की मुरकियाँ तक बेचनी पड़ी थीं, क्योंकि बापू को जो तनख़्वाह मिलती थी, वह हम तीनों का पेट भरने के लिए काफ़ी नहीं थी। मैं खाते-खाते अगर एक रोटी और माँग बैठता तो माँ कहती, "तेरा पेट है या कुआँ ?" बापू मुझे 'मुस्टंडा' और 'निखट्टू' कहने लगा था। एक दिन दोनों ही मेरे पीछे पड़ गए और कहने लगे कि बाहर जाकर काम की तलाश करूँ। तो इस तरह मुझे इस अजनबी शहर की अजीबो ग़रीब दुनिया में पटक दिया गया।

पर मैं काम की तलाश कहाँ से शुरू करता? मेरे बापू ने कहा था कि मैं लोगों के घर-घर जाकर पूछूँ कि उन्हें नौकर की ज़रूरत तो नहीं है? दिल्ली काम की तलाश में मारे-मारे फिर रहे पंजाबी शरणार्थियों से भरी पड़ी थी। मैं जिस घर भी जाता वहाँ फाटक पर तैनात आदमी मेरे मक़सद की कैफ़ियत माँगता। जैसे ही मैं मुँह खोलता, मुझे आगे बढ़ने को कह दिया जाता। बहरहाल, मैं दिल्ली शहर का अब पक्का जानकार हो गया—क्या नई दिल्ली और क्या पुरानी दिल्ली। मुझे उन बड़ी-बड़ी इमारतों की भी जानकारी हो गई, जहाँ बड़े-बड़े अफ़सर लम्बी-चौड़ी मोटरगाड़ियों में और क्लर्क अपनी साइकिलों पर काम करने जाया करते थे। मैं यह भी जान गया था कि किस बाज़ार में क्या मिलता है। लेकिन काम मुझे अब भी नहीं मिला था। उधर मेरे साथ मेरे बापू का बर्ताव दिन-ब-दिन रूखा होता जा रहा था। यह तो माँ ही थी जो मुझे उसके गुस्से से बचाती रहती थी। अब मैंने रात गए घर लौटना शुरू कर दिया था। जब बापू पहरेदारी के अपने काम में खोया होता, तो मैं चुपके से आता और गैराज में घुस जाता। माँ मुझे खाना देती और तब तक मेरा सिर दबाती, जब तक मुझे नींद नहीं आ जाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे अक्सर हडाली के उजाड़ रेगिस्तानी विस्तार और बालू के टीलों के सपने आया करते, जहाँ मैं चाँदनी रातों में खेला करता था। मुझे सिरों पर घड़े उठाए चलती लम्बी-तगड़ी मुसलमान औरतें दीखतीं। उनके काले-काले चूचक मलमल की भीगी कुर्तियों से झाँक रहे होते और मैं उनकी जाँघों के बीच आनंद से छटपटा रहा होता। कभी-कभी ये सपने दुःस्वप्नों में बदल जाते। मैं देखता कि मुसलमान मर्द कामातुर गधों-जैसे अपने बड़े-बड़े लिंग हिलाते हुए मुझे धमका रहे होते। सपने देखते-देखते मेरे मुँह से कराहें निकलने लगतीं, और तब माँ मुझे झकझोरती हुई अपनी बाहों में भर लेती और मेरी पीठ सहलाते हुए मुझे फिर से सुला देती।

बापू ने अब मुझसे बात करना भी छोड़ दिया था। पर उसके प्यार की कमी को माँ पूरा कर देती। वह मुझसे पूछती कि आज मैंने क्या-क्या देखा। फिर कहती, "पुत्तर, अपनी माँ को भी कभी साथ ले चला कर!"

एक दिन अपनी मालकिन से इजाज़त लेकर वह मेरे साथ चल ही पड़ी। मैंने उसे दोनों सचिवालय और संसद भवन दिखाया। वह ऐसे हैरानी से उन्हें देखती रही, जैसे कोई छोटी-सी बच्ची हो। वह मुझसे तरह-तरह के सवाल पूछती जाती और मैं तरह-तरह के जवाब उसे देता जाता। उसकी बातों से मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे मैं कोई बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होऊँ। मोटरकारों और बसों को देखकर जब वह घबरा जाती तो मेरा हाथ थाम लेती। मुझे ऐसा महसूस हो रहा था, जैसे मैं कोई ताक़तवर, भरापूरा जवाँमर्द होऊँ। मैं उसे बिड़ला मंदिर ले गया। उसने वहाँ शिव-पार्वती, गणेश, विष्णु-लक्ष्मी, कृष्ण-राधा, राम-सीता—सभी देवी-देवताओं की पूजा की। उसने मेरी बहन लछमी के लिए भी प्रार्थना की। मेरे सिर पर से तांबे का एक पैसा वारकर उसने पुजारी को दे दिया और उससे कहा कि वह मेरे माथे पर भस्म का टीका लगाकर मुझे नौकरी पाने का आशीर्वाद दे।

बिड़ला मंदिर से हम हनुमान मंदिर गए। वहाँ बहुत ज़्यादा भीड़ थी। हनुमान मंदिर के बाहर मिठाइयों, खिलौनों और चूड़ियों की बहुत-सी छोटी-छोटी दुकानें लगी हुई थीं। यहाँ भी माँ ने पंडित को एक पैसा दिया और हनुमान जी से निवेदन किया कि मुझे नौकरी दिला दे। फिर हमने दुकानों का एक चक्कर लगाया। माँ ने मुझे कुछ पैसे दिए और अपने लिए काँच की चूड़ियाँ ख़रीद लाने को कहा।

मंदिर से लौटते-लौटते सूरज ढलने लगा था। आसमान सोने की तैयारी कर रहे धूसर दैत्य-जैसा दिख रहा था। कनॉट सर्कस के पेड़ टुइयाँ तोतों और मैनाओं की चहचहाहटों से भरे हुए थे। माँ ने मेरा हाथ फिर थाम लिया। हम लोग चलते-चलते बढ़िया कपड़ों में सजे-धजे मर्दों और औरतों को बड़ी-बड़ी ख़ूबसूरत मोटरकारों से उतरते-चढ़ते देखते रहे। घर पहुँचे तो अँधेरा घिर आया था। बापू अपना सोटा और लालटेन लिये बाहर निकला हुआ था और 'ख़बरदार रहो' चिल्लाता जा रहा था। माँ बहुत थक गई थी। फिर भी उसने मेरे लिए खाना बनाया और जब मैं लेटा तो मेरे सिर को गोद में रखकर उसमें तेल मला। सोने से पहले वह बोली, "पुत्तर, किसी-न-किसी देवता ने तो मेरी पुकार सुन ही ली होगी। अब तुझे ज़रूर नौकरी मिल जाएगी।"

देवताओं ने सचमुच माँ की पुकार सुन ली, क्योंकि दूसरे ही दिन मुझे नौकरी मिल गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रा सोचिए तो, कहाँ मिली होगी नौकरी ? यहीं बग़ल में, सड़क के उस पारवाले घर में ! यह भी अपने-आप में एक कहानी है।

जिस घर में हम रहते थे, उसके सामने एक गोल चक्कर था, जिससे बहुत-सी सड़कें निकलती थीं। इन्हीं में एक सड़क के उस ओर जिन्ना साहब का घर था, जिसने पाकिस्तान बनवाया था। पाकिस्तान भागने से पहले गौमांस खानेवाले जिन्ना ने अपना वह मकान एक अमीर हिन्दू को बेच दिया, जिसने वहाँ गोरक्षा समिति का मुख्यालय बनाया। सड़क के दूसरी तरफ़, हमारे गैराज की ओर उससे भी बड़ी एक कोठी थी—बिड़ला मंदिर बनानेवाले आदमी के भतीजे सेठ बिड़ला की। यह बिड़ला हिन्दुस्तान का सबसे अमीर आदमी माना जाता था। उसके फाटक पर हमेशा लोगों की भीड़ लगी रहती और न जाने कितने पुलिसवाले वहाँ तैनात रहते। भीड़ को देखकर पहले तो मैं यही सोचता रहा कि शायद इन्हें भी मेरी तरह नौकरी की तलाश होगी और इसीलिए मैं वहाँ गया भी नहीं कि इतने सारे लोगों के रहते मुझे वहाँ नौकरी क्या मिलेगी। दूसरे, मुझे पुलिसवालों से भी डर लगता था। उस घर से दिन-रात लाउस्पीकरों से भजन और भाषणों की आवाज़ें आती रहतीं। सुना था कि महात्मा गांधी वहीं रहते हैं और वहाँ कोई भी आदमी उनके दर्शन को वहाँ जा सकता है।

अगले दिन मैं हिम्मत कर महात्मा गांधी के दर्शन करने चल पड़ा। किसी ने मुझे रास्ते में नहीं रोका। देखा, लॉन पर बहुत-से लोग बैठे हैं। उनमें कई गोरे साहिब और मेम साहिबें भी हैं। सामने एक मंच बना हुआ है, जिस पर माइक्रोफ़ोन लगा है। मैं जाकर एक कोने में बैठ गया। युवकों का एक जत्था भीतर आया और आकर मेरी ही बग़ल में बैठ गया।

चन्द मिनट बाद ही महात्मा जी एक लड़की के कन्धों का सहारा लेते हुए आ पहुँचे। तभी कुछ लोगों ने जयकारा लगाया, 'महात्मा गांधी की जय !' मेरे साथ बैठे नौजवानों ने चिल्ला-चिल्लाकर 'भारत माता की जय' का नारा लगाया। महात्मा गांधी मंच पर बैठ गए और उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं। औरतों और मर्दों के एक झुंड ने एकसुर में गाना शुरू किया—

रघुपति राघव राजा राम,
पतित पावन सीता राम।

मैंने यह भजन पहले कभी नहीं सुना था। सुनने में बड़ा मधुर लग रहा था। उसके बाद उन्होंने गाया—

ईश्वर अल्ला तेरे नाम,
सबको सन्मति दे भगवान !

यह भी बहुत अच्छा लगा। मैंने चौंककर देखा कि मेरे पास बैठा एक नौजवान बड़बड़ा रहा है, 'ईश्वर अल्ला नहीं, मुहम्मद अल्ला तेरे नाम....'

भजन ख़त्म हुआ तो एक मुसलमान उठकर महात्मा के क़रीब जाकर बैठ गया। उसने कोई किताब खोलकर माइक्रोफ़ोन को अपनी दाढ़ी के करीब खींचा और गा-गाकर कुछ पढ़ना शुरू किया। तभी मेरे क़रीब बैठे नौजवान चिल्लाने लगे, "चुप रहो ! मुसलमानों ने हमारी माँ-बहनों की आबरू लूटी है। हमारे मुल्क में अब और कुरान नहीं पढ़ी जाएगी।" और वे उछल-उछलकर खड़े होने लगे और 'भारत माता की जय' के नारे लगाने लगे।

महात्मा ने माइक्रोफ़ोन को वापस अपनी तरफ़ खींच लिया और अपनी दंतविहीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टर्राहट में कहा, "भाइयो और बहनो, मैं सभी धर्मों का आदर करता हूँ और करता रहूँगा। अगर आप ! मेरे साथ सहमत न हों तो मेरी प्रार्थना-सभाओं में न आया करें। अगर आप बीच में व्यवधान डालेंगे, तो मैं अकेला ही प्रार्थना करूँगा। अब आप अपने-अपने घर जाइए और विचार कीजिए। सोचिए कि क्या यह ठीक है कि हमारी आज़ादी का यह हश्र हो, जिसमें भाई ही भाई का क़त्ल करता रहे ?" इतना कहकर महात्मा उठ खड़े हुए और नमस्कार करके चल दिए।

इससे पहले कि मुझे यह पता चलता कि क्या हो रहा है, पुलिस ने हमें चारों ओर से घेर लिया। फिर मुझे भी बाक़ी लड़कों के साथ ही धकियाते हुए वैन में ठूँस दिया गया। लड़के अब भी 'भारत माता की जय' के नारे लगा रहे थे, जबकि उन्हें सुननेवाला भी वहाँ कोई नहीं था।

वैन में ड्राइवर के साथ बैठे अफ़सर ने पीछे मुड़ते हुए कहा, "महात्मा बुद्धू की जय!" सुनकर सभी नौजवान हँसने लगे। वैन का ड्राइवर और सिपाही भी हँसने लगे। उनमें से एक नौजवान बोला, "इंस्पेक्टर साहब, हमें ज़्यादा दूर मत ले जाइएगा।"

"जहाँ तुम चाहो, वहीं ले चलेंगे। लेकिन कृपा करके आप लोग बिड़ला हाउस वापस मत जाइएगा। नहीं तो वे लोग मेरा गला काटेंगे।"

"आप बस हमें बिड़ला मंदिर के पास ही छोड़ दीजिए। आज के लिए हमारा और कोई कार्यक्रम नहीं है।" नौजवान ने इंस्पेक्टर को विश्वास दिलाते हुए कहा।

हम लोगों को बिड़ला मंदिर के पास उतार दिया गया। यहीं पर एक लड़के का ध्यान मेरी तरफ़ गया—"अरे, तुम कौन हो ? तुम किस ट्रुप में हो ?" उसने मुझसे पूछा।

"मुझे नहीं मालूम कि यह ट्रुप-श्रुप क्या है ?" मैंने उससे कहा और बताया कि मैं तो शरणार्थी हूँ और ग़लती से उन लोगों के साथ गिरफ़्तार कर लिया गया हूँ। वे ख़ूब हँसे। "तो तुम भी हमारे साथ क्यों नहीं हो जाते ?" उनमें से एक दूसरा लड़का पूछने लगा, "क्यों, कहीं उस बुड्ढे जैसे मुसलमानों के आशिक़ तो नहीं हो न ?"

मैंने कहा कि मैं मुसलमानों का आशिक़ कैसे हो सकता हूँ। मेरी बहन को तो पाकिस्तान में इन्हीं मुसलमानों ने उठा लिया था।

उनके नेता-से लगनेवाले लड़के ने मुझे दिलासा देते हुए कहा, "तुम तो यार शेरे-पंजाब हो ! तुम्हें तो सच्चे क्षत्रिय की तरह हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए लड़नेवाला जिगरा रखना होगा।" और फिर मेरी पीठ थपथपाते हुए उसने मेरे बाज़ुओं को अपने हाथों से तोला। मुझे अच्छा लगा। इससे पहले किसी ने भी मुझे ताक़तवर और बड़ा नहीं समझा था।

उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या काम करता हूँ ? मैंने कहा कि काम में कुछ नहीं करता, बल्कि काम ढूँढ रहा हूँ। लड़कों के नेता ने कहा, "तब आओ। संघ में शामिल हो जाओ। तुमको दफ़्तर में काम मिल जाएगा। खाना कैन्टीन में खा लिया करना।" मैं संघ के बारे में कुछ नहीं जानता था, लेकिन फिर भी मैं उनके साथ चल पड़ा। मुझसे एक काग़ज़ पर दस्तख़त करवाए गए और मुझे मेरा नम्बर दिया गया। यहाँ सबको उनके नम्बर से ही जाना जाता था, नाम केवल संघ के चीफ़ को ही मालूम थे।

मुझे दफ़्तर के मेज़-कुर्सियाँ झाड़ने का काम मिला था। उसके बाद मुझे फाटक के बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठना होता, ताकि कोई ऐरा-ग़ैरा भीतर न घुसने पाए। जिसे उस दिन का 'पास वर्ड' (कूट शब्द) नहीं मालूम होता था, उसे भीतर नहीं जाने दिया जाता था। मुझे पहनने के लिए वर्दी और पेशगी पाँच रुपए मिले थे।

इस संघ का, जिसका मैं सदस्य बना था, एक लम्बा-सा संस्कृत नाम था। मैं जैसे ही 'राष्टरीय' कहता, लड़के हँसने लगते। 'सवयम्' कहता, तो भी वे हँस पड़ते। इसलिए मैं इसका अंग्रेजी नाम 'आर.एस.एस.' ही लेता था।

पेशगी में मिला पाँच रुपए का नोट लाकर मैंने माँ को थमाया। माँ की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसने सूजी का हलवा बनाया और सिख-सिखनी तथा उसके नौकर-चाकरों को बाँटा। कड़छी-भर कुत्ते को भी खिलाया। मेरे बापू ने अब मुझे ताने मारने बंद कर दिए।

मैं सुबह तड़के ही घर से निकल पड़ता और फ़र्नीचर की झाड़-पोंछ कर देता। फिर अपनी वर्दी पहनकर बाकी लड़कों के साथ जा मिलता। हमारा चीफ़ संघ का भगवा झंडा फहराता और हम छाती पर हाथ बाँधकर उसे सलामी देते। इसके बाद एक घंटे तक ड्रिल और कुश्ती होती। हमें डंडे लेकर लड़ना सिखाया जाता। हमें बताया गया कि जल्दी ही हमें बंदूकें भी दी जाएँगी और उन्हें चलाना सिखाया जाएगा। शाम को हम हिन्दू धर्म और उसके इतिहास पर भाषण सुनते। आर्य-भूमि—आर्यावर्त की महानता के बारे में बताया जाता। हमें बताया जाता कि कैसे यहाँ मुसलमान आए और कैसे उन्होंने हमारे मंदिरों को तोड़ा, लाखों बेगुनाह हिन्दुओं का क़त्ल किया, हिन्दू औरतों के अपहरण और उनसे बलात्कार किए, और कैसे हमारी हज़ारों कुलीन स्त्रियों ने मुसलमानों के हाथों पड़ने की बजाय जौहर की आग में जलकर मरना बेहतर समझा। हमें अपने धर्म के लिए लड़ने को प्रेरित किया गया और कहा गया कि इन गंदे म्लेच्छों—मुसलमानों और क्रिस्तानों—से भारत को शुद्ध करना होगा; क्रिस्तानों से भी—क्योंकि वे भी विदेशी हैं और हमारी पवित्र गौ माता का मांस खाते हैं।

वे कहते कि मुसलमानों का अब दिल्ली या हिन्दुस्तान के किसी भी हिस्से से क्या मतलब है, जबकि उन्होंने हम हिन्दुओं और सिखों को पाकिस्तान से निकाल दिया है? हम भी उन्हें क्यों नहीं धकियाकर पाकिस्तान या फिर जहन्नुम की राह दिखाएँ, और उनकी औरतों और ज़मीन-जायदादों पर कब्ज़ा कर लें, जबकि उन लोगों ने हमारी बहू-बेटियों और माल-मिल्कियत के साथ यही किया है? हम लोगों के सामने ऐसे प्रश्न हर रोज़ रखे जाते।

एक दिन हमारे चीफ़ ने मुझे बुलवाया और पूछा, "तुम नम्बर 840 हो?" मैंने सावधान की स्थिति में आते हुए सैलूट मारा। फिर उसने पूछा, "क्या यह सही है कि पाकिस्तान में तुम्हारी बहन का अपहरण हुआ था?" मैंने जवाब दिया, "जी हाँ।" चीफ़ फिर बोला, "तो तुम क्या इसके लिए कुछ नहीं करने जा रहे? कब तक यों ही हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहोगे?" मुझे यह समझ में नहीं आ रहा था कि वह मुझसे क्या करवाना चाहता है। कुछ सोचकर मैंने जवाब दिया, "सर! 840 अपनी जान भी कुर्बान कर सकता है। इससे बढ़कर उसके पास और कुछ नहीं है।" चीफ़ सुनकर हँसा और बोला, "हम हिन्दू सिर्फ़ अपनी ही जान देना जानते हैं, दूसरों की जान लेना नहीं। अब यह सिलसिला बंद करना होगा। बोलो, दिल्ली के मुसलमानों पर हमला करनेवाले जत्थे का अगुआ बनने को तैयार हो? याद करो कि उन्होंने तुम्हारी बहन के साथ क्या किया!" मेरे चेहरे में खून सरसराने लगा। मैं पुनः सावधान की मुद्रा में आया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैलूट मारते हुए बोला, "नम्बर 840 अपनी जान भी···कोई भी कुर्बानी करने को तैयार है।"

चीफ़ के सामने एक काग़ज़ था। उसने उसमें से कुछ नम्बर पढ़े और बोला, "ये सब लड़के तुम्हारे साथ होंगे। जब तुम कार्रवाई के लिए तैयार हो जाओ तो मुझे बताना। पुलिस तुम्हारे रास्ते में न आए—इसका ज़िम्मा मेरे ऊपर रहा।"

मैं सैलूट कर कमरे से बाहर निकल आया।

अब असली परेशानी यह थी कि कैसे पता लगाएँ कि कौन मुसलमान है और कौन नहीं, क्योंकि जैसे ही मुसलमानों ने सुना कि करनाल, अंबाला, अमृतसर, जालंधर में क्या-क्या हो रहा है, वैसे ही उन्होंने अपनी लाल तुर्की टोपियाँ और रोएँदार जिन्ना टोपियाँ जलाकर गांधी टोपियाँ पहन लीं। उन्होंने अपनी दाढ़ियाँ मुँडा लीं और ढीले पाजामे और शेरवानियाँ छोड़कर धोतियाँ पहननी सीख लीं। मुसलमानियों ने बुर्के उतार फेंके और माथे पर बिंदियाँ लगानी शुरू कर दीं और मिलने पर 'नमस्ते' कहने लगीं। सिर्फ़ एक ही तरीक़ा बाक़ी बचा था, जिससे पता चलता कि अमुक-अमुक मुसलमान है और अमुक-अमुक नहीं, और वह था उसे नंगा करके उसकी सुन्नत देखना। लेकिन हरेक को रोक-रोककर कैसे कहते कि 'खोलो कपड़ा और दिखाओ अपना लिंग।' दरअसल योजनाबद्ध तरीके से पूरी तैयारी किए बिना कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। शुरुआत हमने मुसलमानों के घरों और दुकानों पर स्वस्तिक के निशान लगाकर की। मुसलमान गुंडों को किसी तरह इसकी ख़बर लग गई और उन्होंने हिन्दुओं के घरों और दुकानों पर भी स्वस्तिक के निशान बना दिए। यह देखकर हमने अपनी योजना बदल लीऔर उसके बजाय मुसलमानों की कुछ ख़ास-ख़ास बड़ी दुकानों पर धावा बोलना तय किया, ताकि उसका परिणाम देखकर ही अगला क़दम उठाएँ। नई दिल्ली के बीचोबीच कनॉट सर्कस में मुसलमानों की एक बड़ी दुकान थी। हमने अपना पहला निशाना इसी को बनाया। चीफ़ ने हमारी योजना को स्वीकृति दे दी और कार्रवाई की तारीख़ बता दी।

जैसे-जैसे वह दिन क़रीब आता गया, मेरी घबराहट बढ़ती गई। मैं चाहता तो था कि सारे के सारे मुसलमान मारे जायँ, लेकिन अपने हाथों से एक को भी मारने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। मेरा जी चाहता था कि दिल्ली से कहीं दूर भाग जाऊँ। लेकिन अपने मन में उमड़ते-घुमड़ते संशयों की चर्चा भी किससे करता? कौन था जो मेरी बात को सुनने-समझने की क्षमता रखता था? माँ को बताता तो वह हो-हल्ला मचाती और बापू को या सिखनी को जाकर बता आती।

कार्रवाईवाले दिन की पूर्व-संध्या पर मैं जल्दी घर लौट आया। माँ गैराज में बैठी सिखनी की रसोई के लिए मटर छीलती हुई कुत्ते से बतिया रही थी। कुत्ता अब ज़्यादातर वक़्त माँ के ही पास बना रहता था। जैसे ही मैं अपनी दरी पर लेटा, माँ का प्रलाप शुरू हो गया, "वे शांबया (कुत्ते का नाम सिंबा था), तूने मेरी लछमी को नहीं देखा। अगर वो मुसलमान उसको उठाकर नहीं ले गए होते तो वह हमारे साथ आज यहीं होती। तूने उसका ब्याह होता देखना था। तू पटाखे छूटते और शहनाइयाँ बजते देखता, वे! पर हाय री मेरी बेटी की किस्मत··· !" माँ ने अब दोनों हाथों से मत्था पीटना और रोना शुरू कर दिया, "हाय नी लछमी! हाय बेटी! तू कहाँ है? नरक में जाएँ वो मुसलमान जो तुझे उठा ले गए!" कुत्ता भी माँ के करीब जाकर उसके कानों को सूँघता रिरियाने लगा। माँ ने उसके गले में बाहें डालकर उसे अपने से चिपका लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे लिए यह सब बर्दाश्त से बाहर हो रहा था। मैंने उससे कहा, "माँ, तुम रों क्यों रही हो? मैं इन मुसलमानों से अपनी लछमी के साथ किए का बदला लेकर इनको सबक सिखाऊँगा।"

इसके बाद क्या अपनी बात से मुकरा जा सकता था?

रात-भर मैं ठीक से सो नहीं सका। सुबह जीप के आने से पहले ही मैं तैयार हुआ बैठा था। बाक़ी लड़के पहले ही मुख्यालय पहुँचे हुए थे। हमने एक छोटी-सी प्रार्थना की, बिस्कुटों के साथ चाय पी और कनॉट सर्कस की ओर चल पड़े। मैंने पहले ही तय कर ली गई पोज़ीशन के मुताबिक़ लड़कों को अपनी-अपनी जगह पर खड़ा कर दिया और उनको वह जगह बताई, जहाँ कार्रवाई के बाद हमें जीप में बैठकर ग़ायब हो जाना था। हमने अपनी घड़ियाँ मिलाईं और उनको अपने संकेत का इंतज़ार करने को कहकर मैं अपनी जगह खड़ा हो गया। मैंने अपनी कमीज़ की बाँह में लोहे का एक नुकीला सरिया छुपा रखा था।

मैं आराम से कनॉट प्लेस के भीतरी बरामदे में टहलने लगा। मैं देख रहा था कि दुकानदार आते, कुछ प्रार्थना-सी करते और अपनी दुकानें खोलने लगते। मुसलमान की जिस दुकान पर हमें धावा बोलना था, वह अभी तक बंद थी, लेकिन उसके चार नौकर बाहर खड़े उसके खुलने का इंतज़ार कर रहे थे। मैं उनके क़रीब चलते हुए गुज़रा। उनकी गांधी टोपियों के बावजूद उनकी बातें सुनकर मैं समझ गया था कि सब-के-सब मुसलमान हैं। अभी कुछ ही क़दम आगे बढ़ा होऊँगा कि मैंने देखा, दुकान के सामने के फ़ुटपाथ पर चढ़ती मोटर गाड़ी एक पेड़ के पास आकर रुकी। हमारे लड़कों में से एक ने दुकान के मालिक को पहचान लिया और उसने अपनी सोटी गिरा दी, ताकि मैं समझ जाऊँ कि वही हमारा शिकार है। मैंने बरामदे के एक खंभे के पास अपनी पोज़ीशन ले ली। उस आदमी ने अपनी गाड़ी के शीशे चढ़ाए और गाड़ी को बंद कर हैंडल को खींचकर देखा कि ठीक-ठाक बंद हो गई है या नहीं। फिर वह चहलक़दमी करता हुआ सड़क पार करके बरामदे की ओर बढ़ने लगा। उसकी उम्र तक़रीबन चालीस साल लग रही थी। उसने दिल्ली के फ़ैशनेबुल लोगों की तरह कपड़े पहन रखे थे—मलमल का कुर्ता, जिसकी बीच की पट्टी पर सुनहरी ज़री का काम था, नीचे कलफ़-लगी सफ़ेद रंग की ढीली पतलून। एक हाथ में चाँदी का पानदान और दूसरे में सिगरेट की डिब्बी और माचिस थी। अधपिया सिगरेट उसके निचले होंठ से लटक रहा था। तोंद बाहर को आ रही थी और वह किसी गर्भवती औरत की तरह ढीली-ढाली चाल से चल रहा था। उसे देखकर हमारे लड़के अपनी-अपनी जगहों से निकल आए—तीन एक तरफ़ से, तीन दूसरी तरफ़ से। मैं अपने शिकार का इंतज़ार कर ही रहा था। जैसे ही उसने सड़क पार कर बरामदे में क़दम रखा, मैं उसके पीछे हो गया। उसके नौकरों ने उसे झुककर सलाम किया, "अस्सलाम-वालेकुम!" उसने जवाब में सिर हिलाया और पानदान एक नौकर को थमाते हुए चाबियाँ निकालने के लिए जेब में हाथ डाला। तभी मैंने अपने बाज़ू से लोहे का सरिया खींचा और उसकी पीठ में घोंप दिया। "हाय अल्ला" कहता हुआ वह मेरे ही ऊपर पीछे को लुढ़क गया। मारे ख़ौफ़ के उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं। मैंने उसकी पीठ में घुसा सरिया बाहर निकाला और उसे ज़मीन पर लुढ़क जाने दिया। फिर जैसे ही मैंने सीटी बजाई, हमारे तमाम लड़के नौकरों पर टूट पड़े। नौकर चीख़ने-चिल्लाने लगे, "बचाओ, पुलीस, मत मारो!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन कोई भी उनकी मदद को नहीं आया। और कुछ ही क्षणों में वे पाँचों मुसलमान ख़ून के तालाबों में छटपटाते हुए पड़े थे। अब हमने दुकान के शीशे तोड़े और भीतर घुस गए। वह जूतों की दुकान थी, जिसमें चमड़े के बैग, बटुए, बेल्टें वग़ैरह और भी चीज़ें थीं। मैंने चमड़े के दो बड़े सूटकेस उठाए और जो भी मिलता गया उसमें भरता गया। मैंने दुकान के मालिक की मेज़ से छोटा रेडियो, चाँदी का कैलेंडर और कुछ पेन भी उठाकर सूटकेस में डाल लिये। तब तक बहुत सारे लोग—चौकीदार, चपरासी, स्कूलों-कॉलेजों के लड़के वग़ैरह दुकान में घुस आए थे और मन-मर्ज़ी से लूटते जा रहे थे। हम अपना माल-मत्ता उठाकर जीप तक जा पहुँचे।

सारे कनॉट सर्कस में हलचल मच गई। हिन्दुओं और सिखों ने मुसलमानों पर हमले करना और उनकी दुकानों को लूटना शुरू कर दिया। पुलिस की गाड़ियाँ गोल चक्कर में घूम रही थीं और उनके सिपाही सीटियाँ बजा रहे थे। हम लोगों को वहाँ से भागने में कोई अड़चन नहीं आई।

मेरे हाथ और घुटने ऐसे काँप रहे थे, जैसे मुझे बुख़ार चढ़ आया हो। दिल धक-धक, धक-धक कर रहा था। मेरे मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे। मुझे चाय का मग और एस्प्रिन की दो टिकियाँ दी गईं। लेकिन कोई असर नहीं हुआ। उन घिनौने दृश्यों को भुलाने के लिए मैंने मुँह को कुशन से ढँक लिया। लेकिन फिर भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ। उस मुसलमान की खुली आँखों की सफेदी मेरी आँखों के आगे तैरती रही जिसका मैंने ख़ून किया था। उसकी 'हाय अल्ला' की कराह कानों में प्रतिध्वनित होती रही। दोपहर तक मुझमें अपने पैरों पर खड़े होने की हिम्मत नहीं आ सकी। बस, फिर-फिर वही दृश्य मानस-पटल पर उभरता रहा। नहाने के बाद ही कहीं मुझे थोड़ी राहत महसूस हुई। मैंने उठाकर लायी गई चीज़ों पर एक नज़र डाली। कुछ चीज़ें तो घर ले जाने के लिए निकालकर अलग कर लीं, बाक़ी दूसरे सूटकेस में डाल लीं। चीज़ें लेकर सदर बाज़ार पहुँचा। चूँकि उस दिन मुसलमानों की बहुत-सी दुकानें लूटी गई थीं, इसलिए माल के बदले पैसे कुछ अधिक नहीं मिले। बहरहाल, मैं डेढ़ सौ से भी ज़्यादा रुपए लिये वापस आया। सिर्फ़ एक रेडियो के ही सौ रुपए मिल गए थे।

घर लौटते हुए मैंने बापू के लिए एक टॉर्च ख़रीदी और माँ के लिए मलमल की रंगीन चुन्नी। कुछ फल और घी का एक छोटा डिब्बा भी ख़रीदा। घर में घुसने के लिए मैंने रात घिरने का इंतज़ार किया, ताकि सिख परिवार का कोई सदस्य मुझे उस बड़े-से सूटकेस के साथ घर में घुसते न देख ले। आते ही मैं सीधे गैराज में घुस गया। माँ मिट्टी के तंदूर में रोटियाँ लगा रही थी।

मैंने माँ से कहा कि महीने-भर की पहली तनख़्वाह मैंने इन सब चीज़ों को ख़रीदने में लगा दी है। मैंने दुपट्टा उसके कंधे पर फैलाया, तो वह मुझे गले लगाकर रोने लगी। बापू के आने की आहट सुनकर वह उसकी अगवानी करने भागी। वह इतनी अधीर हो उठी थी कि उसके मुँह से सिर्फ़ यही निकल रहा था, "वेख, वेख !" मैंने बापू के हाथ से लालटेन लेकर उसे टॉर्च पकड़ा दी। बापू टॉर्च का बटन दबाकर उसकी रौशनी गैराज की दीवारों पर डालने लगा। वह ऐसे कर रहा था, जैसे कोई बच्चा अपने खिलौने से खेल रहा हो ! माँ और बापू ने अपनी चप्पलें और जूते पहनकर देखे और बटुओं तथा सूटकेस को हाथों से सहलाने लगे। वे दोनों बेहद ख़ुश लग रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं सो नहीं पा रहा था। आँखें बंद करते डर लग रहा था। मुझे उस आदमी के भूत से डर लग रहा था जिसे मैं मारकर आया था। वह अब भी मेरे कानों में 'हाय अल्ला' चिल्लाता जा रहा था। मैं बाहर बिछी कंक्रीट पर बापू के जूतों की चरमराहट और उसकी 'ख़बरदार रहो' की हाँक का इंतज़ार करने लगा, ताकि मुझे भरोसा हो जाय कि मैं सुरक्षित हूँ। मेरे बदन में कँपकँपी हो रही थी और मुँह से कराह निकल रही थी। मैंने ऐसे नाटक किया, जैसे मैं कोई दुःस्वप्न देख रहा होऊँ। तभी माँ की नींद खुल गई और उसने घबराकर पूछा कि मुझे क्या हुआ है। पास आकर उसने मेरा सिर अपनी गोद में रख लिया। मैंने अपनी बाहें उसकी कमर में डाल दीं और सोने का स्वाँग करने लगा। माँ ने मेरी पीठ सहलाई। कुछ देर बाद वह मेरी बग़ल में लेट गई। मेरी कँपकँपाहट रुक गई और मुझे गरमाहट-सी महसूस हुई। मुझे लगने लगा कि अब मैं सुरक्षित हूँ। मैंने माँ को अपनी बाहों में और कस लिया, और उस पर अपना दायाँ पैर रखकर उसे और अपने क़रीब खींच लिया। फिर मुझे नींद आ गई।

क़त्ल के अगले दिन मैंने बहाना बनाया कि मुझे दस्त लगे हैं और इस तरह पाँच दिनों तक घर से बाहर नहीं निकला। बाहर तो मैं वैसे भी नहीं जा सकता था, क्योंकि शहर के विभिन्न हिस्सों में दंगे भड़क उठे थे। मुसलमानों को यहाँ से खदेड़ा जा रहा था। उनकी ज़मीन-जायदाद लूटी जा रही थी, दुकानें और व्यापार बर्बाद किया जा रहा था, उनके घरों पर लोग कब्ज़े कर रहे थे। वे सैकड़ों-हज़ारों की तादाद में पाकिस्तान भाग रहे थे। जो बचे रह गए थे, उनको पुराना क़िला और बड़ी-बड़ी मस्जिदों में इकट्ठा किया जा रहा था। दिल्ली के लिए पहली लड़ाई जीत ली गई थी। लेकिन अब भी काफ़ी कुछ करना शेष था। अभी हमें गांधी-नेहरू जैसे मुसलमानों के आशिक़ हिन्दुओं से निबटना था और बाक़ी मुसलमानों को भी पाकिस्तान खदेड़ना था। हमें अपने भारतवर्ष से इस्लाम का नामोनिशान मिटा देना था।

गांधी हमारा दुश्मन नम्बर एक है। वह कहता है, "मुसलमानों के घरों और मस्जिदों से बाहर निकलो।" मैं उससे पूछना चाहता हूँ, "ओए बुड्ढे आदमी, अगर हम मस्जिदों और मुसलमानों के घरों से निकल आएँ, तो रहें कहाँ? फुटपाथों पर? तुझे ऐसा बोलना शोभा नहीं देता, क्योंकि तू सेठ बिड़ला के घर में बना हुआ है।"

नेहरू हमारा दुश्मन नम्बर दो है। वह हमें 'गुंडे' कहता है। मैं उससे पूछना चाहता हूँ, "ओए पंडित! तेरी पुलिस और फ़ौज उस वक़्त कहाँ थी, जब मुसलमान गुंडे हमारे गले काट रहे थे?"

एक सरदार पटेल ही हमारा दोस्त है। हमारे लिए वह कहता है, "ये लोग चोर और लुटेरे नहीं हैं। ये अपने देश को प्यार करते हैं।" सिर्फ़ गांधी और नेहरू को खुश करने के लिए ही वह हमें 'पथभ्रष्ट' कहता है। पुलिस भी हमारी दोस्त है। और हो भी क्यों नहीं! नई पुलिस में ज़्यादातर तो पंजाब से आए शरणार्थी ही हैं। वे मुसलमानों की असलियत जानते हैं और नेहरू-गांधी के बहकावे में नहीं आनेवाले।

एक दिन संघ के चीफ़ ने मुझसे कहा, "हमारे लिए यह पता करना ज़रूरी है कि गांधी का इरादा क्या है? नम्बर 840, तुम उस बुड्ढे की सभाओं में जाओ और फिर हमें आकर ख़बर दो कि वह क्या कहता है और कौन-कौन लोग उससे मिलने आते हैं।"

मुझे गांधी टोपी, हाथ से बनी खद्दर की कमीज़-पाजामा और ऊनी चादर ख़रीदने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए पैसे दिए जाते हैं। अब मैं सुबह-सुबह बिड़ला हाउस जाना शुरू कर देता हूँ और हिन्दू-मुसलमान के भाई-भाई होने को लेकर वहाँ चलती सारी बक-बक को दर्ज करता रहता हूँ।

मैं गांधी की आवाज़ की नक़ल उतारना सीख लेता हूँ। उसकी सुनी बातें जब चीफ़ को बताता हूँ तो उसी की तरह दंतहीन गुजराती-मिश्रित हिन्दी में बोलकर बताता हूँ, "मैं अपने अंतःकरण के निर्देशों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ....मैं अपनी अन्तरात्मा की फुसफुसाहट सुनने और उसके आदेशों का इंतज़ार कर रहा हूँ...."

सब लोग ठट्ठा मारकर हँसने लगते हैं। मैं उस बुड्ढे की भाव-भंगिमाओं की भी नक़ल उतार सकता हूँ। पैर पर पैर रखे और शाल को सिर पर लपेटकर मैं फिर नक़ल उतारता हूँ, "मैं भट्ठी में पड़ा हूँ। चारों ओर भड़ाभड़ाकर आग जल रही है। हम लोग मानवता को पैरों तले कुचल रहे हैं।....मैं प्रकाश को खोजने में लगा हूँ।" मैं माचिस की तीली जलाकर दिखाता हूँ कि कैसे वह प्रकाश को टोहता है, "मैं केवल इसकी मद्धिम किरणों को ही पकड़ पा रहा हूँ.... ।" मैं माचिस की तीली को अपनी नाक के क़रीब लाते हुए फिर उसकी नक़ल उतारता हूँ, "जब मैं दिल्ली की दोस्ती को भरपूर रौशनी में देखूँगा, तभी समझूँगा कि यह हिन्दू-मुसलमानों की दिली दोस्ती है।" मेरे साथी हँस-हँसकर दोहरे होने लगते हैं। लड़के मेरा नया नाम रख देते हैं—'गांधीजी महाराज।' वे कहते हैं कि अगर यह बुड्ढा संघ का सदस्य होता तो उसे मेरा ही नम्बर दिया जाता—840; इससे बढ़िया नम्बर आख़िर उसके लिए और कौन-सा होता! 420 का दुगुना। 420, यानी भारतीय दंड-संहिता की धोखाधड़ी को परिभाषित करनेवाली धारा, और धोखाधड़ी में गांधी चार सौ बीस से दोगुना ज़्यादा माहिर है ही।

संघ के चीफ़ ने हमें बताया कि अब हमें कमर कसकर तैयार रहना चाहिए, क्योंकि जल्द ही पाकिस्तान के साथ लड़ाई होनेवाली है। हमें पाकिस्तान का हमेशा के लिए ख़ात्मा कर देना है और ख़ैबर दर्रे पर हिन्दू धर्म का भगवा झंडा फहरा देना है।

हमारा चीफ़ ठीक कहता है। पाकिस्तानी क़बीले कश्मीर पर हमले कर रहे हैं और हम हर दिन इसी प्रतीक्षा में हैं कि हिन्दुस्तान कब पाकिस्तान पर धावा बोले। लेकिन यह गांधी शांति और प्रेम को लेकर ही टर्राता रहता है। जैसे कि जो अब तक हुआ है, वह काफ़ी नहीं है। यह बुड्ढा ऊपर से यह भी कह रहा है कि हिन्दुस्तान को अभी काफ़ी रुपया पाकिस्तान को देना है और वह तुरन्त उसे दे दिया जाना चाहिए।

गांधी हर सोमवार को उपवास रखता है। उस दिन अपना मुँह भी बंद रखता है। मिलने आनेवालों से कुछ बोलने के बदले वह उन्हें देखकर मुस्करा-भर देता है और कागज़ की पर्चियों पर कुछ लिख देता है।

जनवरी, 1948 के एक सोमवार की सुबह। आज ठंड बहुत ज़्यादा है और चूँकि यह बुड्ढे के मौन व्रत का दिन है, इसलिए मैं बिड़ला हाउस जाने के बजाय दिन चढ़े तक रजाई ओढ़े सोता रहता हूँ। फिर उठकर ज़रा धूप सेंकता हूँ। मुझे अच्छा लगता है। चाय के साथ बासी रोटी निगलकर चहलक़दमी करता हुआ बिड़ला हाउस की तरफ चल पड़ता हूँ। वहाँ वह बुड्ढा बाग में बैठा धूप सेंकता हुआ कुछ लिख रहा है। उसकी सेक्रेटरी डॉ० सुशीला नय्यर उसकी कुर्सी के पास घास पर बैठी हैं और उसके लिखे कागज़ों को थामती जा रही हैं। मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुशीलाजी अच्छी लगती हैं। गोरी-गोरी, भरा-भरा सीना। घुँघराले बाल हैं और गालों में गड्ढे पड़ते हैं। उम्र में वह मुझसे काफ़ी बड़ी हैं, पर जी चाहता है कि उन्हें प्यार करूँ। बुड्ढे का लिखा हुआ कुछ पढ़ रही हैं। पढ़कर ऐसे उछल पड़ती हैं जैसे उनके गदराए नितंबों में किसी चींटे ने डंक मार दिया हो। भागती हुई वह अपने भाई को बताने जाती हैं। भाई किसी और को बताता है और इस तरह बात सब कहीं फैल जाती है। एक सभा बुलाई जाती है और सुशीला जी बुड्ढे की तरफ से उसका वक्तव्य पढ़कर सुनाने लगती हैं। वह बताती हैं कि कल अपना मौन व्रत तोड़ने के बाद गांधी आमरण अनशन करने जा रहे हैं।

उस समय जो कहा गया था, वह सब-कुछ तो अब याद नहीं आ रहा, लेकिन इतना ज़रूर याद है कि दो तरह के उपवास के बारे में बताया गया था—एक उपवास तो वह होता है जो मोटापे को घटाने के लिए रखा जाय और दूसरा वह, जो किसी के प्रति की गई बुराई अथवा अपकार के प्रायश्चित्त के लिए रखा जाय। बुड्ढा इसलिए व्रत रखना चाहता है कि हमने मुसलमानों का बुरा किया है। वह कहता है कि कुछ दिनों से उसे लग रहा है कि वह नामर्द हो गया है। इसी बात पर वह तीन दिन से विचार कर रहा है और सोचता है कि व्रत रख लेगा तो फिर से उसमें मर्दानगी आ जाएगी। वह कहता है, "कोई भी व्यक्ति, अगर वह पवित्र है, अपनी जान से बढ़कर और कुछ नहीं दे सकता। मैं आशा और प्रार्थना करता हूँ कि वह पवित्रता मुझमें हो, ताकि मेरे द्वारा उठाया गया कदम उचित सिद्ध हो सके। ईश्वर ने ही मुझे यह उपवास रखने को प्रेरित किया है, ईश्वर ही चाहेगा तो इसे तुड़वा सकेगा।"

वह ईश्वर के बारे में चाहे जो कहता रहे, पर यह साफ़ ज़ाहिर है कि वह मरना नहीं चाहता। वह कहता है कि अगर हिन्दू, सिख और मुसलमान फिर से मेल-मिलाप कर लें, तो वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है और फिर से खाना-पीना शुरू कर देगा।

मैं टैक्सी लेकर मुख्यालय पहुँचता हूँ। वहाँ सबने रेडियो पर पहले ही ख़बर सुन ली है। चीफ़ कहता है, "बुड्ढे को मरने दो। हिन्दू धर्म शाश्वत है। लेकिन फिर भी हमें स्थिति पर गम्भीरता से नज़र रखनी होगी।" फिर वह मेरी ओर संकेत कर कहता है, "और तुम! तुम्हें बिड़ला हाउस में अपनी ड्यूटी पर लगे रहना है और सारी ख़बरें तुरत-फुरत मुझे देते रहना है। अगर चाहो, तो टैक्सी लेकर चले जाओ।" (मैं मन-ही-मन चीफ़ का शुक्रिया अदा करता हूँ और हिसाब लगाता हूँ कि अगले कुछेक दिनों तक तो रोज़ छह-सात रुपए मेरे बनते ही रहेंगे।)

चीफ़ हमें संबोधित करते हुए कहता है, "गांधी के अनुयायियों की शरारतों का जवाब देने के लिए हमें प्रदर्शनों का आयोजन करना होगा।"

मैं बिड़ला हाउस लौट आता हूँ।

ऐसी भीड़ पहले कभी नहीं देखी। नित्यप्रति आनेवाले अपने-आपको महत्त्वपूर्ण जताते हुए इधर-उधर घूम रहे हैं। उनके अलावा कुछ अंग्रेज़ और नीग्रो लोग भी बैठे हैं। यद्यपि अभी सोमवार ही है, पर गांधी बोलता जा रहा है। भीड़ को चीरता हुआ मैं उसके पास पहुँचता हूँ। बहुत-से लोग अपनी-अपनी नोटबुकों में कुछ लिखते जा रहे हैं। कितने ही लोग बुड्ढे को यह दिखाने के लिए कि उन्हें उसकी कितनी चिन्ता है, प्रश्न पर प्रश्न पूछते हुए उसकी चापलूसी कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका बेटा देवदास भी वहीं है और दोनों एक-दूसरे पर वार कर रहे हैं। बेटा बाप को नामर्द कह रहा है और बाप बेटे के विचारों को पौरुषहीन और सतही बता रहा है। गांधी अपने लड़के को फटकारता है कि वह अपने काम से काम रखे और उससे न उलझे। आप साफ़ देख सकते हैं कि बाप-बेटा एक-दूसरे को फूटी आँख नहीं सुहाते। गांधी को अपने तीनों बेटों में से एक भी अच्छा नहीं लगता।

पाखंडी बुड्ढा अलग-अलग लोगों से अनेक बार वही-वही बातें दोहराता रहता है—"मैं दावा करता हूँ कि उपवास की प्रेरणा मुझे ईश्वर ने दी है। कोई भी इन्सानी ताकत ईश्वर की इस इच्छा को नहीं नकार सकती, न ही कोई आज तक नकार सका है।"

मुझे नहीं लगता कि इसमें चीफ़ को बताने लायक कोई बात है। अतः मैं रात की नींद लेने घर चला जाता हूँ।

अगली सुबह बिड़ला हाउस में आम दिनों के मुक़ाबले बहुत अधिक पुलिसवाले और सिपाही दिखाई दे रहे हैं। अख़बारनवीस भी बहुत-से आए हुए हैं। नेहरू, पटेल, मौलाना आज़ाद और कश्मीर का शेख़अब्दुल्ला भी वहीं हैं। लगता है कि ये सब गांधी के पक्ष में प्रदर्शन की योजना बनाने आए होंगे। मैं अपने मुख्यालय को दौड़ता हूँ और चीफ़ को अपनी रिपोर्ट देकर पुनः बिड़ला हाउस लौट आता हूँ।

साढ़े ग्यारह बजे एक प्रार्थना-सभा आयोजित की जाती है। यह सभा बुड्ढे के पसंदीदा भजन से शुरू होती है। यही भजन मुझे भी बहुत प्रिय है—

वैष्णव जन तो तैने कहिए
जो पीर परायी जाणे रे...

फिर सुशीला जी अंग्रेज़ी में कुछ गाती हैं। मुझे उनका अंग्रेज़ औरतों की नक़ल में 'हू हू हू' करना अच्छा नहीं लगता। फिर 'ईश्वर अल्ला तेरो नाम' वाला भजन होता है और बुड्ढा माइक्रोफ़ोन में बोलने लगता है। वह मुसलमानों को संबोधित करते हुए कहता है कि वह उनके लिए उपवास कर रहा है। हिन्दुओं और सिखों को भी यही कहता है कि वह उनके लिए व्रत रख रहा है। कश्मीरियों को कहता है कि वह उनके लिए रख रहा है। और ईश्वर से कहता है कि उसने इसीलिए खाना-पीना छोड़ा है कि उसी ने उसे ऐसा करने की प्रेरणा दी है। अब भी वह सिर्फ़ संतरे और मुसम्मी के रस पर ज़िंदा है।

शाम को हमारा चीफ़ तीन बसों में शरणार्थियों को भरकर बिड़ला हाउस के लिए रवाना करता है। वे 'ख़ून का बदला ख़ून से लेंगे' चिल्लाते हुए सड़क पार कर वहाँ पहुँचते हैं। नेहरू मुँह उठाकर उन्हें देखता है, पर कहता कुछ नहीं। वे फिर गाने लगते हैं, 'गांधी बुड्ढा मुर्दाबाद!' नेहरू पर तो अब जैसे भूत ही सवार हो गया हो। वह उनकी ओर हाथ उठाकर मारने के अंदाज़ में झपटता है और पूछता है—"किसकी जुर्रत है जो 'गांधी मुर्दाबाद' कह रहा है? जिसने कहा है वह आगे आए और मेरे सामने दोहराए! मुझे मारे वह पहले!" वह एक-एक को घूर-घूरकर अपना क्रोध जताता है और फिर अपनी लिमोजीन मोटरकार में बैठकर वहाँ से निकल जाता है। हथियारबंद पुलिस से लैस जीप उसके पीछे-पीछे है।

मैं सरककर गांधी के कमरे में पहुँच जाता हूँ। वह शाल में लिपटा चारपाई पर लेटा है। टेबुल-लैंप की रोशनी में सिर्फ़ उसका गंजा सिर और चेहरा ही दिखाई दे रहा है। कमरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों से भरा हुआ है। वह पूछता है कि बाहर लोग क्या चिल्ला रहे हैं ? सुशीला जी जवाब देती हैं, 'गांधी मुर्दाबाद' और अपने गाल पर ढुलक आया आँसू पोंछती हैं।

अगली सुबह बुड्ढे को चारपाई पर बाहर निकाल लाया जाता है, ताकि भीड़ उसके दर्शन कर सके। भीड़ चिल्लाती है, 'महात्मा गांधी की जय !' वह अपने हाथ जोड़कर मुस्करा देता है। उसे देखकर ऐसा नहीं लगता कि उसने दो दिनों से कुछ खाया नहीं है।

लगता है सारी भारत सरकार बिड़ला हाउस के लॉन में आ गई है। पंडित नेहरू और उसके मंत्री एक मेज़ के चारों ओर कुर्सियों पर बैठे हैं। वे पाकिस्तान को पैंतीस करोड़ रुपया देना तय करते हैं, ताकि वह हिन्दुओं को मारने के लिए बंदूकें और तोपें ख़रीदे। वे लोग गांधी के पास जाकर कहते हैं, "आप जो चाहते थे, हमने कर दिया है। अब तो आप अपना उपवास तोड़ेंगे ?" वह अपना सिर हिलाकर कहता है, "नहीं। अभी नहीं ! मुझे और भी बहुत-कुछ चाहिए। मेरा एकमात्र पथ-प्रदर्शक या कहूँ कि नियंता—वह सर्वशक्तिमान ईश्वर है...."

लगता है गंगा उलटी दिशा में बहने लगी है—समुद्र के विपरीत अपने उद्गम की ओर। आजकल घटित हो रही घटनाओं का वर्णन इसी तरह से किया जा सकता है। अभी तीन दिन पहले हम मुसलमानों को दिल्ली से खदेड़ रहे थे और सभी हमारा साथ दे रहे थे। अब मुसलमान वापस दिल्ली में आ रहे हैं और सारे लोग हमारे बरख़िलाफ़ हो गए हैं। जिन लोगों ने मुसलमानों की दुकानें लूटी थीं, वही अब लूट का माल लौटाने बिड़ला हाउस चले आ रहे हैं। जिन लोगों ने उनकी औरतें भगाई थीं, वे उन औरतों को लिये चले आ रहे हैं और गांधी के सामने इन औरतों से कह रहे हैं कि उन्हें माफ़ करें। जिन-जिन लोगों ने मुसलमानों को मारा था, वे अपने हाथों में चीरा लगाकर अपने ख़ून से गांधी को दरख़्वास्तें लिख रहे हैं कि वे अपना उपवास छोड़ दें। हर आदमी गांधी का दीवाना बना जा रहा है। एक बूढ़ा अंग्रेज़ भी, जो किसी अंग्रेज़ दैनिक का संपादक रह चुका था, गांधी के साथ उपवास शुरू कर देता है और कहता है कि अगर गांधी मरेगा, तो वह भी मरेगा।

भला इस तरह के पागलपन से भी कोई कैसे लड़े !

चीफ़ मुझे हर वक़्त बिड़ला हाउस में ही बने रहने को कहता है, क्योंकि आजकल में ही कोई बड़ी घटना होनेवाली है। उसने मुझे अपने घर का फ़ोन-नम्बर भी दे दिया है, ताकि अगर रात को भी कुछ बताना हो तो मैं उसे फ़ोन कर सकूँ।

शाम ढलते ही ठंड बढ़ने लगती है। मैं बरामदे में पड़े सोफ़े पर उकड़ूँ बैठ जाता हूँ। मैंने गर्म मोज़े, स्वेटर और कोट पहन रखा है और शाल भी ओढ़ी हुई है। फिर भी ठंड से ठिठुर रहा हूँ और मेरे दाँत किटकिटा रहे हैं। बुड्ढा साढ़े तीन बजे ही उठ जाता है। आसमान अभी एकदम काला दिख रहा है—तारों से भरा। बत्तियाँ जल उठती हैं। भजन शुरू हो जाते हैं और भजनों के बाद मौन ध्यान लगाया जाता है। उसके बाद बुड्ढा काम में लग जाता है। मैं टेबुल-लैंप की रौशनी में उसे देख रहा हूँ। वह एक के बाद एक चिट्ठियाँ उठाता है और कुछ बोलने लगता है, जिसे एक आदमी कागज़ों पर लिखता जाता है। कुछ घंटे यही क्रम चलता है। उसके बाद बुड्ढा बांग्ला भाषा का अपना पाठ पढ़ता है। कोई पूछे तो, अगर इसे मरना ही है, तो नई भाषा सीखकर क्या करेगा ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूरज निकल आया है। बरामदे में धूप उतरने लगी है। मेरा कँपकँपाना बंद हो जाता है। थोड़ा सोने की कोशिश करता हूँ, लेकिन मेरे आसपास इतनी बातें हो रही हैं कि मुझे उठना ही पड़ता है। देखता हूँ कि डॉक्टर बुड्ढे का परीक्षण कर रहे हैं। वे उसे संतरे का रस देते हैं और सिर हिलाने लगते हैं। बुड्ढा हाथ जोड़कर उन्हें विदा करता है। मुझे तो यह सब एकदम दिखावा लगता है, तमाशा।

बुड्ढा अपना डॉक्टर खुद है। वह कोई दवाई या इंजेक्शन वग़ैरह नहीं लेता। "राम का नाम ही मेरा प्राकृतिक इलाज है," वह कहता है और दर्जन-भर पत्रकार इसे अपनी नोटबुकों में उतार लेते हैं। मैंने कहा न कि तमाशा होता है यहाँ, एकदम तमाशा।

भजन और रामायण, गीता, कुरान और ग्रंथ साहिब का पाठ दिन-भर चलता रहता है। सारा दिन लोग ऐसे मुँह लटकाए हुजूम लगाए रहते हैं, जैसे दुनिया-भर का दुःख-दर्द उन बेवकूफ़ों के चेहरों पर ही सिमट आया हो। नेहरू की आँखों में आँसू झलक रहे हैं। वह कहता है कि अगर गांधी मर गया तो उसके साथ ही हिन्दुस्तान की आत्मा भी मर जाएगी। मौलाना आज़ाद की आँखों में भी आँसू हैं (बाद में वही घंटा-भर तक एक लाख लोगों की भीड़ के सामने भाषण देता रहा। मौलना को अपनी आवाज़ सुनने का बहुत शौक है!)।

शाम को लॉर्ड साहिब वायसराय माउंटबेटन, उनकी लेडी साहिबा और मिस्सी बाबा बिड़ला हाउस आते हैं। पटियाला का ख़ूबसूरत, लम्बा-ऊँचा महाराजा भी आता है और कहता है कि उसने हज़ारों मुसलमानों को बचाया है। मलेरकोटला का नवाब आता है और गांधी से कहता है कि उसने मुसलमानों को पहले ही आगाह कर दिया था कि अगर उन्होंने एक भी हिन्दू या सिख को मारा तो वह एक के बदले दस मुसलमानों को मारेगा और इस तरह उसने हज़ारों सिखों और हिन्दुओं की जानें बचाई हैं। बुड्ढा उस पर विश्वास कर लेता है।

लगता है कि दिल्ली के सभी लोग मुसलमानों के आशिक हो गए हैं। बिड़ला हाउस में एक लाख लोगों का जुलूस गाते हुए आ रहा है—

हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई,
भारत में हैं भाई-भाई।

लोग चिल्ला रहे हैं, 'महात्मा गांधी की जय।' होटल, कैफ़े, दुकानें—सब बंद कर दिए गए हैं। लगता है जैसे कोई बड़ी भारी छुट्टी का दिन हो। सच कहता हूँ, दिल्ली के इतिहास में यह सबसे बड़ा तमाशा है।

आज उपवास का छठा दिन है। बूढ़ा कह रहा है कि उसको पेशाब नहीं आ रहा। मेरा जी होता है कि उससे पूछूँ कि 'उतने सारे संतरों और मुसम्मी के रस का क्या हुआ?' वह अधजगे आदमी की तरह बबला-तुतला रहा है। रेडियो में कहा जा रहा है कि वह मरनेवाला है। हज़ारों लोग ऐसे इकट्ठे हो रहे हैं, जैसे उनका अपना बाप मरने जा रहा हो। वे उसको बताते रहे हैं कि उन्होंने भी उसके साथ व्रत रखा हुआ है। उनके साथ उनके बाप-माँओं, बीवियों-बच्चों ने भी उपवास कर रखा है। वे लिख-लिखकर उस वादे दे रहे हैं कि मुसलमानों के साथ छेड़ाछाड़ी नहीं करेंगे और मस्जिदों तथा मुसलमानों के घरों को ख़ाली कर देंगे। और तो और, पाकिस्तान से लौट आनेवाले मुसलमानों का भी स्वागत करेंगे। वे मुसलमानों को इधर-उधर से ढूँढ-ढूँढकर ला रहे हैं और उनके गलों में फूलमालाएँ डाले उनके साथ गलियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परेड कर रहे हैं। चाय, शर्बत, मिठाइयाँ मुसलमानों के गलों से नीचे उतारी जा रही हैं। शांति-समितियाँ बनाई जा रही हैं।

चीफ़ कहता है कि अगर सभी पगला रहे हैं, तो हमें भी उनके साथ वैसा ही करने का स्वाँग रचाना चाहिए। अतः आर० एस० एस० भी शांति-समितियों में अपना नाम दे देता है। बुड्ढा लोमड़ इसी के इंतज़ार में तो था। जैसे ही उसने सुना कि आर० एस० एस० ने भी अपना नाम शांति-समिति में दे दिया है, वैसे ही उसने अपना व्रत तोड़ने की हामी भर दी।

आज इतवार का दिन है, 18 जनवरी। आज गुरु गोविंदसिंह का जन्मदिन भी है। मुसलमानों ने उनके पिता, उनके बच्चों और उनके हज़ारों अनुयायियों का क़त्ल किया था और अन्त में ख़ुद उनका भी। हमने तो योजना बनाई थी कि आज के दिन का जश्न हम बचे हुए सारे मुसलमानों को दिल्ली से खदेड़कर ही मनाएँगे। हमारे चीफ़ ने कहा था कि 'एक बार हम यह शुरू कर दें, तो देखना, सिख भी हमारे साथ आ मिलेंगे।' लेकिन, जैसा कि मैंने कहा कि गंगा अब उलटी बहने लगी है, सब-कुछ हमारी योजनाओं के ख़िलाफ़ जा रहा है। गुरुद्वारा रक़ाबगंज में सैकड़ों-हज़ारों सिख जमा हैं। एक सौ बहत्तर साल हुए, इस गुरुद्वारे में गुरु के पिता की देह का अंतिम संस्कार किया गया था। और आज देखिए! आज यहाँ जमा हुई संगत में सैकड़ों मुसलमान भी हैं, जो सिखों के पवित्र गुरु ग्रंथ साहिब को श्रद्धा-सुमन चढ़ा रहे हैं। बूढ़ा लोमड़ कह रहा है कि यह एक शुभ दिन है और उसने जो चाहा था, उसे मिल गया है। इसीलिए वह अपना उपवास तोड़ रहा है। पौने एक बजे वह मौलाना आज़ाद के हाथों से संतरे के रस का गिलास लेता है और राम-राम कहता गटक जाता है। पाखंडी कहीं का! हमने महीनों में जो काम किया था, ख़ून बहाया था, इस बुड्ढे ने छह दिनों में ही सब बराबर कर दिया। साफ़ दिखाई दे रहा है कि वह अपनी विजय पर कैसा हर्षित हो रहा है। नेहरू दौड़ा-दौड़ा उसे बधाई देने आता है। वह आशीर्वाद देता है, 'लम्बी आयु पाओ और भारत के जवाहर बने रहो!' बुड्ढा अंग्रेज़ संपादक को फ़ोन करवाता है कि वह भी अपना व्रत तोड़ दे, क्योंकि बाज़ी जीत ली गई है।

दोपहर को मुसलमान औरतों की भीड़ की भीड़ तंबुओं सरीखे अपने बुर्के ताने आती है और कहती है, "हम लोग भी आपके साथ उपवास पर थीं।" बुड्ढा हँसता है और उनसे कहता है, "अच्छा, अपना मुँह तो दिखाओ! वैसे भी, कोई औरत अपने बाप के आगे पर्दा नहीं करती। मैं तो तुम सबका बापू हूँ न!" बुर्कों के पर्दे उलट दिए जाते हैं। लंपट बूढ़ा गोरी-गोरी मुसलमानियों को जी-भर देखता है और अपने-आप पर फूलते हुए कहता है, "इसका मतलब, सच्चा प्यार आख़िर क्या नहीं कर सकता!"

वह हमारे घावों पर और नमक छिड़कता है, जब हम हिन्दुओं और सिखों को कुरान पढ़ने के लिए कहता है।

दोपहर हो चुकी है। आसमान पर अचानक बादल घिर आते हैं और पानी बरसना शुरू हो जाता है। स्वर्ग के देवता भी भारत की बदक़िस्मती पर आँसू बहा रहे हैं।

मुझे नहीं मालूम कि किसने यह कहना शुरू किया, पर लड़कों को यह कहते सुन रहा हूँ कि देवतागण धर्म के पुनःप्रतिष्ठापन के लिए नरबलि माँग रहे हैं। चीफ़ कहता है कि इस काम को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का सम्मान केवल उसी कर्मयोगी को मिल सकता है जो गीता के अनुसार फल की इच्छा किए बिना ही कर्म करने में विश्वास रखता हो। ऐसे बलिदान के लिए फाँसी के फंदे को छोड़कर भला और किस फल की अपेक्षा की जा सकती थी ! बहरहाल, दिल्ली का कोई भी लड़का इस काम के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया। एक ने कोशिश की भी, पर वह असफल रहा।

गांधी को उपवास तोड़े आज दो दिन हो रहे हैं। प्रार्थना-सभा समाप्त हो चुकी है। बूढ़ा लोमड़ अपनी उसी रोज़ाना की बक-बक में लगा हुआ है कि उनसे भी प्यार करना चाहिए जो तुमसे नफ़रत करते हों, और जिन्होंने तुम्हारी माँओं-बहनों से कुकर्म किए हों ! इतने में ही ज़ोर का एक धमाका होता है। मैंने सोचा शायद बाहर सड़क पर जा रही किसी गाड़ी की घड़घड़ाहट होगी। लेकिन यहाँ तो धुआँ भी उठ रहा है और गांधी के चेले ऐसे भाग-दौड़ रहे हैं, जैसे हनुमानजी ने उनकी पूँछों में आग लगा दी हो। गांधी चिल्लाता हुआ कह रहा है, "अगर हम कुछ भी न होने पर ऐसे भगदड़ मचाने लगेंगे तो सचमुच कुछ हो जाने पर क्या होगा ?"

बुड्ढे की बात लेकिन कोई नहीं सुन रहा। वे जितनी तेज़ी से भाग सकते थे, भाग रहे हैं। मैं भी बिड़ला हाउस से भाग लेता हूँ। टैक्सी करता हूँ और ड्राइवर से कहता हूँ कि मुझे फटाफट मुख्यालय ले चले। जब मैं चीफ़ को बताता हूँ कि बिड़ला हाउस में क्या हुआ, तो वह पूछता है, "बस, यही ?"

वह आदेश देता है कि दफ़्तर के सारे काग़ज़ात तुरंत जला दिए जाएँ और मुझसे कहता है कि मैं तुरंत बिड़ला हाउस लौट जाऊँ और जब तक बुलावा न आए, वहीं बना रहूँ। "अभी तो और भी बहुत-कुछ होना बाक़ी है। हिन्दू धर्म विजयी भव !" गाते हुए वह कहता है।

गांधी हमेशा अपनी अन्तरात्मा की बातें किया करता है और कहता है कि ईश्वर उसे सब-कुछ बताता रहता है। लेकिन उस विस्फोट के बारे में तो उसको कुछ पता नहीं चला। उसका तो यही ख़याल है कि पुलिस ही निशानेबाज़ी का अपना कोई अभ्यास कर रही होगी। सचाई लेकिन यह थी कि निशानेबाज़ी हमारे ही संगठन के एक लड़के ने की थी और उसका निशाना और कोई नहीं, खुद बुड्ढा ही था। लड़का पंजाब से आया एक हिन्दू शरणार्थी है। उसका नाम है मदन लाल पाहवा। पाकिस्तान से आने के बाद वह एक मस्जिद में डेरा डाले हुए था। पुलिस ने उसको वहाँ से निकाल बाहर किया। हाँ, तो बम पाहवा ने फेंका था। पुलिस ने जब उसको हिरासत में लिया तो उसके पास एक और बम मिला।

अगले दिन गांधी ने कहा कि शायद पाहवा उसे हिन्दुस्तान का दुश्मन समझता है और स्वयं को उसे (गांधी को) समाप्त करने का ईश्वर-प्रेरित उपकरण। वह पुलिस से विनती करता है कि पाहवा को तंग न किया जाय, बल्कि उसकी सोच को सही दिशा में मोड़ने का यत्न किया जाय। मैं उस बुड्ढे को बताना चाहता हूँ कि इसमें कोई शायद-वायद नहीं है। वह हिन्दुओं का दुश्मन नम्बर एक है, हमें इस बात में कोई शक-शुबह नहीं है।

गांधी अन्य लोगों से अपने-आपको अलग दिखाना चाहता है। 26 जनवरी को सभी लोग परेड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने जाते हैं। गांधी कहता है कि मुझे परेड अच्छी नहीं लगती। वह बिड़ला हाउस में ही बना रहता है। मैं छुट्टी लेकर अपने माँ-बापू को परेड दिखाने ले जाता हूँ। बड़ा अद्‌भुत तमाशा है यह परेड भी। हज़ारों की तादाद में फ़ौजी सचिवालयों के बीच की ढलान से उतरकर 'लेफ़्ट-राइट' करते आ रहे हैं। उनके बाद सैकड़ों टैंक, तोपें और बख़्तरबंद गाड़ियाँ धड़धड़ाती हुई इंडिया गेट की तरफ़ चली जा रही हैं। वे सब नेहरू को सैलूट मारते जा रहे हैं। नेहरू उनको सैलूट का जवाब दे रहा है। हवाई जहाज़ रंगीन धुएँ के पुछल्ले छोड़ते हुए आसमान को चीर रहे हैं। तिस पर नेहरू कहता है कि भारत गांधी की धरती है। भारत को टैंकों, तोपों, बख़्तरबंद गाड़ियों और हवाई जहाज़ों में विश्वास नहीं। भारत तो एकमात्र अहिंसा में विश्वास रखता है।

गांधी को मिलिट्री का तमाशा पसन्द नहीं है, क्योंकि उसको अपना तमाशा जो पसंद है। उसने घोषणा की है कि वह महरौली में कुतुब मीनार के पास कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी की मज़ार पर जाएगा। आज काकी की बरसी है। काकी छह सौ साल पहले हिन्दुस्तान आया था और उसने अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था।

पिछले दिनों मुल्तान से भागकर आए हिन्दू शरणार्थियों ने मुसलमानों को महरौली से भगाकर यहाँ अपना अड्डा जमा लिया था। उन्होंने काकी की मज़ार के पास की संगमरमर की दीवार तोड़ दी थी। पर जब सुना कि गांधी वहाँ आ रहा है तो वे सड़कों पर कतारें बाँधकर खड़े हो गए और चिल्लाने लगे, "हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई!" और उन्होंने मुसलमानों को चाय-पानी भी पिलाया।

मुझे इतना गुस्सा आ रहा है कि जी करता है, चीख़-चीख़कर उनसे पूछूँ—'हरामियो, तुम क्या भूल गए कि मुल्तान में कैसे तुम्हारी माँ-बहनों की इज़्ज़त इन लोगों ने लूटी थी?'

गांधी काकी की मज़ार पर मत्था झुकाता है। मुसलमान उससे कहते हैं, "हमारे साथ फ़ातेहा दोहराइए।" गांधी अपने हाथ उठाकर गाने लगता है, "बिस्मिल्लाह रहमाने-रहीम…" तो यह गांधी तो बन गया मुसलमान! क्या नहीं बना? अब अगर कोई हिन्दू इसे मारता है, तो हिन्दुस्तान के दुश्मनों की तादाद में एक की तो कमी आएगी।

गांधी मुसलमानों से कहता है कि वे हिन्दुओं और सिखों को इसके लिए माफ़ करें कि उन्होंने काकी की मज़ार की संगमरमर की आड़ तोड़ी। वह उन्हें बताता है कि उसने एक बहुत अच्छी ख़बर सुनी है कि पाकिस्तान में पेशावर के पास पाराचिनार में मुसलमानों ने एक सौ तीस हिन्दुओं और सिखों का क़त्ल कर दिया है। उसने कहा कि यह एक अच्छी ख़बर है, क्योंकि हिन्दुओं और सिखों ने अपनी 'अहिंसा की शक्ति' का परिचय देते हुए जानें दीं। मैं कहता हूँ, "शाबास!" अब भी आपको इस बात का क्या कोई और सबूत चाहिए कि गांधी हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है?

गुजरात रेलवे स्टेशन पर हुए हिन्दुओं और सिखों के क़त्लेआम से बचकर आया एक आदमी बुड्ढे से कहता है, "तुमने बहुत नुकसान किया है। तुमने तो हमारा सत्यानाश ही कर डाला। अब तुम तुरंत ही हमें बख़्शो और हिमालय में जाकर आराम करो!"

"मैं किसी के हुक्म से आराम नहीं करता," बुड्ढे ने जवाब दिया, "मैंने अपने-आपको ईश्वर के निर्देशों पर छोड़ रखा है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं," शरणार्थी अड़ा रहता है, "हमारे ही ज़रिए अब ईश्वर तुमसे कह रहा है कि तुम हमें बख्शो। हमारे दिमाग़ दुख से बौरा गए हैं।"

"मेरा दुख तुम्हारे दुख से कोई कम नहीं।" महापाखंडी बुड्ढा फिर जवाब देता है।

ऐसे आदमी के भेजे में भला अक़्ल भी कोई कैसे डाले, जो हमेशा यही कहता रहे कि 'मैं ठीक हूँ और बाक़ी सब ग़लत हैं! हिन्दू और सिख सब ग़लत कर रहे हैं और सिर्फ़ मुसलमान ही ठीक कर रहे हैं!'

आज शुक्रवार है, 30 जनवरी। मेरे मन-मस्तिष्क पर दिन, महीना और साल (1948) ऐसे अंकित हैं, जैसे मेरी दाहिनी बाँह पर मेरा नाम गुदा है—'राम रखा'।

मैं जिस सोफ़े पर पिछले कई दिनों से उठता-बैठता आया हूँ, उसी पर सो रहा हूँ। लगता है आज का दिन ही साल का सबसे ठंडा दिन होगा। बत्तियाँ तीन बजे जला दी गई हैं। मैं जाग जाता हूँ। अपनी छाती पर दोनों हाथ बाँधते हुए उठ खड़ा होता हूँ और अपनी शिराओं से ठंड मिटाने के लिए ऊपर-नीचे उछलता-कूदता हूँ। घर के बाहरवाली सूखी नाली पर बैठकर हगने के बाद बाग़ में लगे फुहारे से चूतड़ धोता हूँ और थोड़ी मिट्टी लेकर हाथ साफ़ करता हूँ। हाथों को बग़लों में दबाकर उन्हें जमने से बचाते हुए बुड्ढे को देखने आता हूँ कि वह क्या कर रहा है। उसे नमस्कार करता हूँ तो वह अपने चश्मे से झाँकते हुए मुझे देखकर मुस्कराता है। वह शहद-मिला गर्म नींबू-पानी पीता है और फिर संतरे का रस। लोगों से कह रहा है कि वह एक सौ छब्बीस साल तक जीवित रहेगा। तो ये हज़रत ईश्वरीय तरीक़ों के बारे में बस इतना ही जानते हैं!

दिन निकलने से पहले ही वह भजन, साधना और पवित्र ग्रंथों के पाठ से निबट जाता है। सूरज उगता है तो लोगों की भीड़ लगनी शुरू हो जाती है। यों यहाँ हर दिन ही ऐसा मेला लगता है और इसी तरह हरेक सुबह दोपहर में बदल जाती है। भीड़ अब और ज़्यादा होने लगती है। सरदार पटेल अपनी बेटी मणिबेन के साथ आए हैं। उनकी त्योरियाँ चढ़ी हुई हैं। उनकी बेटी का चेहरा पीला-सा है और बदन एकदम डंडी-जैसा। लगता है जैसे बेचारी ने कभी किसी मर्द का मुँह नहीं देखा और न कभी चेहरे पर हँसी की कोई लहर आई है। वे लोग बुड्ढे से काफ़ी देर तक बहस-मुबाहसा करते रहे। गांधी कभी 'लेट' नहीं होता, लेकिन आज वह दस मिनट लेट हो गया है।

बुड्ढा अपनी दोपहर की सभा के लिए आता है, तो काफ़ी खुश लगता है। और खुश हो भी क्यों नहीं! एक बाँह एक लड़की के ऊपर रखी हुई है, दूसरी बाँह दूसरी लड़की पर। दोनों लड़कियाँ जवान और ख़ूबसूरत हैं। वह उनके साथ हँसी-मज़ाक भी करता रहता है। उसके मज़ाक भी एकदम बेवकूफ़ी-भरे होते हैं। एक लड़की उसको गाजर पकड़ाती है तो वह कहता है, "तो तुम मुझे गाय-भैंसों का चारा दे रही हो!" और सभी लोग हँसने लगते हैं।

धोती की तहों से अपनी घड़ी निकालकर देखते हुए वह कहता है, "मैं दस मिनट लेट हो गया हूँ। मुझे लेट होना बहुत खराब लगता है। मैं प्रार्थना-सभा में ठीक पाँच बजे पहुँच जाना चाहता हूँ।"

मैं उसके क़रीब सरक जाता हूँ। दरअसल उसके आसपास मैं इसलिए बने रहना चाहता हूँ कि अख़बारों में मेरी भी फ़ोटो आ जाय, ताकि मैं उसे अपनी माँ को दिखाऊँ। लोग उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिवादन करने के लिए खड़े हो जाते हैं। कोई चिल्लाकर कहता है, "बोलो, बोलो !" बाक़ी सभी बोलने लगते हैं, "महात्मा गांधी की जय !" बूढ़ा मुस्कराकर सबको नमस्कार करता है।

और फिर सब-कुछ इतनी जल्दी हो जाता है कि मुझे बार-बार याद करना पड़ता है कि क्या सचमुच मैंने अपनी आँखों से उसे होते देखा? एक तगड़ा-सा युवक भीड़ में अपना रास्ता बनाता हुआ आगे बढ़ा चला आता है। रास्ते में एक लड़की उसे रोकने की कोशिश करती है, पर वह उसको धक्का देता हुआ आगे बढ़ आता है और गांधी के पास पहुँचकर ऐसे झुकता है, जैसे उसके पाँव छूने जा रहा हो ! इतने में ही वह अपनी धोती की तहों से रिवाल्वर निकालता है और इससे पहले कि कोई अंदाज़ा भी लगा सके कि वह क्या करने जा रहा है, एक के बाद एक 'ठा, ठा, ठा' करता तीन गोलियाँ बुड्ढे के शरीर में उतार देता है।

गांधी के हाथ जुड़े के जुड़े रह जाते हैं, मानो दुनिया को अंतिम नमस्कार कर रहा हो। उसके मुँह से 'हे राम' शब्द निकलते हैं और वह अपने ख़ून के तालाब में ढह जाता है।

मुझे जैसे पागलपन का दौरा पड़ गया हो। मैं उस आदमी पर झपटता हूँ और उसे नीचे गिराकर सिर के बाल नोंचने लगता हूँ। मैं उसका सिर बार-बार ज़मीन पर पटकता हुआ उसे तरह-तरह की गालियाँ बक रहा हूँ—मादरचोद, कुत्ते, हरामी, सुअर के बच्चे ! अब एक पुलिस वाला मुझे गर्दन से पकड़कर अलग करता है और उस युवक को पकड़ लेता है।

वहाँ भगदड़ मच जाती है। मैं भी भीड़ में रास्ता बनाता हुआ भाग खड़ा होता हूँ। मैं रोना शुरू कर देता हूँ। रोता जाता हूँ और भागता जाता हूँ; भागता जाता हूँ और रोता जाता हूँ। फिर फ़ुटपाथ पर बैठ जाता हूँ और 'हाय-हाय' करता हुआ अपने हाथों से माथा पीटने लगता हूँ।

लोगों की भीड़ मेरे गिर्द जमा होने लगती है। वे मुझसे बड़ी विनम्रता से पूछते हैं, "बेटा, तुम क्यों रो रहे हो ?" मैं अपना आँसुओं-भरा चेहरा उठाकर ऊपर ताकता हूँ और कहता हूँ, "मेरा बापू मर गया !" वे 'च्च, च्च' करते हुए सहानुभूति जताते हैं। उनमें से कोई एक कहता है, "तुमको बहादुरी से काम लेना होगा और अपनी माँ की हिम्मत बढ़ानी होगी, उसका सहारा बनना होगा। अपने बापू के अधूरे कामों को तुम्हें पूरा करना होगा, जो भी वे करते रहे हों।" फिर वह ज़रा संजीदगी से पूछता है, "तुम्हारे बापू मरे कैसे ? क्या बहुत बीमार थे ?"

"नहीं, बीमार तो बिल्कुल नहीं था। मैंने उसे खुद अपने हाथों मार डाला। मैंने उसे मार डाला !" और अपना माथा पीटते हुए मैं फिर रोने-चिल्लाने लगता हूँ, "हाय-हाय, मैंने अपने बापू की हत्या कर दी !"

21

भागमती

बुधसिंह गांधी और उसकी धोती-टोपी-गैंग से बहुत ख़फ़ा है। वह महात्मा के समर्थकों को 'धोती-टोपी गैंग' ही कहता है। ये लोग अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान से निकालना चाहते हैं और बुधसिंह चाहता है कि वे यहीं रहें। वह अंग्रेज़ों को यहीं रखने के लिए अभियान छेड़ने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समिति बना रहा है—'ब्रिटिश रिटेंशन लीग'। उसने इंग्लैंड के महामहिम महाराजा को अपना मुख्य संरक्षक बनने का निमंत्रण दिया है। मेरे फ़्लैट को बी० आर० एल० का मुख्यालय बनाया गया है और मुझे उसका अवैतनिक कोषाध्यक्ष नामित किया है। उसने एक हस्ताक्षर-अभियान भी चला रखा है और उसकी योजना है कि हिन्दुस्तान की सत्ता को राजा के हाथ से धोती-टोपीवालों के हाथ में स्थानांतरित किए जाने के विरुद्ध करीब दस लाख लोगों के हस्ताक्षर राजा को भेजे।

अभी तक वह केवल भागमती को ही इसके लिए राज़ी कर पाया है। वह लिख-पढ़ नहीं सकती, इसलिए उसने उसके नाम के आगे अँगूठे का निशान लगवा लिया है। उसने हर नाम के साथ उसके लिंग और पेशे का खाना भी बना रखा है। भागमती के नाम के आगे उसके लिंग—हिंजड़ा और पेशा—वेश्यावृत्ति भर दिया है। बड़े गर्व के साथ वह कागज़ मुझे दिखाता है और हस्ताक्षरकर्ता नम्बर दो बनने का अनुरोध करता है। मैं तर्क देकर उसे समझाना चाहता हूँ कि वह जिन घटनाओं को बदले हुए रूप में देखना चाहता है, वे तो बहुत पहले घटित हो चुकी हैं और अब वह उन्हें लेकर कुछ नहीं कर सकता। वह मेरी तरफ ऐसे देख रहा है, जैसे सोच रहा हो कि कहीं मैं पागल तो नहीं हूँ? इसलिए अब सोच रहा हूँ कि उसी के हिसाब से उसी की भाषा में उसे समझाने की कोशिश की जाय। उससे मैं कहता हूँ, "अरे भाई, ब्रिटिश तो खुद ही हिन्दुस्तान छोड़कर जाना चाहते हैं। तुमने अख़बार में नहीं पढ़ा कि वे मुसलमानों को उनका पाकिस्तान देकर 15 अगस्त को चले जाएँगे?"

"ये सब बकवास है," वह अवज्ञा से उत्तर देता है, "यह लॉर्ड माउंटबेटन गांधी का चेला है। मैंने इसकी शरारती करतूतों के बारे में 'बकिंघम पैलेस' को लिख भेजा है।"

"माउंटब्रेटन राजे का रिश्तेदार है, बुधसिंह! उसके भतीजे को राजे की बेटी ब्याही हुई है।"

"घर का भेदी ही लंका ढाता है।"

"तुम क्या हिन्दुस्तान को आज़ाद हुआ नहीं देखना चाहते, बुधसिंह?"

बुधसिंह ने इस समस्या पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया है। धीरे से बड़बड़ाता है, "कौन-सी आज़ादी? किसलिए चाहिए आज़ादी? लूटमार करने के वास्ते? सब लोग आज़ादी-आज़ादी चिल्लाते रहते हैं। मुझे पता नहीं क्या बला है यह आज़ादी!"

घंटी बजती है तो बुधसिंह से छुटकारा पाता हूँ। कहता हूँ, "अच्छा मुझे सोचने दो।" और दरवाज़ा खोलने बढ़ जाता हूँ। आगंतुक मेरा मित्र—सिख पत्रकार है। मेरे दोस्त को भी वह अपने 'ब्रिटिश रिटेंशन लीग' के उद्देश्यों और प्रयोजनों से परिचित करा पाता, उससे पहले ही मैंने धीरे-से उसे बाहर कर दिया, "अच्छा, फिर कभी। ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों को इतनी जल्दी में तय नहीं किया जाना चाहिए।"

सिख पत्रकार भी निरा जोकर है। वह मुझे एक पुराना 'जोक' ऐसे सुनाता है जैसे एकदम नया हो, "जब राम, सीता और लक्ष्मण अपने चौदह बरस के बनवास के लिए अयोध्या से जा रहे होते हैं तो शहर के बाशिंदे उनको विदाई देने शहर के फाटक तक आए। फाटक पर रामचन्द्र जी ने मुड़कर अपनी प्रजा से कहा कि महिलाओ और सज्जनो, बस अब आप लौट जाओ! और आगे मत आओ! लोग उनकी बात मानकर लौट गए। चौदह साल बाद जब वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनों वापस अयोध्या लौटे तो उन्होंने शहर के फाटक पर कुछ लोगों को वैसे ही बैठे देखा, जैसे वे उन्हें चैदह साल पहले छोड़कर गए थे। पूछने पर वे लोग बोले, 'महाराज, आपने तो केवल महिलाओं और पुरुषों को ही वापस लौटने को कहा था। हम तो दोनों में से कोई भी नहीं हैं। हिंजड़े हैं। हमें तो आपने...' श्री रामचन्द्र जी उनकी भक्ति से इतने द्रवित हुए कि उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया कि सन् 1947 में मैं तुम लोगों को हिन्दुस्तान पर हुकूमत करने का वरदान देता हूँ।" और वह जोक सुनाकर 'हा हा हा' करता हुआ हँसने लगता है। मैं भी 'ही, ही' करता हुआ उसका साथ देने लगता हूँ।

घंटी फिर बजती है। भागमती आई है। वह मुझसे पूछती है, "अरे भई, हँस क्यों रहे हो? ऐसी कौन-सी बड़ी हँसने की बात है?"

"तुम्हीं बता दो," पत्रकार मित्र अपनी घड़ी की ओर देखने लगता है, "मुझे ग्यारह बजे तक कॉफ़ी हाउस पहुँचना है।" और वह कमरे से बाहर निकल जाता है।

"यह क्या कह रहा था?" भागमती सोफ़े में धँसती हुई पूछती है।

मैं उसको भला कैसे बताता?

बारिश का मौसम समाप्त होते ही कोहरे-भरे महीने शुरू हो जाते हैं। हर सुबह टेनिस के लिए निकलने से पहले अपनी कार के विंडस्क्रीन से ओस की बूँदें पोंछता हूँ। डस्टर गीला हो जाता है, कालिख से भरा। एक शाम घर लौटता हूँ तो देखता हूँ कि बुधसिह घुटनों में सिर दिए चूतड़ों के बल बैठा है। मुझे देखकर वह ऊपर ताकता है। उसकी आँखें सुर्ख़ हो रही हैं। मुझे ऐसे घूर रहा है, जैसे निगल जाएगा।

"क्या बात है, बुधसिंह?" आवाज़ में मिठास घोलते हुए पूछता हूँ।

"मेरी आँखें आई हुई हैं।" हथेलियों के पृष्ठभाग से आँखें पोंछते हुए वह कहता है।

"तुम्हें तो डॉक्टर को दिखाना चाहिए।"

मेरी बात पर वह तनिक भी ध्यान नहीं देता और पुनः घुटनों में सिर दिए बैठ जाता है।

मैं फ़्लैट के भीतर दाख़िल होता हूँ। देखता हूँ मेरा ख़ानसामा ग़लीचे पर पड़ा कराह रहा है।

"अब तुम्हें क्या हुआ?" मैं पूछता हूँ।

"मेरा बदन टूट रहा है।" वह कहता है।

मैं डॉक्टर को फ़ोन करता हूँ। बग़लवाले घर में ही उसका क्लीनिक है। वह तुरन्त आ जाता है और बुधसिंह पर एक नज़र डालते ही कहता है, "कंजक्टीवाइटिस है इसे तो! दिल्ली में हरेक को यही हो रहा है।" वह उसके लिए कोई मल्हम लिख देता है।

फिर ख़ानसामे से कहता है कि मुँह खोले—आऽऽऽ! ख़ानसामा 'आऽऽऽ' करता हुआ मुँह खोल देता है। डॉक्टर उसकी पलकें उलटकर आँखों में झाँकता है और उसके मुँह में थर्मामीटर घुसेड़ देता है। बुख़ार 102° है। डॉक्टर उससे पूछता है कि उसे पतली टट्टी और उल्टी वग़ैरह की शिकायत तो नहीं है? "नहीं," ख़ानसामा कहता है, "बस, बदन टूट रहा है।"

डॉक्टर मेरी ओर मुख़ातिब होकर कहता है, "इसे पीलिया या हैज़ा तो नहीं लग रहा। आजकल दिल्ली में ये दोनों बीमारियाँ बहुत फैली हुई हैं। पर इसे तो शायद मलेरिया या डेंगू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुख़ार है, या फिर वायरल होगा। पक्का करने के लिए मुझे इसके ख़ून, पेशाब और टट्टी की जाँच करनी होगी।"

ख़ानसामे के लिए वह कोई दर्दनाशक टिकिया लिख देता है और मेरे लिए मलेरिया से बचने की गोलियाँ। घर में 'विज़िट' क़रने की फ़ीस के एक सौ पचास रुपए उसकी ओर बढ़ाता हूँ और कैमिस्ट के पास जाकर दवाइयाँ ख़रीद लाता हूँ। बुधसिंह और ख़ानसामे को दवाइयाँ थमाते हुए कहता हूँ, "अपने क्वार्टर में रहो तुम लोग। तुम दोनों की बीमारियाँ फैलनेवाली हैं। जब तक पूरी तरह से ठीक न हो जाओ, आना नहीं।"

अब फ़्लैट में सिर्फ़ मैं ही रह जाता हूँ। भागमती आ जाती तो कितना अच्छा होता! हम दोनों मिलकर कोई और ही कंजक्टीवाइटिस रचते। पर उस कुतिया को तो शायद पहले ही अपने गाहकों से कोई-न-कोई बीमारी नज़राने में मिल चुकी होगी।

ठंडे पानी में नहाकर मैं जिनसेंग चाय का एक प्याला बनाता हूँ और तमाम अख़बारों को सामने फैलाकर बैठ जाता हूँ। सबसे पहले 'हिन्दुस्तान टाइम्स' को उठाता हूँ—दिल्ली का सबसे घटिया और सबसे ज़्यादा बिकनेवाला अख़बार। चौथे पन्ने से पढ़ना शुरू करता हूँ जिसमें 'अन्त्येष्टि संस्कारों' और 'यादगार में' के ही ज्ञापन ज़्यादा हैं। दिल्ली में सारी ही मौतें दु:खद और असामयिक होती हैं। और जब लोग मरणासन्न होते हैं तो चुपचाप ऊपर नहीं जाते, गीता के आश्वासन के बाद ही स्वर्ग सिधारते हैं कि 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही।' इसलिए निगमबोध घाट या अन्य किसी श्मशान घाट पर उन्हें विधिवत् जलाया जाता है। स्वर्ग सिधारते हुए दिल्लीवाले न जाने कितनी लकड़ी हर दिन निगल जाते हैं। लकड़ी से जलाने के मुक़ाबले बिजली के शवदाह-गृहों में मुर्दों को जलाने में चौथाई ख़र्च भी नहीं आता। पर यहाँ सिर्फ़ दो प्रकार के शव ही आते हैं—एक तो पढ़े-लिखे अमीरों के या फिर लावारिस भिखारियों के। यमुना का दाहिना किनारा मजनू के टीले की तिब्बती बस्ती से लेकर गांधी-समाधि राजघाट तक विहारों, मंदिरों, श्मशान घाटों, विद्युत्-शवदाहगृह और सैकड़ों अन्य स्मारकों, जैसे—शास्त्री, नेहरू, चरण सिंह, संजय, इंदिरा गांधी और असली गांधी—राष्ट्रपिता आदि की समाधियों से पावन हो चुका है। यमुना-तट दरअसल दिल्लीवालों की परम यात्रा के लिए हवाई पट्टी बन चुका है।

चलिए, अब फिर पृष्ठ चार पर वापस आते हैं। एक जगह 'बॉक्स' में लिखा है कि निगमबोध घाट यमुना की बाढ़ में जलमग्न हो गया है, इसलिए लोग अपने मुर्दों को अन्यत्र ले जायँ। शायद पहली बार विद्युत्-शवदाहगृह की चाँदी होनेवाली है। आज मुझे वैसे भी करने को कुछ ख़ास नहीं दिख रहा। सोचता हूँ कॉफ़ी हाउस में अपने दोस्तों से मिलने से पहले ज़रा मुर्दघाट की ही झलक लेता आऊँ।

मैं पुराने क़िले से होता हुआ रिंग रोड पर आता हूँ। बायीं तरफ़ 'वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइज़ेशन' के मुख्यालय को पार करता हूँ। दायीं तरफ दिल्ली की ख़राब सेहत का सबसे बड़ा कारण विद्यमान है—'फिल्ट्रेशन प्लांट' जिसकी चार चिमनियाँ रात-दिन धुआँ उगलती रहती हैं। डब्ल्यू० एच० ओ० को अपने ब्रोशरों में देने के लिए वातावरण-प्रदूषण के बेहतरीन चित्रों का मसाला यहाँ से हाथों-हाथ मिल सकता है। यह प्लांट दिल्ली पर कालिख की बारिश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता रहता है। इसके 'फ़िल्टर्ड' पानी से दिल्लीवालों को आए दिन पेचिश, हैज़ा, पीलिया से अफ़ारा और आँतों की दूसरी बीमारियाँ भेंट में मिलती रहती हैं। पुल के ऊपर से लोहे के पुराने पुल के नीचेवाली सड़क के साथ-साथ यमुना की झलक मिल रही है। इसका कीचड़-भरा पानी गांधी-समाधि और बस-अड्डे पर छपाके मार रहा है। पुल के पासवाले गोलचक्कर पर पुलिस-अवरोध लगा हुआ है—पुल पर से गाड़ियों का आवागमन मना है। मैं गोल चक्कर से मुड़ता हुआ विद्युत्-शवदाहगृह में घुस जाता हूँ। जमादार हॉल और सड़कों की सफ़ाई कर रहे हैं। बिल्डिंग के पिछवाड़े हथठेले में तीन भिखारियों की लाशें पड़ी हैं। इनकी बारी बुकिंग वाली लाशों को ठिकाने लगाने के बाद आएगी। दफ़्तर में बैठा क्लर्क अपनी घड़ी देखता हुआ मुझसे पूछता है, "लाश आ गई? सुबह के लिए तीन बुकिंग हो भी चुकी हैं। एक-एक घंटे बाद टाइम दिया है।"

मैं उसको बताता हूँ कि मैं किसी मुर्दे के साथ नहीं आया। ऐसे ही देखने ही आया हूँ, तमाशबीन की तरह।

वह मेरी ओर तिरस्कारपूर्ण दृष्टि डालता हुआ कहता है, "अगर तमाशा देखने का इतना ही शौक है तो मेरी जगह आकर बैठ जाओ।" मैं सही वक़्त पर मुर्दघाट से बाहर निकल आता हूँ, क्योंकि सामने से मिलिट्री के निशानोंवाली मोटरगाड़ियों के लम्बे क़ाफ़िले के साथ फूलमालाओं से लदी एक अर्थी चली आ रही है। तो मिलिट्री के बूढ़े अफ़सर भी मरते हैं!

कॉफ़ी हाउस खचाखच भरा है। मेरा पत्रकार मित्र और हमारा राजनैतिक सलाहकार—दोनों अख़बारों में इस क़दर चेहरा गड़ाए बैठे हैं, जैसे दोनों की आपस में अनबन हो गई हो। मैं भी पास आकर बैठ जाता हूँ। वे अख़बारें रख देते हैं, "क्यों भाई, इतने दिनों कहाँ रहे?"

उन्हें बताता हूँ कि कितने ही परिचित और मित्र वायरल फ़ीवर और कंजक्टीवाइटिस से तड़प रहे हैं, मेरे दोनों नौकर समेत।

"अपने-आपको ख़ुशनसीब समझो कि अभी तक तुम्हें एड्स नहीं लगी," सिख पत्रकार ने कहा, "क्यों? ठीक कहा रहा हूँ न, जैसा कि तुम्हारा चाल-चलन है? विदेशी औरतों के साथ ख़ाक छानते फिरते हो! दिल्लीवालों में एड्स के तुम्हीं सबसे पहले रोगी बनोगे।"

"धन्यवाद," मैं कहता हूँ, "तुम अपनी फ़िक्र करो। एड्स तुम्हारे जैसे लौंडेबाज़ों को होती है, आम तरीक़ेवालों को नहीं।"

"तुम लोगों को सेक्स के सिवाय भी कुछ सूझता है?" राजनीतिज्ञ फटकारते हुए कहता है, "यहाँ दिल्ली में लोग टिड्डों-पतिंगों की तरह मर रहे हैं और तुम लोगों को सिर्फ़ लौंडेबाज़ी और विदेशी औरतों के साथ हमबिस्तरी की बातें सूझ रही हैं। तुम लोगों को अपने शहर के भविष्य की भी कोई चिंता-फिकर है?"

"नहीं।" हम दोनों ने एक स्वर में कहा। फिर मैंने अपनी तरफ़ से जोड़ा, "मेरी बला से यह शहर जहन्नुम में जाए! अब यह दिल्ली वह नहीं रही, जिसमें मैं पला-बढ़ा, जिसे कभी मैंने प्यार किया। सन् 47 के बाद यहाँ धावा बोलनेवाले तुम पंजाबियों ने इस शहर की शक्ल ही बिगाड़कर रख दी है।"

"यार, ज़रा संजीदगी से बात किया करो," उसने मुझे सलाह देते हुए कहा, "सन् 1947

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में दिल्ली आने के सिवाय हमारे पास दूसरा चारा ही कहाँ था ! हम लोगों ने नहीं, यह तो बाद में दिन-पर-दिन यहाँ आ-आकर बसनेवालों ने सारी मुसीबतें खड़ी की हैं। तुम्हें पता है कि सारे हिन्दुस्तान से तकरीबन 70,000 लोग हर साल दिल्ली आकर बस जाते हैं, जैसे यही सारे देश का अनाथालय हो। उनके लिए कहाँ से घर, कहाँ से स्कूल और कहाँ से अस्पताल आएँगे ? तुम्हें पता है कि तेरह लाख लोग यहाँ खुले में शौच करते हैं, क्योंकि उनके लिए शौचालयों की व्यवस्था ही नहीं है ?"

"तो तुम हफ़्ते में एक बार हगवाने का अभियान चला दो। मैं इसे समाचार-समितियों द्वारा एक-एक अख़बार में छपवा दूँगा। वादा रहा !" पत्रकार ने सलाह दी।

"तुम-जैसे लोगों के साथ तो बात ही करना फ़िज़ूल है। बिल्कुल वक़्त की बर्बादी," राजनीतिज्ञ ने उठते हुए कहा, "मेरी बात को याद रखना ! दिल्ली एक मरता हुआ शहर है। तुम्हारे-जैसे जितने ज़्यादा लोग यहाँ होंगे, यह उतनी ही जल्दी मरेगा। चलो, इस भविष्यवाणी के नाम पर ही मेरी कॉफ़ी का बिल अब तुम्हीं चुकाओ।" और राजनीतिज्ञ मुँह उठाकर चलता बनता है।

ज़िंदगी इतनी तेज़ी से गुज़र जाएगी, यह कहाँ सोचा था ! अब तो यह भी याद नहीं कि कब मैंने किसी तपती दोपहरी में भागमती को सड़क पर बेहोश पड़ी पाया था ! कितनी बार हम दोनों हमबिस्तर हुए होंगे ? शायद अनगिनत ! इस बीच वह अपना वेश्या का पेशा करती रही और मैं पता नहीं किन-किन मुल्कों की औरतों के साथ घूमता-फिरता रहा, जिनके बारे में शायद सिर्फ़ संयुक्त राष्ट्र का सचिवालय ही जानता हो। आज मुझे केवल कुछ ही नाम और चेहरे याद रह गए हैं। मुझे इस बात की शर्म नहीं है कि मैंने क्या किया, मुझे शर्म सिर्फ़ इस बात की है कि मैं अब और ऐसा नहीं कर सकता। भागमती के प्रति मेरी चाह में आई कमी उसे नहीं खलती। वह अब मेरे पास आती भी कम ही है। दो-तीन महीनों में जब कभी पैसे की ज़रूरत होती है तो पहुँच जाती है। अब तो पिछले तीन-चार सालों से वह केवल दीवाली पर ही आया करती है। आजकल उसने अपने हिंजड़े पति (शायद उसका इंतक़ाल हो चुका हो) और सेक्स के बारे में बात करना भी छोड़ दिया है। अब तो वह सिर्फ़ रामजी या हिन्दू मंदिरों अथवा मुस्लिम दरगाहों की ही बातें किया करती है, जहाँ वह जाती रहती है। इतने सालों के याराने के बावजूद उसमें सिख धर्म के प्रति तनिक भी उत्सुकता नहीं दिखी। निश्चय ही उसने कभी किसी गुरुद्वारे के क़रीब जाने की कोशिश तक नहीं की होगी। कहती है कि ज़िंदगी के बाकी दिन वह गंगा-किनारे हरिद्वार या बनारस में बिताना चाहती है।

कभी-कभी वह मक्का और मदीना में हज पर जाने की बातें भी करती है। कहती है, "काश, मैं दिल्ली की गलियों-बाज़ारों से अपने-आपको काट पाती ! पर…लगता है कि मैं दिल्ली में ही मरूँगी।" कभी यह भी कहती है कि "तुम मेरी राख को गंगा में डालोगे ना ?" और कभी, "हज़रत निज़ामुद्दीन के मक़बरे के पास मेरे लिए दो गज़ ज़मीन तो ख़रीद ही दो।" मैं कहता हूँ कि उससे पहले ऊपर जाने का हक़ तो मेरा है। मेरी लाश को उसे ही यमुना में फेंकना पड़ेगा। लेकिन हम जानते हैं कि हम दोनों को ही एक-दूसरे की मौत की ख़बर शायद महीनों न मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुधसिंह के व्यवहार में अब वह दोस्ताना नहीं रहा। औरतों से छेड़खानीवाली घटना के बाद वह बेहद मायूस रहने लगा है। मैं उसे मेडीकल इंस्टीट्यूट के 'मेंटल वार्ड' में दिखाने ले गया था। डॉक्टर ने उसे कुछ बिजली के झटके दिए, जिससे वह काफ़ी घबरा-सा गया। लेकिन ज़्यादा वह इस बात से घबराया कि डॉक्टर ने उसे राँची या आगरे के पागलख़ाने में भर्ती कराने की सलाह दी थी। अपनी उदासी के घेरे से निकलकर अब वह और अधिक आक्रामक हो चला था। उसने डॉक्टर को 'बहिनचोद' कहा और उस पर हाथ भी उठाने ही वाला था कि मैंने बढ़कर उसे रोक लिया। हाथ तो उसने मुझ पर भी उठाने की कोशिश की। वह मेरे फ़्लैट के सामने ही बैठा रहता है और जब-जब मैं घर से बाहर-भीतर होता हूँ, मुझे देखकर गुर्राने लगता है। मेरे घर के पिछवाड़ेवाले भाई ने उससे दोस्ती कर ली है और दोनों ने मिलकर मुझे सताने की तरकीबें खोज ली हैं। भाई तड़के चार बजे ही 'फुल वॉल्यूम' पर लाउडस्पीकर लगाकर पाठ शुरू कर देता है। मैं प्रतिवाद करता हूँ तो वह मुझे अपना रास्ता नापने को कहकर मुँह फेर लेता है। एक बार मैंने पुलिस में रपट लिखवा दी। सब-इंस्पेक्टर आया तो भाई ने जवाब दिया कि यह तो संगत की मर्ज़ी है और संगत की मर्ज़ी में दख़ल देनेवाला मैं कौन होता हूँ? उसकी संगत कौन थी भला? एकमात्र बुधसिंह! सब-इंस्पेक्टर के जाने के बाद भाई ने मुझे चेतावनी दी कि अगर फिर कभी पुलिस में शिकायत की तो भिंडरावाले के अनुयायियों को बुलाकर मुझे सबक सिखा देगा। बुधसिंह ने तुरंत नारा लगाया, "संत जनरैल सिंह भिंडरावाले जिंदाबाद!"

मेरा ख़ानसामा सालाना छुट्टी पर गया तो उसने लौटने का नाम ही नहीं लिया। अपना सारा काम मुझे खुद करना पड़ रहा है। अकेला रहना दरअसल इतना मुश्किल नहीं है, जितना मुझे लगता था। मैं बिजली की केतली में अपनी चाय बना लेता हूँ, अंडे उबाल लेता हूँ और टोस्टर में डबलरोटी सेंककर सैंडविच भी बना लेता हूँ।

भाई का लाउडस्पीकर मुझे चार बजे ही उठा देता है। चाय का मग लेकर मैं अपनी स्टडी में चला जाता हूँ, जहाँ भाई की बेसुरी आवाज़ मेरा पीछा नहीं कर सकती। साढ़े चार बजे बी० बी० सी० के लिए रेडियो लगाता हूँ। उसके बाद या तो हिन्दी में 'बाइबिल सोसायटी सर्विस' सुनता हूँ या फिर अमृतसर के स्वर्ण मंदिर से प्रसारित होनेवाली गुरुवाणी। ज़्यादातर मैं गुरुवाणी के पाठ को ही प्राथमिकता देता हूँ, क्योंकि बाइबल की अपेक्षा मैं उससे ज़्यादा अच्छी तरह परिचित हूँ। या फिर मेरी दबी हुई धार्मिकता ही अपना सिर उठाती होगी। शायद अब सत्य से साक्षात्कार करने का समय निकट आ रहा है और मैं सतगुरु से भी संधि करने की बात सोचने लगा हूँ।

पौ फटने पर मैं सैर के लिए लोदी गार्डन निकल जाता हूँ। यहाँ सैर करनेवालों में ज़्यादातर लोग एक-दूसरे से परिचित हैं। कुछ के साथ मेरी भी दुआ-सलाम है। अपने फ़्लैट में वापस लौटकर मैं एक कप चाय बनाता हूँ और साथ ही कुछ टोस्ट भी सेंकता हूँ। फिर मैं अख़बार पढ़ता रहता हूँ और जमादारनी झाड़ू लगाती जाती है। अख़बार पढ़ने के बाद अब क्या करूँ, कुछ सूझता ही नहीं। अपनी इस पुरानी खटारा गाड़ी को भी दिन में कुछेक मील से ज़्यादा नहीं चला सकता। लेकिन बैटरी को ज़िंदा रखने के लिए इसे चलाना ही पड़ता है। कभी-कभी कॉफ़ी हाउस तक ले जाता हूँ। वहाँ भी यह सुनकर दिल डूब जाता है कि यह बुढ़ऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यहाँ पिछले पचास साल से आ रहा है।

अपनी अधिकतर दोपहरें इंडिया इंटरनेशनल सेंटर की लाइब्रेरी में बिताता हूँ। सौभाग्य से अपने अच्छे दिनों के दौरान मैंने इसकी सदस्यता ले ली थी। कभी-कभी कोई चाय पर साथ देने के लिए बुला लेता है। यहाँ हमेशा कोई-न-कोई लेक्चर, सिनेमा-शो या नृत्य आदि का कार्यक्रम चलता रहता है, जिसे देखने के पैसे नहीं लगते। मेरी लंबी शामें ऐसे ही गुज़र जाती हैं। घर वापस लौटते हुए ख़ान मार्केट के 'टेक अवे जॉएँट' से 'चॉप सुई' या सींक-कबाब ख़रीद लेता हूँ। अब तो बस व्हिस्की का ही इंतज़ार रहता है (खेद है कि आजकल केवल इंडियन व्हिस्की ही)। फ़रीदा ख़ानम, इक़बाल बानो या मेंहदी हसन की गायकी के टेप सुनते-सुनते मदिरा की चुस्कियाँ लेता हूँ। पर नींद अच्छी तरह नहीं आती। दुःस्वप्न मुझे घेरे रहते हैं। डरता हूँ कि कहीं बीमार पड़ गया, तो ? कोई मुझे देखनेवाला तक नहीं। अगर कहीं किसी रात मैं सोए-सोए ही चल बसा तो और सुबह जमादारिन मुझे बिस्तर में मरा पड़ा देखे, तो ? वह मेरे फ़्लैट से सब-कुछ उठा ले जा सकती है—ट्रांज़िस्टर, घड़ियाँ, रेडियो, कैसेट प्लेयर, बॉल पॉइंट पेन, नगदी—कुछ भी। सब-कुछ को पहले अपने क्वार्टर में रख आएगी और फिर शोर मचाने लगेगी, 'बुड्ढा मर गया ! अरे आओ लोगो, कुछ करो !' वैसे यह भी कुछ बुरा नहीं कि कोई चोर-लुटेरा मेरे घर में घुस आए और मेरा काम तमाम कर दे। पता नहीं कितने लोगों को इससे राहत मिले और मैं भी किसी अस्पताल में बैड ढूँढने और मोटे-मोटे बिल चुकाने की सिरदर्दी से बचूँ।

दिन बीतते जाते हैं। बिस्तर से निकलता हूँ तो लगता है जैसे नींद पूरी तरह नहीं टूटी। एक दिन तो मैं बिजली की केतलीवाले अपने स्टूल से ही टकरा गया। यह तो क़िस्मत अच्छी थी कि खौलते पानी की कुछेक बूँदें ही मेरे पैरों पर गिरीं। कभी-कभी तो रेडियो पर स्वर्ण-मंदिर का कीर्तन सुनते-सुनते ही मुझे झपकी आने लगती है। अब तो इसको सुनना भी उबाऊ लगने लगा है। मैं मजबूरी में ही इसे सुनता हूँ, क्योंकि इस वक़्त कहीं और से कोई भी अच्छा कार्यक्रम नहीं आ रहा होता। जब से भिंडराँवाले ने स्वर्ण मंदिर परिसर से हिन्दुओं के ख़िलाफ़ नफ़रतभरी बातें उगलनी शुरू की हैं, तब से तो लगता है जैसे कीर्तन से सारा मज़ा ही चला गया। भाई और बुधसिंह इसे संत कहते हैं। मुझे लगता है कि मैं असली सिख नहीं हूँ, क्योंकि मैं उसे संत नहीं, भूत कहता हूँ।

पहली जून, सन् 1984 को स्वर्ण मंदिर से सुबह की सेवा थोड़ी गड़बड़-सी लगी। पता नहीं तबलों को माइक्रोफ़ोन के बहुत ज़्यादा क़रीब रख दिया गया था या कोई और बात थी। तबलों की थापें बंदूकों के धमाकों-जैसी लग रही थीं। अख़बारों में लिखा है कि फ़ौज को भिंडराँवाले को ज़िंदा या मुर्दा पकड़ने का हुक्म हुआ है। शायद उसे डराने या आत्मसमर्पण करने के लिए ही ऐसा किया गया हो। श्रीमती गांधी सिखों को विश्वास दिलाती रही है कि वह गुरुद्वारे में फ़ौज भेजने का हुक्म कभी नहीं देगी। समझदार औरत है। वह जानती है कि गुरुद्वारे पर धावा बोलने से वह ख़ूनी रणक्षेत्र में बदल जाएगा और कोई भी सिख उसे फिर कभी माफ़ नहीं करेगा।

अख़बारों को अब मैं ज़्यादा ध्यान से पढ़ने लगा हूँ। सुबह का रेडियो भी ज़्यादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकाग्रता से सुनता हूँ। 3 जून को स्वर्ण मंदिर बनानेवाले गुरु की बरसी है। दूर-दूर के गाँवों से हज़ारों लोग पवित्र सरोवर में स्नान करने आए हुए हैं।

कीर्तन की पृष्ठभूमि में लोगों की अस्फुट आवाज़ें सुनाई दे रही हैं। नींद से जागे बच्चों के रोने के स्वर भी सुनाई पड़ रहे हैं। उनके मुँहों में स्तन ठूँसकर उन्हें चुप कराने का प्रयास करती हुई माताओं की फुसफुसाहटों के साथ 'वाहे गुरु' की ऊँची हुंकारें भी सुन रहा हूँ। इनमें स्त्रियों के स्वर भी सम्मिलित हैं। बेवकूफ़ लोग! भिंडराँवाले के लोगों और उनके पीछे लगे फ़ौजियों के बीच ये वहाँ क्या कर रहे हैं? शहर में कर्फ़्यू लगा हुआ है। पंजाब को फ़ौज के हवाले कर बाक़ी दुनिया से काटकर रख दिया गया है। 5 जून की सुबह कीर्तन के बजाय गोलियाँ चलने की आवाज़ें ही ज़्यादा सुनाई दे रही हैं। अगले दिन एकदम सन्नाटा। रेडियो कुछ पकड़ ही नहीं रहा। अख़बारों में बड़ी-बड़ी सुर्ख़ियों में लिखा है—'भारतीय सेना के टैंकों ने भिंडराँवाले के गढ़ को तबाह कर दिया।' बी०बी०सी० की ख़बरें कहती हैं भिंडराँवाले समेत एक हज़ार से भी ज़्यादा लोग मारे गए हैं। बच्चों को गोद में उठाए गोलियों से छिदे औरतों के कितने ही शव पवित्र सरोवर में तैर रहे हैं। इंदिरा गांधी को ऐसा मूर्खतापूर्ण काम करने की कैसे सूझी?

मेरी आत्मा पर गहरे अवसाद की छाया है। मैं अपने-आप से बार-बार पूछता हूँ कि 'क्या मैं सिख हूँ?' मैं निश्चय ही भिंडराँवाले की क़िस्म का या गुरुद्वारे के भाई जैसा सिख नहीं हूँ, क्योंकि भिंडराँवाला तो बुधसिंह से भी ज़्यादा पागल था। मुझे यह भी याद नहीं कि मैं पिछली बार गुरुद्वारे कब गया था! पिछले पचास साल से मैंने कभी पाठ भी नहीं किया।

लेकिन 6 जून की सुबह मैं अपने फ़्लैट के पीछेवाले गुरुद्वारे में जाता हूँ। वहाँ काफ़ी लोग जमा हैं। कइयों की आँखों में आँसू हैं। उनके आँसू देखकर मेरी आँखें भी भर आती हैं। आख़िर मैं हूँ तो उन्हीं में से एक। पाठ के बाद भाई छोटा-सा उत्तेजक भाषण देता है, "हम सिख कभी कोई बात भूलते नहीं और न ही किसी बात के लिए आसानी से किसी को माफ़ करते हैं। याद कीजिए, हमने अफ़ग़ानियों से साथ क्या किया और मस्सा रंगड़ के साथ क्या किया! हमने उनकी मस्जिदों को नापाक किया और मस्सा का सिर काटकर फेंक दिया। गुरु का कोई-न-कोई बच्चा इन राक्षसों के साथ भी वही करेगा। आप बस इंतज़ार करें और देखें…!" ये सिख होते तो बड़े शेख़ीबाज़ हैं। अतीत में ही जीते रहते हैं। यह बात इन्हें कौन समझाए कि सभा-समाज में मस्जिदों को नापाक करने और लोगों के सिर काटकर फेंक देने जैसे काम नहीं किए जाते।

भाई ने और सड़कों पर दिखनेवाले ज़्यादातर सिखों ने काली पगड़ियाँ पहननी शुरू कर दी हैं। कुछ दिनों बाद मैंने भी अपनी कुछ पगड़ियाँ काले रंग में रँगवा लीं। हाँ, मैं भी उन्हीं में से एक हूँ।

बुध सिंह और बावला हो गया है। मेरे फ़्लैट के सामने से जैसे ही कोई हिन्दू गुज़रता है, वह चिल्लाने लगता है, 'भिंडराँवाले जिंदाबाद!' वे उस पर हँसते हैं। अगर वह अपने-आप में खोया हुआ हो और उत्तेजित न हो रहा हो, तो वे उसे कोंच-कोंचकर उत्तेजित करते हैं, 'ओए भिंडराँवाले दे पुत्तरा, ज़रा एक बार फिर से तो लगा अपना नारा!'

गर्मियाँ ऐसे ही बीत गईं। बारिश और बादलों के दिन—जिसे हम मॉनसून कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—भी सूखे ही बीत गए। सितम्बर आया और फिर अक्तूबर। और इसके साथ ही आ पहुँचा त्यौहारों का मौसम।

अक्तूबर का आख़िरी दिन है। मेरा मन डूबा-डूबा-सा है। कारण कुछ ख़ास नहीं। ख़ूब देर तक सोता रहा हूँ। पेशाब करते हुए राहत-भरा लम्बा पाद मारता हूँ। पेशाब भी अब एक-साथ तेज़ धार के रूप में नहीं आता, रुक-रुककर आता है। मेरी प्रोस्टेट-ग्रंथि बढ़ी हुई है। सत्तर साल की उम्र में यह सब अपेक्षित ही है। जिनसेंग चाय का एक मग पीते ही पाख़ाना एकदम साफ़ आता है।

आज की ख़बरें भी पिछले दिनों से कुछ अधिक ख़राब नहीं। मौसम में बदलाव बेहतर ही लग रहा है। खिड़की के साथ लगी सुगंधित मधुमालती और गुड़हल खूब फूले हुए हैं। बाहर लॉन में लगे दो कुरूसिया के पेड़ और सफ़ेद और गुलाबी फूलों से लदे हैं। चेहरे पर पड़ती चाँदनी आसमान की आकाशगंगा की तरह सितारों-जड़े हरे दुपट्टे-सी लग रही है। बाहर घास पर टिकी शबनम की बूँदें चन्द्रकिरणों में नहाती हीरे की कनियों-सी चमक रही हैं। अल्लाह इससे ज़्यादा और क्या कर सकता है कि ऊपर अपने निवास में बैठा हुआ अपनी कारीगरी को देख-देखकर मुग्ध हो रहा है।

मेरी उदासी फिर भी नहीं छँटती। अख़बार की सुर्ख़ियाँ पढ़कर उसे अँगीठी (फ़ायर प्लेस) की झँझरी में फेंक देता हूँ और मूढ़े पर पैर फैलाकर ऊँघने लगता हूँ। मुझे भागमती का सपना आने लगता है। वह अब साल में एकाध बार ही दर्शन देती है, लेकिन सपनों में बार-बार आकर उसकी कमी पूरी कर जाती है। पिछले दस साल से हम लोग हमबिस्तर नहीं हुए, पर सपने में वह अब भी बड़ी कामुक और अश्लील लग रही है। मैं झटके के साथ उठ खड़ा होता हूँ। घंटी लगातार बज रही है। दरवाज़े पर कोई दस्तक भी दे रहा है। तो क्या भागमती आई है? दौड़कर दरवाज़ा खोलने जाता हूँ। देखता हूँ—बुधसिंह है! उसकी आँखों से लग रहा है कि वह पहले से भी ज़्यादा बौराया हुआ है, नथुने उत्तेजना में फूले हुए हैं। थूक के छींटे उड़ाता वह मेरे मुँह पर ही चिल्लाने लगता है, "इंदिरा गांधी को गोली मार दी गई है! संत जरनैलसिंह जी भिंडराँवाले ज़िंदाबाद!"

बुधसिंह अपने-आपे में नहीं है। मैं दरवाज़ा बंद करने की कोशिश करता हूँ। वह अपना एक पैर दरवाज़े में फँसाए मुझे उसे बंद नहीं करने दे रहा, "आप क्या सोचते हो कि बुधसिंह झूठ बोल रहा है? तो रेडियो बी० बी० सी० सुन लो!" फिर वापस मुडता है और बाहें झुलाते हुए लैफ्ट-राइट करता हुआ चिल्लाने लगता है—"ख़ालिस्तान जिंदाबाद, इंदिरा गांधी मुर्दाबाद! संत भिंडराँवाले अमर रहे!"

मैं अपना रेडियो लगाता हूँ। आकाशवाणी से तो बड़े मज़े से फ़िल्म-संगीत आ रहा है। फिर किसानों के लिए कार्यक्रम और फिर युवकों के लिए कार्यक्रम चले आ रहे हैं। आधे घंटे बाद बी० बी० सी० लगाता हूँ। वहाँ से ख़बर आ रही है कि इंदिरा गांधी को उसके सिख अंगरक्षकों ने गोली मार दी है और उन्हें अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में ले जाया गया है। उनकी हालत के बारे में कोई सरकारी विज्ञप्ति तब तक नहीं दी जाएगी, जब तक राष्ट्रपति ज़ैलसिह और इंदिरा गांधी का बेटा दिल्ली वापस न लौट आएँ। इंदिरा के सुकुमार और क्षीण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर का गोलियों की बौछारें झेलकर भी ज़िंदा बचे रहना नामुमकिन-सी बात थी।

हतप्रभ-सा मैं अपनी कुर्सी में धँस जाता हूँ। मेरी नज़रें किताबों के शेल्फ़ों से छत और छत से पुनः किताबों के शेल्फ़ों पर शून्य में फिसलती रहती हैं। घंटी फिर बजी है। देखूँ! उठकर दबे पाँव दरवाज़े तक जाता हूँ और छिद्र से बाहर झाँकता हूँ। नहीं, यह तो बुधसिंह नहीं, पड़ोसी गुरुद्वारे का भाई है। मैं दरवाज़ा खोल देता हूँ। उसके हाथ में हलवे से भरा कटोरा है। वह उससे खोंच-भर हलवा निकालते हुए कहता है, "परशाद लौ जी! स्वर्ण मंदिर को अपवित्र करने का बदला चुक गया! सिख-पंथ की फ़तह हुई है। इंदिरा कुत्ती मर गई!"

मैं बिना कोई जवाब दिए दरवाज़ा धड़ाम से उसके मुँह पर बंद कर देता हूँ और वापस कुर्सी पर आ बैठता हूँ। तो ये लोग उस छोटी-सी, दुर्बल-सी स्त्री के क़त्ल का जश्न मना रहे हैं! सिख यह क्या कर रहे हैं? अगर वह मूर्ख औरत अपनी ग़लती मंज़ूर कर लेती और हरिमंदिर साहिब में जाकर कहती, 'मेरे सिख भाइयो, मैंने बड़ी भारी ग़लती कर दी। आप लोग मुझे माफ़ कर दीजिए', तो निश्चय ही वे उसे क्षमा कर देते। लेकिन एक पागल और उसके हथियारयाफ़्ता भाड़े के ठगों को पकड़ने के लिए उसने फ़ौज के हाथों हज़ारों निर्दोष तीर्थयात्रियों, बूढ़ों-जवानों, सिखों-मोनों, औरतों और बच्चों तक को क़त्ल करवा दिया। सिखों के आध्यात्मिक और ऐहिक सत्ता के केन्द्र अकाल तख़्त को ध्वस्त करवा दिया। फ़ौज को वहाँ के बर्तन और नगदी लूटने तथा अभिलेखागारों को जलाने की आज़ादी दे दी। संक्षेप में कहा जाय तो एक चूहे को मारने के लिए उसने पूरा घर ही गिरा दिया। अपराध एक के बाद एक होते चले गए। एक झूठ के बाद दूसरा झूठ बोला जाता रहा। और आज सारा मुल्क उन भयानक भूलों और झूठों की क़ीमत चुका रहा है।

मैं अपने ट्रांज़िस्टर की सुई आकाशवाणी से हटाकर बी॰बी॰सी॰ और बी॰बी॰सी॰ से हटाकर वॉयस ऑफ अमेरिका, फिर रेडियो जर्मनी और फिर रेडियो मास्को तक घुमाता जा रहा हूँ। आकाशवाणी से कहा जा रहा है कि इंदिरा अब भी ज़िंदा हैं। बी॰बी॰सी॰ और वॉयस ऑफ़ अमेरिका कहते हैं कि वे मर चुकी हैं। मास्को सिर्फ़ दिल्ली की ही बातें दोहराता रहा है। कई घंटे बीत गए। सामने के लॉन में एक बंदा तक नज़र नहीं आ रहा। गुरुद्वारे के सामनेवाली सड़क भी सूनी है। सिर्फ़ कुछेक कारें चल रही हैं और वह भी बिना हॉर्न बजाए। एकाध साइकिल-सवार भी उनके हैंडलों पर झुके अपने घरों की ओर ऐसे दौड़ रहे हैं, जैसे किन्हीं तेज़ हवाओं को चीरते जा रहे हों। किसी संक्रामक कोहरे की तरह रहस्यमय-सी एक चुप्पी समूचे वातावरण में व्याप्त है।

परछाइयाँ लम्बी होने लगी हैं। अख़बारवाला दरवाज़े की झिरी से 'ईवनिंग न्यूज़' डाल जाता है। बड़ी-बड़ी सुर्ख़ियों में छपा है—'इंदिरा गांधी को उनके ही सिख अंगरक्षकों ने गोली मार दी। उनमें से एक को मार डाला गया है, दूसरा बुरी तरह घायल हो गया है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में शल्य-चिकित्सक इंदिरा गांधी के शरीर से गोलियाँ निकाल रहे हैं और उन्हें ख़ून दिया जा रहा है। उनको बचाने की भरसक कोशिश की जा रही है।' यह तो पुरानी ख़बर है। अब तो लगभग सभी विदेशी रेडियो स्टेशन कहने लगे हैं कि ऑपरेशन टेबल पर उनकी मृत्यु हो चुकी है। अब क्या होगा?

घंटी बजती है और दरवाज़े पर थपथपाहट भी हो रही है। दरवाज़े के छेद से झाँककर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखता हूँ। कोई मोटी और नाटी-सी औरत है। बाहर की गैलरी की धुँधली रोशनी में पहचानी नहीं जा रही। वह अपनी मुट्ठियों से दरवाज़ा पीटने लगी है। मैं दरवाज़ा खोल देता हूँ। अरे! यह तो भागमती है। सिर के थोड़े-से बचे बालों को उसने मेंहदी से रँग रखा है। मुँह में एक भी दाँत नहीं रहा उसके। चेहरा पिचक गया है। ठुड्डी से कड़े-कड़े-से कुछ बाल निकल रहे हैं। क्या यह वही भागमती है, जिसकी चाह मुझे अपने जवानी के हवस-भरे दिनों में बेताब कर जाया करती थी?

वह अपने दंतविहीन मुँह से 'हाय लाम, हाय लाम' करती हुए कानों पर हाथ धर लेती है। फिर अपनी पीली जीभ निकालती हुई कहती है, "तौबा-तौबा, आज जो मैंने अपनी इन आँखों से देखा, ईश्वर न करे किसी को वह देखना पड़े। लोग सड़कों पर आते-जाते सिखों को मार रहे हैं। उनकी टैक्सियाँ, ट्रक, स्कूटर—सब जलाए जा रहे हैं। कनॉट प्लेस जल रहा है। लोग सिखों की दुकानें, दफ्तर और होटलों को लूट रहे हैं। और तुम यहाँ बैठे उनका इंतज़ार कर रहे हो कि आओ और मुझे मारो। हैं? चलो, मैं तुमको लाल कुआँ ले चलूँ। हिंजड़ों का कोई बाल भी बाँका भी नहीं कर सकता। चलो!" वह मुझे हुक्म देती है।

"धीरज रखो, धीरज!" मैं उसे भीतर करने के लिए दरवाज़ा खोलते हुए कहता हूँ, "अगर वे रास्ते में आते-जाते हर सिख को मार रहे हैं तो हम लालकुआँ कैसे पहुँचेंगे? बेहतर है कि जहाँ के तहाँ बने रहें। वक़्त पर पुलिस ज़रूर रोकेगी वह सब।"

"पुलिस?" वह तिरस्कार से पूछती है, "वे बहिनचोद तो भीड़ के साथ हैं। वे लोगों को कह रहे हैं—'हम तुम सबको शहर के एक-एक सिख को ख़त्म करने के लिए छत्तीस घंटे का वक़्त देते हैं।' " बोलते-बोलते भागमती सोफ़े में धँस जाती है और अपना चेहरा हाथों से ढँककर सिसक उठती है। अब तसल्ली देने की बारी मेरी है। मैं उसके कंधों पर हाथ रखते हुए कहता हूँ, "हालात इतने ख़राब तो नहीं हो सकते। आख़िर यह एक सभ्य देश है।"

आँसुओं से भरी आँखें ऊपर उठाती हुए वह मेरी तरफ़ देखती है, "तुम अपनी आँखों देखना चाहते हो? तो चलो अपने घर की छत पर और देख लो खुद ही।" मेरा हाथ पकड़कर वह हाँफते हुए सोफ़े से उठती है। बिल्डिंग के चार तल्ले चढ़कर हम छत पर पहुँचते हैं। वह उत्तर में कनॉट प्लेस की ओर इशारा करती है। आसमान में रौशनी ही रौशनी है। बिजली के बल्बों की नहीं, आग की लपटों की रौशनी! साँझ के झुटपुटे में अलग-अलग बिंदुओं से उठते धुएँ के बादल दिखाई दे रहे हैं। मैं दृष्टि दूसरी तरफ़ घुमाता हूँ। कई सड़कों पर आग और धुआँ दिखाई दे रहा है। "ये सिखों की टैक्सियाँ और ट्रक जल रहे हैं।" भागमती बताती है।

शाम की हवा में भीड़ की ज़ोर-ज़ोर की एकसुर आवाज़ें तैरती हुई सुनाई पड़ रही हैं, 'इंदिरा गांधी ज़िंदाबाद! हत्यारे सिखों को ख़त्म करो!' भीड़ का एक जत्था मेरे घर की ओर भी चला आ रहा है। भागमती घबरा जाती है। वह 'चलो, चलो' करती हुई चिल्लाती है और कहती है, "मैं जल्दी से तुम्हारी दाढ़ी और केश काटे देती हूँ। तब हम लोग आसानी से यहाँ से खिसक लेंगे। तुम्हारी किताबें ही तो जलाएँगे फिर ये! दिल्लीवालों के भला ये किस काम की हैं!"

"बेवकूफ़ी की बातें मत करो," मैं गुर्राकर कहता हूँ, "मेरे केश और दाढ़ी कोई नहीं काटेगा!" और उसके साथ-साथ अँधेरी सीढ़ियाँ उतरता हुआ मैं अपने फ़्लैट में वापस आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घुसता हूँ। बाहर लगी अपने 'नेम प्लेट' उतारने का वक़्त भी मेरे पास नहीं है। इसलिए लोहे की एक छड़ लेकर दरवाज़े और नेमप्लेट के बीच घुसाता हूँ, जिससे वह दो टुकड़ों में टूट जाती है। "अब किसी को पता नहीं चलेगा कि यहाँ कौन रहता है।"

"तुम तो एकदम बेवकूफ़ सिख हो", वह गुस्से में कहती है, "वे क्या तुम्हारे पड़ोसियों से नहीं पूछ सकते? मैं जैसा कहती हूँ, वैसा करो। अपने बाल और दाढ़ी मूँडने दो। फिर हम लोग किसी होटल-वोटल में चलकर रह लेंगे।"

"नहीं," मैं ज़िद में चिल्लाता हूँ, "उनको जो करना हो, कर लें। मुझे मारेंगे तो पहले मैं भी एक-दो को ख़त्म करके ही रहूँगा।"

"और मेरा क्या होगा? बुड्ढे बेवकूफ़! तुम्हारे भेजे में कभी अकल भी घुसेगी?" मुझे भागमती की गालियाँ सुनने की आदत नहीं है। मुझे गुस्सा चढ़ने लगता है। तभी मेरे घर के पिछवाड़ेवाले बग़ीचे से भीड़ के चीख़ने-चिल्लाने का शोर सुनाई पड़ता है और हमारी बहस रुक जाती है। हम बाहर निकल आते हैं और बग़ीचे के अँधेरे में गुड़हल की घनी झाड़ियों में छिपकर झाँकते हैं। पचास के क़रीब नौजवान लड़कों की भीड़ हाथों में लोहे की छड़ें लिये गुरुद्वारे को घेरे खड़ी है। कुछ के हाथों में पेट्रोल के कनस्तर भी हैं। वे भाई को बाहर निकलकर मुक्कों और सरियों से मारते हैं। वह ज़ोर-ज़ोर से रोता-चिल्लाता हुआ गुहार करता है, "बचाओ, बचाओ, पुलिस!" भीड़ भी चिल्लाने लगती है, "भिंडराँवाले के बच्चे! अब अपने बाप को बुला कि तुझे बचाए आकर!" लड़के गुरुद्वारे के भीतर से गुरु ग्रंथ साहिब, दरियों, कालीनों और चंदोवे को निकालकर बाहर फेंक देते हैं और उनकी ढेरी पर पेट्रोल छिड़ककर आग लगा देते हैं। ढेरी भड़-भड़ करती हुई जल उठती है। भाई के केश उनके लहू-लुहान चेहरे पर बिखरे हुए हैं, लेकिन वह उनसे विनती करता है, "तुम लोगों को मेरे साथ जो करना हो कर लो! पर ग्रंथ साहिब का अपमान मत करो, रब्ब दा वास्ता!"

"हरामी को इसके ग्रंथ साहिब के साथ ही जला दो!" कोई चिल्लाकर कहता है। वे लोग भाई के बालों में पेट्रोल उँडेलते हैं, दाढ़ी पर भी छिड़कते हैं और उसे जलती हुई ढेरी पर धकिया देते हैं और वह सिकुड़कर प्रज्वलित लाश में बदल जाता है। लड़के विजयोल्लास में भरकर चिल्लाते हैं, "इंदिरा गांधी, अमर रहे!"

मेरे घुटने काँपने लगते हैं और मैं वहीं गीली घास पर बैठ जाता हूँ। मुझसे पेशाब रोका नहीं जा रहा। भागमती भी मेरे पास बैठ जाती है और मेरी पीठ मलने लगती है। कुछ देर बाद वह मुझे खड़ा करती है और कानों में फुसफुसाती है, "कहीं वे हम लोगों को देख न लें। चलो, भीतर चलें।" मैं जहाँ का तहाँ धँसा खड़ा हूँ। फिर झाड़ी से झाँककर देखता हूँ। एक लड़के के हाथ में कोई कागज़ है, जिसे पढ़कर वह गैराजों की ओर इशारा करता है। ये गैराज एक सिख मैकेनिक के हैं। भीड़ गैराजों की तरफ़ बढ़ने लगती है। मरम्मत के लिए बाहर खड़ी गाड़ियों को आग लगा दी जाती है। पिर वे गैराजों के दरवाज़े तोड़-तोड़कर खोलने लगते हैं। अपनी बॉल्कनियों से लोग उनको देख रहे हैं। उनमें से कोई उनसे विनती करता है, "ये कारें तो हिन्दुओं की हैं। सिख मैकेनिक तो सब भाग-भूग गए हैं। अगर आप गैराजों को आग लगाएँगे तो सारी बिल्डिंगों में आग लग जाएगी। यहाँ तो हम सिर्फ़ हिन्दू, मुसलमान और ईसाई ही रहते हैं। आप लोग टैक्सी स्टैंड की ओर क्यों नहीं जाते?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात भीड़ को जम जाती है। वे भाई की चिता से होते हुए टैक्सी स्टैंड की तरफ़ बढ़ जाते हैं। एक-दूसरे के साथ हो रही गाली-गलौच की आवाज़ें मेरे फ़्लैट तक आ रही हैं। टैक्सी ड्राइवर उनको चुनौती दे रहे हैं। मैं बाग़ के दूसरी तरफ डगमगाता-सा खड़ा हूँ और मुझे बाँह से थामे खड़ी भागमती भीतर चलने के लिए मना रही है। छह निहत्थे टैक्सीवालों को क़रीब दो सौ हथियारयाफ़्ता लोगों की भीड़ का मुक़ाबला करना पड़ रहा है। गाली-गलौच के बाद पथराव शुरू हो जाता है। हथियारबंद सिपाहियों का एक जत्था भी इस बेमेल संघर्ष को अपनी जगह खड़ा-खड़ा देखे जा रहा है। पत्थर टैक्सीवालों के खोखे और उनकी टैक्सियों की खिड़कियों पर लगते हैं और उनके शीशे चूर-चूर हो जाते हैं। फिर भी उन्होंने भीड़ को आगे बढ़ने से रोका हुआ है। तभी गोली चलने की आवाज़ आती है और एक ड्राइवर अपनी टैक्सी के पास ढेर हो जाता है। बाकी पाँचों तेज़ी से भाग खड़े होते हैं। हथियारबंद पुलिसवाले टैक्सियों को घेरकर उनके भीतर से बटुए, ट्रांज़िस्टर, कैसेट-रेकॉर्डर वग़ैरह निकाल लेते हैं और उसके बाद भीड़ को उनमें आग लगाने के लिए कह देते हैं। फिर वे उनसे मार्केट की सिखों की दुकानों की ओर जाने को कहते हैं।

मेरे फ़्लैट से अब वे दूर जा चुके हैं। भागमती मुझे अपनी गीली पतलून बदलने को कहती है। मुझे अपने-आप पर बहुत शर्म आती है।

मेरे पैर झनझना रहे हैं। भागमती चुपचाप दीवार की ओर शून्य में ताक रही है। मैं स्कॉच की आख़िरी बोतल (जिसे मैंने किसी आपात स्थिति के लिए रख छोड़ा था) निकालता हूँ और एक बड़ा पेग बनाता हूँ। भागमती से कहता हूँ, "संकट के समय यही एक बढ़िया चीज़ है जो काम आती है।"

"और अपनी बुढ़िया को कुछ नहीं दोगे?" वह पूछती है और कहती है, "मैंने यह चीज़ कभी चखकर नहीं देखी। लेकिन आज मुझे या तो शराब पिलाओ या फिर ज़हर दे दो।" मैं उसके लिए भी बड़ा-सा पैग उँडेलता हूँ और कैम्पा-कोला में मिलाकर पकड़ा देता हूँ। वह उसे मट्ठे की तरह गटागट करती हुई गटक जाती है। उसके दंतहीन, झुर्रीदार चेहरे पर एक चमक-सी उभर आती है और वह कहती है, "और···"

"इतनी जल्दी-जल्दी नहीं। इससे तो तबीयत ख़राब हो जाएगी।"

मैं अपने लिए दूसरा पेग बनाता हूँ और फिर तीसरा। वह अपना ख़ाली गिलास हिलाती हुई मेरी तरफ़ घातक दृष्टि से ताक रही है। मैं चौथा पेग लेता हूँ और उसके लिए एक छोटा बनाता हूँ, "अब इसको मत गटक लेना! समझी? लेडी की तरह पीना सीखो! हाँ।"

"लेडी की ऐसी-तैसी!" भागमती अपने असली रूप में आ जाती है, "अजी, उस पगले सरदार का क्या हुआ जो तुम्हारे घर के बाहर ही बना रहता था? क्या नाम था उसका? हाँ, बुद्धू···था ऐसा ही कुछ···"

"बुधसिंह। अभी सुबह तक तो यहीं था। पागलों की तरह बेसिर-पैर की बक-बक कर रहा था। अगर कहीं उन लोगों के हाथ पड़ गया तो उसका भी सीक-कबाब बना देंगे वे। इधर आए, तो उसे भी कमरे में ही बंद कर लें।"

मैं 'चीज़-क्रेकर' का एक पैकेट खोलकर प्लेट में उलटता हूँ और भागमती के सामने बढ़ा देता हूँ, "घर में इस वक़्त बस यही है।" वह एक टुकड़ा उठाकर उलटती-पुलटती हुई उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखती है, "काठ के ये बिस्कुट भला मैं कैसे खाऊँगी? मेर दाँत थोड़े ही हैं!" फिर एक बिस्कुट को स्कॉच में डुबोती है और नरम पड़ने पर मुँह में भर लेती है। एक-एक कर वह सारा पैकेट निगल जाती है और यह भी नहीं सोचती कि मेरे लिए उसने कुछ भी नहीं छोड़ा। वैसे भी कुछ खाने का मेरा मन नहीं कर रहा। उससे कहता हूँ कि मेरे बिस्तर पर जाकर सो जाए और खुद सोफ़े पर लेट जाता हूँ। वह मेरी पेशकश मंज़ूर कर लड़खड़ाती हुई कमरे में चली जाती है और फिर डकारती और पाद मारती हुई कुछ ही देर में ख़र्राटे भरने लगती है।

मैं रेडियो खोलकर किसी विदेशी स्टेशन को पकड़ता हूँ। सभी स्टेशनों से इंदिरा गांधी की अपने ही सिख अंगरक्षकों द्वारा हत्या किए जाने के विस्तृत समाचार प्रसारित हो रहे हैं। सिर्फ़ रेडियो पाकिस्तान ही दिल्ली में सैकड़ों सिखों के क़त्लेआम और सैकड़ों गुरुद्वारों के जलाए जाने की ख़बरें दे रहा है।

तभी टेलीफ़ोन बज उठता है, "आप ही··· हैं?" मैं कहता हूँ "हाँ!" फ़ोन करनेवाला मुझे गालियाँ बकने लगता है, "बास्टर्ड, तुम लोगों ने अपनी माँ को मार डाला!" मैं उलटा जवाब देता हूँ, "ब्लडी मादरचोद, बास्टर्ड तो तुम हो। तुम लोगों ने अपने बाप गांधी को मार डाला। तुम बक-बक करनेवाले कौन होते हो?" वह चोंगा रख देता है।

उसकी गालियाँ मुझे व्यंग्य कर जाती हैं। कुछ मिनट बाद टेलीफ़ोन फिर बज उठता है। इस बार कोई बहुत ही विनीत स्वर उभरता है, "अपने नल का पानी मत पीजिएगा! सिखों ने उसमें ज़हर मिला दिया है।" बात पूरी होते ही उधर से चोंगा रख दिया जाता है।

कुछ देर बाद एक और फ़ोन, "पंजाब में सिखों द्वारा मारे गए हिन्दुओं की लाशों से भरी गाड़ियाँ दिल्ली स्टेशन पर पहुँची हैं। हिन्दू इन हत्याओं का बदला लेंगे।" इससे पहले कि मैं कुछ कहूँ, वह फ़ोन रख देता है।

मैं बैठा-बैठा फ़ोन के फिर से आने का इंतज़ार करने लगता हूँ। फ़ोन तो 'डैड' ही हो गया।

आधी रात को फिर हो-हल्ला सुनाई देता है। नारे लगाए जा रहे हैं। चीख़ें-चिल्लाहटें! लोग इधर से उधर भाग रहे हैं। लगता है, सभी लोग जगे हुए हैं। लड़कों से भरा एक और ट्रक आ पहुँचा है। वे कुछेक कारों को फिर जलाते हैं और भाग जाते हैं। लोग अपनी खिड़कियों से झाँक-झाँककर जलती गाड़ियों को देख रहे हैं। राइफ़लें सँभाले कुछ पुलिसवाले आते हैं और कुछ देर वहाँ ठहरकर आगे बढ़ जाते हैं।

मुझे थकान ने घेर लिया है। अपनी कुर्सी में धँसा-धँसा ही सोने लगता हूँ। गुरुद्वारे से आती चीख़ने-चिल्लाने की आवाज़ों ने मेरी नींद तोड़ दी। मैं झटके के साथ उठता हूँ और बाहर बग़ीचे में जाकर देखता हूँ कि क्या हो रहा है। अभी अँधेरा-सा है, लेकिन लगता है सभी लोग अपनी-अपनी खिड़कियों और बाल्कनियों से गुरुद्वारे की ओर झाँक रहे हैं। भागमती हाँफती हुई तेज़ी से दौड़कर आती है और मुझ पर चिल्लाती है, "भीतर चलो!" लेकिन मैं उसकी परवाह किए बिना झाड़ी से झाँकता रहता हूँ।

गुरुद्वारे के अहाते में भाई और गुरु ग्रंथ साहिब की सुलगती हुई राख के पास बुधसिंह को देखता हूँ। उसने एक हाथ में कृपाण पकड़ रखी है और किसी नाचते हुए दरवेश की तरह चक्कर काट रहा है। लोहे के सरिए लिये नौजवानों का एक जत्था उसे घेरे हुए है और वह उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुन-चुनकर गालियाँ दे रहा है, "तुम मादरचोद, तुम बहिनचोद, तुम्हारा वंश खतम हो जाय! तुम लोगों ने हमारे ग्रंथ साहिब को जला दिया! तुम्हारे वेद-शास्त्र फुँक जायँ।"

नौजवान गुंडे उसके साथ चूहा-बिल्ली का खेल खेल रहे हैं। वे बारी-बारी से बुधसिंह की पीठ में सरिए खुभाते हैं। बूढ़ा बुधसिंह थकने लगा है। इतने लोगों से वह एक-साथ नहीं लड़ पा रहा। साँस लेने के लिए थमता है, तो एक सरिया उसके कंधे पर पड़ता है और वह गिर जाता है। कृपाण उसके हाथ से छूट जाती है। तभी एक लड़का उसी कृपाण को उसके चूतड़ों में चुभोता है। दो छोकरे उस पर झपट्टा मारते हैं और उसे पीठ-पीछे बाहों से पकड़ लेते हैं। एक लड़का जेब से कैंची निकालता है और उसकी दाढ़ी मूँडने लगता है। बुधसिंह उसके मुँह पर थूक देता है। लड़का उसके मुँह पर दो झाँपड़ लगाता है और उसके लम्बे बालों को पकड़ते हुए कैंची चलाकर उनका एक गुच्छा काटकर फेंक देता है।

वे काफी मज़ा ले चुके हैं। अब उन्हें अपने असली मक़सद पर आना है। एक लड़का कार का एक टायर लेकर आता है। वह उसके अन्दर की ट्यूब में पेट्रोल भरता है और उसमें आग लगा देता है। अब आग की माला तैयार है। दो लड़के उसे बुधसिंह के सिर के ऊपर उठाते हैं और फिर धीरे-धीरे उसके गले में डाल देते हैं। बुधसिंह दर्द से छटपटाता चिल्लाने-चीख़ने लगता है और ज़मीन पर ढेर हो जाता है। लड़के हँसने लगते हैं और उसे चिढ़ाते हुए सिखों का जयघोष करते हैं, 'बोले सो निहाल ''' सतश्री अकाल!'

□□

112597

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

Acc. 27-2-08
Class 12/08/08
Cat.
Tag V.Kumar
Filing
E.A.R.
Any other
Checked

Recommended By... पुस्तकालयाध्यक्ष

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

Entered in Database
Signature with Date
27/02/08

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली

खुशवंत सिंह

जन्म : 15 अगस्त, 1915, हडाली (संप्रति, पाकिस्तान)। लाहौर से स्नातक तथा किंग्स कालेज, लंदन से एल-एल० बी० ।

1939 से 1947 तक लाहौर हाईकोर्ट में वकालत। विभाजन के बाद भारत की 'राजनयिक सेवा' के अंतर्गत कनाडा में 'इन्फॉर्मेशन अफसर' तथा इंगलैंड में भारतीय उच्चायुक्त के 'प्रेस अटैची' के पद पर कार्य। कुछ वर्षों तक प्रिंस्टन तथा स्वार्थमोर विश्वविद्यालयों में अध्यापन।

भारत लौटकर नौ वर्षों तक 'इलस्ट्रेटेड वीकली' तथा तीन वर्षों तक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का कुशल संपादन। 1980 में राज्यसभा के सदस्य मनोनीत। 1974 में प्राप्त पद्मभूषण की उपाधि का 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' के विरोधस्वरूप त्याग।

पैंतीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। प्रमुख हैं : ट्रेन टु पाकिस्तान', 'हिस्ट्री ऑफ सिख्स' (दो खंड), 'रंजीत सिंह', 'दिल्ली', 'नेचर वॉच' तथा 'कालीघाट टु कैलकटा'। चार कहानी-संग्रहों तथा अनेक लेखमालाओं के अतिरिक्त उर्दू और पंजाबी से कई अनुवाद भी। 'राजकमल पेपरबैक्स' में 'प्रतिनिधि कहानियाँ'।

संप्रति 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'वीक' और 'संडे ऑब्जर्वर' के लिए नियमित स्तंभ लिखते हैं तथा 'पेंगुइन बुक्स कंपनी इंडिया' के सलाहकार संपादक के रूप में कार्यरत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar